

اندر سر کی یادیں



عشق

آمرتسری کی یادیں

مدرسہ اسلامیہ، امرتسری، پنجاب
پرنٹنگ پریس، امرتسری

اے حمید

مکتبہ عربیہ اسلامیہ لاہور

شایدیں

”امبرسریوں“

فہرست کے نام

آمرتہرگی یادیں

لے حمید

ناشر : محمد جمیل انبسی

طابع : ایف۔ ڈی پرنٹرز، لاہور

سرورق : طاہر رشید

قیمت

۲۰۰/-

یکے لفظوں میں :

مکتبہ عالیہ آفس : ایک وڈ (انارکلی) لاہور
شوروم : اردو بازار

نیا کراچی
دکٹر

فہرست

- ۱۳ - چند یادیں - چند باتیں
- ۲۷ - امرتسر میں فساد کا پہلا شعلہ
- ۴۷ - آگ اور خون کے گلاب
- ۵۶ - امرتسر میں ۱۴ اگست
- ۶۷ - امرتسر کا جیدانوالہ باغ
- ۸۸ - امرتسر کا کپنی باغ
- ۱۰۸ - امرتسر کی ایک گلی
- ۱۱۶ - امرتسر کی مسجدیں
- ۱۲۹ - امرتسر کا رمضان المبارک
- ۱۴۱ - امرتسر کی حمید
- ۱۵۵ - امرتسر کی ایک درگاہ
- ۱۶۹ - امرتسر اور سیب کا درخت
- ۱۸۶ - امرتسر کی ایک ہولناک رات
- ۲۰۲ - امرتسر کے دانشور
- ۲۱۰ - امرتسر کا ماشرٹنار

بخدمت شریف جناب

تاریخ: ۱۶/۵/۴۹

انجمن ترقی اردو • لاہور • حمید شاہد

۱۰۰ اردو لکچر، لاہور

تقریر: علامہ اقبال

۱۶/۵/۴۹

۱۰۰

پیارے مخلص عزیز دوست! حمید!

امرتسر کی مسجدوں پر پارا مضمون لکھنے والے

حمید کو میرا سلام پہنچے۔

کتی پیاری تصویر کھینچی ہے آپ نے امرتسر

کی (قبل رز پاکستان کی) ماسٹرٹ کی۔ یہ سکھوں

کا اور انگریزوں کا دور تھا کس قدر آباد

تھیں قریبہ کی بیٹیاں، کتنے اچھے امام صاحب

اور ان کے بیٹے جو آپ کے دوست تھے۔ قریبہ

کے حوالے نے تارخ کے درتے کھول دیے جن سے

اس ملک کے مستقبل پر دھندلی دھندلی روشنی

— ذرے ذرے کچھ چکے ہوئے کچھ بچتے ہوئے

۱۶۔ امرتسر کی میاں پوٹرو

۱۷۔ امرتسر کا ایک درویش

۱۸۔ امرتسر کا اسدجو

۱۹۔ امرتسر کا ایک گیٹ کیپر

۲۰۔ امرتسر کا ایک جواری

۲۱۔ امرتسر کا پروفیسر مندی

۲۲۔ امرتسر کے جن ادر بھوت

۲۳۔ نور کبھی ہاتی جیک نہیں ہوتا

۲۴۔ الوداع مسجد کے مینارو

۲۵۔ امرتسر کی آخری جھلک

۲۱۹

۲۲۹

۲۳۸

۲۴۹

۲۵۷

۲۶۵

۲۸۰

۲۸۹

۲۹۳

۲۹۷

نظر آئے۔ اشارت نے چہرہ لبیک روشن کر دیے

پیرا احمد پھر جاگ اٹھتے مگر معلوم نہیں اب اس

معلم میں جاگتا رہے گا یا نہیں۔ کاشی ایسی

شاکر مختاریں دو تین اور لکھ ڈالے۔

شاید میرا جذبہ دل میرا پیغام آپ

بک پہنچا دے۔
شکریہ

سید احمد

اے حمید کے نام۔ بنگلہ دیش کے ایک پاکستانی کا خط

کھانا
بھنگا
میرا
عاجی اعجاز بزرگ
اسم صمیم
۱۵ پامر بادرک

میرا کہ مزاج بڑا مہربان!

آپ کے لکھے کتب خانہ میں۔ اور میرا دادا جان بھی اسی لکھے تھے۔

شعبہ پورہ میں رہتے تھے۔ بس اشنا جانتا ہوں۔ آپ کے مفاہیم

اساتذہ سے متعلق جو آئے ہیں۔ پڑھتا ہوں۔ وہ بھی کبھی کبھار۔

آپ سے گزارش ہے کہ اگر لکھے بزرگوں کو کتاب۔ جو تو اس کی قیمت

اور ڈاکے خرچ ہو رہے ہیں۔ میں پاکستان کونسل میں مطلوب رقم امانت

کرتا ہوں۔

عالمی ہندو پاکستان ادب نمبر میں آپ کا افسانہ "پیرا پیرا پیرا" لکھا

نظر آئے ہیں۔ خوبصورت افسانہ ہے۔ مبارکباد قبول فرمائیں۔

میں آپ کو لکھتا ہوں کہ پاکستان کے نام پر قسم دیتا ہوں

کہ آپ میرا خط کا جواب دیجئے گا۔ بے پاکستان اور بھارت کے لوگوں سے

جو لکھتے ہیں۔ وہ ناقابل بیان ہے۔ پاکستان کو اللہ تعالیٰ نظر دے۔ چاہے۔

پاکستان کے (موجودہ پاکستان) بعد بیان ہوگا۔ مگر وہ آباد ہے۔ خوش رہے

کا پیار سے کسی راہ پر گامزن رہے۔ سب سے پہلی درجہ پر مشتمل ہر اتنا رہے، پاکستان

کی وحدت اور سالمیت برقرار رہے۔
و اب کہ عہد انتہا ظلم کا رہا۔
محمد نور الحق
محمد نور الحق

MOHAMMED NOORUL HOQ
AT NO. 5-59
HOUSING ESTATE
PO. KHALISHA PUR
DIST. KHULNA 9000

1945年10月1日

此後...

3. 10. 1900

نصفه از آن در روزی یک بار و نصف دیگر در روزی یک بار

1871

1875. 10. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840. 841. 842. 843. 844.

Handwritten text in Urdu script, likely a signature or a note, located at the bottom of the page.

Handwritten text in Urdu script, likely bleed-through from the reverse side of the page.

Handwritten text in Urdu script, likely a continuation of the letter or a separate note.

[illegible]

المتر

کی یادیں

اے حمید

کی یادیں

اے حمید

چند یادیں۔ چند باتیں

دروازہ مہان سنگھ سے باہر نکلیں تو سیدھی سرک آرٹ سکول کے پہلو سے گزرتی، دائیں جانب بروہی شاہ کے نیکے کو اور بائیں طرف پاتھی گراؤنڈ کو پیچھے چھوڑتی سامنے تحصیل پورے کی طرف نکل جاتی ہے تحصیل پورے کی آبادی ختم ہوتے ہی دو طرفہ لوکاٹ کے گہرے سبز چھاؤں والے باغوں کے بچوں بچ ایک تنگ سا کچا راستہ ہالندھر بٹالہ ریوے لائن کی طرف نکل جاتا ہے۔ اس کچے راستے پر کھٹے کے پودوں نے چھت بنا رکھی تھی۔ مارچ، اپریل کے دنوں میں جب کھٹے کے جھاڑوں میں سفید پھول کھلتے تو سارا راستہ مہک جاتا۔ میں باغ کی سیر کو جلتے یہاں سے لمبے لمبے سانس لیتا، آہستہ آہستہ گزرا کرتا تھا اور سفید پھولوں کو — لیکن یہ نہیں کہاں نکل آیا! کھٹے کے سفید پھولوں کی خوشبو مجھے ایک ہی میں کہاں سے کہاں لے کر نکل گئی۔ میں واپس دروازہ مہان سنگھ میں آتا ہوں۔

دروازہ مہان سنگھ ہمارے محلے کا دروازہ تھا۔ اُن دنوں مجھے کبھی یہ احساس نہ ہوا تھا کہ یہ مسلم اکثریت کا علاقہ ہے۔ یہ بھید ہندو مسلم فسادات کے بعد کھلا۔ اس دروازے سے باہر نکل کر آپ دائیں طرف سرک گھوم جائیے۔ ایک طرف شیشم کے سایہ دار درختوں کی قطار قدر تک چلی گئی ہے اور دوسری طرف گلاب، ڈیلیا اور چیل کے پھولوں سے مہکتا باغ سرک کے ساتھ ساتھ دروازہ گھی منڈی تک چلا گیا ہے۔ اس باغ میں پوکٹس کے نو عمر چہرے پر سے درخت ہوا کرتے تھے جن کی لمبوتری پتوں والی ٹہنیاں گرمیوں کی صبح کی ٹھنڈی ہوا میں جھٹاکرتی تھیں۔

۱۴ اگست کی خون آلود، دھواں دھواں، دہشت زدہ دوپہر کو جب ہم افراتفری کے عالم میں دروازہ مہان سنگھ سے نکل کر شریف پورہ کیمپ کی طرف بھاگے تو گورنمنٹ اسپور ریوے لائن کے پار مقبول پورے کی مسلم بستی سے لڑتے دھوئیں کے بادلوں میں آگ کی سرخ زبانیں لپک رہی

سنگھ

یادیں

چند

تیں اور اس باغ کے نو عمر بوکپٹس کے درختوں کی لمبی نازک ٹہنیاں جھکی ہوئی تھیں۔ ساکت و جامد تھیں جیسے وہ پتھر ہو گئی ہوں۔

قیام پاکستان کے پانچ سال بعد جب میں امرتسر گیا تو ان درختوں نے مجھے دُور سے آمادیکہ کر اپنی شاخیں ہلا کر مجھ اپنی طرف بلایا۔ مجھے اپنی بے زبانی میں خاموش آوازیں۔ اپنی سونفنی خوشبو کی آواز میں میرا نام لے لے کر پکھا۔ اور جب میں اُن کے پاس گیا تو وہ چپ ہو گئے۔ میں نے ایک درخت کے تنے پر ہاتھ رکھا۔ اُس کا دل دھڑک رہا تھا۔ درخت کی ایک ٹہنی نے میرے سینے پر ہاتھ رکھا۔ میرا بھی دل دھڑک رہا تھا۔ ہم دونوں کے دل ایک ہی تال پر دھڑک رہے تھے یہ جنت کی تال تھی۔ بہرگز، بہرہ از دوست، بہر تن گوش، کبھی نہ سبیلانی جانیوالی، کبھی نہ چڑھنے والی کبھی نہ یونانے والی جنت کی تال۔ کبھی نہ چڑھنے والی، کبھی نہ اترتے والی شراب کا نشہ کبھی نہ طلوع ہونے والے، کبھی نہ غروب ہونے والے سورج کی روشنی! میں اور درخت کتنی ہی دیر باتیں کرتے رہے۔ اُس نے کہا۔

”تم بھی مجھے چوڑ کر چلے گئے؟“

میں نے کہا۔

”سبھی چلے گئے تھے۔ تم نے دیکھا نہیں؟ امرتسر تو مسلمانوں کے لیے جہنم بنا دیا گیا تھا اور مسلمان جہنم میں نہیں راکتا۔ لاہور کے صیرنگ کراس اور سمن آباد میں کچھ بوکپٹس کے درخت ہیں۔ میں اُن سے متہارا حال پوچھ لیا کرتا ہوں۔ ویسے بھی صبح دم جب سمن آباد کی مسجدیں اذان کی صداؤں سے گونجتی ہیں اور نیم روشن صحن میں ٹٹماتے ۳۰۰ بھرے آسمان تھے اگر گہرے سانس لیتا ہوں تو مجھے تمہاری خوشبو آیا کرتی ہے۔ تمہارے پتوں کی سرگوشیاں سُنانی دیا کرتی ہیں۔“

بوکپٹس کی ٹہنیاں خوشی سے لہرانے لگیں اور۔۔۔۔۔

معاف کیجئے گا میں پھر اپنے موضوع سے بہٹ گیا۔ میری اور درخت کی باتیں تو کبھی ختم نہیں ہوں گی۔ یہ سلسلہ تو موت کے بعد بھی جاری رہے گا۔ اُن۔۔۔ تو میں کہہ رہا تھا کہ جہاں یہ باغ ختم ہوتا ہے وہاں اگلی سکھوں یعنی نہنگوں کا ایک چھوٹا سا قلعہ ہے جسے

بُنڈ پھولا سنگھ کہتے ہیں۔ سکندر حیات کی وزارت میں سکھوں نے اپنے گرد وارسے کے پاس اس کی تعمیر شروع کی تو امرتسر کے مسلمانوں نے حکومت پنجاب سے شدید احتجاج کیا۔ جیسے ہوئے امرتسر کے پاس مسلمانوں کے وفد گئے لیکن کچھ نہ بنا اور قلعے کی تعمیر شروع رہی۔ قلعہ بن گیا۔ اس قلعے کے سوراخوں سے گمی منڈی اور وہاں سنگھ دروازے کے مسلمانوں پر اندھا دھند فائرنگ کی۔ ہمارے محلے کا جوان جیر اٹال والا انہی سکھوں کی گولی لگنے سے شہید ہوا۔

اس قلعے کے سامنے ایک چوٹی سی پختہ سرنگ نیچے کو اترتی ہے۔ کونے پر ایک مسجد ہے کتوال اور اکھاڑ ہے۔ ذرا گئے جا کر پہلی آجاتی ہے اور پھر قبرستان شروع ہو جاتا ہے۔ جس درگاہ کے بارے میں میں نہیں کہنے والا ہوں وہ اسی قبرستان میں واقع تھی۔ ہم سب نے ایسی بہت سی درگاہیں دیکھی ہوں گی جو صدیوں سے آباد ہیں اور جن کی رونقوں اور گنگا ہٹوں میں وقت کے ساتھ ساتھ اضافہ ہو رہا ہے لیکن امرتسر کے قبرستان والی یہ پہلی درگاہ تھی جو میری آنکھوں کے سامنے عالم وجود میں آئی۔ برقی قلموں سے بقیہ لوری، اس کی نقائیں بیدم وارثی کے عارفانہ کلام سے گونجیں، وہاں دودھ کی نہریں بہیں اور میری آنکھوں کے سامنے وہ اُجڑ گئی۔ لوگ اُس کے برقی قلمے اور ٹونٹیاں اُتار کر لے گئے اور دودھ کی نہروں میں کڑیوں نے ہالے تن لیے۔ یہ درگاہ امرتسر کی ہماری کشمیری برادری کے ایک قریبی عزیز خواجہ صاحب نے اپنے نانا کی قبر پر بنائی تھی۔ میں اُن دنوں ایم اے او ای سکول میں۔ ساتویں یا آٹھویں جماعت میں پڑھتا تھا۔ خواجہ صاحب کے پاس اچانک کہیں سے دولت آگئی انہوں نے فوراً قبرستان میں اپنے نانا کی قبر پر (جیسا کہ والدہ مرحومہ اور والدہ جان بھی بتایا کرتی تھیں) ایک عظیم الشان درگاہ کی بنیاد رکھ دی۔ درگاہ کی تعمیر شروع ہو گئی۔ نقد دھار سے کارگر مزدوروں کی خدمات حاصل کی گئیں۔ میرے خالہ زاد بھائی رشید لال نے وہاں بجلی کی ساری فیکٹ فوکی۔ میں آج بھی چشمِ تصور میں اُسے تہج کس دانم میں وہاں نے میری پر جھک کر تاروں کو ایک دوسرے سے جوڑتا دیکھ رہا ہوں۔ درگاہ کے گنبد کے اندر جو روشنیاں لگیں وہ سبز انگوروں کے گھنوں کی شکل میں لٹک رہی تھیں۔ اگر وہاں اور کھٹو سے نہایت قیمتی اور حسین جواڑ فانوس منگوا کر اندر لٹکائے گئے گنبد کے اندر تین قبروں کے تعویذ تھے۔ ایک خواجہ صاحب کے نانا کی قبر کا تعویذ تھا۔ دوسرا غالباً اُن کی تانی صاحبہ کی قبر کا تعویذ تھا اور تیسرا تعویذ اُن کی اپنی قبر کا تھا جو تعویذ کے نیچے تہہ تہہ

میں کھلی پڑی تھی۔ انہوں نے وصیت کر رکھی تھی کہ مرنے کے بعد انہیں وہیں تہہ خانے میں دفن کیا جائے۔ ایک دفعہ یہ تہہ خانے میں اتر گیا۔ چھوٹا سا لحد نما تہہ خانہ تھا۔ چت اور دیواروں پر سینٹ کیا ہوا تھا۔ جگہ جگہ چمکتی برکیٹوں والے دو دریاغبارہ منابیل لگے تھے۔ وہاں مرنے کے بعد خواجہ صاحب کی قبر تعمیر ہونی تھی۔ جیسا کہ میں پہلے بھی لکھ چکا ہوں امرتسر کا یہ قبرستان بڑا خوبصورت تھا۔ آپ نے دیکھا ہوگا کہ لاہور میں مسلمانوں کے ننھے قبرستانوں پر گرہوں میں پھلتی دھوپ پڑتی ہے اور سردیوں میں کہرا گرتا ہے جب کہ لاہور میں عیسائیوں کے قبرستانوں میں سایہ دار درختوں کے جھنڈ ہیں اور قبروں کے کتبے پھولوں سے ڈھکے رہتے ہیں۔ امرتسر کا ہمارے محلے کے باہر والا قبرستان لاہور کے گورا قبرستان سے بھی زیادہ شاداب اور پرسکون تھا۔ حاصل یہ قبرستان آم، لوکاٹ اور امرود کے باغوں کے بیچ میں اگڑا ہوا تھا۔ یہاں کوئی قبر ایسی نہ تھی جس پر کسی حدیث کا سایہ نہ ہو اور پتھر کی گلاب یا گیند سے کے پھول نہ کھلے ہوں۔ ہم رات کو بھی قبرستان میں بے دھڑک چلے جاتے۔ ہمیں کبھی کسی قسم کا خوف یا دہشت محسوس نہ ہوتی، بلکہ یوں لگتا کہ واقعی ان قبروں کے اندر بڑے ہی نیک لوگ خواب ہیں۔ یہی وجہ ہے کہ ہم نے بچے ہوتے ہوئے بھی کبھی کسی چھوٹی سے چھوٹی قبر پر بھی پاؤں نہ رکھا تھا۔ یہاں پھلدار باغوں میں ندی کے ٹپاے ٹنڈے پانی کے چوٹے چھوٹے ٹپاے بہتے تھے برسات میں ان ٹالوں میں درختوں سے ٹپکے ہوئے آم اور امرود ہوا کرتے جنہیں ہم وہیں کسی پتھر پر بیٹھ کر مزے لے لے کر کھاتے۔ برسات میں گھنگھور گھٹائیں برسیں اور ہم یہاں امرود کے درختوں پر چڑھے اور امرود پاؤں پھسائے امرود توڑ توڑ کر نیک کی جیبیں بھرا کرتے۔

عید کی صبح کو منہ اندھیر سے لوگ قبرستان جا کر فاتحہ اور قرآن خوانی کرتے۔ میں بھی اپنے چھوٹے آرٹسٹ بھائی کے ساتھ ضرور جاتا۔ ہم لوگ گئی منڈی والے دروازے سے نکل کر کونے والی مسجد کے پاس گتے تو ہمیں سنے گلاب کے پھولوں کی خوشبو محسوس ہوتی۔ سڑک کنارے گلاب کے پھول بیچنے والے بیٹھے ہوتے۔ بڑی بڑی چنگیریں سڑخ گلاب اور ان کی تیلیوں سے بھری ہوتیں۔ دو پیسے کے پھول لے کر دھال میں باندھ لیتے اور گرم کشمیری شالوں میں دیکھے شہر قی سرودی میں قبرستان میں داخل ہو جاتے ان دنوں بڑی سخت سردی پڑا کرتی تھی۔ ہمارے ہاتھ ٹنڈے ہوتے اور بات کرتے وقت منہ سے بھاپ نکلا کرتی۔ اوپر نیلے آسمان پر طلوع آفتاب سے پہلے کی روشنی میں ٹٹھکتے تارے نہ دیکھ رہے

ہرتے تھے۔ چوٹی سی سڑک کے دونوں جانب خانہ بدوش قسم کے فقیر چھوٹیاں پھیلائے بیٹھے اپنی اپنی بولیوں میں خیرات مانگ رہے ہوتے۔ ان کے پیچھے امرودوں اور اناروں کے باغوں میں گلاب اندھیرا چھایا ہوتا۔ اب اور اور سے دھیمی اثر انگیز آواز میں قرآن شریف کی تلاوت کی آوازیں سنائی دینے لگیں۔ لوگ اپنے اپنے عزیزوں کی قبروں پر مٹی کے دیے اور موم بتیاں جلا رہے ہوتے۔ پھول اور چاول بکھیر رہے ہوتے۔ کہیں کہیں ان کے آداس چہرے چراغوں کی پھڑپھڑاتی روشنی میں ابھرتے اور پھر غائب ہو جاتے۔ مٹی جون کی تپتی سنسان دھبوں میں یہاں سے گزرتے ہوئے گلاب کے پھولوں اور لکیر کے پیسے پھولوں کی گرم خوشبو آ کر تھی۔ ذرا پر سے ایک نہر بہتی تھی۔ اور سے جو ہوا آتی اس میں بھنگ کی جھاڑیوں کی مرطوب بو ہوتی۔

اس قبرستان کا جو حصہ حالانکہ ہر طرف عاتی جی ٹی روڈ کو لگتا تھا اور یہ درگاہ تھی۔ اس درگاہ تھی۔ اس درگاہ پر پہلے سڑک ہوئی تو امرتسر کے گلی کوچوں کی دیواروں پر قد آدم اشتہار چسپاں ہو گئے۔ ان اشتہاروں پر بڑے بڑے جلی صوف میں لکھا تھا: امرتسر میں دودھ کی نہریں بہنے لگیں۔ اس کے بعد درگاہ کے بارے میں تفصیل درج تھی اور اس بات کا اعلان تھا کہ سڑک شریف تین روز تک جاری رہے گا۔ پہلے روز کی محفل سماع کی صدارت حضرت بیہم وارثی فرمائیں گے۔ دکانداروں کو ہدایت کی گئی تھی کہ وہ میلہ شروع ہونے سے پہلے وہاں آکر اپنی اپنی دکانیں سمجھالیں۔ ایسا نہ ہو بعد میں بچھٹانا پڑے۔ قوالوں کا باقوال اینڈ پارٹی کے علاوہ محمد علی فریدی قوال کا نام بھی درج تھا۔ میرے خالو جانا مرحوم یہ اشتہار چھوٹے میں ڈال کر ہمارے گھر لائے اور سب کو پورے کا پورا پڑھ کر سنایا۔ پھر بولے۔

وہیں اس درگاہ کے سڑک کے خلاف ہوں یہ سب جھوٹ کا کھیل ہے۔

خالو جان ساٹھ پینسٹھ برس کے دیو قامت، بھاری بھر کم اونچے لمبے بزرگ تھے۔ لمبی ڈاڑھی کھٹا گئی رنگ، لمبا کھدر کا کڑتہ۔ کھدر کی دھوق، لال چمڑے کی جوتی، ہاتھ میں موٹا عصا۔ بازار کبر واناں کی روڑاں والی مسجد کے پیش امام تھے۔ تحریک خلافت میں میری والدہ سمیت اپنے سب گھر والوں کو لے کر کابل چلے گئے جہاں سے انتہائی کس مہر سی کے عالم میں واپس امرتسر آئے۔ کابل میں حجازی مسلمانوں کی حالت زار کا نقشہ بڑے موثر انداز میں کھینچا کرتے۔ انہیں ایک بات کی بڑی خوشی تھی کہ انہیں کابل میں شہنشاہ بابر کے مزار کی زیارت نصیب ہوئی۔ بابر کے سنگ مزار پر رکھی ہوئی فارسی دہائی

بڑے جوش و خروش سے پردہ گرٹا کرتے۔ کشمیری بزرگوں کی طرح ڈٹ کر کھاتے۔ میلوں پیدل چلتے۔ جمعے کے جمعے ہر سحریز اور رشتے دار کے گھر خیریت معلوم کرنے جاتے۔ ڈیڑھ می میں ذرا کھنکار کر گھر کے کسی فرد کا نام لے کر پکارتے۔ جن دنوں میں فطینک روڑ پر راکرنا تھا خانو جان کی پاٹ دار اُواد ہر جمعے کی صبح کو مکان کی ڈیڑھ می میں دُنبتی۔

”بابو عبدالحمید۔“

خانو جان کی سب سے بڑی خصوصیت میرے نزدیک یہ تھی کہ اُن میں ظرافت کی جس بڑی تیز تھی بڑے لطیفے سناتے۔ بات کو خوب مرپ مسالہ لگا کر پیش کرتے۔ نڈاسی بات پر خوب کھل کھلا کر بچوں کی طرح ہنستے۔ ایک روز میں خانو کے ہاں گیا ہوا تھا۔ ہم نو عمر لڑکوں کو ایک جگہ اکٹھے دیکھ کر ہاسٹو ہال گئے اور عمارت دوار سے لگا کر تخت پوش پر بیٹھتے ہوئے بولے۔

”لو بھی آج تمہیں عبدالرحمان جن کا قفسہ سنا تا ہوں وہ مجھے خود بھی کبھی کبھی سن لگتے تھے۔ چھ فٹ سے نکلتا قد۔ بھاری جسم۔ رعب دار آواز اور قدیم لہجائی غلا سفروں ایسا بھر پور چہرہ۔“ لیکن اُس روز انہوں نے ہمیں جس جن کے بارے میں سنا یا وہ اُن کی مسجد کے حجرے میں رہتا تھا۔ کہنے لگے۔

”لو صبیح دوستو! کرنا خدا کا کیا ہوا کہ ایک روز میں نے اُن بچوں کو جو میرے پاس

قرآن شریف پڑھنے آتے ہیں کہا کہ میرا بدن دابو۔ میں پہلو بدل کر لیٹ گیا اور سارے بچے میرے بدن پر ہلکی ہلکی لگیاں مارنے لگے۔ مجھے کچھ ایسا مزہ آیا کہ سو گیا۔ آنکھ کھلی تو سارے بچے جا چکے تھے صرف عبدالرحمان نامی لڑکا میری پنڈلیوں پر لگیاں مار رہا تھا۔ حجرے میں کافی پرے طاق میں دیا تل رہا تھا۔ میں نے عبدالرحمان سے کہا کہ بیٹا دیا تل کر دو۔

اور تہ بھی جا کر آرام کرو۔ عبدالرحمان نے وہیں بیٹھے بیٹھے پھونک مار کر دیا بجا دیا۔ پس پھر کیا تھا۔ میں وہیں اٹھ کر فوراً عبدالرحمان کی کلائی پکڑ لی اور کہا۔ سچ بتا تو کون ہے؟ عبدالرحمان

گھبرا گیا۔ جب میں نے کلائی نہ چھوڑی تو بولا۔ میں عبدالرحمان جن ہوں۔ لو بھی دوستو! اب وہ جن میرا رعب ہے اور مجھے کبھی کبھی کابل کے قندھاری انار لاکر کھلاتا ہے۔ پس چٹا بجا ہے۔ وہ سُرُخ قندھاری انار اُس کے ہاتھ میں ہوتا ہے۔“

وہ دے کے ہمارے میں بھی نہ بولتا میرے والد صاحب کو کھٹے لفظوں میں کہہ دیا۔

مجھے عبدالرحمان جن نے سب کچھ بتا دیا ہے عبدالعزیز! خواجہ نے وہاں درگاہ کی عمارت تعمیر کر کے اچھا کام نہیں کیا۔ عمارت کے نیچے کئی نیک آدمیوں کی قبریں لگائی ہیں۔ یہیں شریعت اس کی اجازت نہیں دیتی۔

لیکن درگاہ کے پہلے عرس میں خانو جان پیش پیش تھے۔ درگاہ کے پچھوڑے اپنی لگڑنی میں زردے بریانی کی دلیں دم کر رہے تھے۔ بہنی نائی کو کام کرتے ہوئے بار بار ٹوکتے۔

”زردے میں سنگرتے کے ترخ ڈال دیئے؟“

”بہنی! جو لے کی آگ تیز لگتی ہے مجھے۔۔۔۔۔“

”بریانی تیار ہو گئی ہو تو ایک بڑکی چکھانا مجھے۔۔۔۔۔“

پہلے عرس پر درگاہ کے اندر باہر بڑی رونق تھی۔ شہر سے زیادہ تر لوگ دودھ کی نہروں کاٹن کر آئے تھے۔ دودھ کی نہر درگاہ میں ایسے چلائی گئی تھی کہ سینٹ کے پختہ ایک بوتل سے نینک کو کچھ دودھ کی لسی سے بھر دیا گیا۔ تانبے کا ایک پائپ گنبد کے گرد گرد چاروں طرف لگا تھا جس میں ٹوٹیاں تھیں لوگ ٹوٹیاں کھول کر گلاس، پیالے اور ڈول بھر بھر کر دودھ کی لسی پیتے اور حیران ہوتے کہ واقعی خواجہ صاحب نے دودھ کی نہر چلا دیں۔ درگاہ کے سامنے سڑک کے کٹے ہوئے کھیتوں میں تہوقتائیں لگا کر لوگوں نے دکانیں کھول رکھی تھیں۔ قندے سے مار رہے تھے۔ جھولے لگے تھے۔ موت کے کنوڑوں میں موٹر سائیکل گرج رہی تھی۔ درگاہ رنگ برنگی جھنڈیوں سے سجی تھی۔ شہر کے علاوہ دیہات سے بھی عورتیں بچے بوڑھے اور جوان دُعا مانگ رہے تھے۔ فاتحہ پڑھ رہے تھے۔ جالیوں میں اٹیاں باندھ کر فتنیں مانگ رہے تھے۔ میں نے ایک مالی کی منڈی آنکھ میں سے اندر جھانک کر دیکھا۔ تینوں قبروں پر بچوں کے ڈمیر لگے تھے۔ اُس قبر پر بھی جس کی لحد میں ابھی خواجہ صاحب دفن نہیں ہوئے تھے۔ لوگ اُن کی مالی قبر پر بھی فاتحہ پڑھ رہے تھے۔

ہماری امرتسر کی ساری کشمیری برادری سارے رشتے دار عرس پر جمع تھے۔ جہاں تک مجھے یاد آتا ہے کسی نے بھی درگاہ کے تقدس کو دل سے قبول نہیں کیا تھا۔ انہیں معلوم تھا کہ قبر سے میں کون دفن ہوں۔ چنانچہ اپنے رشتہ دار میں میں نے کسی کو مقبرے کی جالیوں کے پاس کھڑے ہو کر دُعا مانگتے نہیں دیکھا۔ ان جھنڈا رکھانے میں وہ سب سے آگے تھے۔ پلاؤ سے لبالب بھرے ہوئے

قالبوں پر وہ چُن چُن کر قورے کی بوٹیاں رکھوا رہے تھے۔ پھولدار قناتوں کے پاس دریوں پر اُلٹی پالتی مار کر بیٹھے وہ جن بھوتوں کی طرح خود بھی کھا رہے تھے اور اپنے بال بچوں کو بھی مار مار کر کھلا رہے تھے۔ رات کو گیس کے نہڈوں کی تیز روشنی میں قوالی شروع ہوئی تو ہمارے ایک رشتے دار کو حال آگیا۔ وہ لوگوں کو گزریں ماننے لگا۔ کسی کے قالب میں ہی نہ آتا تھا۔ بڑی مشکل سے چوڑیوں نے پکڑ کر اسے رسیوں سے باندھا اور گھر چھوڑ کر آئے۔ اگلی صبح اُس کی رسیاں کھول گئیں تو وہ پھر حال کیلئے لگا۔

قوالی کی انہی محفلوں میں میں نے پہلی بار مشہور شاعر حضرت بیدم وارثی کو دیکھا۔ پُر سکون و بکا چہرہ ملائم چمک والی آنکھیں، زرد رنگ کی چادر اوڑھے اگلی قطار میں خاموش بیٹھے تھے۔ قوالی ان ہی کا عارفانہ کلام گارہے تھے۔ محمد علی فریدی قوال ان دنوں جوبن پر تھے۔ مدگاہ کے کونے کونے میں ان کی پُرسوز آواز گونج رہی تھی۔ میں اپنے خاندان کی عورتوں اور بچوں کے ساتھ تمبوؤں کے نیچے اُس حصے میں بیٹھا تھا جو عورتوں کے لیے مخصوص تھا۔ درسی کے نیچے تازہ بنا ہوا اینٹوں کا فرش ٹھنڈا ٹھنڈا تھا۔ قوالی میں میرا بالکل جی نہ لگا۔ میں اپنے بھوپھی زاد بھائی کے ساتھ مقبرے کے گنبد کے پاس آگیا۔ یہاں دالان کے کونوں کھدروں میں لوگ کھل اور سے سو رہے تھے۔ گنبد کے اندر جھاڑ خانو سے روشن تھے۔ بے شمار گرہیاں سلگ رہی تھیں جن کی بھاری خوشبو سے ذہن بوجھل ہو رہا تھا۔ مدگاہ کے اپنے چڑیا گھر سے دوروں کے کونے کی وائیں آرہی تھیں۔ ایک بوڑھی عورت مقبرے کی جالی سے منہ لگائے، آنکھیں بند کیے کچھ بڑبڑا رہی تھی اُس کی بند آنکھوں سے آنسو بہہ رہے تھے۔ دالان کے مغزلی حصے میں سجادہ نشین، نائب سجادہ نشین، متولی، خزانچی اور سیکریٹری سجادہ نشین کے کمرے تھے جن کے باہر اندر میں ان کے ناموں کی تختیاں لگی ہوئی تھیں۔ ہم دونوں گھومتے گھاتے اور کونکھ لگے۔ ہم نے جالیوں میں سے اندر جھانک کر دیکھا۔ خواجہ صاحب گاؤں کے ساتھ لگے بیٹھے تھے۔ بلب کی روشنی میں بڑی بڑی مونچھوں والا ان کا سرخ و سپید بارعجب چہرہ پیک رہا تھا۔ کچھ لوگ بڑے ادب سے اُن کے سامنے بیٹھے اُن کی باتیں سن رہے تھے۔ ساتھ ملے کمرے کی جالیوں سے اندر جھانک تو ایک بھولی ہوئی توند والا موہاناہ آدمی گرم کشمیری شال کی بجلی در سے قالین پر کھلا آلتی پالتی مار سے بیٹھا زردہ بڑا رہا تھا۔ ہم یہاں سے نکل کر مدگاہ کے پچھوڑے چڑیا گھر کی طرف آگئے دس بارہ مرے مین کے گرد باڑھ لگا کر اندر مختلف خانوں

میں مور، قیترا، طوطے، کبوتر اور مین چار ہرن چھوڑ دیئے گئے تھے۔ یہاں بھی اوپر و حط میں ایک بڑا سابلب روشن تھا۔ روشنی میں جانور کچھ بے چین سے دکھائی دے رہے تھے۔ ہمیں جھگے کے پاس آتا دیکھ کر ہرن آہستہ آہستہ چلتے ہمارے قریب آ کر کھڑے ہو گئے۔ اُن کی بڑی بڑی پتکتی آنکھیں مجھے آج بھی یاد ہیں۔ ہم بڑی دیر تک اُن سے کہتے رہے۔ قوالی کی آواز یہاں بھی آرہی تھی۔ اچانک پیچھے آہٹ سی ہوئی۔ ہم نے پلٹ کر دیکھا۔ ہمارے پیچھے امرود کے جھگے ہوئے درختوں کے گہرے سایوں میں قبریں ہی قبریں پھیلی ہوئی تھیں۔ ہم دونوں ڈر گئے اور وہاں سے بھاگ کر دالان کی طرف اور روشنیوں میں لگے۔

رات منہ کے بعد محفل سماع ختم ہوئی۔ خالوجان اپنا بھالے کر ہمارے خاندان کی عورتوں اور بچوں کی ٹولی پیچھے لگائے گھر کی طرف چل پڑے۔ سارا راستہ قبرستان میں سے ہو کر گزرتا تھا۔ مجھے بڑا ڈر رہا تھا۔ میں اپنی والدہ کے ساتھ لگا چل رہا تھا اور دل کو اس خیال سے طاقت دے رہا تھا کہ خالوجان ساتھ ہیں اور جی بھوت چڑھیں اُن کی مطلع ہیں۔ درختوں پر اندھیرا اور سکوت چھایا ہوا تھا کسی وقت کوئی آواز نہ آئے گا اور نغما اور زیادہ ڈراؤنی ہو جاتی۔ عورتیں اونچی اونچی آواز میں باتیں کر کے اپنے خوف کو دور کر رہی تھیں۔ لمبے ترنگے خالوجان موٹا معازین پر بار بار مارتے، بار بار کھنکارتے کوئی بیس قدم آگے آگے چل رہے تھے۔ کسی وقت بلند آواز سے وہ کلمہ شریف کا ورد کرنا شروع کر دیتے۔ خدا خدا کر کے قبرستان کا راستہ ختم ہوا اور ہم دروازہ گئی منڈی سے نکل کر بازار کبر و اہل میں آگئے لگے روز خالوجان نے ایک من گھڑت کہانی مشہور کر دی۔ کہنے لگے۔

رات اگر میں تم لوگوں کے ساتھ نہ ہوتا تو خدا جانے کیا سہجاتا۔ تم لوگوں

کو قبرستان سے لے کر گزر رہا تھا کہ کھائی کے پاس پہنچ کر کیا دیکھتا ہوں کہ ایک بڑا بلی پر بیٹھی ہے۔ اُس کے بال کھلے ہیں۔ ہاتھ پیر اُٹلے ہیں۔ دانت باہر کو نکلتے ہوئے ہیں۔ آنکھیں سرخ انگارہ ہو رہی ہیں۔ مجھے دیکھ کر جھپٹ اُٹھ کر کھڑی ہو گئی اور ہاتھ پر ہاتھ رکھ کر کہا السلام علیکم پیر جی! یہاں پہنچ کر خالوجان باقاعدہ اُٹھ کر چڑیل کی نقل اتارتے۔ ہاتھ اٹھا کر سر جھکا کر چہرے پر کجاست بھری مسکراہٹ اکر چڑیل کے سلام کہنے کا انداز بتاتے۔

”میں نے عصاٹھا کر چڑیل سے کہا، اوتا مرو! تو یہاں بیٹھی کیا کر رہی ہے؟
مجھے خبر نہیں کہ پیچھے میرے بچے آرہے ہیں، اچل دفع ہو جا میری آنکھوں سے۔ اٹھ
بھاگ! اور چڑیل ہی ہی ہی ہی سلام پیر جی سلام پیر جی! کہتی لٹے
پاؤں بھاگ کر اوروں کے درختوں میں غائب ہو گئی۔“

رشتے درختوں نے سنا تو انہیں قبرستان والی رات یاد کر کے پسینے آ گئے۔ مگر پر یہ اثر ہوا
کہ اس کے بعد میں دوپہر کے وقت بھی قبرستان جاتے گھبرانے لگا۔
عرس کے ملاوہ بھی ہم دن میں اکثر کھینٹے اور ہنگ اڑانے درگاہ پر جایا کرتے تھے۔ باغوں
میں گھس کر کچے کپے اورد توڑتے۔ کھیتوں میں جا کر مولیاں اکھاڑتے اور انہیں درگاہ کے حوض پر لا کر
دھوتے اور نمک مرچ لگا کر کھاتے۔ میرے دادا جان سردیوں کی دوپہر میں عام طور پر درگاہ پر ہی
گزارتے۔ وہ مقبرے کے پاس فرش پر در کی بچا کر بیٹھ جاتے۔ روٹی کے بھورے کر کے چڑیوں
کو ڈالتے۔ پانی سے لبالب بھرا ہوا کٹورہ پاس رکھ لیتے۔ چڑیاں وہاں آکر بڑی آزادگی سے دانہ دنگا
چیتیں اور کٹورے پر بیٹھ کر چونچ ڈباڈبا کر مزے سے پانی پیتیں۔ وہ دادا جان سے ذرا بھی دگھرتی
دادا جان بھی اُن سے بڑا پیار کرتے تھے۔ انہیں پانی پیتا دیکھ کر بچوں کی طرح خوش ہوتے۔ کسی وقت
اُن سے باتیں کرنے لگتے۔ ہم دونوں بھائی گڈی میں ڈور ڈالتے۔ جب ہماری گڈی یا پتنگ برسوں
کے کھیتوں کے اوپر نیلے آسمان کی ٹھنڈی ہواؤں میں لہرانے لگتی تو دادا جان ماتھے پر ہاتھ کا چھوا
بنانا کر اُسے دیکھتے اور ساتھ ساتھ کہتے جاتے۔

شباباش! طویل مت دینا۔ ہوا تیز ہے ڈھکس کر رکھنا۔ میرا خیال ہے بائیں طرف کئی کھاتی ہے۔
درگاہ پر دو یا تین عرس ہی ہوتے تھے کہ اُس کا نوال شروع ہو گیا۔ ایک روز میں سکول سے بستر
لے کر گھر میں داخل ہوا تو فالہ میری والدہ کے ساتھ رازداری میں باتیں کر رہی تھیں۔ میں نے بستر ایک
طرف پھینکا۔ چنگیر میں سے روٹی نکال۔ ہانڈی میں سے ایک آلو ایک بوٹی نکال کر اُس پر رکھی اور
وہیں کھڑے کھڑے کھانے لگا۔ فالہ جان اور والدہ محترمہ کی باتوں سے معلوم ہوا کہ درگاہ شریف والے
خواجہ صاحب اپنے ایک ساتھی کے ساتھ امرتسر سے اچانک غائب ہو گئے ہیں۔ میں نے اس
بات کو زیادہ اہمیت نہ دی۔ مگر چونکہ والدہ محترمہ تھیں، اس لیے میں بھی غور مند ہو گیا اور مجھے محسوس

ہوا کہ خواجہ صاحب کے ساتھ ضرور کوئی افسوس ناک حادثہ ہوا ہے۔ اس کا ثبوت مجھے بہت جلد مل گیا۔ کیونکہ
درگاہ اُجڑنا شروع ہو گئی۔ چوکیداروں کو تنخواہ نہ ملی تو وہ درگاہ چھوڑ کر چلے گئے۔ خواجہ صاحب کے بڑے لڑکے
خود پریشان تھے وہ درگاہ کی حفاظت پوری توجہ سے نہ کر سکتے تھے۔ قیصر یہ نہکا کہ لوگ حوض کی ٹونیاں اور دروازوں
کی نہروں والے تانبے کے پائپ اکھاڑ کر لے گئے۔ رشید لالہ اگر مقبرے میں سے جھاڑ فانوس اتار کر
خواجہ صاحب کے گھر نہ پہنچاتے تو لوگ وہ بھی اتار کر لے جاتے۔ سجادہ نشین، نائب سجادہ نشین، قزاقچی
اور متولی کے ہاں دروازے بھی راتوں رات چوری ہو گئے۔ چڑیا گھر کے کبوتر، طوطے اڑ گئے۔ بیروں
کو قبرستان کے جنگلی بٹے کھا گئے۔ کیونکہ اب رات کو اُن کی چوکیداری کرنے والا کوئی نہ تھا۔ خواجہ صاحب
کا بڑا لڑکا ایک روز دونوں بہن کھول کر گھر لے گیا، وہ نہ اُن کا بچنا بھی محال تھا۔ میں کبھی کبھی اُن کے گھر
جاتا تو وہاں دالان میں سناٹا چھایا ہوتا۔ دو منزلہ بڑا اونچا لمبا جالی دار دروازوں اور نیم روشن ٹھنڈے کمروں
پرانے دکنی صوفوں اور مسہریوں، قدیم آئینوں اور پرانی طرز کی روغنی تصویروں والا گھر تھا۔ کبھی وہاں
کشمیری عورتوں اور لڑکیوں کی مسرور آوازیں گونجا کرتی تھیں اور اب وہاں خاموشی طاری تھی۔

ایک روز دوپہر کو میں ڈور پتنگ لے کر درگاہ پر گیا۔ سردیوں کے دن تھے۔ سامنے کھیتوں میں
ویل ویل سرسوں پھولی ہوئی تھی۔ درگاہ کے صحن میں دیران مقبرے کے پاس در کی کانگڑا بچھائے دادا
جان اُسی طرح بیٹھے چڑیوں کو روٹی کے بھورے ڈال رہے تھے۔ چڑیاں شور مچاتی اُن کے کندھوں
سراور زانوں پر آکر بیٹھ رہی تھیں۔ اُن کے ہاتھ سے بھورے چھین کر لے جا رہی تھیں اور دادا جان
ہنس ہنس کر اُن سے تو کئی زبان میں باتیں کر رہے تھے۔ سامنے کی طرف سجادہ نشین اور نائب سجادہ
نشین کے اُچھے ہوئے ٹھنڈے سج کمروں کے باہر دھوپ میں خواجہ صاحب کا بڑا لڑکا چنگیر میں تنور
کی روٹی رکھے بیٹھا تھا۔ ایک ہاتھ میں موٹی تھی۔ وہ خشک موٹی سے تنور کی روٹی کے ٹکڑے توڑ توڑ کر
کھا رہا تھا۔ اس بات کو جانے کتنے برس بیت گئے ہیں لیکن یہ عبرت انگیز منظر جی بھی میری آنکھوں
کے سامنے ہے۔ یہ وہ سجادہ نشین تھا جو عرس کے موقعوں پر اپنے ہاتھ سے پلاؤ اور بریانی کے پشت
بھر بھر کر رشتے داروں کے گھر پہنچایا کرتا تھا۔ اُس کا چہرہ بھرا بھرا گول مٹول ہوتا تھا۔ اب وہ چہرہ
اُتر گیا تھا۔ رضاوں کی بڑیاں نمایاں ہو رہی تھیں۔ وہ ہر میں نجد سے خاصا بڑا تھا۔ میں ڈور اور
پتنگ ہاتھ میں لیے ایک طرف کھڑا تھا۔ وہ میری موجودگی سے بے فیا دہلے مشک سے روٹی

کے خشک نوائے بگل رہا تھا۔ ایک چڑیا چوں چوں کرتی میرے سر پر سے اڑتی ہوئی دادا جان کے کندھے پر جا کر بیٹھ گئی۔ دادا جان کی یہ عادت تھی کہ جب چڑیا اُن کے کندھے یا سر پر آگے بیٹھتی تو وہ ساکت ہو جاتے اور زیادہ ہلکا جلا نہیں کرتے تھے۔ میں نے دادا جان کو دیکھا تو وہ بہت بے بیٹھے تھے اور لہڑی لہڑی سے چڑیا کو دیکھ دیکھ کر بچوں کی طرح خوش ہو رہے ہیں۔

آج پچیس برس بعد مجھے اُس چڑیا کی یاد آئی ہے۔ کیا وہ گندمی چونچ اور بھولے بھالے چہرے والی معصوم چڑیا زندہ ہوگی؟ وہ تو مجھے نہیں بھولی ہوگی۔ پرندے کبھی محبت کرنے والوں کو نہیں بھولتے وہ انہیں زندگی میں بھی یاد رکھتے ہیں اور مرنے کے بعد بھی اُن کا انتظار کرتے ہیں۔ کسی حیرت انگیز باغ میں — اُس باغ کے حسین ترین درختوں میں — شگاف پانیوں والی نہروں کے کنارے اُن دیکھے بھولوں کی یادوں میں اور —

”تم اللہ کی کرن کن نعمتوں کو جھٹلاؤ گے۔“

درگاہ کے عرس، اُس کی رونقیں، اُس کی روشنیاں بجھ گئیں۔ گرمیوں کی تپتی دوپہروں کو اُس کے صحن میں گہریاں دوڑتی پھرتی اور اُس کے سجادہ نشینوں کے تاریک دیوان خانوں میں ٹلکتے بالوں والی چیتوں کے نیچے ٹنگ چرس، بھنگ پی کر سوئے رہتے۔ وقت اس درگاہ کے ایوانوں میں زوال کے حالے بٹاتا گورتا چلا گیا۔

پاکستان بن گیا۔ ہم لوگ امرتسر کو بھڑکتے شعلوں کے سپرد کر کے اپنے نئے شہر نئے وطن میں آ گئے۔ چہ یا شاید پانچ برس بعد یوم اقبال کے موقع پر جالندھر میں پاکستانی ہائی کشن کی جانب سے ایک زبردست مشاعرہ ہوا جس میں لاہور کے معروف شعرا کو شرکت دعوت دی گئی۔ یہ لوگ میرے دوست تھے۔ پاسپورٹ میرے پاس موجود تھا۔ میں بھی اُن کے ساتھ جالندھر جانے کے لیے تیار ہو گیا۔ دل میں یہ خیال تھا کہ چلو اسی بہانے امرتسر کے کپنی باغ، ریا اللوینا، میگو پارک اور دروازہ جہاں سنگھ کے باہر فاسے باغ کے یو کپٹس کے درخت سے ملاقات ہو جائے گی۔ حاتی دفعہ ہم لاہور سے سیدھا جالندھر چلے گئے۔ واپسی پر جالندھر سے امرتسر آتے ہوئے بس تحصیل پورے کے پاس پہنچی تو میں وہیں اُتر گیا۔

جانے کس شاعر نے کہا۔

”اسے قیدِ اتمیں راستہ معلوم ہے ناں؟“

میں سڑک پر کھڑا کپڑے جھاڑ رہا تھا۔ قیوم نظر کی آواز آئی۔

”یہ اُس کا اپنا شہر ہے۔ وہ راستہ کیسے بھول سکتا ہے؟“ میں جانے کتنی دیر سگریٹ پیتا، ویران اور اجنبی امرتسر کے بازاروں اور گلیوں میں آوارہ گردی کرتا رہا۔ یہاں سنگھ مدعا نے فاسے یو کپٹس کے درخت سے ملا۔ اس تاریخی ملاقات کا حال میں اس مضمون کے شروع میں لکھ چکا ہوں تیسرے پہر میں بڑی پھولا سنگھ کے قریب سے ہو کر قبرستان کی سڑک پر اُتر گیا۔ قبروں پر بل پھر دیا گیا تھا۔ جہاں کل قبروں پر اگر تیاں لگتی تھیں۔ چراغ جلتے تھے، آج وہاں کھلی کے کھیت تھے اور بعض جگہوں پر نئے مکانوں کی بنیادیں کھڑی تھیں۔ لوٹا اور امرود کے باغ اُڑھ گئے تھے، کیونکہ امرتسر میں باغبانی مسلمانوں کے پاس تھی۔ میں نے کسی ہندو اور کسی سکھ کو باغبانی کرتے نہ دیکھا تھا۔ اب میں درگاہ کی زیارت کرنا چاہتا تھا۔ میں اُس کھائی کے پاس سے گزرا جہاں خالو جان مرحوم کے بیان کے مطابق انہیں اُلٹے ماتھے پاؤں والی چڑیل ملی تھی۔ اس کھائی کا اہل آدھاٹے گیا تھا اُن ندی نالوں کا نام نشان تک باقی نہ تھا جو ناشپاتی اور امرود کے باغوں کی آبپاشی کیا کرتے تھے۔ اسی قبرستان میں ایک عورت کی قبر تھی جس پر سنگ مرمر بارہ در کی بنی ہوئی تھی۔ یہ قبر مرمر قبر مرمر کے خاوند نے بڑی محبت سے بنوائی تھی۔ مجھے یاد ہے کہ محبت کرنے والے خاوند نے سنگ مرمر پر اپنی بیوی کی یاد میں بڑے ہی درد انگیز شعر کندہ کرائے تھے۔ عجیب اتفاق ہے کہ اُسے جوئے قبرستان میں یہ سنگ مرمر کی بارہ در کی والی قبر چوں کی قوں موجود تھی۔ اب میں درگاہ کی طرف چل پڑا۔ اب میں درگاہ کے سامنے تھا۔ لیکن وہاں درگاہ نہیں تھی۔ نہ دالان۔ نہ چہترہ نہ کمرے، نہ سجادہ نشینوں کے دیوان خانے اور نہ مقبرہ۔ میری آنکھوں کے سامنے گنبد کی آدمی دیوار تھی جس پر تھاپیاں نیچے سے اوپر تک لگی ہوئی تھیں۔ جہاں نائب سجادہ نشین کا کمرہ تھا وہاں ایک جہاد صاری سادھو بیٹھا، انگ بھیموت دھائے چرس کے سونے لگا رہا تھا اور جہاں کبھی دودھ کی نہریں بہا کرتی تھیں وہاں آگ اور متوہر کی جھاڑیاں آگ کی نئی تھیں۔ اس کے بعد مجھ سے کچھ نہ دیکھا گیا۔

ہاں — پلٹے ہوئے میں نے ایک نظر اُس طرف دیکھا جہاں دادا جان در کی

پر اٹھتی باہمی دُست سے بیٹھے چڑیوں کو بغور سے ڈالا کرتے تھے۔ چڑیوں کو پانی پلایا کرتے تھے، اور جب کوئی چڑیا ان کے کندھے پر بیٹھ جاتی تو اس سے باتیں کیا کرتے تھے۔ وہاں کوئی چڑیا نہیں مٹی۔ کوئی دامیان نہیں تھے۔ لیکن ایک بڑی ہی پیاری آنکھوں والی گھبرائی شیشم کے پتوں پر بیٹھی، سورج کی تابناک روشنی میں میری طرف دیکھ رہی تھی۔

امر تسر میں فساد کا پہلا شعلہ

ابھی امر تسر کو آگ نہیں لگی تھی۔
 ابھی امر تسر زندہ تھا۔ اُس کے گلی کو چے زندگی کی ہنگامہ آرائیوں سے بھر پور تھے۔ اُسکی رگوں میں حسن اور زندہ دلی کا خون گردش کر رہا تھا۔ اُس کے باغوں میں کھلے ہوئے گلابوں پر کوئی رات کو شبیہ گرا کرتی اور باغوں میں ہو کر گزرنے والی نہروں میں ٹھکی ہوئی ٹہنیوں کے ٹوٹ کر گرے ہوئے امر و ترا کرتے۔ ابھی امر تسر کو آگ نہیں لگی تھی۔ ابھی امر تسر کی مسجدوں کے دروازے گنبد سنہری دھوپ میں چمکا کرتے اور کمپنی باغ والی نہر کے کنارے پر وہ کمب کے غوت میں ناشپاتی کے درختوں پر مارچ اپریل میں سفید اور گلابی شگوفوں سے شاخیں جھک اُٹھتیں تحصیل پورے والی مانی کی ہیری موٹے اور بیٹھے سینو بیروں سے لہ جاتی اور ہم روڑے مار مار کر ہیر گراتے اور جب مانی گالیاں دیتی باہر نکلتی تو بھاگ جاتے۔ ابھی مال بازار والی مسجد خیر الدین میں پانچوں وقت اذان ہوتی اور اُس کے صحن والے تالاب میں نہری اور سُرخ مچھلیاں وضو کرتے نمازیوں سے چھلیں کیا کرتیں اور بوہڑ والی مسجد کے باہر جمعہ کی نماز پر ایک طرف بکھلے چوک اور دوسری جانب بھاڑیاں والی گلی تک صفیں بچھ جاتیں۔ مسجد جان محمد کے محراب ابھی سلام بابا کے پُر جوش خطبات کے گونج رہے تھے اور سکری باغ کی فضاؤں میں عید میلاد النبی کے پُر شکوہ جلوسوں کے سبز و سرخ بلال پرچم لہرا رہے تھے۔ رمضان کے مہینے میں پچھلے پہر امر تسر کے گلی کو چوں میں بکانے والے دھول تاشے بجاتے آیا کرتے اور نعت خوانوں کی ٹولیاں گیس اور لٹینیں اٹھانے نعتیں پڑھتی گھوما کرتیں۔ عید کی صبح رنگ برنگ غباروں، بچوں کے معصوم تہقبوں اور

گر مارم سبزیوں کی خوشبو اور نمی نمی پکیوں کے لال پیلے گوشتے آنچلوں کے ساتھ طلوع ہوتی۔
 گی گی بچے غبارے اڑاتے، باجے بجاتے نکل آتے اور آلو کچا لوٹگنیاں اور املی چورن پیچنے
 والوں کی چھا بڑیوں کے آگے بیٹھ جاتے۔ چوکوں میں حلوائیوں کی دکانوں پر شامیانے
 تن جاتے اور قسم قسم کی مٹھائیوں کے بھرے ہوئے مقال تحت پوٹوں سے لے کر
 چست تک سج جاتے۔

ابھی امرتسر لوگ نہیں گئی تھی۔ ابھی امرتسر زندہ تھا اور ہر جہرات کو فتح شاہ بخاریؒ
 کے مزار پر تاری کا لنگر بٹاتا تھا اور شکر شاہ کا پڑ جلال مقبرہ گیندے اور گلاب کے پھولوں
 سے جھبک رہا تھا۔ گورنمنٹ گرلز ہائی سکول میں مسلمان لڑکیاں ہندو سکھ لڑکیوں کے
 ساتھ بیٹھ کر سبق یاد کر رہی تھیں اور فرنیچر میل کا دیو ہیکل سیاہ انجن دھوئیں کے بادل
 چھوڑتا دھک دھک کرتا امرتسر شیش سے لکڑی کر میٹرھیوں والے ٹپ کے نیچے سے
 گزر رہا تھا اور یوڈی سائیں کے ٹگے میں مجرم زمرد کی انگوٹھیوں سیاہ لمبے بالوں اور سرخ
 آنکھوں والہ فقیر گھڑے کی تال پر اپنی درو بھری آواز میں گار رہا تھا۔

قیر بدل جوئے میں

دھوئیں میرے دل والے۔ اسماناں تے چھانٹے ہیں

اور اکھاڑے میں پہوان اور گھڑ، میاں سنگھ اور تحصیل پورے کے نوجوان زور کر
 رہے تھے اور دروازہ کھی منڈی والے قبرستان میں لوگ قبروں پر پھول ڈال کر قاتر
 پڑھ رہے تھے اور انجن پارک کے جلے میں کلاہ، اچکن اور سفید براق ڈاڑھی والے
 مولوی ہمدانی اپنا نورانی چہرہ لئے، لگے میں پھولوں کے ہار ڈالے کر سی صداقت پر
 بیٹھے تھے اور الیگزینڈرا پارک اور یلگو پارک میں ڈی اے وی کالج اور ایم لو کالج
 کی ٹیموں کے درمیان کرکٹ میچ ہو رہا تھا۔ مروت شاہ باولنگ کر رہے تھے اور
 ہمارے دینیات کے مولوی صاحب دم پڑھ پڑھ کر چوٹک رہے تھے، ہال بازار
 والی میوہ منڈی میں مسلمان آڑھتی خریداروں کے شور میں بھی کھاتے کھولے کا رو بہ
 میں معروف تھے۔ بازار سان سنگھ میں کالا عمر کی دکان پر اونچا لبا اسد جو جھوم جھوم

مر قلعے مافانے اور گردے لگا رہا تھا۔ کالا عمر پانی والے ہینڈ پمپ کے پاس کھڑا
 اوپر منہ کئے اپنے لڑکے بشیر کو آواز دے رہا تھا کہ اپنی آپو سے کہے کہ سماوار نیچے بھجوا دے۔
 ابھی امرتسر میں کشمیریوں کے سماوار نمکین چائے اور گرم قبوے سے نمک رہے
 تھے اور قاند روڈ کی دکانیں، باقر خانیوں، ارا روٹ، شیر مال، کھنڈ قلموں، ٹکیوں
 اور ورق لگی روٹنی روٹیوں سے بھی ہوتی تھیں۔ ابھی اس شہر بے مثال کا دل امرتسر کشمیریوں
 کے کچر اور تہذیب کی گرمی سے دھڑک رہا تھا۔ ابھی آگ جو گھروں کے چولہوں میں جلتی
 تھی اور اس آگ نے گھروں، محلوں، بازاروں، مسجدوں اور پورے شہر کو اپنی لپیٹ
 میں نہیں لیا تھا۔ گرمیوں کی شام کو کہنی باغ والی ٹھنڈی کھوئی پر مسلمانوں کا ہجوم ہوتا۔
 پردہ بارغ میں مسلمان بچیاں، لڑکیاں اور عورتیں جھولتے جھولتے اور نوجوان بھیرے جوتی،
 نہروں کے ٹھنڈے پانی میں چھلا لگیں لگاتے۔ مجیٹھ روڈ والے دو روہ گھنے درخت کالی
 کالی مینھی جامنوں سے لد جاتے اور نہر پار والے باغوں کی فضا میں آم، ناشپاتی، لکڑ
 اور امرود کی دھیمی دھیمی خوشبوؤں سے لبریز ہو جاتیں بازار رام باغ والی مارکیٹ حکم
 سنگھ کی تنگ گی میں، آسنے سامنے کامریڈ ہوٹل اور صوفی ترک ہوٹل میں امرتسر
 ادیبوں، شاعروں، نقادوں اور دانشوروں کی محفلیں بھی اپنے عروج پر تھیں۔ تاہم چینی
 کی پڑائی زرد چٹکیوں میں پکی ہوئی چائے کے دور چل رہے تھے۔ کامریڈ ہوٹل کے
 انگلیشیوں کے پاس بورسیے کی گدی پر بیٹھا سرخ و سپید خلیفہ بڑی چٹک میں چائے
 کو بار بار جوش دے رہا ہے سامنے ترک ہوٹل کی گدی پر امرتسر کی سیاسی تاریخ کی نامور
 شخصیت صوفی غلام محمد ترک براہاں ہے۔ صوفی صاحب گردن گم کر غازی عبدالرحمان
 کسی سیاسی مسئلے پر بحث بھی کر رہے ہیں اور چٹک کے کھولتے پانی میں چائے
 کی پتی بھی ڈال رہے ہیں۔ ساتھ والے ہوٹل میں الہ دیا تھاں میں چٹک اور پائیاں
 رکھ کر نوکر کو آواز دے رہا ہے۔

پل بے پخیر ہے۔

یہ تینوں چائے خانے چوک گول ہٹی سے دروازہ رام باغ کو جاتے بتا رہی

میتھمٹکس کو بھیجیائیں ویاہر سبحان اللہ

ایسروں مئے اوزر گنڈ پے گئی

تین سو روپے دے چاؤل آئے

پنج سیر مکی اوتے کھنڈ پے مکی

منہو کس جوڑے پٹھاں و سادہ کے

جدھر گھنٹنگی اودھر ڈنڈے پے کسی

سید الدین سیف اپنی تازہ کہی ہوئی طویل نظم "ساربان" میں سے کچھ بندھنوں کے بعد اپنی سلگتی پڑ سکون نیم وا گرم آنکھوں سے باہر اگلی میں تک رہا ہے اور ایک ہفتہ میں گرٹ سگائے دوسرے ہفتہ کی انگلیاں آہستہ آہستہ اپنی باریک مونچھوں کے کونوں پر پھیر رہا ہے۔ اب صدیق کلیم بھی بڑی خاموشی اور سکون کے ساتھ سست قدم اٹھاتے آگئے ہیں۔ چاچا علی نے آواز لگائی۔

۲۔ عمومی صاحب چاہے اور آئے گی۔

اور صوفی ترک نے دہکتے کوٹلوں پر تام چینی کی ایک اور چنیک رکھ دی ہے۔ کلہریٹ
ہوٹل کے پھٹے پر ادھیر عمر کا بھاری بھر کم حوالدار فضل آکر بیٹھ گیا ہے اور خلیفے سے تیز چینی
والی چائے بنوا رہا ہے۔ خدا جھوٹ نہ بلوائے وہ ایک چٹانک افیم آدھ سیر حلوسے کے
ساتھ روزانہ کھاتا ہے۔ الہ دے کے ہوٹل میں چاق و چوبند، تیز و طرار امرتسر کا رجز گو
شاعر نفیس خلیل آگیا ہے اور تمباکو والا پان منہ میں دبائے دینے جہالتی، حاجی حرمدے
اور جبرے گوئیے کو اپنا تازہ کلام سنار رہا ہے۔

جہاں باکے جھنڈے کو گارڈا وطن ہے۔ جہاں شیر ناکہاں دھاڑا وطن ہے

وطن ہے مجاہد کے پاؤں کے نیچے۔

موت آئینوں، تیکھی ناک اور زناہ چال و حال والا جبرگوت یا نفیس غلیلی کا تئیس

بغلی گل میں تھے۔ چھتیں دھوئیں سے کالی ہو رہی تھیں۔ بوسیدہ پنوں کے درمیان میں دو تین لمبی میز پر رکھی تھیں جن پر چائے، پان اور سگریٹوں کے جلے ہوئے نشان تھے۔ یہاں صبح سے رات کے دو دو بچے ہلکے چائے کے دور چیتے اور افلاطون سے لے کر برٹینڈرسل اور ولی دکنی سے لے کر اقبال تک گرم بجشیں ہوتیں۔ آئیے آپ کو صوفی ترک ہوٹل کی ایک محفل کی جھلک دکھائیں۔ یہاں سینٹ الدین سیف نے اپنی محفل سجا رکھی ہے۔ ایک طرف موٹی موٹی نشیل آنکھوں والا دُبلّا پتلا نازک احساس شاعر۔ علامہ الدین کلیم گرم کشمیری مثال اوٹھے سگریٹ سٹگار رہا ہے۔ دوسری جانب نلک شگاف قہقہے لگانے والا اور ہنستے ہنستے زمین پر لوٹ پوٹ ہو جانے والا خوش گوش شاعر اقبال کوثر بیٹھا سیف کے کسی شعر پر سروصن رہا ہے۔ سامنے احمد راہی اور اسے حمید بیٹھے کسی بات پر ہنس رہے ہیں۔ سنہری وارھی اور لمبے لمبے سنہری بالوں والا ظہیر کشمیری بھی یہیں بیٹھا تھانیر لب مسکراتے ہوئے چلنے کی چکیاں لے رہا ہے اُس کے سامنے ممتاز نفٹ گو شاعر چاچا عیسیٰ بھی طرہ زکائے کُرسی پر اکڑوں بیٹھا پان چہا رہا ہے۔ لیٹھے خوش وضع اور خوش گفتار شاعر شہباز احمد شہباز اور صلاح الدین ندیم بھی آگئے۔ آتے ہی دوستوں سے دوچار ہو چکے ہو ہیں۔ اور ہنستے مسکراتے بیٹھ گئے۔ اب عارف عہدالمیتیں بھی صوفی کریم کے ساتھ نبلی مثال اوٹھے پہنچ گئے ہیں۔ کونے میں پنجابی شاعر معراج دین اختر، استاد محبت اور ناظر وغیرہ بیٹھے ہیں۔ بھاری بھر کم سیاسی لیڈر گلشن بیٹھا کسی بات پر ہنس ہنس کر رشید عینکوں والے سے ہمکلام ہے۔ گھنا گھریا لے چکیلے نسواری بالوں والا رشید ادب و سیاست پر بے لگان ہوتا ہے۔ ظرافت اور بذلہ سعی طبیعت میں کوٹ کوٹ کر بھری ہے۔ سنہری فریم والی عینک کے شیشوں میں گول گول زندگی سے بھرپور آنکھیں بے قراری سے چمکتی رہتی ہیں۔ لطیفہ سنا کر، محفل کو لوٹ پوٹ کر کے بڑا پکا منہ، بنائے عینک اتار کر اسے رومال سے صاف کرنے لگتا ہے اور آنکھوں سے دائیں بائیں دیکھ کر پھر زیر لب خود بھی مسکرانے لگتا ہے۔ کامیڈ ہوٹل میں سرخ و سفید، ادھر غم زمین اور دھن استاد غلش کشمیری اپنے چہتے شاگرد ضبط قریشی کے ساتھ بیٹھے

کلام سن رہا ہے اور واہ واہ کر رہا ہے۔ حاجی حرامہ اپنی کان آنکھ سے پانی پونچھتے ہوئے نفیس خلیں پر بھیتی کسے کو پرتول رہا ہے۔ دنیا جہالتی بھری بھری مونچوں پر ہاتھ پھرتے ہوئے بڑے غور سے شعر سن رہا ہے اور ٹانگ پر ٹانگ رکھے کالے پمپ شو والا پاؤں بلاتے ہوئے گردن ٹیڑھی کئے اس فکر میں ہے کہ خلیں کے کس شعر پر اعتراض کرے۔

اب بچپن ساٹھ کے سن کا چوڑا چکلا۔ راجپوتی شان کی سفید گچے دار مونچوں اور چمکیلی آنکھوں والا ایک بزرگ سلیٹی شیروانی پہنے چھڑی ہاتھ میں لئے کامریڈ ہوٹل میں داخل ہوا ہے۔ اسے دیکھ کر مغل بادشاہوں کے شاہی چوہداروں کا خیال آتا ہے ان کا نام شیخ حبیب ہے۔ غالباً پٹیا لے کے ہیں۔ موسیقی پر بڑی دسترس رکھتے ہیں۔ وہ پوئے منہ والے کالے بھنگ مشہور ربابی استاد فیروز کے پاس جا کر بیٹھ گئے ہیں۔ استاد فیروز کو امرتسر کے بے مثال فارسی شاعر استاد کی فارسی غزلیں زبانی یاد ہیں جنہیں وہ اپنی خشک و پرسوز آواز میں لبک لبک کر گا پا کرتا ہے۔ خود بھی روتا ہے۔ اوروں کو بھی زلاتا ہے۔ وہ درو بھری آواز والے، وہ آنکھوں سے محبت کے اتمول موتی گرانے والے لوگ کہاں چلے گئے؛ امرتسر کو آگ لگ گئی۔ کامریڈ ہوٹل اور صوفی ترک ہوٹل جل کر راکھ کا دھیز بن گئے۔ محفلیں اجڑ گئیں۔ پھول مڑھ جا کر سوکھ گئے۔ ڈالیوں سے ٹوٹے پتوں کو ہوا اڑا کر لے گئی۔

اب کے بچڑے کہاں میں گئے۔ دور پڑے ہیں جا۔

لیکن ابھی تو خلیفے اور صوفی ترک کے ہوٹل میں یاروں کی محفلیں سچی ہیں۔ نفیس خلیلی انقلابی شعر سنانے کے بعد لطیفے سنا سنا کر فلک شکات قہقہے لگا رہا ہے ترک ہوٹل میں علا الدین کلیم کے بعد اقبال کوثر ترنم سے شعر پڑھ رہا ہے۔ چوک والی دکان سے پانوں کا تھاں بچ کر آگیا ہے۔ چائے خانے کی فضا پانگ شو، قینچی ٹاؤن ٹانگ۔ پلیئر زنیوی کٹ اور کپشن بیگم کے دھوئیں سے بھر گئی ہے۔ اب ماسٹر ابراہیم اور ماسٹر حبیب بھی آگئے ہیں۔ دونوں بڑے گہرے دوست ہیں ضلع

اور بھیتی نوک بزدبان رہتی ہے۔ بازار والے حمام کے ایک خوش شکل نو عمر کارگیر سے دونوں پیار کرتے ہیں اور ہر روز اُسی سے جا کر ڈاڑھی منڈواتے ہیں۔ ایک روز سیف نے مذاق کیا تو ماسٹر حبیب نے کہا۔

”سیف صاحب! معاملہ الٹ ہو رہا ہے۔ ہماری خواہش یہ ہے کہ ہم اس کی ٹیوٹائیٹل الٹا اس سے ہمیں شیو بنوانی پڑتی ہے۔

لیجئے۔ بابو غلام محمد بیٹ اور شریف متین کی جوڑی بھی آگئی۔ بابو غلام محمد بیٹ کا ال بازار کی ایک گلی میں قالینوں کا کارخانہ ہے اور شریف متین قالینوں کی دکان کرتا ہے اور کانگریس سوشلسٹ پارٹی کی امرتسر شاخ کا غالباً سکریٹری بھی ہے۔ درمیانے قد اور لمبوترے چہرے والا گول مول بابو غلام محمد بیٹ بڑا جذباتی اور تنس لکھ ہے۔ عروض منطوق اور فلسفے پر لمبی لمبی بحثیں کرتا اور گونگو گوشت کھانا اسے بہت مرغوب ہے سیف اور ضبط سے اس کی بحث کئی کئی روز جاری رہتی اور مجھے یاد ہے بیگل کی جدیت کا ذکر بار بار آیا کرتا۔ اقبال کوثر کے لطیفوں پر وہ ہنس ہنس کر بے حال ہو جاتا اور آنکھوں سے پانی بہنے لگتا۔ فارسی، اردو یا انگریزی کی کوئی نہ کوئی کتاب ہمیشہ بغل میں ہوتی ہے بحث کرتے ہوئے آنکھوں میں ہلاکی چمک آجاتی ہے بحث علمی مسائل سے نکل کر ذاتیات کی حدود میں داخل ہو جاتی ہے تو اس کے مونٹوں سے جھاگ اڑنے لگتا ہے۔ طبیعت میں شوخی اور شجاعت دونوں اعتدال کی حد میں ہیں۔ قالینوں کے نقشے بنانے میں بھی وہ ایک ماہر نقاش ہے۔ ایک بار اس کے کارخانے میں سمرقند کا ایک قالین آیا جس پر میکیم گورکی کی تصویر بنی ہوئی تھی۔ بابو غلام محمد بیٹ نے آنکھیں شکیر کر اس کا ایک ایک مربع ٹکڑاؤ نوٹی دیکھی۔ پھر کتاب میز پر رکھی اور سگریٹ کا لمبا سوتا لگا کر چٹکی سے گل جھاڑتے بولا۔

”میں اگر قالین پر جناح کی تصویر بنوا کر سمرقند یوں کو نہ دکھاؤں تو بابو غلام محمد بیٹ نہ کہتا“

اور اُسی روز اس نے پرانے میز پر موٹے کاغذ کا تاد پھیلا کر کالی سیاہی سے قالین کا متن تیار کرنا شروع کر دیا۔

کامریڈ ہوٹل اور ترک ہوٹل کی یہ زندگی سے بھرپور محفلیں رات کے بارہ ایک بجے تک جی رہتی ہیں۔ یہاں بنگال کے دیہشت پسندوں، تلنگانہ کے شترکیوں، امرتسر کے نیل پوشوں، اصراریوں، مسلم لیگیوں اور ٹیالہ گھرانوں کے گائیکوں، رام باغ کی طوائفوں، کٹرہ کنہیا کی رقاصاؤں اور شہما بوب کے فالودے تک — ہر موضوع پر باتیں ہوتی ہیں۔ آغا شہر والی داری کا مکان قریب ہی ہے۔ اُس کا ذکر ہوتا ہے تو ماسٹر فیروز رگیں پھلا لیتا ہے اور بھیکم پرنگیا کھیل کا کوئی متطرکس طرح سناتا ہے کہ محفل پر وجد طاری ہو جاتا ہے، ترک ہوٹل کے دروازے پر لکڑی کے آدمی کی طرح چلتا اونچا لمبا، دُبل خوشحال، بے باک رشید لمبوتر نو دار ہوا ہے۔ خوب شور مچا کر بولتا ہے اور گے پیچھے جھول جھول کر قہقہے لگاتا ہے۔ اُس کا بڑا بھائی خورشید کم نو اور اکڑ مزاج ہے۔ دونوں پاؤں میز کے کنارے پر ٹیکا کر کرسی پر بیٹھتا ہے۔ پنڈلیوں پر سے دھوئی کھسکا لیا کرتا ہے اور تھوڑی تھوڑی دیر بعد رگڑ رگڑ کر موٹہ سی ہوئی پنڈلیوں کو رد مال سے جھاڑتا رہتا۔ بہت کم بولتا ہے۔ جب بولتا ہے کفن بھاڑ کر بولتا ہے اور جملے کا لٹھ گھما کر ملتا ہے۔ اُس کی بیٹھک میں انیسویں صدی کے مصوروں کے بٹے شہکار آدیزاں تھے جو فسادات کی آگ میں جل کر راکھ ہو گئے۔ اور امرتسر میں فسادات کی آگ کا پہلا شعلہ گول ہٹی سے بلند ہوا تھا۔

گول ہٹی مال بازار سے کٹرہ کنہیا کی طرف مڑتے ہوئے کوٹنے والی تین کانوں پر مشتمل تھی۔ یہ تینوں دکانیں موٹے تازے، گول مٹول تین سیکھ بھائیوں کی تھیں۔ دو دکانیں منہ ہی کی تھیں اور ایک دکان پر عمارتی روغن، سپرٹ اور تار پین کا تیل فروخت ہوا کرتا تھا۔ یہ تینوں سیکھ میر تھے اور ان کی دکانیں مال سے بھری رہا کرتیں۔ منیاری کی دکانوں کے آگے چمڑے کے بیلٹ۔ اذار بند پراندے اور تلواریں کرپائیں ٹکی رہا کرتیں فروری ۱۹۴۷ء کے ہنگامہ خیز دن تھے۔ پاکستان کی حمایت میں اور ہندو سیکھ پاکستان نے غلام جوس نکال دیا تھا۔ فروری کے آخر میں یا غالباً مارچ کی پہلی دوری کو ماسٹر تارا سنگھ نے لاہور اسمبلی مال کے باہر تلوار لہرا کر اعلان کیا کہ سیکھ

پاکستان نہیں بلکہ مسلمانوں کا بھارت میں قبرستان بنائیں گے۔ اس کے ساتھ ہی لاہور میں فرقہ وارانہ فسادات شروع ہو گئے۔ امرتسر کی فضا میں بھی بے حد کشیدگی پیدا ہو گئی۔ غالباً مارچ کی تیسری یا چوتھی تاریخ تھی۔ ٹاؤن مال والے باغ میں موسری اور کھٹے کے پھولوں کی خوشبو پھیل ہوئی تھی۔ دوپہر کے بعد میں دکان سے حسبِ عادت دودھ پی کر دھوئی قمیض اوڑھ لیا۔ سیپہنہ ترک ہوٹل جانے کے لیے مال بازار میں آگیا۔ میں نے اُن ہی دنوں گالزور دی کا ناولٹ "سیب کا درخت" پڑھا تھا اور سیب کے شگوفوں، موسیقی، میوں کی کیوں کی مہک اور بلیک فارسٹ کی سرسبز ڈھلوانوں پر آگئے والے سویٹ پیسز کی خوشبوؤں کے ساتھ ساتھ اڑا کرتا اور تصور ہی تصور میں اُس نیلے سر و چہرے پر پہنچ جاتا جس کے اوپر سیب کے گھنے درخت کا سایہ تھا اور جس کے برقاب میں ڈوب کر خیال پرست رومانی لڑکی میگن نے اپنے بے وقاف محبوب اشٹریٹ کی یاد میں جان دے دی تھی۔ میں سیب کے گلابی شگوفوں کو چومتا۔ غم زدہ میگن کو یاد کرتا پاسنگ شو سگریٹ کے ہلکے ٹکے کش لگاتے ہوئے مال بازار میں سے گزر رہا تھا۔ امرتسر کی فضا میں کشیدگی ضرور تھی۔ مگر ہم امرتسر والے اس کے عادی تھے۔ کیونکہ قریباً ہر فرم پر ہندو مسلم فساد ضرور ہو جاتا تھا اور پلٹے ہیڈ مسلمانوں کا بھاری رہا کرتا۔ چنانچہ امرتسر کے مسلمان بڑے مطمئن اور بغیر کسی خوف کے روزمرہ کے کاموں میں مصروف تھے۔ میں جب سکندر خان کی اونچی مسجد سے گزر کر گول ہٹی والے چوک میں آیا تو پیچھے سے ایک تانگہ آکر چوک میں ٹک گیا۔ اس تانگے میں تلی پیلی پگڑیوں والے اکالی سیکھ بیٹھے تھے۔ پیچھے ایک نوبت رکھی تھی۔ ایک اکالی نے دھما دم نوبت پیشی شروع کر دی۔ میں بھی دوسرے لوگوں کے ساتھ کھڑا ہو گیا۔ کافی لوگ جمع ہو گئے۔ گول ہٹی والے سیکھ بھائی بھی اپنی اپنی گدیوں پر کھڑے ہو گئے۔ نوبت بجنی بند ہو گئی۔ اب تانگے کی اگل جانب سے ایک ہٹاکٹا اکالی سیکھ اٹھ کر کھڑا ہوا اور اُس نے کھٹے اور اشتعال انگیز لفظوں میں کہا کہ ماسٹر جی نے لاہور میں اعلان کر دیا ہے کہ سیکھ پاکستان نہیں بننے دیں گے۔ مسلمانوں کا پاکستان انہیں قبرستان بنے گا۔ گورو دے پیارو! اٹھ کھڑے ہو جاؤ اور اس گورو کی نگری نو مسلمانوں سے پاک

کر دو۔ وغیرہ وغیرہ۔ مجھے آج بھی اچھی طرح یاد ہے کہ اس اکالی سکھ نے مسلمانوں کے خلاف انتہائی زہریلی اور اشتعال انگیز تقریر کی تھی۔ وہ بمشکل کوئی ڈیڑھ ایک منٹ بولا ہو گا کہ رام باغ والے بازار کی جانب جو مسلمان نوبت کی آواز سن کر جمع ہو گئے تھے انہیں اللہ اکبر کا فلک شکاف نعرہ بلند کیا۔ اس کے جواب میں اکالی سکھوں نے مست سری اکال کا نعرہ لگایا۔ میں گول ہٹی کے آگے نکلے کے پاس کھڑا تھا۔ میرے دیکھتے دیکھتے گول ہٹی کے گول مٹول سکھ نے دکان کے آگے ٹکٹی ہوئی تلواریں دونوں ہاتھوں سے جھٹکا دے کر کھینچیں اور تانگے میں کھڑے اکالی سکھوں کی طرف اُچھال دیں۔ جو تلواریں اور کرپائیں سمیت کر مسلمانوں پر پل پڑے۔ یہاں سے بھاگ کر فراسیوں والی گلی میں آگیا۔

یہ امر تسر شہر کے مسلمانوں پر سکھوں کا پہلا مسلح حملہ تھا۔ مسلمانوں کے پاس سوئے زور بازو کے اور کچھ نہ تھا۔ کسی نے دکان پر سے بٹھا اٹھایا۔ کسی نے ساٹھان کا بانس کھینچا اور کرپانوں تلواروں سے مسلح سکھوں کا مقابلہ شروع کر دیا۔ کچھ مسلمان زخمی ہوئے۔ بہر حال پولیس آگئی معاملہ رفع دفع ہو گیا۔ یہ بات سب کو اچھی طرح معلوم تھی کہ گول ہٹی والوں نے اکالی سکھوں کو مسلمانوں کا قتل عام کرنے کے لئے تلواریں دی تھیں چنانچہ اسی رات رام باغ چوک فرید اور گلی فراسیاں کے نوجوان مسلمانوں نے گول ہٹی والی تینوں دکانوں کو آگ لگا دی۔ یہ امر تسر میں فساد کی پہلی آگ تھی۔ فساد کا پہلا شعلہ تھا جو نصف شب کے بعد تک اچانک بھڑک اٹھا۔ نے اپنے گھر کی چیت پر کھڑے ہو کر آگ کے سرخ و زرد دھٹے بند ہوتے دیکھے۔ تھوڑی تھوڑی دیر بعد وارنش اور سپرٹ سے بھرے ہوئے ڈرموں کے دھماکے کے ساتھ پھٹنے کی آوازیں بلند ہوئیں تھیں۔ سامے محلے میں ہینٹ اور وارنش کی بدبو پھیل گئی آگے روز پولیس نے کچھ مسلمانوں کو گرفتار کر لیا۔ شہر میں مسلمانوں اور ہندو سکھوں کے درمیان زبردست کشیدگی پھیل گئی۔ مسجدوں میں پاکستان کی جایتیں ہیں اور گردواروں مندروں میں پاکستان کے خلاف تقریر ہونے لگیں۔ گیوں کے منہ دھڑا دھڑا لوسہ کے دوازوں سے بند کئے جانے لگے۔ ہندو سکھ ایک عرصے سے

اپنے محلوں میں اسلحہ جمع کر رہے تھے۔ اب مسلمانوں کو بھی ہوش آیا اور مسلم محلوں میں کلباڑے اور بنیں تیار ہونے لگیں۔ ہمارے محلے کے مسلمانوں نے چندہ جمع کر کے گلی کے ایک سربراہ کپڑے کے تاجر کو پشاور اسلحہ خریدنے بھیجا۔ وہ سارے پیسے ہضم کر گیا اور پھر واپس نہ آیا۔ اسی روز لاہور میں ہندو مسلم فساد ہوا۔ اس کی خبر امر تسر پہنچی تو اشتعال اور بڑھ گیا آگے روز جمعہ تھا۔ کٹرہ میاں سنگھ چوک فرید اور گلی رنگریزاں کے بہت سے مسلمان جمعہ کی نماز پڑھنے چوک پر اگر داس ڈالی مسجد میں گئے۔ یہ مسجد سکھوں کے محلے میں گھری ہوئی تھی۔ اس اقدام سے مسلمان غیر مسلموں کو اپنی شجاعت اور اسلام سے محبت دکھانا چاہتے تھے۔ مگر جذبات کے جوش میں نہتے ہی دشمنوں کے بیچ چلے گئے۔ چنانچہ وہ نماز پڑھ رہے تھے کہ سکھوں نے کرپانوں اور تلواروں سے ان پر حملہ کر دیا۔ مسلمانوں نے دھوکے لوتے چلانے شروع کر دیئے جہاں سے لوٹا بم کی اصطلاح عام ہوئی۔ لیکن دھوکے لوتے تلواروں کا کہاں تک مقابلہ کر سکتے تھے بہت سے مسلمان شہید ہوئے۔ بہت شدید زخمی ہوئے۔ سکھوں نے چوک پر آگ داس کے مسلمانوں کے مکانوں کو آگ لگا دی۔ مسلمان عورتیں ننگے پاؤں ننگے سر عزت بچا کر کٹرہ میاں سنگھ اور شریف پورے پہنچیں۔ میں اس وقت ال بازار کے بھلی بازار میں تاج محل ہوٹل کے اوپر احمد راہی کے مابنامہ "مور" کے دفتر میں بیٹھا تھا۔ ہم دونوں باتیں کر رہے تھے کہ نیچے شور مچا۔

"مسلمانو! چوک پر آگ داس میں سکھوں نے تمہارے بھائیوں کو شہید کر دیا"

ہر طرف ایک جوش اور ہیجان پھیل گیا۔ ہال بازار میں سکھوں اور ہندو اپنی بکانیں بند کر کے بھاگ گئے۔ مسلمانوں نے ان دکانوں کو ٹوٹ کر آگ لگا دی۔ ہمارے محلے میں کیسر سنگھ اور لکھتی ٹال دے کے رڑکے کی منیاری کی دکانیں ٹوٹ لی گئیں۔ کیسر سنگھ سے جب کوئی گاہک نمبر آٹھ مالکہ ڈور کی گوٹ لینے آتا تو وہ میٹرھی لگا کر بند کی طرف واپس چڑھتا اور ایک ڈبے میں سے گوٹ نکال کر لے آتا تھا۔ گوٹ مار کے دن میں نے اسی طرح میٹرھی دیوالے کے ساتھ لگائی۔ بندر کی طرح پھرتی سے اوپر چڑھا اور نمبر آٹھ کی ڈور کی پوری درجن گونگی سے کر نیچے آگیا۔ لکھتی والی دکان سے میں نے جیلٹ بیڈ کے کتے ہی پیکٹ

لوٹے اور گھر میں سنبھال کر رکھ دیئے۔ یہ سب کچھ وہیں پڑے کا پڑا رہ گیا۔ نہال سنگھ عطا کی دکان لٹی تو میں نے محلے کے ادھیر عمر داروغہ کو دیکھا کہ دکان کے پھلے پر ایک طرف بیٹھا سیب کا مرتبہ کھا رہا تھا۔ دروازہ میاں سنگھ والے سیکھ کا شراب کا ٹھیکہ بھی لوٹ لیا گیا۔ ہماری گلی کا جان بد معاش میٹھا مالٹا شراب کی بوتلوں کی بوری بھر کر اپنے گھر لے آیا اور پورے چھ مہینے یعنی امرتسر چھوڑنے تک وہ شراب کے نشے میں دھت رہا۔ محلے کے ایک سیکھ کے مکان میں سے اُسے ایک برجس اور دو تالی بندوق مل گئی تھی۔ پھولی ہوئی برجس پہنے کندھے پر دو تالی لٹکانے۔ شراب کے نشے میں جھومتا جھومتا وہ راتوں کو گلی کے آہنی دروازے کے گرد پہرہ دیا کرتا۔ جب مورتی آتی دھائیں دھائیں ہوا میں ایک دو فائٹر کر دیتا۔

شہر کے دوسرے علاقوں میں مسلمان، ہندو سکھ مخلوں میں گھرے ہونے کے باوجود بڑی بہادری اور ثابت قدمی سے ان کا مقابلہ کر رہے تھے خیر زنی اور چھرا گھونپنے کی جگہ جگہ وارداتیں ہو رہی تھیں۔ جس روز مسلمانوں نے کسٹروا کنہیا لال کی ساری ہندو دکانوں کو آگ لگا دی اس سے اگلے روز شہر میں پہل بار دو دن کا کر فیو لگا دیا تھا۔ ایک ہوائی جہاز نے شہر پر اشتہار پھینکے۔ ایک اشتہار اتفاق سے میرے پاس محفوظ ہے۔ اس کی ایک طرف ٹورکھی اور دوسری طرف اردو میں کر فیو کا حکم درج ہے۔ میں اسے یہاں نقل کر رہا ہوں۔

اعلان

”امرتسر شہر میں، مارچ ۱۹۴۷ء دو بجے دن کے دو دن کے لئے ۲ گھنٹے کا کر فیو نافذ کیا گیا ہے۔ اس کے بعد آئندہ پانچ دن کے لئے ۲۰ گھنٹے کا کر فیو جس میں ۱۰ بجے سے ۳ بجے دن ۲ گھنٹے کا وقفہ ہوگا۔ لاہور جالندھر میں ریلوے لائن کے جنوبی جانب میونسپل حدود میں نافذ رہے گا۔ جس شخص کے قبضہ میں کوئی ہتھیار یا کوئی ایسی چیز جو بطور ہتھیار کے استعمال ہو سکے ماسوائے کرپان کے جو میان میں ڈالی ہوئی ہو۔ پانی گئی یا جو کوئی شخص نوٹیا یا آگ لگاتا ہوا دیکھا گیا اس کو نظر پڑتے ہی گولی مار دی جائے گی۔ ان احکام کو نافذ کرنے کے لئے فوجی دستے دو بجے دن کے بعد شہر میں گشت کریں گے۔“

اعلان

امرتسر شہر میں، مارچ ۱۹۴۷ء دو بجے دن کے دو دن کے لئے ۲ گھنٹے کا کر فیو نافذ کیا گیا ہے۔ اس کے بعد آئندہ پانچ دن کے لئے ۲۰ گھنٹے کا کر فیو جس میں ۱۰ بجے سے ۲ بجے دن ۲ گھنٹے کا وقفہ ہوگا۔ لاہور جالندھر میں ریلوے لائن کے جنوبی جانب میونسپل حدود میں نافذ رہے گا۔ جس شخص کے قبضہ میں کوئی ہتھیار یا کوئی ایسی چیز جو بطور ہتھیار کے استعمال ہو سکے ماسوائے کرپان کے جو میان میں ڈالی ہوئی ہو۔ پانی گئی یا جو کوئی شخص نوٹیا یا آگ لگاتا ہوا دیکھا گیا اس کو نظر پڑتے ہی گولی مار دی جائے گی۔ ان احکام کو نافذ کرنے کے لئے فوجی دستے دو بجے دن کے بعد شہر میں گشت کریں گے۔

امرتسر میں انگریز حکومت کی طرف سے لگائے گئے کر فیو کا اعلان

”اوتے مار سٹیا امی“

ਇਲਾਨ

اور تسمیں انگریز حکومت کی طرف سے لگائے گئے کرپو کا گورکھی اشتہار

دروازہ میاں سنگھ کے باہر مشرقی جانب کوئی ڈیڑھ فرلانگ کے فاصلے پر اکالی اور نینگ سکھوں کا ایک گردوارہ تھا جہاں انہوں نے ایک قلعہ بنا رکھا تھا اس قلعے کی دیواروں میں سے سکھ اس قلعے کا نام برج پھولا سنگھ تھا۔ کٹرہ میاں سنگھ، چانی دند اور مٹی منڈی کے مسلمان محلوں پر فائرنگ کرتے رہتے تھے۔ گرمیوں کے مہینوں کو دندا و زردہ گرم دن تھے۔ ہمارے محلے میں لال حویلی والے مکان کی چیت پر خواجہ فیض اپنے ایک دوست کے ساتھ بندوق لئے پہرہ دے رہا تھا۔ وہ اونچا لمبا بھرپور کشمیری جوان تھا۔ اس نے صرف دھوتی پہن رکھی تھی۔ پہرہ دیتے دیتے خدا جانتے کس لئے وہ اٹھ کر کھڑا ہوا ہی تھا کہ برج پھولا سنگھ کی جانب سے تھری ناٹ تھری کی گولی آئی اور سیدھی فیض کی چھاتی میں جا کر لگی۔ وہ خون میں لت پت گرا اور وہیں شہید ہو گیا۔ اس کی لاش نیچے لاکر جب اس کے باپ کو دکھائی تو وہ بھی وہاں موجود تھا۔ بوڑھا باپ اس صدمے سے حواس کھو بیٹھا بار بار کہی کہتا۔

”میں نے کہا تھا فیض قیصر ہیں مگر اوپر جا۔ قیصر ہیں کر جا۔۔۔۔۔“

ایسے کئی ماؤں کے شیر پاکستان پر قربان ہو گئے اور آج ان کے نام سے بھی کوئی واقع نہیں۔ لیکن ان کا خون رائیگاں نہیں گیا۔ ان کا خون رائیگاں نہیں جاسکتا۔ شریف پورے سے لے کر مسلم بانی سکول تک جی ٹی روڈ کے ساتھ ساتھ دن رات پہرہ دیا کرتے دروازہ میاں سنگھ کی جانب سے دربرقعہ پوش عورتیں تھیل پورے کی طرف جا رہی تھیں۔ جب وہ آدھے راستے میں پہنچیں تو برج پھولا سنگھ کی جانب سے کچھ اکالی سکھوں نے ان پر حملہ کر دیا۔ اور انہیں اٹھا کر لے گئے۔ پھرے ہوئے شیروں کی طرح شریف پورے کے نوجوان لڑکیاں وغیرہ لے کر نعرہ بکیر بلند کرتے ہوئے لپکے اور آدھے راستے میں ہی اکالی سکھوں کو لیا۔ بڑے زور کی لڑائی ہوئی۔ ایک اراٹھ دیر نوجوان رفیق پونگی کو گولی لگی۔ مسلمان عورتوں کو چھڑا لیا گیا۔ رفیق پونگی کو اس کے گھر تحصیل پورے لے جایا گیا۔ خون بہت بہہ رہا تھا۔ وہ جو شش میں نعرے لگا رہا تھا۔ رات کے پہلے حصے میں اس شہید نے بھی دم توڑ دیا۔ بقول محمد اکرم بٹ آف ریڈیو پاکستان ملی آنکھوں والا یہ اراٹھ نوجوان

امر تسر کا پہلا شہید تھا۔

دروازہ رام بارنگ کے باہر کے اور تانگے رگڑاں، اجنال، فتح گڑھ چڑیاں، جیشہ اور چیار دی جایا کرتے تھے۔ چیار کی اپنے بیٹے فریوزوں اور پورن بھگت کی سوتیلی ماں مائی لوٹاں کی جنم بھومی کی وجہ سے مشہور تھا اور جیشہ پنجاب کے سرکردہ اور امیر ترین سکھوں کا گڑھ تھا۔ جیشہ کے تمام مسلمان غاندلوں کو سکھوں نے بے دردی سے شہید کر دیا۔ مشہور افسانہ نگار اور پروفیسر غلام علی چوہدری کے گھر کے انیس بیس افراد شہید کر دیئے گئے۔ فساد زدہ امر تسر کی ایک بیتی ہوئی دوپہر تھی کہ برج پھولا سنگھ کے اکالی سکھوں نے ہمارے محلے پر حملہ کر دیا۔ چوٹی بد معاش نے لگی میں اکر نعرہ مارا۔

”اونٹے کافر آگئے جسے نکل آؤ بار مسلمانو“

اس کے ساتھ ہی محلے میں ہیجان پھیل گیا جس کے باعث میں جو آیا ہے گردوازہ میاں سنگھ کی طرف اٹھ دوڑا۔ جان بد معاش نے اپنی کوٹھڑی میں جا کر میٹھ مالٹا کی چکی لگائی۔ سنبھالی اور چنگھاڑتا ہوا اکالیوں سے لڑنے کے لئے لپکا۔ اتفاق کہ بات ہے کہ میں نے بھی جوش میں آکر ہانک پڑی اور دوسرے محلے داروں کے ساتھ اٹھ دوڑا۔ میں لگی میں بھاگتا بھی جا رہا تھا اور سوچ بھی رہا تھا کہ میرے دہاں تک پہنچتے پہنچتے لڑائی ختم ہی ہو جائے تو اچھا ہے۔ مکاؤں کی کھڑکیوں میں عورتیں چھتیں اٹھائے سہی کھڑی تھیں۔ ان کو دیکھ کر مجھے بہت جوش آیا اور میں اور تیز دوڑنے لگا۔ میدان کارزار میں جا کر معلوم ہوا کہ اکالیوں کے محلے کو دروازے کے مسلمانوں نے نہ صرف بہادری سے روک لیا بلکہ انہیں پسپا کر کے برج پھولا سنگھ کی طرف بھاگ دیا۔ ایک اکالی سکھ کی موٹی تازی کٹی ہوئی پٹلی دروازے کے باہر جی ٹی روڈ پر پڑی ابھی تک پھڑک رہی تھی۔ ہمارے محلے کے دو چار نوجوان زخمی ہوئے۔ شدید زخمی ہونے والوں میں غلام قلندر آف قادر شہزاد بھی تھے۔

امر تسر میں فساد کے شعلے وقت کے ساتھ ساتھ تیز سے تیز تر ہو رہے تھے۔ فساد میں ہر وقت مٹی کا تیل جل جلی ہوئی لکڑی اور گندے بیروزے کی بو پھیلی رہتی تھی۔ شہر کی مجلسی، ثقافتی اور کچھل زندگی ختم ہو گئی تھی۔ بارغ آجڑ گئے تھے۔ کہنی بارغ، سکتری بارغ اور

گول باغ میں خاک اڑتی تھی۔ پھلوں کے باغ ویران ہو گئے تھے۔ ہوائوں میں ایک دھشت اور خوف کی فضا چلی تھی۔ اب یہ بات بھی کھل چکی تھی کہ امرتسر پاکستان میں نہیں آئے گا۔ ریڈ کلف کی اندھی گھیرنے گورڈ سپر ہو شید پور اور جہوں پٹھا نکوٹ کے مسلمانوں پر بھی ایک قیامت برپا کر دی تھی۔ کامریڈ ہوٹل اور صوفی ترک ہوٹل دلی ساری کی ساری مارکیٹ نذر آتش کر دی گئی تھی۔ ان ہوٹلوں بیٹھے والے ادیب، شاعر، نقاد، موسیقار، دانشور اور سیاستدان اپنے محلوں میں قید ہو کر رہ گئے تھے۔ جالندھر اور پنجاب کے دوسرے شہروں سے آفت زدہ مسلم مہاجرین کے قافلے پاکستان کی طرف چل پڑے تھے۔ امرتسر کے مسلمانوں نے دشمنوں کا ڈٹ کر مقابلہ کیا تھا لیکن اب وہ بھی پاکستان کی طرف ہجرت کرنے لگے تھے مسلمان پولیس سے ہتھیار لے لے گئے تھے۔ شہر میں گورکھا جاٹ اور سکھ فوج آ گئی تھی۔ شریف پور سے کو مسلم مہاجر کمیٹی قرار دے دیا گیا اور اس کے باہر بلوچ جہنم کے سپاہی بیٹھ گئے کوچہ رنگریزاں میں باغ راماند کے ہندو سکھوں نے فوج کے ساتھ مل کر اچانک حملہ کر کے بہت سے مسلمانوں کو شہید کر دیا۔ باقی لوگ بڑی مشکل سے جان بچا کر ہمارے محلے گل ڈبگراں میں آ گئے۔ سوائے ہمارے محلے اور شریف پور سے کے سارا امرتسر ہندو سکھ فوج کی بربریت کی زد میں تھا۔ ہندو اور سکھ مسلمانوں کے گھروں کو نوٹ نوٹ کر اور آگ لگا کر تھک گئے تھے۔ اب وہ ہمارے محلے کی طرف بڑھ رہے تھے۔ خبر آئی کہ مسلم لیگ کے ٹرک لاہور سے مسلمانوں کو لینے کے لئے آ رہے ہیں۔ ایک روز دو فوجی ٹرک گل کے باہر آ کر رک گئے ان میں گل کے ایک سرمایہ دار نے گھر کا سارا سامان لادا اور غریب مسلمانوں کو بے یار و مددگار چھوڑ کر پاکستان کو روانہ ہو گیا۔ جائے بد معاش کی ساری بوتلیں ختم ہو چکی تھیں اور وہ سر جھکانے ایک دکان کے پٹے پر اداس بیٹھا تھا۔

اور پھر ایک مدد گورکھا فوجیوں نے گل کے دروازے پر دستی بم پھینک دیا۔ ایک بیہوش ہوا دھماکہ ہوا اور گل میں جگمگ چڑھ گئی اور سب لوگ اپنا سامان وہیں چھوڑ لال جوی اور گوجروں کی گل میں سے ہو کر شریف پور کی طرف بھاگنے لگے جی مدد پور سے گزرتے

ہوئے ایک سکھ ملٹری ٹرک نے ان پر فائرنگ کی جس سے کئی مسلمان شہید ہو گئے۔ غلام محمد پشینے والے کا جوان بیٹا موسیٰ اپنے ننھے بچے کو گود میں اٹھائے بد رو پار کر رہا تھا کہ گولی لگنے سے دونوں باپ بیٹا شہید ہو گئے۔ پٹھان خانہ بدوشوں کا ایک قافلہ ریلوے سٹیشن سے ہو کر ہیدل ہی لاہور کی طرف چل پڑا تھا۔ اس قافلے کے تمام افراد کو چھبرٹ کے پاس سکھوں نے شہید کر دیا۔ ریل گاڑی کی کھڑکی تھوڑی سی اوپر اٹھا کر میں نے اپنی آنکھوں سے ان افراد کی لاشیں خود رو جھاڑیوں اور درختوں کے پاس بکھری ہوئی دیکھیں۔

امرتسر کے مسلمان اپنے آباد اجداد کے مکانوں، گلی محلوں، باغوں اور مسجدوں کو چھوڑ کر جا رہے تھے۔ ان کے چہرے ویران تھے۔ بالوں میں خاک پڑی تھی اور پاؤں سے خون بہہ رہا تھا۔ امرتسر کے آسمان پر دھواں ہی دھواں تھا۔ جلے ہوئے مکانوں، گلی محلوں اور مسجدوں کا دھواں — قرطبہ کی عبادت گاہیں ایک بار پھر ویران ہو رہی تھیں۔ غرناطہ کے باغات ایک بار پھر اجڑ رہے تھے۔ ہسپانیہ کے گلی کو پے ایک بار پھر خونِ مسلم سے لالہ زار بن گئے تھے۔ اندلس کی داویاں تیرہ و تار ہو گئیں۔ انگور کی بیلوں سے چھتی ہوئی گول مسلمانوں کے خون کی پیاس بن گئیں۔ امرتسر! — تیرے پیسے میں ہماری خوشبو تھی۔ تیری مائیں میں ہماری مہک تھی۔ تیری مسموں میں ہماری ماؤں کی تلاوت کی آوازیں گونجا کرتی تھیں۔ تیری مسجدوں کے ٹھنڈے فرشوں پر ہم نے سجدے کئے۔ تیرے بلند و بال منازل پر ہم نے صبح و شام خدا کی عظمت و جلال کی صدا بلند کی۔ ہم نے تجھے اپنا خون دے کر پالا۔ مگر تو نے سنگدل دشمن بن کر اپنے شہر کے گلی کوچوں میں ہمارا خون بہایا۔ ہم تجھ سے اپنے خون کا بدلہ لیں گے۔ ہم ان بہنوں کو نہیں بھولیں گے جن کا سہاگ تیری گھیلوں کی خاک میں دفن ہو گیا۔ ہم اپنی ان ماؤں کو فراموش نہیں کریں گے جن کے جگر گوشوں کا خون تیرے بازاروں کو لالہ زار کر گیا۔

ہسپانیہ تو خونِ مسلمان کا امیں ہے
مانند حرمِ پاک ہے تو میری نظر میں

پوشیدہ تبری خاک میں سجدوں کے نشان ہیں

خاموش اقامتیں ہیں تیری بادِ سحر میں

امر نسرا! ہم تباہ حال مہاجرین کرتیرے شہر کے جلتے ہوئے دروازوں سے لکے
تھے۔ اب پُر شکوہ فاتحین کرتیرے شہر میں داخل ہوں گے۔ اپنے طلوع ہوتے سورج
میں ہماری ننگ کی روشنی دیکھو! اپنی بے اذال خاموشی میں ہمارے فاتح گھوڑوں کی یلغار سن!

آگ اور خون کے گلاب

مارچ ۱۹۴۷ء کی تیسری تاریخ تھی۔ میں لاہور سے آنے والی ٹرین پر امرتسر ریلوے اسٹیشن کے ایک
نمبر پوٹ فارم پر اترا تو وہاں کی فضا کچھ دیران دیران محسوس ہوئی۔ حسبِ عادت میں نسامرتسر کمانڈ
نہیں خریدتا تھا اور اب لائینوں لائن شریف پورے والے پھانگ کی طرف جانے کا ارادہ رکھتا تھا۔
ٹرین کے انجن کے پاس دو چار آدمی کھڑے کھسکھس کر رہے تھے۔ مجھے ان کے قریب سے ہو کر
چھٹ فارم کی ڈھلان اتر کر اگلے ریلوے یاڈ میں جانا تھا اور پھر میریسیوں والے پل کے نیچے
گزر کر شریف پورے والے پھانگ تک پہنچنا تھا۔ ان میں ایک سیکھ بھی تھا۔ ان کی باتوں سے پتہ
چلا کہ شہر میں ہندو مسلم فساد ہو گیا ہے۔

میں نے کوئی خیال نہ کیا کیونکہ امرتسر میں ہر قسمِ شبِ برات پر ہندو مسلم تصادم ہوتا ہی
رہتا تھا۔ محرم کے تحریشے ہندو سیکھ اکثریت کے گورو بازار، روشنی ڈپوڑھی، اکرموڈیوڑھی اور بازارائی
سیریں سے گزرتے تھے اور ہندو اوپر سے ایشیں پھینکتے تھے۔ پھر دیکھتے دیکھتے پاتو چھڑے نکل
آتے۔ لیکن امرتسر ریلوے یاڈ میں سے گزرتے ہوئے میں نے دائیں جانب دیکھا تو فوراً ایک
جگہ دھواں اٹھتا نظر آیا۔ کہیں آگ لگی تھی۔

پھانگ پر پہنچا تو کچھ لوگ چارپائی اٹھائے بڑے ہسپتال کی طرف جا رہے تھے۔ یہ ہمارے
محلے کے لوگ تھے۔ چارپائی پر ہمارے ہی محلے کا ایک گاڑی ان نو جوان فون میں لت پت پڑا تھا۔
پتہ چلا کہ بریج پھولاسنگھ کے نہنگوں اور اکالیوں نے ہمارے کھڑے پر حملہ کر دیا تھا۔ جب رانی ہوئی
ہم کٹراہ مہان سنگ میں رہتے تھے اور دروازہ مہان سنگ سے گزر کر اپنے محلے میں جاتے
دروازہ مہان سنگ کے سامنے دائیں جانب کوئی دو فرلانگ کے فاصلے پر سکھوں نے ایک چوڑا سا

تعمیر کار کھا تھا جس کا ہم بُرج چلا سنگہ تھا۔ اس پر امرتسر کے مسلمانوں نے سخت احتجاج کیا مگر کہتے ہیں کہ سرسکند نے سکھوں کو اجازت دے دی تھی کہ وہ وہاں قلعے کی تعمیر کر سکتے ہیں۔

بہر حال اس قلعے سے نکل کر سکھوں نے ہمارے دروازے پر حملہ کر دیا۔ اس سے ایک روز پہلے یا اسی روز لاہور میں جناب اسمبلی کی سیزمیں پر سکھوں کے لیڈر تارا سنگھ نے تلوار لہرا کر اعلان کیا تھا کہ وہ مسلمانوں کا قبرستان بنادیں گے مگر پاکستان نہیں بنے دیں گے۔ اس سے مشتعل ہو کر جنگوں کی ایک ٹولی تلواریں لے کر ہمارے محلے پر ٹوٹ پڑی۔

مسلمانوں کے پاس کبھی کچھ نہیں ہوا کرتا بس خدا کے بھروسے پر ہی لڑا کرتے ہیں۔ اس روز بھی سکھوں کی تلواروں کا مقابلہ ہمارے محلے کے نوجوانوں نے چار پاٹیوں کے پایوں سے کیا۔ ہمارے نوجوان زخمی ہوئے۔ ہمارے نہنگ والیں اپنے قلعے کی طرف بھاگ گئے۔

کھڑے کے دروازے پر دیرانی تھی۔ پولیس آگئی تھی۔ محلے میں پہنچا تو بڑا جوش و خروش تھا تیسرے پیر میں مال بازار میں باؤ ایک تانگہ گول ہٹی کے آگے لگا رکھا۔ اس میں زرد کپڑوں والے سکھ نہنگ بیٹھے تھے۔ پیچھے زبت رکھی تھی۔ نوبت بجا کر لوگوں کو اکٹھا کیا گیا۔ پھر اگلی نشست پر اٹھ کر ایک سکھ نے مسلمانوں کے خلاف ایک تقریر کی اور ماسٹر تارا سنگھ کا حوالہ دے کر کہا۔

ہم مسلمانوں کا قبرستان بنادیں گے۔ پاکستان کبھی نہیں بنے دیں گے یہ گول ہٹی سکھوں کی جنرل مرچنٹ کی دکان تھی اور وہاں تلواریں بھی فروخت ہوتی تھیں میں گول ہٹی کے ایک طرف کھڑا تھا۔ میرے دیکھتے دیکھتے گول ہٹی کے سکھ نے تلواریں تانگے میں بیٹھے نہنگوں کی طرف اچھال دیں کہ مسلمانوں کا قتل شروع کریں۔

چوک میں بھگدڑ مچ گئی۔ نہنگوں نے تلواریں لہرا کر تانگے سے چھلانگیں لگائیں اور مسلمانوں پر حملہ کر دیا۔ مسلمان نہبتے تھے۔ اینٹ، پتھر اور سوڑے کی بوتلوں سے مقابلہ کیا۔ پولیس آگئی۔ بازار بند ہو گیا۔ اسی رات کو مسلمانوں نے گول ہٹی کو آگ لگا دی۔ امرتسر کی یہ سب سے پہلی بھیانک آگ تھی جس نے جس بستی کی تینوں دکانوں کو جلا کر رکھ دیا۔

اب شہر میں فسادات کی آگ جگہ جگہ بھراک اٹھی دونوں طرف سے تیاریاں ہونے لگیں لگیوں پر دوسرے کے دروازے چڑھا دیئے گئے۔ ہندو سکھ محلوں میں مسلمانوں کا قتل عام ہوا

اور ان کے مکانات کو لوٹ کر آگ لگا دی گئی۔ اسی طرح مسلم محلوں میں ہندو سکھوں کے مکان ٹوٹ کر تدر آتش زد ہوئے گئے۔ اور پھر، اپریل ۱۹۴۷ء کو امرتسر شہر پر ایک چوڑے سے چھانٹنے پر ہندو کی اور اشتہار گراٹے۔ ان پر کھاتا تھا کہ شہر میں، مارچ دو بجے دن سے دو دن تک کے لئے ۲۲ گھنٹے کا کر فیو لگا دیا گیا ہے اس کے بعد آئندہ پانچ دن کے لئے ۲۰ گھنٹے کا کر فیو ہوگا جس میں دس بجے دن سے دو بجے دن چار گھنٹے کا وقفہ ہوگا۔ خدا جانے کس طرح یہ اشتہار میرے ساتھ ہجرت کے بعد لاہور آگیا جناب بھی میرے پاس ایک یادگار کے طور پر محفوظ رہے۔

پھر چوک پر آگ داس کا سانحہ ہوا۔ اس چوک میں سکھوں کی اکثریت تھی۔ وہاں مسلمانوں کے چند ایک گھر تھے۔ سکھوں نے ان سب کو شہید کر کے ان کے مکانات کو آگ لگا دی۔ اگلے روز جمعہ تھا مسلمانوں نے اعلان کر دیا کہ وہ جمعہ کی نماز چوک پر لگاس والی مسجد میں پڑھیں گے۔ ہر مسلمان اپنے ساتھ ایک ایک لٹا لیتا گیا۔ نماز کے دوران سکھوں نے حملہ کر دیا۔ مسلمانوں نے لوٹے مار مار کر سکھوں کو بھاگ دیا۔ یہاں سے لٹا ہم مشہور ہو گیا۔ مسجد میں کئی مسلمان شہید ہوئے۔ میں نے خفاقت یہ کی کہ حالات کا جائزہ لینے کے لئے ملک کے بت سے آگے جیاناوالہ باغ سے ہو کر بازار بھنگیاں کی جانب نکل گیا جو خالص سکھ آبادی تھی۔ اصل میں ہم امرتسر ہی بڑے دلیر تھے۔ اور اپنے آپ پر بھروسہ ہوتا تھا کہ سکھ ہمارا کچھ نہیں بگاڑ سکتے یہی وجہ ہے کہ جب تک سارے شہر پر گولہ کھا اور ہندو سکھ فوج نے قبضہ نہیں کر لیا امرتسر مسلمان ڈٹ کر جگہ جگہ ہندو سکھوں کا مقابلہ کرتے رہے۔

بازار بھنگیاں سے ڈرا آگے گیا تو سامنے گورو رام داس کی سرمے تھی اور اس کے پیچھے سیاہ گاڑھا دھواں اٹھ رہا تھا۔ ایک جگہ ہندو سکھ جمع تھے اور اس عزم کا اظہار کر رہے تھے کہ شہر میں کسی مسلمان کو زندہ نہیں چھوڑیں گے۔ مجھے بھی انہوں نے ہندو سمجھا کیونکہ ان دنوں میں کھدر کا کرتہ یا جامہ پہنا کرتا تھا۔ گورو رام داس کی سرمے سے سکھوں کی ایک ٹولی تلواریں لہراتی، نعرے لگاتی آئی۔ اب مجھے خطرے کا شدید احساس ہوا۔ پھر بھی میں لوگوں میں کھڑا رہا۔ کیونکہ بھاگنا اپنی موت کو دعوت دینا تھا۔ مشتعل سکھوں کی ٹولی مسلمانوں کے خلاف نعرے لگاتی باغ راماوند کی طرف نکل گئی۔ میں بظاہر بڑے آرام سے ٹہکتا ٹہکتا وہاں سے نکل کر کسیری باغ میں آیا اور پھر بھاگ کر کچھ

لگ رہے تھے۔ کوئی راکھا دہاں نظر نہ آیا۔ امرتسر میں ٹیش پرکے ہی معلوم ہوا کہ شہر میں اگلے روز جمعہ کے دن تک کارنیو کا ہوا ہے۔ پیٹ فارم پر مجھے اپنا دوست قیوم شیخ مل گیا اس نے کہا کہ قیوم ابھی ابھی لگا ہے۔ میرا خیال ہے ہم کو کشش کر کے محلے میں پہنچ سکتے ہیں۔

قیوم شیخ کا محلہ سیر میووں والے پل کے پار تھا۔ زیادہ فاصلہ نہیں تھا۔ پھر بھی کارنیو لگ چکا تھا لیکن ہم لوگ امرتسر کو اب بھی اپنا گھر ہی سمجھتے تھے۔ چنانچہ ہم ٹیش کے پارڈ سے گزر کر دیوار بھاند میو میو والے پل کی دوسری جانب سڑک پر آ گئے۔ شہر سنان تھا اوپر سے ایک آدمی نے کھڑکی، کھول کر آواز دی: "اوتے منڈیو اکیوں مرن نون تھاں لہو دے اوتے"

قیوم شیخ کا محلہ بالکل سامنے تھا۔ ہم بھاگ کر اس کے محلے میں آ گئے۔ ساری رات میں نے قیوم شیخ کے گھر پر بسر کی۔ حالات واقعی بہت خراب ہو چکے تھے قیوم کے گھر کے پیچھے ہندوؤں کا محلہ تھا۔ وہاں سے دو مسلمانوں کی لاشیں آئیں۔ ایک عورت شدید زخمی حالت میں تھی۔ چھت پر مسلمان نوجوان بیٹے اکا دکا فائر کر دیتے تھے۔ شہر میں مورت ہندو سکھ فوجی پھر رہے تھے جمعہ کر فیو اٹھا تو میں بھاگ کر اپنے گھر پہنچا۔ گھر والے مجھے دیکھ کر خوش ہوئے اور حیران بھی ہوئے کہ میں نے اتنا لمبا سفر کیسے طے کر لیا۔ میں نے انہیں الٹی میٹم دے دیا کہ پانچ منٹ کے اندر اندر جس نے میرے ساتھ لاہور چلنا ہے تیار ہو جائے۔ بزرگ میرا مذاق اڑانے لگے۔

پاکل ہو گئے ہو! سب ٹھیک ہو جائے گا!

لیکن میں والدہ، آپوچی اور دو چھوٹی بہنوں کو ساتھ لے کر گئی۔ ہمارے پاس کچھ بھی نہیں تھا محلے والوں نے ہمیں تاپ بندیرہ نکلوانے سے دیکھا۔ میدا ملی موہیا شکا کی جوس پہنے کدے پر سو بھا سنگھ کے مکان سے ٹوٹی ہوئی بندوق رکھے آگیا۔

ملو جی! خلیفے کا گھر بھی لاہور جا رہا ہے!

مگی والے اسی جگہ رہنے کی قسم کھائے ہوئے تھے لیکن میں دہلی سے امرتسر تک کے حالات دیکھ آیا تھا۔ میں نے دروازہ وہاں سنگھ میں اگر ایک مسلمان تانگے والے کو دس روپے پر راضی کیا اور ریوے ٹیش کی طرف روانہ ہو گیا، میں نے شریف پورے کی طرف دیکھا، سرکر مدو والے یو کیش، ریشیم کے درخت خاموش کھڑے تھے اور دور آسمان پر دھواں اٹھ رہا تھا۔ نویں

رنگریزاں میں گھس گیا جو ہمارے ہی محلے میں تھا۔

اب امرتسر میں ہر طرف آگ اور لاشیں تھیں۔ انہیں کیا بیان کروں۔ مشرقی پنجاب کے ہر شہر میں یہی فحشیں کھیل کھیل گئیں۔ لوگ ابھی تک اس آگ کی تپش اور خون کی بو کو بھولے نہیں ہوئے۔ بازاروں کے بازار جل کر راکھ ہو گئے۔ کارنیو کے ساتھ جگہ جگہ آگ بجھ چکی تھی۔ کارنیو کھتا تو خیر زنی کی داریاں شروع ہو جاتیں۔ میں فروری، ۱۹۴۷ء کے افریقہ کو لمبوسے امرتسر آیا تھا۔ وہاں میں بھائی جان۔ کپٹن ستاز ملک کے ساتھ کام کرتا تھا اور مجھے پھر مالپس جانا تھا۔ لیکن فسادات نے مجھے امرتسر میں ہی روک دیا۔ آخر جولائی کے پہلے ہفتے میں کسی دکنسی طرح فرنیٹر میل پر سو رہا کہ دہلی پہنچ گیا۔ وہاں سے مدراس ایکسپریز پکڑی اور مدراس آگیا۔ یہاں کی فضا بڑی پرسکون تھی۔ مدراس سے ریل میں بیٹھا تو دھنش کو ڈی پہنچ کر سٹیر میں آدھ گھنٹے کے سمندری سفر کے بعد سیلون کی بندرگاہ مالی منارا آرا۔ یہاں سے کو لمبوتیل میں سو رہا کہ ایک رات اور ایک دن کے سفر کے بعد کو لمبوتیل پہنچ گیا۔

جولائی کے افریقہ میں امرتسر سے بڑی بھیا تک خبریں آنا شروع ہو گئیں۔ پاکستان بن چکا تھا اور امرتسر پاکستان میں نہیں آیا تھا۔ اگست کے پہلے ہفتے میں کو لمبوسے واپس امرتسر کے لئے روانہ ہو گیا۔ دہلی تک تو حالات قدرے ٹھیک ٹھاک تھے۔ دہلی سے آگے آیا تو انباے کے ٹیش پر مسلمان برقع پوش عورتوں کو بے سرو سامانی کے عالم میں پیٹ فارم پر ہجوم در ہجوم جمع دیکھا جو اپنے بچوں کو سینے سے لگائے لاہور والی گاڑی کا انتظار کر رہی تھیں۔ سکھ فوجی اور پولیس واسے انہیں ہماری گاڑی سے دور رکھے ہوئے تھے۔ لدھیانے کے ٹیش پر بھی مسلمان مہاجرین کے ہجوم دیکھے جو پریشان حال تھے اور شہر چھوڑ کر وہاں آئے بیٹھے تھے۔ یہی وہ مسلمان تھے جو پیش ٹرینوں میں سو رہا کہ ہمد کی طرف روانہ ہوئے اور جنہیں راستے میں ہی ہندو سکھوں نے کاٹ کر پھینک دیا۔ جائزہ راجوے اسٹیشن پر سکھ کرپا میں اور عواریں لئے پھر رہے تھے۔ یہاں کوئی مسلمان دکھائی نہ دیا۔ یہاں سے گاڑی ملی تو دائیں بائیں کھیت ویران تھے۔ دہر کہیں کہیں دیہات میں دھواں اٹھ رہا تھا۔ کرتار پور کے قریب ریوے لائن کے ساتھ ایک چھوٹا سا گاڑی گزرا۔ اس کے مکانوں میں آگ لگی تھی۔ کھالی کے پاس دو لاشیں اونچے پڑی تھیں۔ گاڑی مانا ڈالنے سے گزر کر امرتسر شہر کی مدد میں آئی۔ یہاں بھی وہی سڑک آلود فضا تھی۔ شریف پور کے سامنے والے امرودوں کے باغ آجڑے آجڑے

خانقاہ کے باہر بد رو کے کنارے ایک لاش پڑی تھی، شیشی پر مسلمان مہاجرین کے ٹکڑے لگے تھے، یہ لوگ زیادہ تر لوہے کے ہتھیار اور نام گنج سے آئے تھے، چیت پر بوج رجسٹر کے جوان ہونچے لگائے بیٹھے تھے کیونکہ تیل مندر کی جانب سے ہندو فائرنگ کرتے تھے، بوڑھے ایکسپس اگر زخمی ہوجا کر ہتھیار سے ایک ڈبے میں گھس کر کھڑے ہو گئے، ٹرین چلی، فائرنگ شروع ہو گئی، ٹرین تک گئی، بلوچ رجسٹر کے جوانوں نے فائرنگ کا ڈٹ کر جواب دیا، ہندوؤں نے فائرنگ بند کر دی، ٹرین پھر روانہ ہوئی، چھ ہفتے کے پاس میں نے جھاڑیوں میں جگہ جگہ پٹھانوں کی لاشیں دیکھیں، بعد میں پتہ چلا کہ یہ مسلمان پٹھان اپنے گھر سے لے کر بیدل ہی لاہور کی طرف روانہ ہو گئے تھے، لوگوں نے انہیں منع بھی کیا مگر وہ نہ رکنے اور چھ ہفتے کے پاس سکھوں نے حملہ کر کے انہیں شہید کر دیا۔ گاڑی بڑی ہلکی رفتار سے چار ہی تھی، قاصد ریوے سٹیشن پر سکھ کھڑے عواریں لہرا لہرا کر مسلمانوں کو گالیاں دے رہے تھے۔ انارکلی تک سکھوں کی گادیں نے ہمارا پیچھا کیا، واہگہ آیا تو ایک جگہ بانس کے ساتھ پاکستان کا پرچم ہوا میں لہرا رہا تھا لوگوں نے پاکستان زندہ باد کے نعرے لگنے شروع کر دیئے۔ گاڑی لاہور کے پلیٹ فارم نمبر ۶ پر آکر کھڑی ہو گئی، مسلم لیگ کے رضا کار بھجنے ہوئے چلے، روناٹیاں اور اچارے گرا گئے۔ وہ ایک ایک سے خیریت پوچھ رہے تھے، لاہور کے لوگ بازو کھول کر مہاجرین کو گے لگا رہے تھے۔ ہمیں ریوے سٹیشن کے پوسٹ اینڈ پارسل آفس کی طرف سے باہر نکالا گیا معلوم ہوا کہ سٹیشن کے سامنے گوردوارہ شہید گنج سے سکھ مسلمانوں پر فائرنگ کر رہے ہیں، سٹیشن کے باہر چھوٹے سے باغ میں قبو لگے تھے یہاں مہاجرین کو مارنے والے پر ٹھہرایا جاتا اور پھر والٹن کے مہاجر کیمپ کی طرف روانہ کر دیا جاتا، ہم اپنی بڑی ہمشیرہ کے ان آگے جو لاہور میں ہی آباد تھی۔ باقی چھوٹے مہاجریں، والد صاحب اور دادا جان اور دو بڑی بہنیں امرتسر میں ہی تھیں، یہ لوگ محض منہ بصری ضرورت سے زیادہ احتیاط کی وجہ سے وہاں سے نہیں چلے تھے، لیکن اب حالات بالکل پٹا کھانچے تھے۔ مشرقی پنجاب سے کئی ہونہری ریلیں آنا شروع ہو گئی تھیں، میں روز ریوے سٹیشن پر آکر باقی گھر والوں کا پتہ کرتا، مشرقی پنجاب سے آنے والی ہر گاڑی دیکھتا، جو بھی ریل آتی اس میں سے مسلمانوں کی لاشیں نکلتیں۔ ڈبوں میں خون ہی خون ہوتا، فیروز پور سے ایک ٹرین آئی تو میں ایک خالی ڈبے میں چڑھ گیا، سیٹ کے نیچے کوئی شے پڑی تھی، میں نے اسے اٹھا یا تو وہ کسی عورت کا کتا ہوتا

شہادت کی انگلی اور انگوٹھا غائب تھا ایک انگلی میں چاندی کی انگوٹھی تھی، ٹرالیاں مسلمانوں کی لاشوں سے مبر بھر کر شیشی سے باہر لے گئی جاتیں۔

میرے بعد ہمارے محلے پر کیا گوری وہ بھی سن لیجئے۔ تیرہ اگست کی رات کو ہمارے محلے پر ہندو قتل نے بے پناہ گولیاں چلائیں، اندگرد کی ساری گلیوں کے مسلمان گھرانے ہماری گلی میں آگئے تھے، ہمارے بازار میں میرے ہم جماعت حامد بٹ کا مکان تھا جو ہمارے مشہور اسکالر اور کلاسٹک محمد بٹ کے بڑے بھائی تھے۔ حامد بٹ اونچا لمبا سرخ و سپید خوبصورت کشمیری نوجوان تھا، کرفیو لگا تھا۔ بس چک اٹھا کر بازار میں جھانکا ہی تھا کہ کھسے نے گولی چلا دی، گھر میں کیا کھراہم چوہا، اس کا اندازہ ہر صاحب اولاد کر سکتا تھا۔ حامد بٹ شہید ہو گیا۔ ہمارے محلے کا ایک اور کڑیل جوان چیت پر گیا۔ وہ ننگے بدن تھا۔ صوفی دھوتی پہن رکھی تھی، برج پھولا سنگھ سے صوفی ناٹ تھری کی گولی آئی اور اس کے سینے سے پار ہو گئی، وہ بھی شہید ہو گیا۔ حالانکہ ہمارے مسلمانوں کی مہاجر ٹرین امرتسر کے سٹیشن پر آکر رکی۔ ایک نوجوان پیاس بجھانے سلسٹر پلیٹ فارم کے تل پر جاتے لگا، اس کی ماں اور بہنوں نے ہاتھ جوڑے، واسطے ڈالے کہ خدا کے لئے نہ جاؤ، مگر دلیر نوجوان نہ رکا۔

”ایسا بھی کیا ہے، وہ سامنے تو پانی کا تل ہے پانی پی کر ابھی آجاتا ہوں۔“

اس نے نکلے پر جا کر پانی کا ایک گھونٹ ہی پیا تھا کہ کسی ہندو یا سکھ کی رائفل سے ٹکلی ہوئی گولی سنائی ہوئی آئی اور اس کی کھوپڑی کو توڑ کر نکل گئی، وہ اسی جگہ شہید ہو گیا۔ ماں اور بہنوں کے مین سے ریوے سٹیشن کے درو دیوار مل گئے، وہ بین کرتی رہیں، ان کے مہاجری کی ان کے بیٹے کی لاشیں سامنے پلیٹ فارم کے نکلے پر پڑی رہی اور گاڑی لاہور کی طرف چل دی۔

تیرہ اگست کی رات کی قیامت خیز فائرنگ نے ہمارے محلے والوں کے پاؤں اکھاڑ دیئے سوائے ہماری گلی کے سوائے امرتسر شہر پر ہندو سکھ فوج کا قبضہ ہو چکا تھا۔ چودہ کی صبح گلی کے صدر کو توڑ رہے تھے، لوگ گلی کی مشرقی جانب سے گوجر مل کے وارے سے ہو کر سر کر روڈ پر آگئے، یہاں ان پر برج پھولا سنگھ کی طرف سے گولیاں چلنے لگیں، غلام محمد نوگر کا لڑکا موسیٰ اپنے دروازے کے بیٹے کو سینے سے لگائے بدھ ہار کر رہا تھا کہ گولی کھا کر بدھ میں بچے کے ساتھ گرا اور پھر دونوں میں سے کوئی باہر نہ آسکا، ہماری گلی کے لوگ اپنے بچوں اور عورتوں کے ساتھ پادھری گراؤنڈ میں سے شریف

کی طرف بھاگے جا رہے تھے، سکھ ان پر گولیاں برس رہے تھے، وہ گر رہے تھے، شہید ہو رہے تھے جو پنج گئے وہ شریف پور سے پہنچ کر بے دم ہو کر گڑ پڑے شریف پورہ مہاجر کیمپ قرار دے دیا گیا تھا اور وہاں بوجرجنٹ کا پہرہ تھا، بوجرجوان ان لوگوں کو فائرنگ کا کورسے رہے تھے مگر بہت دور تھے، کسی دکی طرح ہمارے گھر والے بھی پنج کر شریف پور سے پہنچ گئے۔

پورے شہر پر سوائے شریف پور سے کے ہندو سکھوں کا قبضہ تھا۔ شہر میں اگر کہیں کوئی آباد مسلم رہ گیا تھا تو وہ کیمپ میں آکر اپنے ذرا کی حیرت انگیز کہانی سناتا، ایک نوجوان اتھی سوار سے بد رو میں داخل ہوا اور چپتا چپاتا، بد رو کے اندر سے گزرتا شریف پور سے پہنچ گیا، وہ کچھ دیر میں لت پت تھا، اور سر اور منہ پر جالے لگے تھے، دروازہ جہاں سنگھ سے شاید آخری تانگہ کچھ عورتوں کو لے کر شریف پور سے کی طرف آتا تھا کہ برج پھولا سنگھ سے سکھوں نے حملہ کر دیا اور عورتیں اٹھا کر لے گئے۔ شریف پور سے اسی وقت مسلمان جوان غضب ناک ہو کر علی گڑھ کے نعرے لگاتے نکلے اور دیوار پھاند کر دشمن کے قلعے میں داخل ہو گئے، کہتے ہیں تنگ سنگھ ان کی جرات دیکھ کر ہی ششدر رہ گئے۔ یہ جیلے جوان دونوں خواتین کو واپس لے آئے لیکن خود سخت زخمی حالت میں تھے۔ یہ آتش نمرود میں نہتے ہی کو دپڑے تھے۔ گران کے جنبے کی سپائی انہیں سرخود کر کے واپس کیمپ میں لے آئی۔ شریف پور سے مہاجرین کو لے کر ٹوبیں پاکستان کی طرف روانہ ہونے لگیں ایک ریل میں بیٹھ کر کسی نہ کسی طرح ہمارے باقی گھر والے بھی لاہور پہنچ گئے۔

یہاں اگر ایک نئی زندگی، ایک نئی جدوجہد کا آغاز ہوا، یہ ایک الگ کہانی ہے، پاکستان کا تاریخی پس منظر کیا ہے؟ یہ کن سیاسی حوالے کا نتیجہ ہے؟ اسے تسرہم سے کیوں چین گیا؟ اس پر بہت کچھ لوگوں نے لکھا ہے جو مجھ سے زیادہ سیاسی اور دینی بصیرت رکھتے ہیں اور بہت کچھ لکھا جائے گا میں تو ایک افسانہ نگار ہوں، میں تو صرف اتنا ہی بتا سکتا ہوں کہ ہر تسرہ کی ٹھنڈی کھوٹی پر بیٹھا ہوا ہندو کتوں کا ٹھنڈا ہانی مسلمانوں کو اوک میں پلاتا تھا اور ہندو سکھوں کو شیشے کے گلاسوں میں پلاتا تھا، شانتی سروپ میرا گہرا دوست تھا لیکن میں اس کے گھر کے باورچی خانے میں داخل نہیں ہو سکتا تھا۔ درشنی ڈیوڑھی والا سکھ غیر مسلموں کو تانبے کے گلاسوں میں اور مسلمانوں کو بانس کی ٹنگی سے پانی پلاتا تھا جس طرح ہانڈوں کو دوا پلائی جاتی ہے۔ شانتی سروپ نے مجھے بتایا تھا کہ اگر کہیں میں اس کے گھر میں چائے پی لوں تو

اس کی برہمن میں میرے جھوٹے کپ کو توڑ دیا کرتی ہے کیونکہ میں مسلمان ہوں، پاکستان تو امر تسرہ کے محلے محلے میں بنا ہوا تھا، اس کے لئے کہاں کی سیاسی بصیرت اور کہاں کا تاریخی پس منظر؟ آپ آج کسی ہندو کے ساتھ اس کے گھر میں چوبیس گھنٹے بسر کریں، پچھویں گھنٹے میں آپ اپنے آپ ایک پاکستان کی فٹنڈ محسوس کرنے لگیں گے۔ شانتی سروپ میرا بچپن کا دوست تھا، اس کی ماما مجھ سے بہت بڑا کرتی تھی لیکن ہمیشہ مجھ سے پندرہ فٹ کے فاصلے پر کھڑی ہو کر، منہ پر کپڑا رکھ کر بات کیا کرتی تھی، کیونکہ میں مسلمان تھا۔ پاکستان بننے میں تو شانتی سروپ کی ماں کا بڑا گہرا ہاتھ ہے، اور اس سکھ کا بھی جو درشنی ڈیوڑھی میں مسلمانوں کو بانس کی ٹنگی سے پانی پلا کرتا تھا یہ لوگ آج بھی ویسے ہی ہیں، آج بھی پاکستان سے کوئی مسلمان ان کے پاس چلا جائے تو پرانے صندوق میں سے بانس کی ٹنگی نکال لیتے ہیں، آج بھی شانتی سروپ کی ماما آپ سے پندرہ فٹ کے فاصلے پر کھڑی ہو کر بات کرے گی۔ اس نے منہ پر کپڑا رکھا ہو گا جیسے آپ اچھوت ہوں۔

ان باتوں کو کہاں تک دہرایا جائے، پھر بھی اگست کے مہینے میں جب تیز دھوپ لگتی ہے اور تاریک بجلی ہوئی راتیں سنان ہو جاتی ہیں تو مجھے نعروں کی آوازیں سنائی دیتی ہیں، آگ میں جلتی لاشوں کی بو آتی ہے۔ میں ان عورتوں کی چیخیں سنتا ہوں جنہیں جالندھر سے لاہور آتے قلعے میں سے اخوا کیا جا رہا ہے، میں اس عورت کے کٹے ہوئے ہاتھ کو دیکھتا ہوں جو فیروز پور سے لاہور آنیوالی ریل کے ڈبے میں پڑا تھا، اور جیسے میں نے اٹھا کر پھینک دیا تھا، کہیں اس ہاتھ نے کسی کا ہاتھ تمام کر ہمیشہ ساتھ نبھانے کا عہد کیا ہو گا کہیں اس ہاتھ نے اپنے معصوم بچے کا یا بھائی کا منہ دھلایا ہو گا، کہیں اس ہاتھ نے قرآن شریف جزدان میں لپیٹ کر جیتی پر رکھا ہو گا، کہیں یہ ہاتھ دعا کے لئے بھی اٹھا ہو گا، کہیں یہ ہاتھ باپ کی انگلی پکڑ کر گھر سے باہر نکلا ہو گا، کہیں اس ہاتھ پر دھندلی بھی لگی ہو گی۔ لیکن اب خون آلود خالی ڈبے کی سیٹ کے نیچے پڑا تھا۔ کوئی اس ہاتھ کو پکڑنے والا نہیں، کوئی اس ہاتھ کو اپنے ہاتھ میں لیتے والا نہیں۔

الوداع امیر سے خوبصورت احساس لوگو!

ایک بار پھر الوداع! ہزار بار الوداع!

کتنے حسین اور خوشبو دار تھے تمہارے گلاب کے پھول!

آرتھر میں ۱۳ اگست

ایک نیم سرکاری ثقافتی ادارے میں چودہ اگست، ۱۹۴۷ء کی تقریب منائی جا رہی تھی۔ چودہ اگست کی یادیں کو تازہ کرنے کی کوشش کی جا رہی تھی۔ لاہور شہر کی سب سے جنگل، سب سے سہوار اور سب سے خوبصورت سڑک کی آٹھ منزلہ عمارت کی چھٹی منزل کے ایئر کنڈیشنڈ ہال میں قوم کے گدوں والی آرام کرسیاں سجی تھیں۔ ڈانس پر میز رکھی تھی جس پر شیشے کے چکلیے جگ میں ٹھنڈا پانی تھا اور گلدان میں کارنیشن کے نر در پھول سجے تھے۔ بیل باٹم باجھاموں، آدم جی کی ٹوٹوں، سمارٹل کے پرنٹوں، کلمہ پڑا کاہل اور جیولری کے چمکتے ہیرے اور ڈیڑھون کے سوٹوں، امریکی کودونوں، اٹلاوی سینٹوں اور فرنیچر پر فومز کا ہجوم تھا۔ ٹائیوں کی کسی ہوئی گریں مارڈ کاروں میں پھنسی ہوئی گریں۔ جبروں تک آئی ہوئی بالوں کی قلیں، انگلش پونڈز کے دھتے ہوئے گفٹ بکس اور ہال میں رچی ہوئی فریش ایر کی رومنگ مہک — دہلی دہلی سرگوشیاں، پیر وٹو کول کے تلکقات، دی آئی پیز کے ٹھنڈے بے جس چہرے اور پی آئی اسے کے نم دار ٹھنڈے کاغذوں سے پیشانیاں پر پختی بیگمات اور ان کی طائرہ لیتی بے باک نگاہیں — اب گیسٹ آف آرتھر میں لا سبے تھے۔

میں جس کرسی پر بیٹھا تھا وہ میرے قریب سے گزرے — ان کے امریکی ڈیڑھون کے سوٹ سے یوڈی کون کی خوشبو آرہی تھی۔ وہ کرسی صدارت پر تشریف فرما ہوئے — تالیاں سیکرٹری صاحب نے تقریب کی مختصر عزم و غایت بتائی۔ چودہ اگست کو دنیا کا سب سے بڑا اسلامی ملک پاکستان معرقتی وجود میں آیا تھا۔ ایک بیل باٹم نے بالوں کو جھٹک کر سات سو روپے کی ساڑھی سے پوچھا: "ممتی، چودہ اگست کو میں کہاں تھی؟"

ساڑھی نے لگے کانیکس درست کرتے ہوئے کہا: "بے بی اتم تو ابھی پیدا بھی نہیں ہوئی تھیں۔"

بیل باٹم نے جبرنگ لگ دوسرے جبر سے میں گھا کر پوچھا: "ممتی، تم کہاں تھیں؟"

ساڑھی نے ہونٹوں کے ریڈائنڈین لکر پر کیا ہوا پسینہ ٹھنڈے نشوونیر سے پونچھتے ہوئے کہا: "ویل بے بی؟ آئی تھینک، میں ان دنوں یو کے میں تھی۔"

خواتین و حضرات! آج چودہ اگست ہے۔ اس روز ہم نے ہندو سامراج کو شکست دیکر اپنے قائد اعظم کی قیادت میں پاکستان حاصل کیا تھا آج کا دن ہماری ہسٹری کا بڑا اہم دن ہے۔ خواتین و حضرات!..... مقرر نے ٹھنڈے پانی کے دو گھونٹ پیے۔ ماتھے پر آیا ہوا پسینہ فوٹو پر سفید رومال سے پونچھا۔ سیاہ چشمہ درست کیا اور ذرا کھٹکار کر دوبارہ تقریر شروع کر دی — ایک سیولیس لڑکی نے اپنا گلو کو چشمہ اتارتے ہوئے دوسری لڑکی سے پوچھا۔

دوسری لڑکی نے کمر کے گرد کسی ہوئی سنہری زنجیر کو اور کتے ہوئے پوچھا۔

(تمہارا مطلب کیا ہے؟)

پہلی لڑکی نے ہونٹ بیچھے۔ بیٹونی اوپر اٹھائیں اور گردن کو جھٹک کر کہا۔

(میرا مطلب ہے، موسیقی اور قص)

خواتین و حضرات! چودہ اگست ہمیں ہمیشہ یاد دلانا ہے تاکہ ہم نے پاکستان لاکھوں مسلمان بچوں، عورتوں، بوڑھوں اور جوانوں کی قربانیاں دے کر حاصل کیا تھا۔ ہم آگ اور خون کا دریا عبور کر کے یہاں آئے تھے۔

مقرر نے جھٹک کر سیکرٹری کے کان میں کچھ کہا۔ سیکرٹری صاحب نے دوسرے کے کان میں کھڑکھڑکی۔ دوسرے کے ہونٹ تیسرے کے کان کے پاس گئے اور اس نے فوراً جیب سے ڈائری نکال کر مقرر کی تقریر کے اقتباس لینے شروع کر دیے۔ اب صاحب صدر کی بائیں تھی۔ سیکرٹری صاحب دس منٹ تک صاحب صدر کی سوشل حیثیت، ان کی علمی قابلیت، ان کے تمغائے امتیاز، ان کے دلدادہ اور ان کی خوش خلقی کے بارے میں رطب اللسان رہے۔ صاحب صدر تالیوں کی گونج میں اُٹھے۔ مائی کر گرہ ٹھیک کی۔ مائیک کا ممتہ اپنی طرف کیا۔ ذرا کھٹکا دے۔ ذرا مسکرائے اور پھر سنجیدہ ہو کر فرمایا: "خواتین و حضرات....." اس کے ساتھ ہی پولیس فوٹو گزروں

کے فیش چمک اٹھے۔ ٹیلی ویژن کی تیز روشنیاں اور انعامیٹیشن کے گیمز آن ہو گئے۔ بیل بانٹوں نے سانس روک کر پوز بنالیں۔ سائٹھیں نے منہ می ہونی بھری ترچھی کر لیں۔ فوٹو گرافر گھوم گھوم کر صاحب صدر اور خواتین و حضرات کی مختلف تصویریں لینے لگے اور ریڈیو کا نمائندہ ریکارڈر کی ٹیپ آن کر کے بہہ تن گوش ہو گیا۔

اور پھر میں نے چودہ اگست کے یوم کو دیکھا۔ اس کے بالوں میں خاک پڑی تھی۔ انگلیں اندہ کو دھنسی تھیں، زخمی پیر سوتے ہوئے تھے، دونوں ہاتھوں کی انگلیاں کٹ چکی تھیں اور نصف کٹی گردن سے قون کے قوارے ابل رہے تھے۔ اس نے شیخ پر کھڑے ہو کر خواتین و حضرات کو دہشت زدہ، پھٹی پھٹی نظروں سے دیکھا اور پھر شیخ سے نیچے گر کر شہید ہو گیا۔ اس کی ویران آنکھوں میں پاکستاں سبز ہلالی پرچم لہرا رہا تھا اور اس کی ہتھی اس کی لاش پر بیٹھی اپنے ابو کو رو کر آوازیں دے رہی تھی اور پھر ایک سکھ کی تلوار نے اس ہتھی کے دو ٹکڑے کر دیئے۔ ایک چیخ فغا میں بلند ہوئی اور پھر گہرا سناٹا چھا گیا۔ موت اور دہشت کا سناٹا۔ فلش بلب جلتے رہے۔ ٹی وی کی روشنیاں چمکتی رہیں صاحب صدر ٹائی کی ٹاٹ بار بار درست کر کے تقریر کرتے رہے۔ پریس ولے نوٹس لیتے رہے۔ خواتین و حضرات ایئر کنڈیشنڈ ہال کی خوشبودار فغا میں بیٹھے دیواروں پر بنی ہوئی ریسٹریکٹ تصویروں کو دیکھ دیکھ کر بود ہوتے رہے۔ کسی نے چودہ اگست کی خون آلود لاش کو شیخ سے گر کر شہید ہوتے نہ دیکھا۔ کسی نے اس کی معصوم ہتھی کے پھول جیسے جسم کو سکھ کی تلوار سے دو ٹکڑے ہوتے نہ دیکھا۔ کسی نے اس کی پراڈیت آفری چیخ نہ سنی۔ کسی نے اس کی چیخ کے بعد کا سناٹا محسوس نہ کیا۔

• خواتین و حضرات! آئیے خواتین و حضرات! آئیے...

میں نے چودہ اگست کو آج بائیس سال کے بعد بھی دیکھا ہے اور کی بائیس برس پہلے بھی دیکھا تھا۔ گل ہم نے اسے بے کسی کے عالم میں بے کفن، لحد میں اتلا تھا اور آج ہم نے اس کی قبر پر دس دس منزلہ عشرت گاہیں تعمیر کی ہیں جن کی نیم تاریک رقص گاہوں میں یورپی موسیقی کی دھن پر عریاں بدن بھرکتے ہیں اور ایئر کنڈیشنڈ باروں میں بادۂ تاب کے جام چھلکتے ہیں۔ چودہ اگست شہید ہو گیا۔ پاکستان کے ہم پر، اسلام کے نام پر شہید ہو گیا اور ہم نے اس شہید کی مقدس قبر کو فروخت کر دیا۔ اپنی رقص گاہوں اور عشرت گاہوں کے عوام فروخت کر دیا۔ ہم نے اس کی یاد

میں قطب مینار سے بھی اونچے یادگار مینار بنائے اور فوڈس کی سڑکیوں میں انیم کی بینک میں گر کر دم توڑ دیا۔ ہم نے چودہ اگست کی بڑیوں کو اٹھا کر ایئر کنڈیشنڈ ثقافتی اداروں کے سپرد کر دیا۔ جہاں انہیں دیویدیشن پیش بنا کر دیواروں پر سجایا گیا۔

چودہ اگست نے کفر کی اندھیری رات میں برہمنی سمندر کے فونی طوفان سے نکال کر یو صغیر کے مسلمانوں کو ساحل پاکستان تک پہنچایا، لیکن ہم نے حامل مراد پر پہنچنے کے بعد اس لاسٹ آؤس کی روشنیاں گل کر دیں۔ ہم نے اپنے جہازوں میں آگ تو لگا دی، لیکن ہسپانیا فتح نہ کر سکے۔ ہم چودہ اگست کی لاش سے گور کر آ رہے ہیں اور اس کی بے گورہ کفن لاش کے پاس اس کی ہتھی کی لاش کے ٹکڑے بھی بکھرے پڑے ہیں اور آسمان پر ابھی تک گدگد تھیں منڈلا رہی ہیں۔

چودہ اگست کے مقدس شہید کے گل رنگ خون کی لکیر میرے قریب سے ہو کر گزرنے لگی ہے اور میں اس ثقافتی ادارے کے ہال میں بیٹھا اس خون کی لکیر کے ساتھ ساتھ ماضی کے دھندلے جنگوں میں نکل آیا ہوں۔ اس جنگ میں کوئی درخت نہیں، درختوں پر کوئی شاخ نہیں، شاخوں پر کوئی پھول نہیں۔ یہ کیسا جنگل ہے! خواتین و حضرات! یہ کیسا جنگل ہے۔

اس جنگ میں ایک دیباہ تھا۔ اس دیباہ کے کنارے اگست کی بارشوں میں مسلمان صحابہ کا ایک قافلہ آکر رکتا ہے۔ یہ لوگ دیباہ ظلم سے دیباہ امن کی جانب ہجرت کر رہے ہیں۔ تنگے مارے بے کس و بے لیں، دہشت زدہ، حیرت زدہ، پاکستان پالیسی میل کے نام سے پرہے۔ یہ چالیس میل چالیس ہزار میل ہو گئے ہیں۔ دیباہ کا نام بیاس ہے۔ برسات میں دیباہ میں سیلاب آیا ہوا ہے مشرقی پنجاب کے صحن شہروں، قصبوں، دیہاتوں، شہروں کے گلی کوچوں، گھوٹوں کے پرانے مکانوں کی پر اسرار نیم روشن ڈیوڑھیوں اور ڈیوڑھیوں کی صدیوں پرانی دہلیزوں سے نکالے ہوئے مسلمان بچوں، بوڑھوں، جوانوں اور عورتوں کا ایک ہجوم ہے۔

اچانک ایک طرف سے حملہ ہوتا ہے۔ گویاں، برچھے، گربانی، اسکیم، دیباہی، بکھراؤ، کھ ہندو، مسلمانوں کے ازل دشمن ہندو۔ ہر طرف شور مل جینج پکار رہے۔ بھاجن شہید ہو رہے ہیں، قتل ہو رہے ہیں، زخمی ہو کر تڑپ رہے ہیں، جو مقابلہ کرتا ہے وہ بھی شہید ہو جاتا ہے جو مقابلہ نہیں کرتا وہ بھی شہید ہو جاتا ہے۔ بچہ ماں کو پکار رہا ہے۔ ماں بیٹی کو آوازیں دے رہی ہے

غاونہ بیوی کو بچاتے ہوئے قتل ہو رہا ہے۔ بیوی غاونہ کی بہنوئی پر قربان ہو رہی ہے۔ ایک عورت اپنے بچے کو لے کر کھیتوں کی طرف بھاگتی ہے۔ دو سکھ تواریں لہراتے اس کے پیچھے پکٹتے ہیں۔ بچہ ماں کی گود سے چپین کر ٹکڑے ٹکڑے کر دیا جاتا ہے۔ ماں بے ہوش ہو جاتی ہے اور سکھ بے ہوش ماں کو اغوا کر کے لے جاتے ہیں۔ اب وہ مر جائے گی۔ رضیہ، ثریا اور تاج لہابی کی حیثیت سے مر جائے گی۔ اب وہ کسی معراج دین، کرم داد اور جمال خان کو جہنم نہیں دے گی۔ اب اس کا نام ہر گونہ گوارہ ہو گا اور اس کے بچوں کا نام دشمن سنگھ اور پریتیم کور۔۔۔۔۔

خواتین و حضرات۔۔۔ میں آپ سے یہ کہہ رہا تھا کہ قوم کی خدمت کو میں نے اپنی زندگی کا نصب العین بنالیا ہے اور میں اپنے فرائض کو کبھی فراموش نہیں کرتا۔ مثلاً میں آج رات کو ٹیلی ویژن پر اپنی آج کی صدارتی تقریب کا پروگرام بڑے شوق سے دیکھوں گا اور۔۔۔ اور رات کو ریڈیو نیوز ریل پر اپنی آواز بھی سنوں گا اور صبح اخباروں میں اپنی تصویریں بھی ضرور دیکھوں گا۔ خواتین و حضرات! چودہ اگست کا دن ہمیں یہی سبق سکھانا ہے کہ۔۔۔

کہ۔۔۔۔۔

صاحب مدرجنگ کر سیکرٹری کے کان میں کچھ کہتا ہے سیکرٹری دوسرے آدمی کے کان میں کچھ کہتا ہے اور وہ فوراً ٹھنڈے پانی کا نیا بلورس جگ لاکر میز پر رکھ دیتا ہے۔ چمکیلے جگ میں ریفریجریٹر کی بوتلوں سے نکالا ہوا شفاف پانی چمک رہا ہے۔ اور گلدان کے زرد کارٹیشن پھولوں پر اس کا عکس بھر بھر رہا ہے اور میں دیا نے بیاس کے گدے، بٹیا لے خونیں، سیلابی بٹھائیں مارتے پانیوں کی طرف ایک کنواری مسلمان مہاجر بڑی گونگے سر تلے پاؤں بھاگتے دیکھ رہا ہوں ایک ہندو تلوار لیے اس کے پیچھے دوڑتا چلا آ رہا ہے۔ اس کی آنکھوں میں خون ہے۔ دندنگ ہے۔ بربریت ہے۔ مسلمان لڑکی کے کپڑے تار تار ہیں۔ وہ اپنی عزت بچانے کے لیے دریا کی طرف بھاگی جا رہی ہے۔ پاکستان کی طرف بھاگی جا رہی ہے اور دیکھتے دیکھتے وہ دریا میں چھلانگ لگا دیتی ہے۔ ایک مجبوراً بھرتا ہے اور پھر دریا کی کف اڑا لہریں اس پاکیزہ مسلمان لڑکی کو ہمیشہ ہمیشہ کے لیے اپنی گزرتیوں میں گم کر لیتی ہیں۔ پہنچ گئی اپنے پاکستان۔۔۔ ہندو نفرت سے قہقہہ لگا کر جیتا ہے۔۔۔۔۔

دریا کی لحد نے سیپ بن کر مسلمان مہاجر لڑکی کے ناموس کا موتی کو اپنے سینے میں چھپالیا ہے۔ ۱۳۔ اگست، ۱۹۴۷ کو میں پنجاب میل میں سوار دلی سے امرتسر آ رہا ہوں، شہروں، قصبوں اور دیہاتوں پر وحشت و دیرانی کی مہریں لگی ہیں۔ گاڑی چھوٹے چھوٹے شہروں کے ریلوے پلوں اور پھاٹکوں سے گزرتی ہے تو ٹیڑھی میڑھی سڑکیں سنان نظر آتی ہیں۔ مکانوں کی منڈیروں پر گدھیں بیٹھی ہیں۔ گاڑی پنجاب میں داخل ہوتی ہے تو اس دیرانی اور وحشت زدگی کی فحاشیاں اور اذیتاں ہوتا ہے۔ کسی کھیت میں بلی نہیں چل رہا۔ کچے مکانوں پر موت کے بھیاٹک سائے منڈلا رہے ہیں۔ لدھیانہ، اچکواڑہ اور جالندھر کے پلیٹ فارموں پر سفید برقع پوش مسلمان عورتوں اور بچوں اور پریشان حال مردوں کے ہجوم سہمے ہوئے بیٹھے ہیں۔ ہندو اور سکھ تلکی تواریں لیے دندنا تے پھر رہے ہیں۔۔۔۔۔

گاڑی امرتسر شہر کے مضافات میں داخل ہو رہی ہے ماناوالہ سٹیشن گزر گیا ہے۔ اب دائیں جانب چالیس کھوکھور رہے ہیں۔ بڑی نہر فیم سرخ برساتی پانی سے لہالب بھری ہے۔ مگر وہاں مسلمان امرتسری نوجوان قورے کے دیگے چڑھاٹے، اموں کے ٹوکے نہر میں لٹکائے، نہر میں چھلانگیں لگا کر کہیں نظر نہیں آ رہے۔ اب بٹالہ اور پٹھانکوٹ کو جاتی ریلوے لائن میں لائن سے اکن ملی ہے۔ شریف پورے کے سرودوں، ناشپاتیوں، لوکانوں اور لوچوں کے باغ اُڑتے ہوئے ہیں۔ خریف پورے کے مکانوں کی چھتوں پر کھڑے مسلمان پاکستان زندہ باد کے فلک شکاف نعے لگا رہے ہیں۔ مسلم ہائی سکول اور بھائیوں والے باغ کاریلوے پھاٹک بھی دیران ہے۔ دور بھائیوں والی نہر کی سرخ اینٹوں والی پیا ایک پی کے پیے دکھائی دے کر پیچھے گزر جاتی ہے۔ گرمیوں کی مدھروں میں ہم سکول سے بھاگ کر اس نہر پر نہانے آیا کرتے تھے۔ ساری مدھر بٹیا پر سے مٹھیاں چم چم کر نہر میں چھلانگیں لگاتے گزر جاتی۔ پھر ہم سرودوں کے باغوں میں گھس جاتے اور کچے کچے سرود توڑ توڑ کر کھاتے۔۔۔۔۔

نہر گزر گئی۔ یہ اس نہر کی آخری جھلک تھی۔ اس کے بعد پھر اس نہر میں نہانا نصیب نہ ہوا کبھی کبھی دل چاہتا ہے کہ کسی تیز صوب والی مدھر کو بغل میں کتا بول کا چھوٹا سا بٹہ لٹکا کر لاہور سے نکلوں اور سیدھا اس نہر کی پٹیا پر جا کر مٹھیاں چم کر چھلانگ لگا دوں اور پھر کبھی سر باہر نہ نکالوں۔ مگر یہ جیت پسند خیال ہے۔ شکت خود دلی کے احساس کا پر تو ہے۔ یہیں تو زندگی کی دوڑ میں آگے ہی آگے

بڑھنا ہے۔ پرانی نہر ہم سے چٹ گئی ہے تو نئی نہری پہاڑوں سے کاٹ کر لائی ہیں۔ خسرو پور کے لیے نہیں۔ اپنی شیریں کے لیے مستقبل کی درختانی کے لیے۔۔۔۔۔

پنجاب میل کمپنی باغ والے چائیکے سے گزرتی ہے! ائیں جانب میدگانہ کا تالاب نظر آتا ہے۔ جامی کے درخت کال کالی موٹی جامنوں سے لدے ہوئے ہیں، لیکن لڑکیوں کی ٹولیاں غائب ہیں۔ پنجاب میل امرتسر کے شیشن میں داخل ہوتی ہے۔ تینولپٹ فاضلوں پر مسلمان عورتوں اور بچوں کے ہجوم ہیں۔ یہ لوگ دائم گھج اور تنگی گھر کی مسلمان آبادی ہے، جو کسی طرح یہاں تک پہنچ گئی ہے۔ اچانک سیلا مندر کی جانب سے ان مسلمانوں پر فائرنگ شروع ہو جاتی ہے۔ ایک عورت کی پیچ بند ہوتی ہے۔ عورتوں کی آہ دیکا اور بچوں کی چیخ پکار سے دہاں کمرمچ جاتا ہے۔ امرتسر شہر میں کرفیو لگنے میں صرف بیس منٹ باقی ہیں۔ شیشن پر مجھے میرا ایک دوست مل جاتا ہے۔ ہم فیصلہ کرتے ہیں کہ ساری رات پلیٹ فارم پر گزارنے سے بہتر ہے کہ ہم اپنے اپنے محلوں میں جانے کا خطرہ مول لیں۔ ہم شیشن سے باہر نکلتے ہیں۔ جاٹ اور گورکھا سپاہی دیوان سڑک پر گھوم رہے ہیں۔ ہم سڑکیوں والے پل سے اترتے ہیں تو ایک مکان کی کھڑکی کھلتی ہے اور ایک گرومن نمودار ہو کر کہتی ہے: آؤ منڈیو! جیت کر آؤ۔ کرفیو لگ چکا ہے۔۔۔۔۔

ہم تیز تیز قدم اٹھاتے، گول باغ کے پہلو سے ہو کر ایم اے او کالج کے عقب میں نکلتے ہیں تو کرفیو کا ہوش بچھنے لگتا ہے۔ میرے دوست کا مکان اسی محلے میں تھا۔ میں بھاگ کر اپنے دوست کے مکان میں گھس جاتا ہوں۔ امرتسر میں ہر طرف لگ لگی ہے۔ ہندو سکھوں کے محلوں سے مسلم محلوں پر مسلسل فائرنگ کی جا رہی ہے۔ امرتسر کے مسلمان سپاہیوں سے اسلحہ لے لیا گیا ہے۔ شہر میں بہت تھوڑی گورافوج ہے ہاتی ساری فوج ہندو فوج اور گورکھا سپاہیوں پر مشتمل ہے۔ صرف ریلوے شیشن اور شریف پور سے میں بلوچ رجمنٹ کے جہان امرتسر کے نہتے اور دشمنوں میں گھرے ہوئے مسلمانوں کی حفاظت کر رہے ہیں۔۔۔۔۔

میرے دوست کے مکان کے آگے ہندوؤں کی بادی شروع ہو جاتی ہے۔ دوسرے مسلسل فائرنگ ہو رہی ہے، ہم چل رہے ہیں۔ اس کشادہ مکان میں محلے کی ساری عورتیں اور بچے جمع ہیں۔ عورتوں کے رنگ زرد ہیں اور بچے دبشت سے گھلا گئے ہیں۔ کسی کو کچھ معلوم نہیں

کہ کچھ لیسے کیا ہوگا۔ ایک نوجوان لڑکی کی ٹانگ میں گولی لگی ہے۔ وہ نیم بے ہوشی کے عالم میں چارپائی پر پڑی کراہ رہی ہے۔ ساتھ والی گلی میں گوجر کے مکان میں ایک بوڑھے مسلمان کی لاش پڑی ہے مگر وہاں کون جاتے!

زندوں کا سنبھالنا مشکل ہو رہا ہے مردوں کو کون سنبھالے!

رات کے نو بجے اچانک بکلی فیل ہو جاتی ہے۔ ہر طرف گھٹپ اندھیرا چھا جاتا ہے۔ گلیوں اور محلوں کے دھماکے بڑھ جاتے ہیں۔ مکان میں عورتیں اور بچے اونچی آواز میں انہیں ڈانٹتے ہیں۔ ”چپ رہو۔ جب تک ہم زندہ ہیں۔ تمہاری ہوا بھی کوئی کافر نہیں دیکھ سکتا۔۔۔“

اگلے روز صبح نو بجے کرفیو کھلتا ہے۔ میں اپنے محلے کی طرف بھاگتا ہوں۔ امرتسر کی فضا یکسر بدل گئی ہے۔ مسلم آبادی اپنے اپنے گلی کوچوں میں قید ہو کر رہ گئی ہے اور شہر پر ہندو سکھ فوج نے قبضہ کر لیا ہے۔ ہال بازار ویران ہے مسلمانوں کی دکانیں ٹوٹی پڑی ہیں۔ میں گلیوں گلیوں ہوتا بکلی داسے چوک میں جا نکلتا ہوں۔ دوسرے ایک گورکھا فوجی مجھے دیکھ کر آگے بڑھتا ہے۔ میں ہلک کر دوسری گلی میں گھس جاتا ہوں۔ اگرچہ کرفیو کھلا ہے لیکن جو بھی مسلمان اپنے محلے سے باہر نکلتا ہے۔ اسے گولی مار دی جاتی ہے۔ میں چھپتا چھپاتا اپنی گلی میں جا نکلتا ہوں۔ پتا لگی، گلی خگرچن اور گلی غزنی کے سارے مسلمان اٹھ کر ہماری گلی میں آگئے ہیں۔ گلی رنگریزوں کی مسجد میں مسلمان عورتوں کو بے دریغ شہید کر دیا گیا اور بچوں کو چھتوں پر سے بکلی کے تاروں پر اچھال دیا گیا۔ یہ لوگ بڑی مشکل سے جانیں بچا کر پہنچے ہیں۔

”بازار بگرداناں میں مسلمانوں کو قتل کر دیا گیا اور سکھوں نے ہندو فوجیوں کی زیر نگرانی ایک ایک کر کے مسلمانوں کو قتل کرنا شروع کر دیا۔ جوڑ کا سب سے اخیر میں کھڑا تھا۔ اس نے مسلمانوں کو گردنیں کٹتے دیکھیں تو چپکے سے کھسک کر جناب ماسٹر اٹھ بخش مرحوم کے مکان والے کنوئیں میں کسی مذہبی طرح لٹھارٹا۔ اگلے روز بلوچ رجمنٹ کا ایک ٹرک مسلمانوں کو دہاں سے نکالنے آیا تو اس نے کنوئیں میں چلنا شروع کر دیا۔ اس لیے نیم جاں حالت میں ٹرک میں ڈال کر شریف پور کیمپ میں پہنچا دیا گیا۔“

مگر داسے میری زندگی سے مایوس ہو چکے تھے۔ مجھے دیکھا تو جان میں جان آئی، لیکن سوال

یہ تھا کہ گلی میں سے نکل کر شریف پورہ کیمپ کیسے پہنچا جانے؟ چودہ اگست کی رات آگئی۔ اسی رات امرتسر میں جتنی گولی چلی، کہتے ہیں سارے نسادت میں اتنی گولی نہیں چلی تھی۔ ایک ایک سیکنڈ کے وقفے کے بعد قمری ٹاٹ قمری کا قاتر ہوتا تھا۔ دستی بموں کے دھماکوں کی آوازیں آرہی تھیں۔ مسلمانوں کی لاشیں ہندو سکھوں کے گلی کوچوں میں بے گور و کفن بکھری پڑی تھیں۔ قضا میں بارود، چلی ہوئی لاشوں مٹی اور تار میں کے تیل کی تیز بو جی ہوئی تھی۔ بوڑھے رمزی سنار کا جوان بیٹا سکھوں نے شہید کر دیا تھا۔ وہ چوک پر اگلاس کی مسجد میں چمنے کی نماز پڑھنے گیا اور وہیں مسجد کے صحن میں شہید ہو گیا۔ بڈھا باپ اپنے بیٹے کی لاش بھی نہ دیکھ سکا۔ وہ گلی والے نلکے کے پاس چارپائی پر بیٹھا اپنے جوان بیٹے کے غم کو سینے سے لگائے رہتا رہا۔ چودہ اگست کی رات کو گولیوں، بموں اور عورتوں بچوں کی چیخ پکار میں وہ بار بار روتے ہوئے یہی کہتا: جو مر گئے وہ اچھے رہے میرے مولا!

رات کے تین بجے فائرنگ کی آوازیں تیز ہو گئیں اور ہندو سکھوں کے نفرت زیادہ قریب سنائی دینے لگے۔ پو پھٹے گولیاں ہمارے مکانوں کی چیتوں اور مٹیوں سے ٹکرانے لگیں۔ لوگ پریشان ہو گئے۔ دن چڑھتے ہی گورکھا اور سکھ فوجیوں نے ہماری گلی کے آہنی دروازے پر بم مارا۔ ایک زور دار دھماکا ہوا اور دروازہ ایک طرف کو ہلک گیا۔ اس کے ساتھ ہی گلی میں بھگدڑ مچ گئی۔ عورتیں ہونٹے اور ہڈی سے بھی گلی کے دوسرے تنگ دروازے میں سے نکل کر شریف پورے کی طرف بھاگنے لگیں۔ اب گلی کے سرے پر مکانوں آگ لگا دی گئی اور سکھوں کے نفرت بلند ہوئے۔ سکھ اور ہندو غنڈے فوج کی مدد سے گلی میں داخل ہو گئے تھے اور انہوں نے مکمل عام اور لوٹ مار شروع کر دی تھی۔ میں نے گلی میں بھاگتے ہوئے پلٹ کر دیکھا۔ دو سکھ تھاروں سے بوڑھے رمزی پر وار کر رہے تھے اور وہ دونوں کمزور ہاتھ اٹھا اٹھا کر ان کے دھڑوں کو دھکنے کی کوشش کر رہا تھا۔ مجھ سے یہ منظر نہ دیکھا گیا۔ میری والدہ، بہنیں، بھائی، سب کی والدائیں، بہنیں اور بھائی بے بسی کے عالم میں شریف پورے کی طرف بھاگے جا رہے تھے۔ راستے میں جی ٹی روڈ پر تھی تھی۔ یہاں سے ان مسلمانوں پر ایک سکھ فوجی ٹرک سے فائرنگ ہوئی۔ موسیٰ، شال، مرچٹ اپنے بچے کو گود میں اٹھا لے بھاگا جا رہا تھا کہ گولیوں کی بو چاڑا اس پر پڑی۔ وہ اپنے معصوم بچے سمیت شہید ہو کر سڑک پر گرا اور پھر نہ اٹھ سکا۔

شریف پورے کی جانب سے بلوچ رجمنٹ کے جوانوں نے جوابی فائرنگ شروع کر دی۔ اگر بلوچ جوان سکھ فوجیوں کے ٹرک پر فائرنگ نہ کھولتے تو شاید ہی ہماری گلی کا کوئی مسلمان زندہ بچتا۔ شریف پورے نے کیمپ کی شکل اختیار کر لی۔ چونکہ یہ مسلم آبادی تھی۔ اس لیے اسے کیمپ میں تبدیل کر دیا گیا اور باہر جی ٹی روڈ کی طرف بلوچ رجمنٹ نے پوزیشن سنبھال لی۔ اس رجمنٹ کے جوانوں کو اب امرتسر شہر میں جانے کی اجازت نہ تھی۔ شہر پر ہندو سکھوں کا قبضہ ہو گیا تھا۔ امرتسر شہر کے گلی کوچوں، حویلیوں اور مکانوں میں سوائے مسلمانوں کی لاشوں اور بکھرے ہوئے سامان کے اور کچھ نہ تھا۔ مسلمانوں کے مکان جل رہے تھے۔ امرتسر کے بہادر جیالوں کی لاشوں کو خاک و خون میں تڑپانے کے بعد یہ شہر آگ کے شعلوں کی لپیٹ میں تھا۔۔۔۔

مسلمان امرتسر جل رہا تھا۔۔۔۔

مسجدوں، مکانوں کے دیوان خانوں، چیتوں، مٹیوں، سیرٹھیوں اور آگنوں میں مسلمان عورتوں، بچوں، بوڑھوں اور جوانوں کی خاک و خون میں آٹی ہوئی لاشوں کے ساتھ جل رہا تھا۔ ان میں عامد بیٹ بھی تھا۔ اونچا لمبا، گورا چٹا کشمیری نوجوان اور باکی کا بہترین کھلاڑی۔ اپنے جانثار چھوٹے بھائیوں اور بہنوں کا لالہ لال بھائی اور میرا دوست۔ بہترین دوست۔ ان میں مولوی طاہر شاہ بھی تھا۔ پابند صوم و صلوة، نیکدل، اسلام کے نام پر ہی شہید ہو گیا۔ ان میں اس ایف اے پاس سڑک کی لاش بھی تھی، جس کو سکھ اور ہندو غنڈے اٹھا کر رام تلانی کے مندر میں لے گئے تھے اور جہاں اس نے مندر کی سب سے اونچی چھت پر سے چھلانگ لگا کر اپنی جان اور ابرو پاکستان کی عزت و آبرو پر قربان کر دی تھی۔۔۔۔

ان میں کئی عامد بیٹ، کئی طاہر شاہ، کئی بوڑھے رمزی اور کئی عفت مآب بہنیں، بیٹیاں اور مائیں تھیں، ان کی خون آلود نعشیں تھیں۔ ان کے معصوم بچوں، بھائیوں، بہنوں اور بیٹوں کی نعشیں تھیں۔ اپنے دامن میں ہمارے یہ گویا ہائے گراں مایہ لیے امرتسر جل رہا تھا۔ مسلمان امرتسر مسلمان بلند ہوا اور مسلمان لدھیانہ، فیروز پور، ہوشیار پور اور روہتک و حصار، جہوں و کشمیر جل رہا تھا اور ہجرت کرنے والے بے یار و مددگار مہاجروں کے قافلے لٹے، کھٹے ہکا بڑیوں میں، ٹرکوں میں، ٹرینوں میں، پاپیادہ پاکستان کی طرف، دیارِ اسلام کی طرف، دیارِ امن و انصاف کی طرف بڑھتے

چلے آئے تھے۔۔۔

شریف پور سے ریونیو جی ٹرنیں پاکستان کی طرف چلتے گئیں۔ چھتوں تک بھری ہوئی ٹرنیں،
نٹے پٹے زخمی، غم زدہ، پریشان حال، خستہ جاں مسلمان مہاجرین سے لدی ہوئی ٹرنیں جنہوں نے اپنی مائیں
بہنیں، بچے، بیٹے، باپ جان اور مال۔ سبھی کچھ پاکستان کے نام پر، اسلام کے نام پر قربان کر
دیا تھا۔ جن کے گریبان تار تار تھے۔ مگر خون خون تھے۔ مگر دل پاکستان کی محبت سے بھر پور تھے۔
چھ ہرٹہ سٹیشن پر سکڑا میوڑے گاڑی آہستہ کر دی۔ گردوارے کی طرف سے اگلی سکھوں نے
گاڑی پر حملہ کر دیا۔ بلوچ رجمنٹ کے جوانوں نے مشین گنوں کا فائر کھول دیا۔ طاہر سبے حملہ آور سکھوں
کو بھاگنے کے سوا اور کوئی چارہ نہ تھا۔ گاڑی ایک بار پھر پاکستان کی طرف رینگنے لگی۔ قاصد سٹیشن گزر گیا
تو میں نے کھرکی کا ذرا سا پٹ اوپر اٹھا کر باہر دیکھا۔ جھاڑیوں میں اور مرد مرعوبان مسلمان پٹھانوں
کی لاشیں بکھری پڑی تھیں جو ایک روز پہلے شریف پور سے اپنے گدھے سے کربیل ہی چل پڑے
تھے اور لوگوں کے منع کرنے کے باوجود نہیں رُکے تھے۔ ان بہادر اور غیور پٹھانوں نے پاکستان
سے بیس میل دور شہادت پائی۔۔۔

والہ سٹیشن پر دور رہی سے پاکستان کا سبز ہلالی پرچم دھوپ میں لہراتا نظر آیا تو ٹرن میں زندہ کابھ
دور گئی۔ قضاغزو، کبیر اللہ اکبر اور پاکستان زندہ باد کے نعروں سے گونج اٹھی۔۔۔۔
مہارے ٹبے میں ایک زخمی بوڑھے کسان نے منہ اٹھا کر پوچھا کیا پاکستان آگیا؟ کسی نے کہا۔
اں بابا جی، پاکستان آگیا۔ وہ دیکھو پاکستان کا جھنڈا۔

بوڑھے کسان نے گردن ذرا سی اٹھا کر کھرکی میں سے باہر سبز ہلالی پرچم دیکھا۔ اس کے خستہ حال
نیم مڑے چہرے پر ایک چمک سی آئی، اس نے کمر طبعیت پرٹھا اور اس کی گردن ڈھلک گئی۔ وہ شبید ہو گیا۔ پاکستان زندہ باد
بوڑھا کسان زندہ باد، حامد بیٹ زندہ باد، بوڑھا مری زندہ باد، طاہر شاہ زندہ باد مسلمانوں کا امرتسر زندہ باد چوک
فریہ زندہ باد۔ چوک پر گداس کی مسجد زندہ باد دریائے بیاس کی نروں میں سونی ہوئی بہن زندہ باد رام تللی کے
مندر سے چھلانگ لگا کر شبید ہونے والی بیٹی زندہ باد! چودہ اگست زندہ باد!

خواتین و حضرات! خواتین و حضرات!۔۔۔

امر تسر کا جلیا نوالہ باغ

سماوار میں سبز چائے خوش کھانے لگی۔

کشمیری چائے کی لطیف بجاپ نے کارنس پر رکھے گلاب کے پھولوں کی خوشبو
سے مل کر کمرے کو مہکا دیا۔ ریحانہ ٹیلی پتی دار جا پانی پیالیوں میں چائے ڈالنے لگی اور میں
نے پائپ سلگایا۔ اب کمرے کی دفنا میں ایک تیسری خوشبو نے جنم لیا۔ کشمیری چائے، گلاب
کے پھول اور ایرن مور تمباکو کے فلیور کا ملاپ۔ یہ تھی تیسری خوشبو۔ امر تسر کی خوشبو۔ کہنی باغ
کے بارش میں بھیگتے اور گرم دوپروں میں بڑی نہر کے کنارے اُگے ہوئے مرطوب گھاس
اور رات کے پکھلے پیر امر تسر کی کسی گل سے ڈولی میں سوار ہو کر رفعت ہوتی دلہن کی خوشبو!
امر تسر اس وقت میری سبز چائے کی پیالی میں تھا۔ گلاب کی پتکھڑیوں میں تھا اور میرے
پائپ کے فلیور میں تھا اور میرے سامنے بیٹھے ہوئے والد صاحب کی سمٹی ہوئی آنکھوں
میں تھا۔

ابا جی چپ چاپ چائے پیتے رہے۔ آج میں اُن سے امر تسر کے جلیا نوالہ باغ
کے بارے میں کچھ باتیں کرنے والا تھا۔ جب کبھی وہ مجھے میز پر بیٹھے کچھ نہ کچھ کہتا دیکھتے
تو کہا کرتے۔ "حمید یار کبھی ہماری ڈائری بھی نوٹ کر لو۔ عمر کا کیا بھروسہ!"

ڈائری سے اُن کی مراد جلیا نوالہ باغ کے واقعات تھے۔ جس وقت جلیا نوالہ باغ میں
جنرل ڈائری نے گوتی چلانے کا آرڈر دیا، ابا جی دوسرے لوگوں کے ساتھ جلسہ گاہ میں موجود
تھے۔ میں ہنس کر ٹال جاتا۔ لیکن اُس روز میں نے والد صاحب کی جوانی کی یادوں کے سمندر
میں غوطہ کھانے کا فیصلہ کر لیا۔ یہ بھر بند کا تاریک سمندر تھا۔ ہیبت ناک کا سہ پانی کا سمندر

تھا جس کی مہیب شوریدہ سر موجوں کو چیرتے کبھی امرتسری صوبہ وطن قیدیوں سے بھرے ہوئے جہاز گزرے تھے۔ ان جلاوطن عمر قیدیوں میں زیادہ تعداد مسلمانوں کی تھی۔ اس لئے کہ امرتسر کا مسلمان سیاسی اعتبار سے زیادہ بیدار تھا اور اس میں ہندو اور سکھوں کے مقابلے میں آزادی کی زیادہ ترپ اور زیادہ دلولہ تھا۔ بقول ابا جی، جلیانوالہ باغ کی تاریخ امرتسری مسلمانوں کے خون سے لالہ زار ہے۔

جلیانوالہ باغ پر خونیں حادثے کو گزرے سترہ اٹھارہ برس گزر چکے تھے میں امرتسر کے گورنمنٹ ہائی سکول میں نویں جماعت میں پڑھا کرتا تھا۔ اور جلیانوالہ باغ میں دوستوں کے ساتھ دن میں ایک آدھ بارنگی ڈنڈا کھینچنے موزور جایا کرتا۔ یہ باغ ہمارے محلے کے پاس ہی تھا۔ کہنے کو تو یہ باغ تھا لیکن اس میں باغ کہیں نہیں تھا۔ بس ایک گول میدان سا تھا جس کے چاروں طرف اونچے اونچے مکانوں کے بچھوڑے گتے تھے۔ میدان میں ایک پرانی سادھ تھی۔ ایک چھتری نما زنگ خوردہ چھت والا اندھا کنواں تھا۔ (جب گولی ملی تو یہ کنواں لاشوں سے بھر گیا تھا) باقی میدان میں ادھر ادھر کچھ درخت تھے کبھی کبھی گھاس اگی تھی ایک بات بڑھک ہوئی بٹھل تھی جس میں دو موہن ٹھہر کا پانی بہہ کر دربار صاحب کے تالاب کو جاتا تھا۔ ایک بار ہماری گلی باغ کے اندر سے کنوئیں میں گر گئی۔ ہم اسے نکالنے کے جتن کر رہے تھے کہ ایک فقیر نے ہماری طرف ہاتھ بڑھا کر کہا۔ "بچو! اس کنوئیں میں سینکڑوں ماؤں کے لالہ دفن ہو گئے۔ تم کیا ڈھونڈ رہے ہو؟"

ہمارا گھر کوتوالی کے عقب میں تھا۔ کوتوالی سے ہو کر جب آپ کیسری باغ کے سامنے ملکہ کے بٹ والے چوک سے گوریں تو سامنے دتے پٹھان کی بیٹھک کے پہلو والے بازار میں اونچے چوڑے مکانوں میں بھینچا ہوا جلیانوالہ باغ کا آہنی سلاح دار دروازہ آجائے گا۔ یہ دروازہ ہمیشہ کھلا رہتا۔ آگے ایک چار فٹ چوڑی کچی راہداری ہے جو بتدریج ذرا بلند ہو ہو کر دھلان کی شکل میں باغ میں اتر گئی ہے اسی اونچان پر ۱۹۱۹ء میں جنرل ڈائمر کے گورکھا سپاہیوں نے مورچے سنبھالے تھے۔ چاروں طرف مکانوں کے بچھوڑے ہیں جن کی کھڑکیاں میں اکثر کھلی دیکھتا۔ ہندو سکھ اپنے مکانوں پر مسلمانوں کی طرح چھتیں

نہیں ڈالا کرتے۔ ان کھلی بے پردہ کھڑکیوں کو دیکھ کر مجھے ہمیشہ ان آنکھوں کا خیال آتا کہ ان کی ٹپکیں غائب ہوں۔ کبھی کبھی مکانوں کی دیواروں پر کٹڑی کے جالی دار چو گھٹے لگے ہیں جن کے نیچے لکھا ہے "گولی کا نشان یہ جالیوں کے پیچھے ابھی تک اینٹوں میں سوراخ دیے ہی تھے۔ یہ ان بے رحم گولیوں کے نشان تھے جو انگریز بریگیڈ جنرل آر۔ اے۔ ایچ ڈائمر کے حکم سے اس تاریخی باغ میں ۱۳ اپریل ۱۹۱۹ء کی ایک سہ پہر کو نہتے امرتسریوں پر برساتی گئیں۔ میرے والد صاحب کی عمر اس وقت ۳۰ برس کے قریب تھی اور وہ اس جلسہ گاہ میں موجود تھے۔

سبز چائے کی دوسری پیالی ابا جی کے ہاتھ میں تھی اور اس کی خوشبودار بھاپ ان کے بوڑھے چہرے کی جھریوں کو دھندلاتی ہوئی اوپر اٹھ رہی تھی۔ وہ آنکھیں نیم داکئے گہری سوچ میں تھے اور انچاس سال پہلے کی یادوں کے گہرے سمندروں میں غوطہ زن تھے۔ اس سے پہلے کہ میں ان تاریخی یادوں کی غواچی کروں اور کچھ انمول اور گہما گہما موتی چمن کرلاؤں میں جلیانوالہ باغ کے پس منظر پر تھوڑی سی روشنی ڈالنا ضروری سمجھتا ہوں۔

پہلی جنگ عظیم میں ہندوستانیوں نے انگریزوں کا بھرپور ساتھ دیا تھا اور انگریزی حکومت نے ہندوستانی لیڈروں سے وعدہ کیا تھا کہ وہ ہندوستان کو ہوم رول دے دیں گے۔ لیکن فتح کے بعد نہ صرف یہ کہ انگریز اپنے وعدے سے پھر گئے بلکہ رولٹ ایکٹ کے ذریعے ہندوستان کو مزید غلامی کی زنجیروں میں جکڑ دیا گیا۔ انگریز ہندوستان پر مشتمل کی جنگ آزادی کی ناکامی کے بعد سے راج کرتے چلے آئے تھے۔ وہ اس سونے کی چڑیا کو ہاتھ سے نہیں چھوڑنا چاہتے تھے۔ ہندوستانی بانی کورٹ کے جج سر سرنی رولٹ کی سرکردگی میں ایک کمیٹی جیٹھی جس نے رولٹ ایکٹ کے نفاذ کے ذریعے ہندوستانیوں کی رہی سہی آزادی بھی چھین لی۔ اس ایکٹ کی رو سے حکومت کو اندھا دھند گرفتاریوں کا اختیار مل گیا اور مقدمہ چلانے بغیر سزاؤں کے خلاف اپیل کا بھی حوالہ کو حق نہ تھا۔ ہند کے مسلمان پہلے ہی انگریزوں سے بدعین تھے۔ ۱۸۵۷ء میں سب سے زیادہ زور مسلمانوں پر ہی پڑی تھی۔ لیکن مسلمانوں کو ابھی اپنی منزل کا تعین کرنا تھا۔ فی الحال وہ اپنے مشترکہ دشمن

کو کچلنے کے لئے کانگریس کے ساتھ تھے۔ یہ ہندو مسلمان اتحاد نہیں تھا۔ بلکہ انگریزوں کے خلاف ایک جنگ تھی۔ آزادی کی لگن اور دلولہ تھا۔ جس نے ان دو مختلف تہذیبوں کو ایک پل کے لئے ایک ہی پلیٹ فارم پر لا کھڑا کیا تھا۔

کالے قانون نے جلتی پر تیل کا کام کیا۔ گاندھی نے سیتہ گرو کی تحریک شروع کر دی یکم مارچ ۱۹۰۹ کو بمبئی میں سول نافرمانی کی قرارداد منظور ہوئی۔ مارچ کو دلی کے ایک جلسے میں کالے قانون کی پرزور مذمت کی گئی۔ ۹ اپریل کو کانگریسی اور مسلمان لیڈروں کے ایما پر ہندوستان کے بڑے بڑے شہروں میں کامیاب ہڑتال کی گئی۔ دلی ریوے سٹیشن پر جب ہڑتالیوں نے ایک ریڑی والے کو سو ڈالیمین پیچنے سے منع کیا تو ہنگامہ ہو گیا۔ پولیس نے گولی چلا دی۔ دو ہڑتالی مارے گئے۔ لاہور، امرتسر، بمبئی اور دلی میں احتجاجی جلسے نکالے گئے۔ لوگوں نے اکا دکا انگریز شہریوں کو زود کو بک کرنا شروع کر دیا۔ لاہور میں ہڑتالیوں نے کالی جھنڈیوں کا جلوس نکالا۔ سات آٹھ اور نواپریل کے دن امن کے گزر گئے۔

پہلا دمحا کہ ۱۲ اپریل ۱۹۱۹ کو ہوا۔

پنجاب کے اسی وقت کے گورنر سر مائیکل اوڈنر کے حکم سے گاندھی کو بمبئی سے امرتسر آتے ہوئے پہلو ال سٹیشن پر روک کر واپس روانہ کر دیا گیا۔ اس خبر کے پھیلنے ہی سارے ہندوستان میں بڑے شروع ہو گئے۔ اس اثنا میں جلیا نوالہ باغ کا بدنام قاتل جنرل ڈائر رتی سے جالندھر اپنے ہیڈ کوارٹر جا چکا تھا۔ گورنر پنجاب کے حکم پر اس نے امرتسر ریوے سٹیشن کی حفاظت کے لئے فوج کا ایک دستہ روانہ کر دیا۔ دس اپریل کی دوپہر کو وائس کے ذریعے جنرل ڈائر کو ایک خفیہ پیغام ملا جس میں کہا گیا کہ جتنی جلدی ہو سکے مزید فوج، ہلکی توپیں اور ایک ہوائی جہاز امرتسر بھیجا جائے۔

امرتسر میں ۱۸۵۷ کے بعد آزادی کا دوسرا حوالہ مکھی پھٹ پڑا تھا۔ ہڑتالیں، زوروں پر پھٹیں۔ امرتسر کے گلی کوچوں اور مال دروازے کی دیواروں پر جابجا پوسٹر لگے تھے جن پر لکھا تھا۔

”امرتسر کے شہر نو! مارو یا مر جاؤ“

دام نومی کے تہوار پر شہر میں ایک زبردست جلوس نکلا جس میں ”انگریزی راج مردہ باد“ کے نعرے لگائے گئے۔ امرتسر میں آزادی کے شعلے بھڑک اٹھے تھے۔ امرتسر کے بچوں ریوے سٹیشن اور سول لائنز کی انگریز آبادی کی حفاظت کے لیے کمپنی باغ میں سومرسٹ لائیٹ انفنٹری نمبر ۱۲ ایونیوشن کالم اور رائل آرٹیلری کے فوجی تعینات تھے۔

۱۱ اپریل ۱۹۱۹ کو صبح آٹھ بجے دوسرے دو کانگریسی لیڈروں ڈاکٹر سیف الدین کھلو اور ڈاکٹر سیتہ پال کو امرتسر کے ڈپٹی کمشنر مسٹر مائیلز مارنگ کی طرف سے پیغام ملا۔ میرے بنگلے پر دس بجے تشریف لائیں۔ شہر کے حالات کے بارے میں آپ سے کچھ مشورہ کرنا ہے اسی وقت پولیس سے بھر ہوئی دو لاریاں اسلحہ ایک موٹر کار بنگلے کے عقبی حصے میں تیار کھڑی تھیں۔ جب یہ دونوں لیڈر ڈپٹی کمشنر کے بنگلے پر پہنچے تو انہیں اسی وقت گرفتار کر لیا گیا اور کار میں بٹلا کر دھرم سالہ روانہ کر دیا۔

کچھ اور سیتہ پال کی گرفتاری نے شہر میں آگ لگا دی۔ لوگوں نے دھڑا دھڑا دکانیں بند کرنی شروع کر دیں۔ اور ہجوم در ہجوم مال بازار میں سے گزر کر ڈپٹی کمشنر کی کوشی کی طرف بڑھنا شروع کر دیا۔ گورا فوج نے سٹی جمنٹریٹ مسٹر آر۔ بی۔ بیکٹ کی معیت میں فوراً انجمن پارک والے ریوے پل کی دوسری طرف پوزیشن سنبھال لیں۔ آزادی کے متوالے امرتسر عوام کا یہ بچھا ہوا ہجوم جب نعرے لگتا پل پر پہنچا تو گورا فوج نے رائفیں تان لیں جلوس ایک پل کے لئے ٹک گیا۔ تیس ہزار کا ہجوم ٹھاٹھیں مار رہا تھا۔ بیکٹ گھوڑے پر سوار این۔ سی۔ او کو حکم دے رہا تھا کہ جلوس کسی حالت میں بھی پل عبور نہ کرنے پائے دھڑا جلوس نے آگے بڑھ کر گورا فوج کو پیچھے دھکیلنا شروع کر دیا۔ ایک آدمی نے مسٹر بیکٹ کے گھوڑے کے منہ پر سوئی مار دی۔ وہ الف ہو گیا۔ مشتعل ہجوم نے پتھر اڑا شروع کر دیا۔ اسی وقت ایک گھڑ سوار فوجی نے پستول سے دو فائر کر دیئے جس سے دو آدمی زخمی ہو کر گرے۔ ان کے گرتے ہی ہجوم ذرا پیچھے ہٹا۔ ان زخمیوں کو اٹھا کر چوک فرید میں ڈاکٹر بشیر کی ڈسپنسری پہنچا دیا گیا۔ اب ہجوم بے قابو ہو گیا۔ امرتسر کے ڈی۔ ایس۔ پی مسٹر پلومر نے وہاں آتے ہی فائرنگ کا حکم دے دیا۔ گورا فوج نے

نور گول چلا دی۔ ہر طرف بھگدڑ مچ گئی۔
پھر کیا ہوا؟

میں نے والد صاحب سے پوچھا۔ انہوں نے سگریٹ بجایا اور انکھیں ذرا سی میچ کر
بولے۔

”بس پھر کیا تھا۔ پل سے لوگ زخمی ہو کر اور لاشیں اٹھا کر شہر میں آئے تو ایک طوفان
اُگیا۔ امرتسر کے گلی کوچے انتقام کے نعروں سے گونج اٹھے۔ میں ان دنوں پورا جوان تھا اور
پہلوانی کیا کرتا تھا۔ تکیہ شیخ چلی میں غلام رسول حلوائی کے ساتھ زور کیا کرتا۔ بدن میں شباب
کا خون گردش کر رہا تھا۔ میں بھی جلوس کے ساتھ وہاں سے لوٹ کر اپنے محلے میں آگیا۔ جس
وقت میں ہال بازار میں سکندر خاں والی اونچی مسجد کے پاس پہنچا تو میرے دیکھتے دیکھتے سامنے
والے نیشنل بینک کو آگ لگا کر لوٹ لیا گیا۔ اس بینک کا ایک انگریز مینجر سٹوارٹ صاحب
تھا اس کو قتل کر کے آگ میں پھینک دیا گیا۔ بجلی والے چوک میں بینک کی دوٹی ہوئی بڑی
بڑی پٹیاں، پائیوں اور سریوں سے توڑی گئیں اور ان میں سے جو ریشمی سوتی کپڑا اور
سلان نکلا اُسے کچھ لوگ اٹھا کر لے گئے اور باقی وہیں چوک میں تندر آتش کر دیا گیا۔ اسی
طرح ہمارے اپنے بازار میں محمد جان کی مسجد کے سامنے والے الائنس بینک اور سپلو
والے چارٹرڈ بینک کو بھی ٹوٹ کر آگ لگا دی گئی۔ بینک کے ہندو خزانچی نے انگریز مینجر
کو بچانے کی کوشش کی مگر جیسے دھو بی نے انگریز کو بازوؤں پر اٹھا کر اعلیٰ کا نعرہ لگایا اور آگ
میں پھینک دیا۔ اس وقت امرتسر کے اُن گھروں میں عورتیں بچ کر رہی تھیں جہاں گورافوج
کی گولیوں سے چھلنی بھائیوں اور بیٹوں کی لاشیں پڑی تھیں۔“

والد صاحب نے سگریٹ کا کش لگایا اور ہانگ سیدھی کر کے اُسے دبانے لگے۔
مجھے محمد جان کی مسجد اور یہ سارے بینک یاد آ گئے۔ یہ بعد میں پھر سے تعمیر ہو گئے تھے
اور میں اپنے دوستوں کے ساتھ اُن کے برادروں میں کھیل کرتا تھا۔ پھر یہ بینک ہندو
سابوکاروں نے خرید لئے اور امرتسر کے مسلمانوں کا خون چوس چوس کر اک منزلہ سے دو منزلہ
اور سہ منزلہ ہو گئے۔ سٹیشن میں ان بنکوں کو خود ہم نے آگ لگا۔ نیچے اُس ہندو

بینک کی سہ منزلہ عمارت سے اٹھتے ہوئے شعلے آج بھی یاد ہیں جس کی چھت پر ایک آدمی
شعلوں میں گھرا ہوا اس چوبے کی طرح دودھ اور دھواں بھاگ رہا تھا۔ یہ وہ چوبے تھے جنہوں نے
اور جن کے آباؤ اجداد نے امرتسر کے مسلمانوں کی سماجی اور معاشی عمارت کو اندر ہی اندر سے
کھوکھلا کر دیا تھا۔ اب میری امرتسر کی یادوں کا در کھل رہا تھا۔ میں نے ہاتھ سٹکا کر انکھیں
بند کر لیں۔ یادوں کے در بند کر دیئے۔ اور سماوار میں سے گرم گرم چائے پیالی میں ڈالتے
سوئے پوچھا۔

”ابا جی! کوڑیاں والے کھوہ کا واقعہ کیا تھا؟“

والد صاحب نے اپنے خستہ سر کو کھجایا اور اپنی پیالی پر جی ہوئی بالائی کو پھونک
مار کر بولے۔

”ایک انگریز لیڈی (مس فارسلا شیر وڈ) جو کہ امرتسر کے مشن سکولوں کی بڑی ستانی
تھی سائیکل پر سوار گھر کو جا رہی تھی کہ راستے میں بوائیوں نے اُس پر حملہ کر دیا۔ وہ بھاگ
اٹھی۔ لیکن کوڑیاں والے کھوہ والی گلی میں پہنچ کر سائیکل سے گر پڑی۔ لوگوں نے اُسے
وہیں ختم کر دیا۔ بعد میں جب مارشل لا لگا تو جنرل ڈائر خود وہاں پہنچا اُس نے گل کوڑیاں
والی کھوٹی کے لوگوں کو حکم دیا کہ وہ گھر سے نکلیں تو گلی کے فرش پر گھٹنے ٹیک کر بازار میں
آئیں اور ویسے ہی گھروں کو واپس جائیں۔ مگر اُس وقت ابھی مارشل لا نہیں
لگا تھا۔ اُس وقت امرتسر میں کراچی تھا۔ اور یہ امرتسر تناؤ سے فی صد مسلمان تھے۔
یہاں تک کہ جلیا نواز باغ بھی مسلمانوں کے محلے میں تھا۔ ہندو سکھ محلوں میں کسی جگہ بھی
بنکوں کو آگ نہیں لگی تھی۔ کانگریسی لیڈر محسن نعرے لگاتے۔ کانگریسی ہندو اُن نعروں کا جواب
دیتے اور بس۔۔۔ دشمن سے لڑنا اور مقابلہ کرنا۔ یہ کام امرتسر کے مسلمانوں کا تھا۔
اور ۱۹۴۷ء کی جنگ آزادی اس بات کی گواہ ہے۔ میں نے ماچس جلا کر والد صاحب
کا سگریٹ سلگایا۔

”لیکن ابا جی! آپ تو کہا کرتے ہیں کہ ٹوٹ کا مال ہمارے محلے میں بھی آیا تھا۔
عد ضرور آیا تھا۔ ہر جگہ ہر قسم کے لوگ ہوتے ہیں۔ گاما رنوگر جو ملل کا تھان لایا وہ

اسی گز کا تھا۔ اُس نے فوراً اُسے اٹھا کر کڑتے سلوائے۔ احمد دین پٹو لٹے کا بھائی اسی ملل کارنگ دار کمرستہ پہن کر جلیانوالے باغ جلسہ سننے گیا تھا کہ گولی کھا کر مر گیا۔ ایسے ہی لوگ تھے جنہوں نے کسی چیز کو ہاتھ تک نہیں لگایا۔ کو تو الی میں ٹاؤن ہال کے کونے میں پہلے ایک ڈاکٹر نہ ہوا کرتا تھا۔ مسجد عیدالون گل ڈگریل کے مولوی صاحب کا جوان بیٹا غلام حسن میرا یار تھا۔ بڑا شینہ جوان تھا۔ ہم دونوں جیسے کے جیسے سخی سرور والے اکھاڑے میں زور کیا کرتے تھے۔ وہ ڈاکٹر نے کا دروازہ توڑ کر اندر چلا گیا۔ بس جوانی کے زور میں ایسا کر گیا۔ سینے میں آزادی کی آگ جو لگی تھی۔ اندر جا کر اُس نے روپے اور ٹکٹ نکالے اور انہیں باہر سڑک پر لا پھینکا۔ اور نعرہ مار کر بولا۔

”یہ کافر کا مال ہے۔ اسے آگ لگا دو۔ یہ مسلمان پر حرام ہے۔“

حمید میاں۔ جب مارشل لا لگا تو ایک ہندو اشٹام فروش نے اُس کی فحشری کر دی۔ غلام حسین گرفتار ہو گیا۔ انگریز نے اُسے پھانسی کی سزا دی اور اسے میانوالی جیل میں پھانسی چڑھا دیا گیا۔

میں نے آنکھیں بند کر لیں۔ میرا دل اُسی دلولہ خیز شہید کی یاد میں سوگوار ہو گیا جو برصغیر میں آزادی کے اولین بیج بونے والوں میں سے تھا۔ میں نے پیالی میں سے سبز چائے کا تلخ ٹھونٹ پی کر کہا۔

”سیری قصائی کون تھا؟“

”سیری! سیری قصائی تھا۔ بڑا دلیر جوان تھا۔ چھ فٹ تھا۔ ہر جیسے، ہر جلوکس میں جھنڈا اٹھا کر چلتا تھا۔ عید میلاد کے جلوس میں حلیم کی دیگ کا ریڑھ لے کر سکتری باغ جایا کرتا تھا۔ سیری اُس کا نام اس لئے پڑ گیا تھا کہ وہ دوپہر کو گلی گلی پھیر کر سیری پائے بیچتا تھا اور ”سیری! سیری!“ آواز لگایا کرتا تھا۔ سب سے پہلے جلوس جس پر انجمن پارک والے ریلوے پل پر گولی چلی اُس میں سیری نے لال رنگ کا ترک کی حکومت کا جھنڈا اٹھا رکھا تھا۔ اور رونی ٹوپی پر اتار کر کے تصویر پر کے ساتھ لگی تھی۔ اُس کے نعروں نے جلوس میں آگ لگا دی تھی۔ وہ چار روپے تک میں آگ لگانے والوں کے آگے آگے تھا۔

وہ بنک کے چوترے پر کھڑا تھا اور بنک کے نوٹوں کی گدیاں آگ میں پھینک پھینک کر کہہ رہا تھا۔

”کافر کا مال بھی کافر کے ساتھ جہنم میں جائے گا۔“

مارشل لا میں سیری کی بھی فحشری ہوئی۔ پکڑا گیا۔ پیچھا کرنے والا کوئی نہ تھا۔ پھانسی کے بعد جب اُس کی بھی لاش گلی میں آئی تو ایک کھرہ مچ گیا۔

والد صاحب خاموش ہو گئے۔ وہ اُن پرانے ہم جو لیوں کی سوگوار یادوں میں کھو گئے تھے۔ جنہوں نے جوانی میں ہی اُن کا ساتھ چھوڑ دیا اور آزادی کے پرچم تلے اپنی بائیں قربان کر دیں۔ میں نے پوچھا۔

”لیکن ابا جی! حاکموں کو ان لوگوں کے بارے میں پوری معلومات کس نے دیں؟“

”یہ خبریاں سی آئی ڈی کے ملازموں۔ دولت کے بچاری اور حاکموں کے مطلع ہندو ساہوکاروں اور اُن پہاڑیہ ہندو نوکروں نے کیں جو سول لائنز میں انگریزوں کی کوشیوں میں کام کرتے تھے۔ وہ سوا سی آئی ڈی میں زیادہ تعداد ہندوؤں کی تھیں۔ لالہ گیان چند ہی نے تو ڈی سی کو ہمارے محلے کے مسلمانوں کے نام دیئے تھے۔“

”لیکن یہ بتائیے کہ پھر اُس دور میں ہندو مسلم اتحاد کیسا تھا؟“

”اصل میں ہم تو بڑھے لکھے لوگ نہیں ہیں۔ لیکن اتنا ضرور معلوم ہے کہ جب سے ہوش سنبھالا امرتسر میں کبھی بھی ہندو مسلمانوں کو ایک ساتھ مل کر بیٹھے نہیں دیکھا۔ اُن کا رہن سہن ہی ہم سے الگ تھا۔ برتن مہانڈے الگ تھے۔ برتنوں کے نام ایک دوسرے سے نہیں ملتے تھے۔ چنانچہ ہر محرم کو فساد ہو جاتا۔ اُس وقت اصل میں انگریز ساخا دشمن تھا۔ تو مسلمان جا پانڈوں کو بھی ساتھ بلا لیتے۔ رام نومی پر ہندوؤں کا مسلمانوں سے کس قدر اتحاد تھا۔ مجھے یاد ہے میں چکن کا کرتہ پہنتے، صوبونیاں والے بازار گیا تو ہندو لالوں نے تعالیٰ میں مہری اور لالچ پیش کی۔ میرے کرتے پر مندل میں جھگو کر ٹھپہ لگایا۔ مگر اس کے ایک ہی سال بعد ہندوؤں کے انہیں محلوں میں مسلمانوں کے خلاف جیسے ہوئے اور انہیں قتل کرنے کی سکیمیں بنائی

گئیں۔ جس روز گول باغ میں جلسہ ہوا تو قمرود نے (قمر دین آف بنو اؤس) مارکلی) مجھے آکر کہہ دیا تھا۔

خلیفہ اب یہاں سے پوریا بستر گول سمجھو۔ ہندو لیڈروں نے کہہ دیا ہے، مسلمانوں! تم عرب سے آئے ہو عرب چلے جاؤ۔ اس سے صاف ظاہر تھا کہ ہندو مسلمان ہندوستان میں ایک ساتھ مل کر نہیں رہ سکتے تھے۔ رام نومی والا اتحاد اصل میں انگریزوں کے خلاف تھا۔ مسلمان ہندوستان میں شروع ہی سے نہایت حاصل کرنے کے لئے انگریزوں کی ڈیڑھ سو برس کی غلامی میں انہوں نے کئی بار عظیم آندادی بلند کیا اور قربانیاں دیں۔ ۱۸۵۷ء میں سب سے زیادہ خون مسلمانوں کا بہا۔ ہندوؤں نے اس وقت بھی مخبریاں کیں۔ اور اپنے سرکاری عہدے پائے۔ اسی طرح جلیانوالہ باغ میں بھی مسلمان ہی زیادہ تر شہید ہوئے۔ ہندوؤں نے مخبری کر کے چن چن کر چوں مسلمان شہریوں کو پچاسی پر لٹکوا دیا کالے پانی بھجوا دیا۔ اب بھی دیکھ لو کہیں تم نے یہ بھی سنا ہے کہ فلاں ہندو لالہ کالے پانی سے رہا ہو کر آیا ہے؛ ہرگز نہیں۔ تم نے چچا محمدی اور فیروز کے نام ہی سنے ہوں گے۔ چچہ میاں ہم نے ہندو سکھوں میں عمریں گزاری ہیں۔ یہ کبھی مسلمان کے دوست نہیں ہو سکتے۔

والد صاحب نے نفی میں گردن کو ہلایا اور ریحانہ کو آڑ دی۔

”ریحانہ بیٹا! سداور ٹھنڈا ہو گیا ہے۔“

”آئی آبا جی ما“

اتنے میں ریحانہ مسکراتے ہوئے اندر آئی اور سداور اٹھا کر لے گئی۔ اس وقت مجھے اپنی والدہ مرحومہ آپو جی بہت یاد آئیں۔ کشمیری چائے بنانے کا جو سلیقہ ان میں تھا وہ امرتسر کی بزرگ کشمیری خواتین کا ہی حصہ ہے۔ وہ بڑے استقامت سے منہ اندھیرے اٹھ کر آگ جلاتیں۔ پتیلی بھجے اور پیالے گرم پانی سے پاک کرتیں تازہ پانی میں چائے کی پتی ڈالتیں جب خوب جوش آجاتا تو ٹھنڈے پانی کا چھینٹا دیتیں۔ دودھ ہلک گرم کرتیں اور پھر اس میں چائے کا رس انڈیلتیں۔ ٹھیک جس وقت چائے کا رنگ نیچے گلاب ایسا

ہو جاتا تو ماتہ روک لیتیں۔ میں ان کے پاس بیٹھ جاتا۔ بڑی محبت سے میری پیالی میں چائے ڈالتیں۔ چائے میں سے کبھی گلاب کی خوشبو آتی اور کبھی نیچے یوں لگتا جیسے کسی گرم دودھ کو چھیلنے سے لہے ہوئے جھل میں سے گزر رہا ہوں۔ میں اپنی گرم خوشبو دھونگلی میں سے ہوتا ہوا امرتسر کی نہروں اور پھولوں مبرے باغوں میں نکل گیا۔ اس میں کوئی شک نہیں کہ امرتسر کی رگوں میں کشمیری مسلمانوں کے کلچر اور ثقافت کا خون دوڑ رہا تھا۔ امرتسر کی مسلمانوں میں زبردست سیاسی شعور اور ادبی ذوق تھا۔ اس شہر بے مثال میں جتنی ادبی اور سیاسی تحریکوں نے جنم لیا وہ مسلمانوں ہی کی مرہونِ منت تھیں۔

اس شہر نے بلند مرتبت مسلمان خلیفہ، لیڈر، شاعر، ادیب، پہلوان اور ہنرمند پیدا کئے۔ ہندو گول مارکیٹ، چھتی ڈیڑھی بازار مائی سیواں اور گورو بازار کی تنگ تاریک دکانوں پر تو نند نکالے دن بھر پیسے پیٹ کھاتے رہتے جبکہ امرتسر کی مسلمان کاریگروں کے ہاتھ کے بنے ہوئے قالین، جامع واریں اور لٹھینے کی چادریں سمرقند و بخارا کی منڈیوں میں داؤتھیں وصول کرتیں۔ ان کے اللہ اکبر کے جو شیلے نعرے آج بھی انجن پارک، گول باغ اور سکتری باغ کی فضاؤں میں گونج رہے ہیں۔ بہت بعد میں مستعجب ہندو لیڈروں نے مسلمانوں کے مقابلے کے لئے سنگٹن کی تحریک شروع کی اور ہندوؤں میں ہندو نوجوان ورنڈش کرتے دکھائی دینے لگے۔ ورنڈہ اس سے پہلے امرتسر کے اکھاڑے مسلمانوں ہی کے دم کے قائم تھے لیکن پچاس ڈنٹر پینے کے بعد مشکل تین پاؤں دودھ پینے والا پٹلا زور ہندو بھلا ایک ہزار ڈنٹر لگا کر سالم بکرے کی بکنی پڑھا جانے والے امرتسر کی مسلمان کا مقابلہ کہاں کر سکتا تھا! چنانچہ ۱۹۴۷ء کے نساہات میں ہندو کسی بھی جگہ کھل کر مسلمان کے مقابلے میں نہیں آیا۔ وہ اپنی اکثریت کے محلوں میں چھپ کر بیٹھ رہے تھے۔ ادھر کوئی اکا دکا دلیر مسلمان ہاؤس سے آیتے ہاں سکھوں نے ضرور مقابلہ کیا۔ مگر وہ بھی اللہ اکبر کے نعروں کی تاب نہ لا سکتے تھے۔ سب سے پہلا حملہ ہمارے محلے کٹروہ مہان سنگھ پر برج بھولا سنگھ کے جنگ سکھوں نے کیا۔ میں خود مقابلہ کرتے والوں میں موجود تھا۔ نہنگ اپنے ایک ساتھی

کی کٹی ہوئی موٹی پنڈلی چھوڑ کر فرار ہو گئے۔ اس مقابلے میں قادر شہزاد کپنی اندر کی کے قادر شاہ شہید و خمی ہوئے تھے۔ اگر امرتسر میں باقاعدہ فوج برپا نہ کیے نہ تھے۔ قہری اور بکتر بند گاڑیاں لے کر نہ آتی تو یقین کیجئے امرتسر کو امرتسری مسلمانوں سے غالی کر دانا ناممکن بات تھی۔ میر حال اس حقیقت سے کوئی بھی انکار نہ کر سکے گا کہ میانہ اور جالندھر کی طرف امرتسر بھی اسلام کے کلچر اور دینی آزادی کا زبردست مرکز تھا۔ اور ہر سیاسی تحریک کے پیچھے مسلمانوں ہی کا ہاتھ رہا ہے۔ کون امرتسری ہے جو چوہدری فضل حق، شیخ حسام الدین، سید عطاء اللہ شاہ بخاری، سیف الدین کھلو، غازی عبدالرحمان اور مولوی غلام محمد ترنم کی شعلہ فشاں تقریروں کو بھلا سکے گا؟ قاصداں والی مسجد کے گنبد و مینار آج بھی مولوی ترنم کی پرجوش خطابت کے امین ہیں۔ مسجد خیر الدین کے درو دیوار آج بھی سید عطاء اللہ شاہ بخاری کی آتش نوائیوں پر ہمہ تن گوش ہیں۔ یہ وہ اسلام کے جیالے سپوت ہیں جنہوں نے اپنے خون سے دین محمدی کے چین کی آبیاری کی اور مسلمانوں کو وہ سیاسی اور دینی استحکام بخشا جس نے ۱۵ کی جنگ میں کہیں میجر عزیز بھٹی، کہیں جنرل سرفراز خاں، کہیں گپنن میجر عبدالجلیل کہیں حوالدار شیر دل، کہیں راجہ مسعود اختر کیانی اور کہیں میجر عباسی بن کر ہندو حملہ آور دشمن کو آگ اور خون کے جہنم میں نیست و نابود کر دیا۔

امرتسر کا ہندو بنیا پانی و مڑی و مڑی کے حساب کے کپڑا بیچتا تھا اور یہی کھاتوں کا زرد رو کپڑا تھا۔ سکھ کنگ منڈی اور پاپڑ منڈی میں یا پاپڑ وڑیاں بناتا تھا اور یا پوریاں میں آری تیشہ ڈالے لگی منی پیڑھی ٹھکانو کی آوازیں لگاتا تھا۔ لیکن امرتسر کا مسلمان مجلس امرار اور نیلی پوشوں کے جلوس میں ستارہ و ہلال کا پرچم اٹھا کر سینہ تانے چلتا تھا۔ انقلاب زندہ باد۔ اسلام زندہ باد اور پھر پاکستان زندہ باد کے نلک شگفت نعرے لگاتا تھا۔ امرتسر انہی پرجوش، پرجوش، زندہ دل، شیر دل اور بیدار معر مسلمان نوجوانوں کی جدوجہد کا دوسرا نام تھا۔ امرتسر کی ساری رونقیں سیاسی ہنگامے، شعر و ادب کی بزم آریاں، صبح سری پانے کے ماشے، نہر کی آم پاریاں اور ہنگامہ نیز جیسے جلوس امرتسری مسلمانوں ہی کے دم قدم کی برکت سے قائم تھے۔ امرتسری مسلمان ہمیشہ ہندو کے تن لاغر میں اپنی سیاسی

بصیرت، ملی سلوت بے مثال ذہانت اور جذبہ عمل کا خون دیتے رہے۔ امرتسر کے تاج محل کی عمارت مسلمانوں ہی کی بنیادوں پر کھڑی تھی۔ مسلمانوں نے امرتسر چھوڑ دیا۔ تاج محل گر پڑا۔ ہندوؤں کی سپلائی لائن ٹوٹ گئی۔ اب امرتسر کی مثال اُس ہندو عورت کی سی ہے جیسے اُس کے شوہر نے طلاق دے دی ہو۔ اُس مرہٹوں کی سی ہے جو قبلت خون کے باعث مر گیا ہو اور جس کی لاش سڑ پھر پڑا ل کر مردہ خانے لے جاتی جا رہی ہو۔

”بھائی جان چائے ٹھنڈی ہو رہی ہے“

چھوٹی بھابی نے مسکراتے ہوئے کہا۔ میں امرتسر کی ٹمٹان بھومی سے واپس لاہور کی انارکلی میں آگیا۔ ریحانہ چائے پیالیوں میں انڈلی بھی چکی تھی اور والد صاحب بڑے سکون سے پی رہے تھے۔ وہ ۱۹۱۹ کے جلیا نوالہ باغ کی یادوں میں گم تھے اور میں، ۱۹۴۷ کی یادوں میں کھو گیا تھا۔ دراصل ۱۹۴۷ء، ۱۹۴۸ء اور ۱۹۴۹ء۔ یہ ہندوستان کے مسلمانوں کی جدوجہد آزادی کے درخشاں مینار ہیں جن کی روشنی میں ہندوستان کے مسلمانوں نے اپنے دینی ورثے اور اسلامی عظمت کے اجا اور بقا کی منزل پائی۔

ابا جی نے اب پیالی میں ٹکیں قلو ڈبو لیا تھا اور اُسے چمچ سے بڑے مزے سے کھا رہے تھے۔ میں نے پائپ میں نیا تبا کو بھرا اور کارنس پر رکھے گلاب کے پھولوں کو دیکھ کر اُسے سلگاتے ہوئے پوچھا۔

”اس کے بعد کیا ہوا ابا جی؟“

”بس پھر جو ہوتا تھا سو کے رہا۔ جنرل ڈائر گورکھا فوج لے کر امرتسر میں آن داخل ہوا۔ دفعہ ۴۴ لگا دی گئی۔ جسے جلوسوں پر پابندی لگ گئی۔ بیساکھی کے دن تھے۔ رام تلانی کے سامنے دلے میدان میں میلہ لگا تھا۔ اگلے روز ۱۳ اپریل کا دن تھا۔ اس روز امرتسر کے آسمان پر ہلکا گرد و غبار سا پھیلا ہوا تھا۔ میں سختی سرور کے اکھاڑے میں زور کر کے گھمرایا۔ نہادھو کر دوپہر کا کڑھا ہوا دودھ پیا۔ مونچھوں پر بالائی کی مالش کی۔ سبک کا کرتا اور پیپ شو پہنا۔ ماسٹر الہ بخش (والد محترم جناب ظہور الحسن ڈار) اور چھوٹے شاہ کو ساتھ لیا اور ہم تینوں جلیا نوالہ باغ کی طرف روانہ ہو پڑے۔ ہم تینوں جوان تھے

ادبہد میں جوانی کا خون گردش کر رہا تھا۔ بازار بکرواناں سے نکل کر کیسری باغ سے ہوتے ہوئے ہم جلسہ گاہ میں پہنچ گئے۔
میں نے پوچھا۔

”آپ نے فضا میں کوئی خاص بات محسوس نہیں کی؟“

”کوئی خاص بات نہیں تھی۔ امرتسر میں دفعہ ہم اگاہی کرتی تھی اور جلسے ہوا ہی کرتے تھے۔ جلیا نوالہ باغ میں لوگوں کے ٹکڑے ٹکڑے لگے تھے۔ حمید خدا جھوٹے بوائے کوئی پچاس ہزار کا ہجوم تھا۔ ارد گرد مکانوں کی چھتوں اور کھڑکیوں میں بھی لوگوں کے سر ہی سر نظر آ رہے تھے۔ جلسہ گاہ کے بیچ میں تخت پوش پر ایک کرسی رکھی تھی جس پر ڈاکٹر کچو اور سیتھ پال کی تصویریں رکھی تھیں۔ جس وقت ہم وہاں پہنچے اس وقت کانگریس کا ہنسراج تقریر کر رہا تھا۔ اتنے میں ایک ہوائی جہاز نے جلسہ گاہ کا ایک کمر لگایا اور قلعے کی پریٹ کی طرف چلا گیا۔ اب ایک شاعر اٹھا اور اس نے اردو میں لکھی ہوئی انقلابی نظم پڑھنی شروع کر دی۔ ہم چونکہ دیر سے آئے تھے اس لئے لوگوں کے پیچھے ہی تھے۔ کیا دیکھتے ہیں کہ گورکھا فوج نے باغ کے دروازے والے شیلے پر اگر ایک دم مورچہ سنبھال لیا اور جنرل ڈائر سفید گھوڑے پر ذرا اوپر اٹھ کر دور بین اور آدھر دیکھنے لگا۔

چھوٹے شاہ نے میرا ہاتھ پکڑ کر کہا۔

خلیفہ ایسا لگتا ہے آج گولی چلے گی،

میں نے کہا۔

”شاہ جی فکر نہ کرو۔ یہ محض ڈرانے کے لئے ہے۔“

ماسٹر اللہ بخش نے بھی کہا کہ خلیفہ آثار اچھے دکھائی نہیں دے رہے۔ میرا خیال ہے یہاں سے نکل چلو۔ ماسٹر اللہ بخش ہم میں پڑھا لکھا تھا۔ اس کی بات میری سمجھ میں آگئی۔ ہم تینوں آہستہ سے اٹھے اور باغ کے گیٹ کی طرف بڑھے۔ ہمارے سامنے دروازہ ہی وہی تھا۔ وہاں فوجی مشین گنیں تانے بیٹھے تھے۔ جنرل ڈائر نے یہی

اپنی طرف آتے دیکھا تو ہاتھ ہلا کر بولا۔

”گو آؤں۔ چائو۔ چائو۔ پیچھے۔“

ایک گورکھا رائفل نے کمرہاری طرف لپکا۔ ہم اٹھ پاؤں بھاگے۔ ابھی ہم نے چند قدم ہی اٹھائے ہوں گے کہ پیچھے سے تڑا تڑا مشین گن کے فائر کی آواز آئی۔ جنرل ڈائر نے گولی چلانے کا آرڈر دے دیا تھا۔ مشین گن کی یہ پہلی بار فوج کے سروں کے اوپر سے ہو کر گزر گئی۔ اس بار کی ایک گولی گلزن گیٹ کے باہر ادبے تھپتی ایک گوجر عورت کو لگی اور وہ ہلاک ہو گئی۔ جلیا نوالہ باغ فائرنگ کی یہ پہلی مسلمان شہید عورت تھی۔ ہم تینوں ہجوم میں ایک دوسرے سے بکھر گئے۔ اس وقت شیخ پر لالہ ہنس راج نے چل کر کہا۔
لوگو! بیٹھے رہو۔ یہ پھو کے فائر ہیں۔

مگر لوگ گھبرا کر اٹھ کھڑے ہوئے تھے۔ دراصل زیادہ بھگدڑاں دیہاتیوں نے چائی جو بیساکھی کے میلے پر امرتسر آئے ہوئے تھے اور اس قسم کی سیاسی ہنگامہ خیزوں سے بالکل ناواقف تھے۔ اب فوج نے دوسرا اونڈ چدیا جس کی بار جیسے میں دیکھ لوگوں پر ماری گئی۔ اس کے ساتھ ہی وہاں چیخ و پکار اور کشت و خون کا بازار گرم ہو گیا۔ ٹوٹ ایک دوسرے کو کھینچتے ہوئے بھاگنے اور گولیاں کھا کھا کر گرنے لگے۔ گولیوں کا ٹھنڈا ٹھنڈا اور تڑتڑا کرتا بلینڈ برس رہا تھا۔ ہر طرف کھرام بپا تھا۔ لوگوں نے گھبرا کر کنوئیں میں چھپ گئیں لگاویں اور ایک دوسرے کے اوپر گرتے چلے گئے اور دب کر ہلاک ہو گئے۔ بچے بھاگتے لوگوں کے پاؤں سے کپکپے گئے۔ میں ہجوم کے ریلے میں باغ کی مشرقی دیوار کی طرف بڑھا جا رہا تھا کہ ایک گولی سنناقی ہوئی میرے کان کے قریب سے گزری اور ایک سکھ کو سر میں لگی۔ وہ آہ کئے بغیر گرا اور اس کی لاش دیکھتے دیکھتے لوگوں کے پاؤں سے کپکپ گئی۔ میرا سسک کا کرتہ تار تار ہو چکا تھا۔ پچپ شو جانے کہاں رہ گئے تھے۔

میں نے دھوٹی کا لٹوٹا کس لیا اور لوگوں کے اوپر سے ہوتا باغ کی دیوار کی طرف پہنچا۔ یہ دیوار باغ کے گرد گرد چلی گئی تھی اور کوئی فٹ اونچی تھی۔ میں دیکھ رہا تھا کہ ٹوٹ دیوار کو پھانسنے کی کوشش میں گولیاں کھا کھا کر گر رہے ہیں اور ہلاک ہو رہے ہیں۔ دیر پر

خون کے چھینٹے اڑ رہے تھے۔ اب میرے سوا اور کوئی چارہ نہ تھا کہ دیوار ہیباند جاؤں۔ کیونکہ میں نے دیکھا تھا کہ زمین پر لیٹے ہوئے لوگوں کے سروں پر بھی گولیاں لگی تھیں۔ جنرل ڈائر کے فوجی رائفلس نیچی کر کے بھی فائر کر رہے تھے۔ میں بڑا جوان اور طاقتور تھا۔ بدن کمایا ہوا تھا۔ جونہی میں دیوار کے پاس پہنچا میں خد کا نام لے کر اچھلا اور دوسرے لمحے میں دیوار کی دوسری جانب ٹال کی ٹڑیوں پر پڑا تھا۔ میں اُسی گرمی سردی میں اٹھا اور دیوار کی اوٹ میں چلتا دہاں لگیا جہاں دیوار ختم ہوتی تھی اور میں فوجیوں کو گولیاں چلاتے دیکھ سکتا تھا۔ فوجی اُس وقت تیرہ راونڈ چلا رہے تھے اور جلسہ گاہ میں بالاکار مچی ہوئی تھی۔ میں نے دیکھا کہ جنرل ڈائر اشارے کر کے فائرنگ کر رہا تھا۔ پھر اُس نے فائرنگ بند کرادی اور فوجیوں کو ساتھ لے کر موڑے پر سوار ہو کر ٹیلے سے نیچے اتر گیا۔ اب میں بھاگ کر جلسہ گاہ میں آگیا کیونکہ مجھے بارہ الشہد بخش اور چھوٹے شاہ کی تلاش تھی۔

حمید۔ تمہیں کیا بتاؤں کہ میدان میں کیا حشر مچا تھا۔ بس تم اُسے دیکھتے تو لکھتے میں تمہیں کیسے بتاؤں کہ لاشوں کے انبار تھے اور خون کی نہریں بہہ رہی تھیں۔ میں نے ایک آٹھ دس برس کے لڑکے کو دیکھا کہ لاشوں کے نیچے دبا اپنا ہاتھ بلاتا تھا۔ میں نے لاشوں کو ہٹایا تو وہ نیم بے ہوش پڑا تھا۔ میں نے اُسے اٹھایا اور دربار صاحب والی ہنسلی کی حوضی میں سے پانی پلانا چاہا۔ کیا دیکھتا ہوں کہ حوضی کے پانی میں دس گیارہ لاشیں تیر رہی ہیں پانی اُن کے لہو سے سرخ ہے۔ ایک آدمی سہا ہوا پانی میں لٹکا ہے۔ چہرہ سفید ہے۔ ہاتھ نیچے ہیں۔ آنکھیں پھٹی پھٹی ہیں مجھے دیکھتے ہی ہاگلوب کی طرح پکارا تھا۔

”کیا گولی چلنی بند ہو گئی؟“

ہنسلی کی خبر میں بھی ان گنت لاشیں تیر رہی تھیں۔ اُن میں سے میں نے نیک منڈی کے ایک مسلمان رفوگر بابا صمد کی لاش پہچان لی۔ اُسے دو گولیاں لگی تھیں ایک سر کے بیچ میں اور ایک داہنے جھڑے سے ذرا اوپر۔ میں نے لڑکے کو نہر کا خون ملا پانی پلایا۔ وہ بدحواس ہو کر ادھر ادھر لگنے اور پھر جیتنے لگا۔

”بتا جی! لالا جی! پتا جی!“

اور پھر زور زور سے رونے لگا۔ میں نے اُسے چپ کرایا اور سوچا کہ اسے سامنے والی گلی کے کسی گھر میں چھوڑ آؤں۔ میں جو اُسے لئے گلی میں داخل ہوا تو کیا دیکھتا ہوں کہ ایک ادھیر عمر کا ہندو لالہ صرف بنیان اور نیکر پہنے روتا ہوا ادھر ادھر وادیا کرتا۔ ”میرے بھرام پتر فوں دیکھیا ہے ا۔ میرے بھرام پتر فوں دیکھیا ہے کوکو! مائے میرا پتر ا۔“ وہ زار و قطار دھاڑیں مار مار کر رو رہا تھا۔ اب جو اُس نے اپنے بیٹے کو میرے ساتھ دیکھا تو باپ بیٹا پیچ مار کر لپٹ گئے۔ ہندو باپ نے بیٹے کو گندے پر لدا اور وہاں سے آندھی کی طرح بھاگ گیا۔

اب میں پھر اپنے دوستوں کی تلاش میں باغ میں آگیا۔ میں نے راستے میں دیکھا بازار بڑی میوہ سنگھ اور بازار علیا نوالہ باغ میں بھی لوگوں کی لاشیں پڑی تھیں۔ یہ وہ لوگ تھے جو جلسے میں گولی کھا کر گھروں کی طرف بھاگے اور بازار میں ہی گر کر دم توڑ گئے۔ میں نے ایک زخمی کو دیکھا کہ بالکل نیلا پڑ چکا تھا اور بازار کی نالی پر منہ رکھے پانی پینے کی کوشش کر رہا تھا۔ جہاں جلسے کا تخت پوش بچھا تھا وہاں کم از کم تین سو کے قریب لاشیں پڑی تھیں۔ میرے اندازے کے مطابق سارے باغ میں اس وقت خدا جھوٹ نہ بلوائے تو تین چار ہزار کے قریب بچوں بوڑھوں اور جوانوں کی خون آلود لاشیں پڑی تھیں ان میں شدید زخمیوں کی بھاری تعداد بھی تھی۔ میرے ایک دوست سکند علی جو ڈھاب کھٹیاں میں رہتے تھے شام سات بجے اپنے چھوٹے بیٹے کی تلاش میں وہاں پہنچے۔ اُن کے لخت جگر کی لاش مردوں کے انبار تلے پڑی تھی۔ گولی اُس کے سر کو توڑ کر نکل گئی تھی۔ اُس کے پاس ہی بس کے ہون اسماعیل کی لاش پڑی تھی جس کے ساتھ وہ جلسہ سننے آیا تھا۔ میں نے ایک بوڑھے سیکھ کو دیکھا کہ بچے کو سینے سے لگائے زمین پر پڑا ہے۔ مشین گن کی گولیوں نے دھنوں کے جسموں کو ادھیر ڈال دیا ہے۔ ہنسلی دربار صاحب والی میں ہی میں نے ترنارن کے ایک چپڑا سی کو مرے پڑے دیکھا۔ وہ کچھ بھی کبھی امرتسر میرے پاس آیا کرتا تھا۔ لاشوں کے ساتھ ساتھ میدان میں جوتوں کے انبار بھی لگے تھے۔ مجھے پتہ تھے شاہ اور ماسٹر بخش کہیں نظر نہ آئے۔ اب میں بھی لاشوں اور زخمیوں کے درمیان پھرتے دہشت زدہ ہو گیا

تھا۔ شام ہو رہی تھی۔ لوگ لالینیں لئے اپنے اپنے لوگوں کی لاشیں دھونڈ رہے تھے
میں گھر کی طرف چل پڑا۔ بازار بند تھے اور ایک عجیب و بہشت ہر طرف طاری تھی۔ بازار
میں لوگ اپنے عزیزوں کی لاشیں چار پائیوں پر اٹھائے جلدی جلدی اپنے گھروں کو لئے
جا رہے تھے کیونکہ ۸ بجے کے بعد شہر میں کرفیو لگ ڈالا تھا۔ ملکہ کے بت کے پاس مجھے
والد صاحب ملے۔ وہ انتہائی پریشانی کے عالم میں ماسٹر انسپکشن اور چھوٹے شاہ کے
ساتھ میری تلاش میں آرہے تھے۔ سوا سات بجے شام ہی شہر پر بڑا عالم طاری ہو گیا
تھا۔ روڑاں والی مسجد کے پاس جہیں ایک نیم عریاں پریشان حال سکھ بوڑھا ملا جو درو
کر ہر ایک سے پوچھتا تھا۔ میرے بیٹے کو کسی نے دیکھا ہے؟

اُس روز مارشل لا نافذ کر دیا گیا اور امرتسر میں وحشت و بربریت کے ایک عبرت ناک
باب کا آغاز ہوا۔ کوتوالی کے سامنے ٹمکیاں نصب کر دی گئیں۔ لوگوں پر بے رحمی سے کوٹے
برساتے جانے لگے۔ دھڑا دھڑا گرفتاریاں شروع ہو گئیں۔ وہیں عدالت لگتی اور سزا سنائی
جاتی۔ کسی کو چھانسی اور کسی کو عبور دیاے شور۔ کتنے ہی آناؤں کی پسند جیائے مسلمان
جوانوں کو تختہ در پر لٹا دیا۔ یا انہیں کانے پانی عمر قید کے لئے بھیج دیا گیا۔ کوریاں بچے
کھوہ کے محلے میں انگریزوں نے لیڈی کے قتل کا پورا پورا بدلہ لیا۔ مگ والوں کو مجبور کیا گیا کہ وہ
گھنٹوں کے بل چل کر گھروں سے باہر نکلیں اور واپس گھروں کو جائیں۔ ایک روز
دھندور پھر گیا کہ آج جنرل ڈائر شہر کی گشت کریں گے۔ تمام لوگوں کو حکم دیا جاتا ہے کہ وہ
جنرل صاحب کو اٹھ کر سلام کریں۔ جب ڈائر سہما سے محلے کٹرہ میاں سنگھ میں آیا تو صدیق
قصانی گوشت کاٹنے میں لگا تھا۔ اُس نے سلام نہ کیا۔ اچانک مالٹ کی آواز آئی۔
ایک سپاہی نے زور سے صدیق کو ہنڑ مارا۔ صدیق نے وہی ہنڑ کھینچ کر سپاہی کے
منہ پر دے مارا۔ پھر کیا تھا۔ فوراً اُسے گرفتار کر لیا گیا۔ اگلے روز معلوم ہوا کہ صدیق کو بھی
کانے پانی بھیج دیا گیا ہے۔ بڑے بڑے کڑیل جوان اور ماؤں کے سوہنے نعل چھانسی
چڑھا دیئے گئے۔ شٹو کے ہاتھ میں ابھی شادی کی مہندی بھی پھینکی نہ پڑی تھی کہ اُس
کی لاش گھر آگئی۔ اُس کا گھر گل فراسیاں میں تھا۔ مانی بھری بیوہ کے رٹکے کو جیسے میں

ہی گولی لگی تھی۔ بعد میں جب حکومت نے اُسے بھی کچھ روپے بطور معاوضہ دیئے تو
مائی نے اس رقم سے گھی منڈی والے قبرستان کے نالوں کی پٹیاں کچی کر وادیں۔
والد صاحب چائے پیتے لگے اور مجھے گھی منڈی والا قبرستان یاد آ گیا جو امرتسر
کے باغوں میں گھرا ہوا تھا اور جس کے ارد گرد نہروں میں سے کاٹے ہوئے نالے بہتے
تھے۔ ان کی کچی پیوں پر بیٹھ کر ہم باغ میں سے توڑے ہوئے کچے کپے امرود کھایا کرتے
تھے۔ عید بقر عید کو منہ اندھیرے ہم یہاں اپنے آباؤ اجداد کی قبروں پر چاول اور گلاب
کے پھول نچاؤر کرنے آتے۔ اگر بقیاں سلگائی جاتیں۔ یہاں وہاں جلتی قوم قبروں کی روشنی
میں قرآن شریف پڑھنے کی آوازیں آیا کرتیں۔ ۱۹۴۷ء کے بعد اب ان قبروں کو ڈھ کر ہندو
سکھوں نے وہاں مکان بنالینے ہیں۔ کیا ہم اپنے اجداد کی روحوں کو کفار کے بوجھ سے
زاد نہ کرائیں گے؟ کیا مسجد قاصداں، مسجد خیر الدین اور مسجد جان محمد کے میناروں میں
کبھی اذان نہ گونجے گی؟۔۔۔ ہمیں خدا کے گھروں میں رکھے ہوئے بتوں کو پاشش
پاشش کرنا ہے۔

یہ دور اپنے براہیم کی تلاش میں ہے
صنم کہہ ہے جہاں لا الہ الا اللہ

میر کی آنکھوں میں اقبال کی ایک تصویر آگئی کہ وہ مسجد قرطبہ کے گنبد کے
ستونوں کے درمیان نماز پڑھ رہا ہے اور میں امرتسر کی ویران مسجدوں سے نکل
کر غرناطہ و قرطبہ کے مسلمان بادشاہوں کے اجڑے ہوئے محلات میں نکل گیا۔
اور اباجی کہہ رہے تھے۔

اب گانگریس اور مسلم لیگ دو الگ جماعتیں بن چکی تھیں۔ مسخوں پر
ہندوؤں کی فریب کاری کھل گئی تھی۔ غالباً ۲۲-۱۹۲۱ء میں گول باغ میں لیگ کا جلسہ
ہوا۔ مقبوضاتی قن گئیں۔ اسی میدان میں ساتھ ہی کانگریس کا سالانہ جلسہ بھی ہوا۔
نرو، گاندھی، اور تلک آئے۔ ابوالکلام آزاد بھی ساتھ تھے۔ دوسری طرف محمد علی جناح
(قائد اعظم) بھی آئے۔ انہوں نے ترک ٹوپی پہن رکھی تھی۔ میں بھی لیگ کے جلسے میں

گیا۔ مہر میں یگ کا بڑا زور تھا۔ قائد اعظم نے انگریزی میں تقریر کی۔ ایک بابو نے میرا گڑھ تھیند دیکھ کر پوچھا۔

”تم کیا انگریزی سمجھ لیتے ہو جو یوں جم کر بیٹھے ہو؟“
میں نے کہا۔

”میں جناح صاحب (قائد اعظم) کی تقریر سننے آیا ہوں۔“
وہ بابو بڑا خوش ہوا اور مجھے قائد اعظم کی تقریر کا ایک ایک لفظ سمجھاتا رہا۔
میں نے پوچھا۔

”قائد اعظم نے کیا فرمایا تھا؟“
اب ٹھیک طرح یاد نہیں۔ ان کی تقریر کا مطلب یہی تھا کہ ہندوستان میں ہندو مسلمانوں کو انگریز کی غلامی سے نکال کر اپنا غلام بنانا چاہتے ہیں جسے مسلمان کبھی گوارا نہیں کریں گے۔

”پھر کیا ہوا؟“
”پھر یہی ہوا کہ جیالوالہ باغ میں مسلمان شہیدوں کا بیایا ہوا خون رنگ لایا۔ پاکستان بن گیا اور امرتسر میں جو کشت و خون کا بازار گرم ہوا اس سے تم سب نوجوانوں واقف ہی ہو۔ ہم نے بڑی قربانیاں دے کر پاکستان حاصل کیا ہے۔ اب اس ملک کو طاقت ور بنانا اور قائم و دائم رکھنا تم لوگوں کا کام ہے۔“

میں نے کہا۔
”ابا جی! پاکستان کی طاقت اور اس کے دوام کا ثبوت دشمنوں کو ۶ ستمبر ۶۵ کو مل چکا ہے۔ آپ فکر نہ کریں اور اگر کبھی پھر امتحان کا وقت آیا تو ہم اس سے کبھی بہتر ثبوت جہیا کریں گے۔“
”انشاء اللہ۔“

والدہ صاحبہ نے پیانی میز پر رکھ دی اور میری نظر کارنس پر رکھے گلاب کے پھولوں سے ہوتی کھلی کھڑکی میں سے باہر نکل گئی جہاں مغل پورہ، واگہ، اور امرتسر

جانے والی ریلوے لائن سورج کی سنہری دھوپ میں چمک رہی تھی۔ اب میرے کانوں میں امرتسر کی ویران مسجدوں کی فلک شگاف اذانیں گونجنے لگیں اور انجمن پارک میں گونجنے ہوئے ”پاکستان زندہ باد“ کے نعروں کی آوازیں سنائی دیں اور میں نے اقبال کو قرطبہ کے دریا دادا بکیر کے کنارے گہری سوچ میں گم گھڑے دیکھا۔

اب روان کبیر تیرے کنارے کوئی
دیکھ رہا ہے کسی اور زمانے کا خواب

گھنے جنگلوں کو جاتے پڑانے راستے ہیں۔ سیاروں کے اُفق سے طلوع ہوتے سیارے میں اور سورجوں کے ساتھ ساتھ سیر کرتے سورج ہیں اور ان تھریوں میں نشانیاں ہیں۔ روشن اور تابناک نشانیاں۔۔۔۔۔

کمرے کی فضا میں اعلیٰ انگلش تبا کو اور اعلیٰ چینی چائے کی خوشبو نے مل کر ایک تیسری خوشبو کو بیدار کر دیا ہے۔ یہ خوشبو ہے اعلیٰ خیالات، پُر ملال فکر اور پُر شکوہ تصورات کی۔ قریب کی ویران مسجدوں کو تنگتی، ہجرت زدہ اُندلسی شہزادوں کی آنکھیں اور ان مسجدوں کے بے اذان، مناروں کے عقب سے طلوع ہوتا آتشیں، غنچہ ناک آفتاب۔ بے سجدہ محرابوں نیچے ٹھہرتے سنگ مرمر میں سجدوں کے دہکتے نشان۔ مفتوح محلات کی شاہی خواب گاہوں میں شہنشاہوں کے لاشے، لعل و جواہر از مرد و عقیقی سے محروم نیچے ہوئے تاج، بے تاج اُموی حکمرانوں کی ٹوہنیں توج کو گھورتی آنکھیں اور ٹوٹی ٹکڑوں کے قبضوں پر جسے ہوئے خون آلود پتے۔ قریب! ہم پھر آئیں گے، غرناطہ ہم پھر آئیں گے۔ ہم اپنی اذانوں کو تیرے میناروں میں اور اپنے سجدوں کو تیری محرابوں میں بلکہ امانت چھوڑے جا رہے ہیں۔ ہم تجھ سے اپنی امائیں واپس لینے ایک دن ضرور آئیں گے۔ ہم دیوار گریہ کے ساتھ لگ کر نہیں روئیں گے۔ ہم اپنی خامیوں کے داغ بھرہ روم کے پانیوں میں دھوئیں گے۔ ہم اور اپنی عظمتوں کے یا قوت ابھرتے سورج کی روشنیوں میں چمکائیں گے۔ ہم تیرے حجر کے باغات میں کھلے ہوئے سیاہ گل بوں کو سینے سے لگا کر رکھیں گے اور تو ہماری بخشی ہوئی عظمتوں کو فراموش نہ کرنا۔ ہماری مسجد قریب کے گنبد پر سورج کی کرنوں کو چمکاتے رہنا۔ ہمارے غرناطہ کی وادیوں میں سر و شاد سے درختوں کی آبیاری کرتے رہنا، اور ہمارے حجر کے باغوں میں سیاہ گلاب کے شگوفے کھلاتے رہنا۔ ہم آج تجھے الوداع کہتے ہوئے تیری مسجدوں، تیرے باغوں، تیری وادیوں اور تیرے دیواروں سے سو رہے ہیں اور کل تو ہم فاتحین کو خوش آمدید کہنے کے لیے فیصل شہر کے باہر اپنی سرزمین کے بہترین تماثلت نے کھرا ہو گا۔ الوداع! الوداع! خوش آمدید! خوش آمدید!

ایک آفتاب غروب ہو رہا ہے۔ ایک مابتاب طلوع ہو رہا ہے۔ یہ مابتاب اُسی آفتاب کے نور سے منور ہے۔ ہمارے تخت و تاج سے نوا ہوا سونا ہمیں دور سے دکھانا ہے اور اسی اور غمگین چاند کی اُداس مددنی میں مجھے غرناطہ کے کھنڈر اور اُداس کھنڈروں کے ٹپڑے باغوں

امرتسر کا کھینی باغ

میں نے ابھی ابھی واسٹ جیسن چائے کی ایک پیالی پی ہے اور امرتسر کے کھینی باغ پر مضمون لکھنے بیٹھا ہوں۔ اس چینی چائے کی خوشبو میرے ہر سانس کے ساتھ کمرے میں پھیلنے لگی ہے۔ میرا دل چبیل کا سفید پھول بن کر میرے سینے میں دھڑک رہا ہے اور مجھے یوں محسوس ہونے لگا ہے گویا میں قلم سے نہیں گلاب کی ٹہنی سے یہ مضمون لکھ رہا ہوں کاغذ کے تحت پر گلاب کی ٹہنی بیدار کی ہول کے ساتھ ساتھ چل رہی ہے اور سطروں کی شاخوں پر بادوں کے شگوفے بن کر کھلتے چلے جا رہے ہیں۔ کھینی باغ پر کچھ لکھتے ہوئے واسٹ جیسن چائے کی ایک پیالی بڑی ضروری تھی۔ یہ چینی چائے میرا ایک دوست چین سے لایا تھا۔ جب میں نے پہلی بار لیمن یو کر کے اس گول ڈبے کو کھول کر سونگھا تو میری آنکھیں اس کی خواب آلود خوشبو کے بحر سے خود بخود بند ہو گئیں اور مجھے یوں لگا جیسے میں صبح کی ٹہنی ہوا بن کر کھینی باغ کے درختوں میں سے گزر رہا ہوں کھینی باغ کے ہر درخت میں واسٹ جیسن چائے کی دھبہ تھی اور اُس کی روشنیوں کی گھاس میں جھلک گلاب اور بنفشے کے پھول کھلا کرتے تھے میں نے آنکھیں کھول کر ڈبے میں چینی چائے سیاہی مائل سبز خشک پتیوں کو دیکھا تو مجھے وہ خشک پتے یاد آ گئے جو شروع سردیوں کی ہلکی بارش میں کھینی باغ کے درختوں پر سے گرا کرتے تھے۔

ڈن بل کی دھیمی انگلش دھبہ والا سگریٹ الیش ٹیے میں ٹپ رہا ہے۔ کھڑکی سے باہر ڈوبتے سورج کی سرخ کرنیں سفید سے کی ٹہنیوں کو چوم کر پیچھے سمٹتی جا رہی ہیں۔ سبز پتوں کے بیچ میں نیلے آسمان پر شام کی سنہری انگلیں رات کی تحریر لکھتی نظر آرہی ہیں۔ یہ تحریر پڑھ کر اسرار ہے، مکرز وہ ہے۔ اس میں وقت کے اہراموں میں سوئی ہوئی شہزادیوں کی سرگوشیاں ہیں، غلوں کے بیکراں سناٹوں میں اپنی طرف بلانے والی آوازیں ہیں۔ سامنے اگر چھپ جانے والی شکلیں ہیں

میں کہنی باغ کے درخت سر جھکانے نظر آ رہے ہیں۔

کہنی باغ — میرے غرناطہ کا الحرا جس کی روشنیوں پر میرے قدموں کے نشان سو رہے ہیں۔ جس کے درختوں پر میری محبتوں کے نام لکھے ہیں۔ جس کی برساتوں میں کوئیں آج بھی میری یاد میں نوحہ کتاں ہیں اور جس کی بہاروں میں آلوپے کے پھول شاخوں پر کھلے میری راہ دیکھتے ہیں اور شاداب بہروں کا پانی آج بھی میرا نام لے کر اپنے کناروں کو چوم کر گزرتا ہے۔ کہنی باغ کی مشک بار ہوا میں میرے سانس میں ہیں۔ اس کے پھولوں کی خوشبو میرے خون میں ہے۔ امرتسری جب میں نے آنکھ کھولی تو میرے اوپر کہنی باغ کے یوگیش کے درختوں کا سایہ تھا۔ جب میں نے چلنا سیکھا تو میرے پاؤں سے کہنی باغ کی گھاس تھی اور جب میری پہل محبت مجھے چھوڑ کر ڈول میں سوار ہو کر اپنے گھر چل گئی تو اس باغ کے خشک پتے میرے آنسوؤں کے ساتھ زمیں پر گرتے تھے۔ اس کی سردیوں کی ستھری دھوپ، اس کی برساتوں میں گھنے درختوں سے ٹپ ٹپ برتی جانیں اور اس کی تپتی دھوپوں میں باغوں سے آتی گلاب کی گرم خوشبو اور نہر کنارے اُگی ہوئی بنگ کی جھاڑیوں کی تیز مہک اور ٹھنڈی کھوئی کا رخ پانی اور اس میں بیٹھے ناشپاتی کے پھولوں سے ٹپکی شبنم — کہنی باغ کو میں کس طرف سے لکنا شروع کروں؟ اس کتاب کا کون سا صفحہ پہلے کھولوں؟ یادوں کے اس ویران شہر میں کس دروازے سے قدم رکھوں؟ کون سے درخت پر سب سے پہلے اپنی محبت کا نام پڑھوں؟ اس زندہ شوہر کی بیوہ کو کس نام سے پکاروں؟

اگر ہم ہال دروازے کی طرف سے کہنی باغ میں داخل ہوں تو ہمیں انجمن پارک کے ساتھ ساتھ ریلوے پٹی کی چڑھائی چڑھنی ہوگی۔ انجمن پارک جہاں میں نے سب سے پہلے مسلم لیگ کے جلسے میں راجہ محمود آباد کی تقریر سنی اور پاکستان زندہ باد کے نعرے سنے۔ جہاں ہندو بھگالچ اور ایم او کالج کے درمیان کرکٹ کے زبردست میچ ہوا کرتے اور مروت حسین کی باؤلنگ پر ہمارے دینیات کے استاد آتھیں پڑھ پڑھ کر پھوٹکیں مارا کرتے تھے۔ آج اس انجمن پارک میں میوہ منڈی بن گئی ہے۔ چاروں طرف بوسیدہ کھوکھے ہی کھوکھے لگے ہیں اور گے سڑے پھولوں کا بیوہ پار ہوتا ہے اب نہ وہ انجمن ہے اور نہ پارک — ریلوے پٹی کی اترنی اتریں تو ایک جانب کرشل ہوٹل اور دوسری جانب وکٹوریہ جوہلی ہسپتال کا دروازہ۔ یہی وہ کرشل ہوٹل ہے جہاں میں نے اردو کی

ڈکٹری نیچ گراہتی خوبہ کو اس کریم کھدائی تھی۔ اب سامنے کہنی باغ ہے۔ ایک چھوٹی سی سڑک ہسپتال کی دیوار کے ساتھ ساتھ شریف پورے کو نکل جاتی ہے۔ ایک سڑک ہسپتال کی دیوار کے ساتھ ساتھ شریف پورے کو نکل جاتی ہے۔ ایک سڑک دائیں ہاتھ پر الیگزینڈر گراؤنڈ کو چھوڑ کر سیدھی مجھے روڈ کی طرف نکل جاتی ہے۔ ارد گرد پھولوں کے تختے ہیں جگہ جگہ امتاس کے درخت اپنے زرد پھولوں کے گچھے دکھائے ہوا میں جھوم رہے ہیں۔ ذرا آگے جا کر پرانے وقتوں کی بنی ہوئی ایک بارود کی ہے جس کے بیچ میں سبز پانی کا حوض ہے یہاں سے گھنے درختوں میں گھرا ہوا کچا راستہ ٹھنڈی کھوئی کے سامنے والی گراؤنڈ کو نکل جاتا ہے۔ اس راستے میں تناور درختوں کے تنے کھود کر بیٹھے لوگڑی نما جھبیں بنا دی گئی ہیں۔ بائیں ہاتھ کو کھنڈہ روشنیوں کے بیچ میں فوارے لگے ہیں جو دور باغ کی شہر کی جانب کے تختوں کو چلے گئے ہیں۔

اگر ہم رام باغ دروازے کی جانب سے کہنی باغ کو چلیں تو ہمارے بائیں ہاتھ پہلے ہندو پان والوں کی دکانیں آتی ہیں جو پان میں تاریل کی گری، خشکاش، چینی اور خدا جلنے کا کیا ملا کر کھلاتے ہیں۔ دکان میں گنیش اور کرشن کی تصویریں سجی ہیں جن کے سامنے ہر وقت نوبان سگتا رہتا ہے۔ ایک طرف دھو تو وال گراموفون رکھا ہے، پاس ہی ریکارڈوں کا انبار لگا ہے۔ سونے کے دانت والا ایک بلبھا سا ہندو آدمی بڑے زور سے گراموفون کو چابی دیتا ہے۔ مشین چلاتا ہے اور ساؤنڈ بکس کی سٹی گھومتے ریکارڈ پر رکھ دیتا ہے اور پھر دھو تو میں سے کسی عورت کی تیز اور تسکینی آواز بلند ہوتی ہے۔

چرا کرے گیا ظالم میری زنجیر سونے کی۔

کبھی نہ کاش لپٹے کے گے کا بار ہو جاتا۔

اب رہے، ساقی ہے، نے ہے، جام ہے۔

دیوانہ بنانا ہے تو دیوانہ بنائے۔

یاد دل سے باز آجایا دل نواز ہو جا۔

کبھی اختر علی فیض آبادی، کبھی کل جھریا، کبھی اندو بالا، کبھی بھائی جھیل پٹیا لے والا اور کبھی کتن غاں کی آویں ہمارے دور تک تعاقب کرتی ہیں اور ہم سیدھے ہاتھ پر عشق بیجاں کی جیل میں چھپنے ہوئے گر جا کر کو پیچھے چھوڑتے جی ٹی روڈ کو عبور کر جاتے ہیں۔ اب ہمارے یک طرف

ڈاکٹر سوہن سنگھ کا آئینوں کا ہسپتال ہے اور دوسری طرف عید گاہ کی دیوار۔ ایک خرابی ڈیڑھ میٹر
سے دروازہ عید گاہ کو جاتا ہے۔ کافی لمبے حوض کے سبز پانی میں گرے پڑے پتے اور سنہری مچلیاں
تیر رہی ہیں۔ جامنوں کے گھٹے درختوں کے جھنڈ ہیں۔ حوض کی پرانی روشوں پر کالی سیاہ موٹی
جامیں گری پڑی ہیں۔ ہم برسات کے مینہ میں بیگتے۔ سونیاں شیش پاتے غالی نیکریں پہنے، درختوں
لگاتے یہاں آتے۔ فوب جامیں کھاتے۔ نیکر کی جلیں بھرتے اور شور مچاتے کہنی باغ کے کچے پتے
امروہوں پر چلنے بھاگ جاتے۔ اب ریل کا پھاٹک عید کرتے ہیں تو بائیں اقد پر اسی دکنوریہ جو ہلی ہسپتال
کا مشرقی دروازہ ہے اور سامنے کہنی باغ ہے۔ یہ کہنی باغ کا سب سے پرانا دروازہ ہے مغلیہ طرز
کی ایک کشادہ ڈیڑھ میٹر ہے جس کے اوپر پڑنے اندھیرے کمروں میں کہنی باغ سے متعلق دفتر ہے
عمارت کی پیشانی پر ایک بارہ دری ہے جس کا اوصاف پھول دار بیوں نے چھپا رکھا ہے ڈیڑھ
کی فصائیم روش اور ٹھنڈی ہے سامنے کہنی باغ کے ہرے بھرے دھوپ میں چلنے ہواؤں میں
جھومتے درخت نظر آ رہے ہیں۔ ڈاکٹر سے باہر نکلیں تو کونے میں ٹھنڈے پانی سے بھری ہوئی بائیل
ہے جس پر بکائی کا گھٹا درخت سایہ کیے ہوئے ہے۔ باؤلی کا شفاف پانی اچھل اچھل کر چھوٹے
نلے میں بہتا باغ کی اس جانب جا رہا ہے جدھر لوٹ کے درختوں کے جھنڈ کھڑے ہیں۔ اب
ہم کہنی باغ کی بڑی اور سب سے پرانی سڑک پر جا رہے ہیں سیدھے ہاتھ پر جامن کے پرانے
درخت ہیں اور دوسری طرف آٹے کے درختوں کی قطار چلی گئی ہے۔ بیچ میں کہیں کہیں چوڑے
پتوں والے بھیرے کے پیڑ بھی ہیں۔ سامنے پھر ایک پرانی مغلیہ طرز کی عمارت کھڑی ہے
جس کے مشرقی اور مغربی پہلوؤں میں سنگ مرمر کے حوض ہیں اور ان میں سرخ مچلیاں تیر رہی ہیں۔
کہتے ہیں اس عمارت میں ہمارا جہر رحمت سنگھ اگر آرام کیا کرتا تھا۔ اب یہاں امرتسر میں نسل کہنی
نے ایک لائبریری بنادی ہے۔ باغ کی سیر کرتے کہیں میں اندر چلا جاتا تو محراب دار چھتوں والے
ٹھنڈے ٹھنڈے کمرے میں ایک بڑی سی گول میز پر کچھ اخبار پڑے جوتے اور کسی کونے میں
کوئی بوڑھا لالہ یا ادھیڑ عمر کا مسلمان مطالعے میں خود ہوتا۔ دوسری جنگ عظیم کے دنوں میں اس
جگہ ایک لوگ ریڈیو سنٹیشن بنادیا گیا تھا جو کہنی باغ میں جگہ جگہ لاؤڈ سپیکروں پر جرموں کے غلغلے
تقریریں سنایا کرتا اور کہیں کوئی شوقیہ فن کار ایک آدھ گیت بھی گاتا۔ شام کو یہاں سے فلمی گانے

نشر ہوا کرتے۔ ان دنوں امرتسر میں فلم انمول گھڑی بڑے زوروں پر چل رہی تھی، چنانچہ کہنی باغ کے
لاؤڈ سپیکروں پر نورجیاں کے گانے نشر ہوا کرتے۔ ایک روز میں بھی یہاں سے سہل کا ایک گیت
گایا تھا۔ اُس کے دونوں طرف ہرے بھرے گھاس کے میدان ہیں جہاں جگہ جگہ بھجوں کے تھتے
ہیں۔ سامنے ٹھنڈی کھوئی ہے جس کا پانی گرمیوں میں برت سے زیادہ ٹھنڈا ہوتا تھا۔ کنوئیں کی
ایک جانب ہندو پانی پلاتے والا بیٹھا اور دوسری جانب مسلمان — پانی دونوں جانب ایک
ہی ہوتا تھا۔ اگر ہم مسلم ہائی سکول یعنی شریف پورے والے پھاٹک سے کہنی باغ میں داخل ہوں
تو سامنے بھائیوں والی نہر کا چھوٹا ٹل آتا ہے۔ اس ٹل پر سے ہم نہر میں چھلانگیں لگایا کرتے تھے
اس کے کنارے ٹل کے پاس ٹوٹ پھوٹ گئے تھے اور نہر کا پاٹ چوڑا ہو گیا تھا۔ یہاں پانی کی تہہ
میں چھوٹے چھوٹے روڑے بہت ہوا کرتے تھے اور چھلانگیں لگاتے جوتے اکثر ہمارے گھٹنے
چھل جاتے۔ یہ نہر کہنی باغ کو جاتی ہے۔ اس کی ایک جانب امرودوں کے وسیع باغ ہیں اور
دوسری جانب کنارے کے ساتھ ساتھ کوٹھیوں کی قطار چلی گئی ہے۔ امرودوں کے باغ میں ہم ایم
اسے اور سکول سے بھاگ کر پناہ لیا کرتے تھے۔ ساری دوپہر ہم باغوں میں آوارہ گردی کرتے
رہتے اور کچے امرود توڑ کر کھاتے۔ جب امرود پک جاتے تو باغ میں رکھوالوں کی ہوبو کی آوازیں
آنے لگتی۔ پھر ہم نہر کی پرلی جانب شہتوت ڈالیں پر اوپڑوں کی طرح لنگ رہے ہوتے اور
پھر کی گرم فصائیں ان کی میٹھی خوشبو جی ہوتی تھی۔

یہاں ایک کوٹھی کے برآمدے میں ستون کے ساتھ عشق پیچاں کی بیل چر رہی تھی جس کے کانی
پھولوں کے سامنے میں ایک ہندو لڑکی کرسی پر بیٹھی کہیں کتاب پڑھا کرتی اور کہیں سوئیٹر بنا کرتی۔
میں ساتویں یا آٹھویں جماعت میں تھا۔ میں اس لڑکی سے عشق کرنے لگا بچپن اور بڑھاپے
کا عشق بڑا ظالم ہوتا ہے۔ لڑکی دہلی تیلی اور بادامی سنگ کی تھی۔ ماسٹے پر سرخ بندیا لگی ہوتی
میں اسکول سے بھاگ بھاگ کر اُسے دیکھنے آتا۔ وہ مجھ سے بڑی تھی۔ ایک روز اس نے
مجھے اپنے پاس بلایا اور میرے سر کے بالوں میں اپنی نازک انگلیاں پھرتے ہوئے پوچھا کہ
میں نہر کنارے بیٹھا اُسے کیوں دیکھتا رہتا ہوں۔ میرے آنسو نکل آئے۔ وہ جلدی سے اندر
گئی اور کانس کی تھالی میں دو لٹو دے آئی۔ اُس نے مجھے لٹو دکھائے اور میرا کان اُستے سے کھینچ کر کہہ

• خبردار جو تم پھر اسکو سے بھاگے •

مگر میرے سر پر عشق کا ثبوت سوار تھا۔ میں ہر روز وہاں جا کر اس لڑکی کے درشن ضرور کرتا۔ ایک روز میں درختوں سے پکتے پکتے امرود توڑ کر اس کے لیے لے گیا۔ اس نے امرود لے لیے اور ہنس کر بولی۔

تمہیں رکھو لے نے نہیں پکڑا •

میں نے کوئی جواب نہ دیا اور اُسے دیکھتا رہا۔ مجھے آج بھی اس کے ماتھے کی سُرخی بندیا اور سفید خوبصورت دانت یاد ہیں۔ اُس نے کاسی ساڑھی پہن رکھی تھی۔ وہ ہنس کر کہنے لگی،
”ہم تو جا رہے ہیں۔۔۔۔۔“

اس اثنا میں اندر سے کسی مرد نے اُسے بلایا اور وہ ”اُئی بھاپا جی“ کہہ کر اندر چلی گئی۔ وہ دوبارہ باہر نہ آئی۔ میں اٹھ کر آنکھوں میں آنسو لیے کہیں باغ کی طرف چل دیا۔ اگلے روز اس کو ٹھی پر تلا پڑا تھا اور ہفتے بعد دوسرے لوگ وہاں آن لے۔ اس کے بعد میں نے اُس ہندو لڑکی کو پھر کبھی نہیں دیکھا۔ اب بھی جب کبھی میں سُرخی انکوری یا قمری شہتوت دیکھتا ہوں تو مجھے اس کے کانوں میں ٹپکتے آویزے یاد آ جاتے ہیں۔ خدا جانے آج وہ لڑکی کہاں ہوگی، اگر وہ زندہ ہے تو اس کا بیاہ ہو چکا ہوگا۔ بچے ہوں گے۔ ہتی ہوگا، اُسے یاد بھی نہیں رہا ہوگا کہ کبھی ایک لڑکا نہر کنارے شہتوت کے پیر تلے کھڑا اس کے برآمدے میں نہکنے کا انتظار کیا کرتا تھا۔ وقت نے اس کی نو عمری کی یادوں کو محو کر دیا ہوگا، لیکن میرے حافظے کی لوح پر یادوں کے نقوش وقت کے ساتھ اُبھرتے چلے آ رہے ہیں۔ اس مٹی میں بوئے ہوئے بیج اب تناور گھنے درخت بن کر میری محبتوں کے پُرانے راستوں پر سایہ کیے ہوئے ہیں۔ ان درختوں کی چھاؤں میں کہیں موتیے کے جھاڑ ہیں اور کہیں جنگلی گلاب کھلے ہیں۔ زندگی کے ایسے پر جب آخری ایکٹ کا پردہ گرے گا تو میں واپس موتیے کی خوشبوؤں سے مہکتے ہوئے اپنی محبتوں کے ان پُرانے راستوں میں نکل جاؤں گا۔ لیکن گم شدہ محبتوں کے خواب آلود جنگلوں میں نہکنے سے پہلے میں آپ کو کہنی باغ کی سیر ضرور کرانا۔ آئیے اب تحصیل پورے کی طرف سے کہنی باغ میں داخل ہوتے ہیں۔

دروازہ وہاں سنگد سے نکل کر جی ٹی روڈ عبور کرتے ہیں تو ایک طرف تحصیل کا دفتر ہے

اور سامنے کونے والی گھنی بیر کی تلے مائی کا کچا مکان ہے۔ اس بیر کی میں بڑے میٹھے لال لال بیر لگتے تھے۔ ہم ڈھیلے مار کر بیر گراتے تو مائی لالٹھی لے کر گالیاں دیتی اندر سے باہر نکل آتی اور ہم مائی کا منہ چڑاتے ایک ڈانگ پرنا چتے، ہنستے شرمچاتے نہر کی جانب بھاگ جاتے۔ مائی کی بیر کی سے خدا آگے ایک طرف ہندو سکھوں کے مکان اور دوسری جانب لوکاٹ کے باغ شروع ہو جاتے ہیں۔ ہندو سکھوں کے مکانوں کے درمیان ایک چھتر ہوا کنواں ہے۔ اب ایک کچی پگڈنڈی لوکاٹ کے باغوں کے بیچ میں سے ریلوے لائن کو جاتی ہے۔ اس پگڈنڈی پر کھٹے اور لمبوں کی ٹہنیوں پر سفید پھول کھلتے ہیں تو سامنا راستہ خوشبو سے نہک جاتا ہے۔ صبح صبح سیر کرتے ہوئے جب میں اس چھتی ہوئی کچی پگڈنڈی پر سے گزرتا تو خوشبوئیں مجھے چاروں طرف سے لپیٹ لیتیں اور مجھے یوں محسوس ہوتا جیسے میں کسی پھول میں سے گزر رہا ہوں۔ لوکاٹ کے باغ میں رستیاں بٹنے والے اپنے تئیں لگائے کام میں مصروف ہوتے۔ درختوں پر کیسری رنگ کی لوکاٹوں کے گچے ٹپکتے ہوئے۔ اب ریلوے لائن سامنے ہے۔ لیون کی جھاڑیوں میں اس کی چمکتی ہوئی پٹری نظر آنے لگی ہے۔ ریلوے لائن کے پار مقبول پورے کی مسجد کے سفید مینار صبح کی سنہری دھوپ میں چمک رہے ہیں۔ سیر سے واپسی پر کبھی کبھی میں اپنے دوستوں کے ساتھ ورزش کرنے کے بعد اس چھوٹی سی مسجد کے سقاوے میں نہایا کرتا تھا۔ ہم نہر کی طرف سے پھلا ہی کی مسواکیں کرتے ہوئے یہاں آتے۔ دھوتیوں کے پودا تھوں میں داب کر لگوٹ باندھ بدن پر تیں ملتے۔ ناخ کی اوپر کوٹھی چھری ٹہنیوں والے درختوں کے پاس ڈنٹر لگاتے۔ ٹونٹوں سے بو کے نکال نکال کر سقاوے میں پانی بھرتے اور سقاوے کے اندر ٹونٹی میں پھنسی ہوئی لکڑی یا مسواک نکال کر ٹھنڈے پانی کی موٹی دھار کے نیچے بیٹھ جاتے۔ مسجد کے باہر کیا یوں میں کیسری رنگ کے گیندے پھول کھٹے ہوتے تھے۔ شریف پورے کے سامنے والی یہ آبادی خالص مسلمانوں کی آبادی تھی۔ ۱۴ اگست کے بعد یہ ٹوٹ بھی شریف پورے میں آ گئے تھے۔ یہاں آگے جا کر ایک نسبتاً کٹ دو بندہ جاتی ہے۔ یہاں درختوں کے سائے اس قدر گھنے تھے کہ آسمان نظر نہیں آتا تھا۔ اس جگہ یک دیران، کنواں بھی تھا جس میں ایک بار میری چٹل گر گئی تھی۔

اب کہنی باغ کو جاتی نہر کی طرف سے ٹھنڈی ہوائ آنے لگی ہے۔ اس ہوا میں مٹھوب جھاڑیوں کی بو ہے۔ اس نہر پر آم کے درختوں کی بو ہے۔ اس نہر پر آم کے درختوں کی چھاؤں ہے۔ یہ چھوٹی نہر ہے۔ اس نہر پر آم کے درختوں

کی چھاؤں ہے۔ یہ چھوٹی نہر ہے۔ یہاں سے مشرق کو ایک فرلانگ کے فاصلے پر دو موٹے ٹھوکے ہیں۔ یہاں ایک مندر ہے جس کے صحن میں ہندو، فسادات کے دنوں سے کچھ پہلے دندڑی کیا کرتے تھے۔ نہر کے پار گاؤں کی آبادی ہے۔ یہ گاؤں مسلمانوں کا ہے۔ کہیں کہیں نیم اور دھریک کے درختوں میں مسجدوں کے مینار نظر آتے ہیں۔ فسادات میں اس گاؤں کی اکثر آبادی شہید کر دی گئی تھی۔ یہاں ایک بار میں صبح سیر کرتے گئے تو گاؤں میں شادی کی ڈھولک بج رہی تھی اور لڑکیاں ڈھولک کی تال پر گارہی تھیں۔

تینوں سفا ہو جان گیاں
بابل دیواں گیاں
وہجے اپنے بابل کی گیاں
خواب ہو جائی گی۔۔۔۔۔

میں لوکاٹ کے گھنے باغ کو جانے والی چھوٹی سی ندی کی بنیاد پر بیٹھ گیا اور دیہاتی لڑکیوں کا ورد بھرا الوداعی گیت سننے لگا۔ میرے قریب ہی زرد لوکاٹوں کا ایک گچھا اپنی ٹہنی کو جھکائے ندی کے پانی کو چھونے کی کوشش کرتا رہا تھا اور ٹیالا پانی مٹی مٹی لہروں کی صورت میں گزرتا چلا جا رہا تھا۔ گیت کے بول صبح کی شبی ہو جائیں کبھی قریب آجائے اور کبھی دور چلے جاتے خدا جانے ان لڑکیوں میں سے کسی کو پاکستان کی سرحد تک پہنچنا نصیب ہوا ہو گا یا نہیں! انہیں کیا معلوم تھا کہ وہ جو کچھ گارہی ہیں وہ ایک دن بچ ہو جائے گا اور انہیں بابل کی پیاری گیاں بابل کا شفقت بھرا پیارا چہرہ خواب ہو جائے گا۔ میں نے لاہور اگر سنا کہ اس گاؤں پر ہندوؤں اور سکھوں نے حملہ کر کے بے شمار مسلمانوں کو شہید کر دیا تھا مجھے وہ لڑکیاں یاد آئیں جو اپنی سہیلی کو دلہن بنا کر ڈھولک کی تھاپ پر اپنی بھولی بھالی آواز میں گارہی تھیں۔

تینوں سفا ہو جان گیاں
بابل دیواں گیاں
وہجے اپنے بابل کی گیاں
خواب ہو جائی گی۔۔۔۔۔

اب ہم نہر کے ساتھ ساتھ چلتے کہیں باغ میں آگئے ہیں۔ یہ نہر اب کہیں باغ کے بیچ میں سے گزرتی ہے۔ یہاں ایک کنارے پر آم کے درخت جھکے ہوئے ہیں اور دوسرے کنارے

پر دو رنگ ناشپاتی کا باغ پھیلا ہوا ہے۔ ہم اکثر نہر پار کر کے اس باغ میں گھس جاتے۔ درختوں سے بگڑے توڑے ٹوڑے ٹکڑے کیڑوں کی جھونپڑیوں میں بھرتے اور نہر میں کود کر ٹھنڈی کھوٹی کی طرف بھاگ جایا کرتے تھے اسی نہر کے پاس لاہور کے گلستان فاطمہ کی طرز کا ایک بڑا ہی خوبصورت پلاٹ تھا۔ یہاں گلاب، گیندا اور طرح طرح کے اعلیٰ قسم کے پھولوں کے تختے تھے۔ جگہ جگہ سنگ مرمر کے بنچے رکھے تھے جن کے پاس مور پنکھ کے پودے سر اٹھائے کھڑے تھے۔ پہلو میں ناشپاتی کا باغ تھا جس کے درخت ہمارے موسم میں سفید اور گلابی پھولوں سے بھر جاتے۔ انہی پھولوں میں، میں اپنی پہلی محبت سے آخری بار جدا ہوا تھا۔ وہ سواری برتنے کا نقاب لٹے گھاس پر نظریں جھکانے بیٹھی اور میں سلی قیسف، گلے کی چارخانہ دھوٹی اور پیر پہنے اس کے پاس بیٹھا تھا۔ ہم دونوں خاموش تھے اور پانسنگ شوکا سگریٹ میری انگلیوں میں سلگ رہا تھا۔ ہمارا جھونکا آتا تو کچھ سفید اور گلابی پھول ٹوٹ کر ہم پر گر پڑتے۔ اس کی ناک میں سرخ رنگ دمک رہا تھا۔ سفید گالوں میں کشمیری سیب کی لالی تھی۔ لپ بٹک سے بے نیاز گلابی ہونٹوں کے اوپر پسینے کے موتی جھللا رہے تھے اور اس کے کپڑوں میں سے سرخ جٹائی گرم، پڑا سرار، سحر خیز خوشبو اٹھ رہی تھی۔ طوطوں کا ایک جھنڈ شور مچاتا ہوا ہمارے اوپر سے گزر گیا۔ میں نے راجہ کا ہاتھ آہستہ سے چھو لیا۔ جس طرح شام کی ہوا گیند کے پھول چوم کر گر جاتی ہے۔ راجہ سمٹ سی گئی اور ہر جب اُس نے نظر اٹھا کر مجھے دیکھا تو اس کی آنکھوں میں آنسو تھے۔ خوشبو گیند سے کے پھول، ناشپاتی کے گلابی ٹکڑے تھے۔ راجہ کی سیاہ آنکھوں میں جھللاتے جنت کے ستارے تھے اور اڑتے پرندوں کے گیت تھے۔ ہم محبت میں جدا ہو رہے تھے اور یوں لگتا تھا گویا یہ ہماری محبت کی ابتدا ہے۔ یہ ہماری آخری ملاقات تھی، لیکن یوں مل رہے تھے گویا پہل بار مل رہے ہوں اور کبھی جدا نہیں ہوں گے۔ محبت کی کوئی ابتدا اور انتہا نہیں ہوتی۔ یہ جس سمندر سے بادل بن کر اٹھتی ہے، قطرہ بن کر پھر اُسی میں جذب ہو جاتی ہے۔ ٹکڑے بن کر جس مٹی سے چھوٹی جہے، بیج بن کر پھر اُسی خاک میں سما جاتی ہے۔ یہ اگر مغرب میں غروب ہوتی ہے تو مشرق میں ایک بار پھر طلوع ہو جاتی ہے۔

امروہ کے باغوں میں طوطے شور مچانے لگے۔ ہم اٹھے اور گھر کی طرف چل دیے۔ پردہ باغ کے پلاٹ میں لڑکیاں جھولے جھلارہی تھیں اور ان کے قبضوں کی آوازیں بلند ہو رہی تھیں۔ پاکستان

میں جانے کے بعد میں اس باغ میں آگئی تو نہ پردہ بھانہ جھوٹے اور نہ باہر وہ مسلمان لڑکیوں کے قہقہے گونج رہے تھے۔ پلاٹ کا گھاس موکھ کر سیاہ ہو رہا تھا اور گاڑیوں کی پانچ فٹ اونچی بارڈر کو کٹ کر زمین کے ساتھ ملا دیا گیا تھا۔ جہاں ناشپاتی کے پیڑ ہوا کرتے تھے وہاں شراب فروشوں نے پتے پتے بدنام مکان بن ڈالے تھے اور جس جگہ میں سنے راجدہ کا ماتہ اپنی انگلیوں سے چھوا تھا اور ہر پر ناشپاتی کے گلابی شگوفے ٹہنیوں سے ٹوٹ کر گرے تھے۔ وہاں ایک موٹی پیللی تو نہ وال ہندو لالہ دھوئی بھری دکان میں بیٹھا میلے میلے پکڑے گل راتھا۔

اب میں اور راجدہ پوکیش کے درختوں میں سے گزر رہے تھے۔ بائیں طرف کہیں باغ کلب کی کافی زدہ دیوار پر ایک باوامی بنی بیٹھی تھی۔ اُس نے بھی گزرتے ہوئے ایک لمبے کے پے دیکھا وہ منہ کھول کر ہنگامی لی اور کلب کی دیوار بھلا نگ گئی۔ کلب کے اندر سے دو ایک بار بلیر ڈکھلنے والی چھڑی کی ٹپ کی آواز آئی اور ہم خاموشی سے اُسے گزر گئے۔ ایک ہفتے بعد راجدہ کا بیہ ہوا گیا۔ وہ دہلی چلی گئی تھی۔ اُس کی طرف نکل گیا۔ پاکستان بننے کے آٹھ برس بعد میں نے راجدہ کو میو ہسپتال میں دیکھا وہ اپنے ساتویں بیمار بچے کی دوا لینے ہسپتال آئی تھی اور میں راشن کارڈ جو اسے راشننگ آفس کی طرف جاری تھا۔ وہاں نہ گرم چنا کی سحر انگیز خوشبو تھی اور نہ ناشپاتی کے گلابی شگوفے نہ میرے بدن پر سڑک قیغ تھی اور نہ۔ راجدہ کی ناک میں عقیق دمک راتھا۔ نہ خوبصورت طے گیت گاتے امرود کے جھنڈوں کو جارہے تھے اور نہ ٹھنڈی نہر کی طرف سے پتے گلابوں کی خوشبو آ رہی تھی۔ رکٹوں، بسوں، ٹرکوں کا شور تھا۔ بیماروں کی چیخیں تھیں۔ زرد مر جاتے ہوئے چہرے تھے۔ چوٹی سے ایڑیوں تک بیتا پسینہ تھا۔ گرمی میں جھلنے درختوں پر بیٹھے ہیا سے کڑوں کی کائیں کائیں تھیں اور بھاگتے، دوڑتے، بگرتے پڑتے، گر گر اٹھتے، اٹھ اٹھ کر گرتے، مرتے ہوئے لوگوں کے ہجوم تھے۔ راجدہ کے ہاتھوں میں مہند کی جگہ بیمار بچہ تھا۔ درمیان میں گلاب کے شگوفے کی جگہ راشن کارڈ تھا۔ راجدہ نے مجھے پہچاننا نہیں سنے راجدہ کو پہچانا۔ وہ بیمار بچے کو لیے اور میں راشن کارڈ کو لیے اُسے گزر گیا، پھر جیسے یادوں کے جنگل میں کسی نے ہم دونوں کو آواز دی۔ ہم نے پیٹ کر ایک دوسرے کو دیکھا۔ ایک پل کے لیے ہم ٹھنکے، اُسے اور پھر مل دیے۔ اُسے اپنے بیمار بچے کے لیے دوا لی تھی اور مجھے اپنی بھوٹی بہنوں کے لیے مال داتا تھا۔

اے میری محبت، میرے پھول، میری یادوں میرے درختوں، میری نہروں، میرے شگوفوں کی ناک کی! تجھے کس نے پتھر کی دیوار میں زندہ چن دیا؟ اے میری محبت!

اب کے بچے کب میں گئے؟

اے میری محبت! اے میری محبت!

راجدہ کا مکان گل میں ہمارے مکان کے سامنے تھا پڑانے چھتے والے مکان، کھڑکی پر چتر پڑی رہتی۔ میں گل میں سے گزرتا تو راجدہ چتر کی تیلیوں میں دو انگلیوں ڈال کر اُسے ذرا سا اپنی طرف کھینچتی اور مجھے گل میں سے گزرتے دیکھتی۔ میں بالوں کو جھٹکنے کے بہانے اُسے دیکھتا۔ گلابی ناخنوں والی دو گوری انگلیاں اور سیاہ آنکھیں مجھے نظر آتیں اور میرا چہرہ خوشی سے کھل جاتا۔ میں گل مڑتے ہوئے پیٹ کر اُسے نکلتا۔ وہ چپس کی اوٹ میں مجھے تک رہی ہوتی۔ دوسرے مجھے اُس کی چپکی آنکھیں اور کان میں دمکتا ہوا آدیزہ دکھائی دیتا اور گل والی مسجد کے گنبد پر سفید کبوتر چکر لگا رہے ہوتے۔ برسات کی جھریاں لگتی تو وہ اپنے مکان کی چھت پر سے میری طرف آم پھینکتی اور میں انہیں دبوچ لیتا۔ کسی وقت جب وہ آم چوس کر گھٹل میری طرف پھینکتی اور میں اُسے آم سمجھ کر شوق سے ہاتھوں میں دبوچ لیتا تو وہ ہنسی ہنسی کر دوہری ہو جاتی اور اسے بار بار اپنے بھیکے ہوئے لمبے بال اوپر جھٹکنے پڑتے۔ عید شہرات پر جب وہ کرن گوٹ لگتے تھے نوپے کپڑے پہن، عطر لگا کر میری بہنوں سے ملنے آتی تو ہم چپ چپ کر آنکھوں میں آنکھوں میں ایک دوسرے سے باتیں کرتے۔ اور ہمارے چہرے خوشی سے دمک اٹھتے۔ شادی بیاہ میں وہ ڈھولک پر گیت گاتی تو میں کسی نہ کسی بہانے کمرے میں جا کر اُسے گاتے ہوئے دیکھتا۔ اُس کے مہندی لگے گورے ہاتھ ڈھولک بجا رہے ہوتے تو بصورت سیاہ بالوں والا سر ایک طرف کو ذرا سا جھکا ہوتا۔

کبھی میں اس کے گھر جاتا تو وہ کیسے رنگ کی گرم کشمیری شال اوڑھے پنگ پر بیٹھی سوئی رہتی رہتی ہوتی اور یا ٹکین بیز چانے پی رہی ہوتی۔ سبز پھولوں والی جاپانی پیالی اُس نے نہ رک گلابی انگلیوں میں مقام رکھی ہوتی۔ ہونٹوں کا پھول چانے کا ٹھونٹ لیتے وقت سمت کر شوق میں جاتا۔ سبز خوشگوار چانے حلق سے امارتے ہوئے وہ آنکھیں بند کر لیتی پھر بڑی بڑی ریشمی پکیں بٹا کر مجھے دیکھتی اور ذرا سا مسکرا کر چائے پینے لگتی اور کھڑکی سے باہر جنور کی تیز بارش اور تیز موباتی اور

سبز چائے کی ملک اپنے ساتھ اڑا کر ان پہاڑوں پر لے جاتی جہاں چنار کے درختوں پر سفید ہوت
گر رہی ہوتی۔

گرمیوں کے موسم میں منہ اندھیرے راجدہ کے گھر کے نکلے میں بانی آتا تو اس کے نیچے رکھی
ہوئی عالی بالٹی شور مچا دیتی۔ یہ صبح کے چار بجے کا الارم تھا۔ راجدہ کی ماں اور بہنیں فوراً اٹھتیں۔ محلے
کی دوری عورتوں کو گھروں میں جا کر جگایا جاتا اور یہ ٹولی سیر کرنے کہنی باغ کی طرف چل پڑتی۔ راجدہ کا
ادھیر عمر کلکتی چچا اس ٹولی کی قیادت کرتا۔ وہ کلکتے میں بیس برس تک شالیں بیچتا اور جوا کھیتا کرتا تھا۔
اور اب امرتسر میں رفوگری کرتا تھا۔ تانبے ایسی رنگت، گنجا سر، چہرے پر جھڑکیاں، سخت مزاج، الکھڑ
بات بات پر گالی، جیسے کے جسے ڈاڑھی منڈواتا۔ فارسی کے ان گنت نصیحت آموز شعر اسے اڑ رہے تھے
اور ہر شعر کو وہ شیخ سعدی کی طرف منسوب کر دیتا۔ مجھے اچھی طرح یاد ہے وہ اکثر اردو اور پنجابی کے شعر
بھی یہ کہہ کر سنایا کرتا تھا کہ یہ شیخ سعدی نے کہے ہیں۔ اس کا جادو وہ یہ دیا کرتا کہ شیخ سعدی سیلانی
آدمی تھا۔ وہ پنجاب میں آیا تو اس نے پنجابی سیکھی اور پھر پنجابی میں شعر کہے۔

صبح کی جھلکی میں روشنی پھیل رہی ہوتی کہ ہم کہنی باغ میں داخل ہوتے۔ نیلے آسمان پر مشرق کی
طرف نورانی جھلکیوں میں ستارے موتیوں کی طرح چمک رہے ہوتے۔ باغ کی مسجد سے اذان کی
آواز بلند ہوتی تو چچا نہر کے کنارے بیٹھ کر اونچی آواز میں کلمہ شریف پڑھتے ہوئے زور زور سے کھانسی
کھانسی کر دھنکرتا اور سنگ مرمر کے پنج پر نماز پڑھنے لگتا۔ عورتیں اور بچے نہر میں چھلانگیں لگانی شروع
کر دیتے۔ پو پھٹے کی نیم روشن نیم تاریک دفقا میں نہر کا ریتلا ٹھنڈا پانی پر سکون خاموشی سی سرگوشیاں
کرتا بہہ رہا ہوتا۔ ہوا میں شبنم کی ٹھنڈک اور کچے امرودوں کی خوشبو مچی ہوتی۔ لوچے کے پیڑوں کی
ٹہنیاں گھاس پر اوس پٹکار رہی ہوتیں۔

عورتیں ناشپاتی کے پیڑوں کی اوٹ میں نہاتیں۔ مشرق میں صبح کا ستارہ نمودار ہوتا۔ آسمان پر نیلی
روشنی کا غبار مشرق سے مغرب کی طرف پھیلتے لگتا۔ باغ میں یہاں وہاں سیر کرنے والوں کے بیویوں
و کھانی دینے لگتے اور ہم لوگ واپس اپنی گلی میں آ جاتے۔ ہم اپنے ساتھ بچوں کے گدے بنا کر
لاتے۔ گلاب، چنبیل، مولسری اور ناشپاتی کے گلابی پھولوں کے دستے۔ کسی رقص ہم آواز کے کی سفید
پھولوں بھری ٹہنیاں ہی توڑ کر رہے آتے۔ ہم اونچے مکانوں میں گھری ہوتی اپنی گلی میں داخل ہوتے

تو ہمیں گلی ماہ گھنسی سی محسوس ہوتی۔ ہمارے کپڑوں میں شبنم کی ٹھنڈک محسوس اور شگفتہ پھولوں اور تر تازہ
سبزے کی جھلک اٹھ رہی ہوتی ایک دن راجدہ نہر میں سے ہٹا کر بال بچہ لڑتی ہوئی باہر نکل تو ہم مولسری کے
درخت تلے بھول چھنے لگ گئے مولسری کے گول گول ننھی ننھی کر فوں والے پھول اندھیرے میں زمین
پر تاروں کی طرح بچھے ہوئے تھے۔ ہم نے بہت سے پھول اکٹھے کر لیے۔ میں نے اپنے پھول
بھی راجدہ کے دوپٹے میں ڈال دیے۔ ان پھولوں میں سے بڑی گہری اور شیریں خوشبو آ رہی تھی۔ راجدہ
مسکرائی۔ اس کے سفید دانت پچھلے پہر پڑے تھے کے اندھیرے میں ناریل کی دودھیا گری کی طرح نظر آتے
اس نے گیلے بالوں کو جھٹک کر پیچھے کیا تو میرے منہ پر نہر کے ٹھنڈے پانی کی پھوار پڑی۔ اب اس
پھوڑ میں جہاں خوشبو بھی تھی۔ ٹھنڈی کھوئی والی مسجد کی طرف سے اذان کی صدا بلند ہوئی۔ چچا دھنک رہے
تھے۔ ہم دیر تک پھول توڑ توڑ کر گدے سے ہناتے رہے اور جب ہم اپنی گلی کی طرف واپس جا رہے تھے
تو کہنی باغ کی جادو بھری خوشبو میں ہمارے ساتھ ساتھ تھیں۔

کہنی باغ والی مسجد ٹھنڈی کھوئی کے پہلو میں تھی۔ یہ چھوٹی سی خوبصورت مسجد پختہ اور چمکے
پتھروں سے بنائی گئی تھی۔ شام کو مسلمان سیر کرنے آتے تو وہاں باجماعت نماز ادا کرتے۔ پاکستان
بننے کے بعد جب میں امرتسر گیا تو یہ مسجد دیوان ہو چکی تھی۔ لوگ اس کے پتھر اکھاڑ کر لے گئے تھے اور
اس کے مسمیٰ میں لمبی لمبی جنگلی گھاس اگ آئی تھی۔ گدے ہوئے ستونوں کے اوپر گہریاں بھاگ دوڑ رہی
تھیں۔ خرابوں کی پتھر ملی جھاڑیاں توڑ پھوڑی گئی تھیں۔ پوکھلش کے درخت اپنی سوگوار ٹہنیاں جھکائے
مسجد کے کھنڈروں کو چشم حیرت سے دیکھ رہے تھے۔

ہمسایہ تو فون مسلمان کا ایک ہے

مانند حرم پاک ہے تو میری نظر میں

بوشیدہ تیری خاک میں مسجدوں کے نشاں ہیں

خاموش اذانیں ہیں تیری بادِ سحر میں

کہنی باغ کی مسجد کے کھنڈر قرطبہ کی مسجد کا ماتم کر رہے تھے۔ غزنائے کے بعد امرتسر کی بڑی
ہوئی مسجدیں ایک بار پھر مسلمانوں کی درد انگیز ہجرت کا المیہ دہرا رہی تھیں۔ وہ اپنے پتھر بے
خبر و خراب کے سینے چاک کیے ہم سے پوچھ رہی تھیں کہ ہم انہیں کیوں چھوڑ گئے! لیکن کے

جانیں اٹھا اٹھا کر کھاتے۔ نہر کی طرف نکل جاتے تو آم اور امرود کے درختوں پر ٹوٹ پڑتے۔
 رکھو اے چوکس ہو کر ہماری طرف پکٹتے تو ہم ہرنوں کی طرح چوڑیاں بھرتے نظروں سے اوجھل ہو
 جاتے۔ جو سڑک میڈیکل کالج کو جاتی تھی اس پر جان کے پیڑوں نے چھت ڈال رکھی تھی۔ کالج
 کی گراؤنڈ بڑی سرسبز تھی۔ کنارے کنارے چاروں طرف آم کے گھنے درختوں کا سایہ تھا۔ سڑک
 کے پار رڑکیوں کا ہوسٹل تھا۔ یہاں ہندو سکیم رڑکیوں کے علاوہ بٹالہ، گورداسپور، پٹھانکوٹ اور ہوشیار
 پور سے تعلیم حاصل کرنے آئی ہوئی مسلمان رڑکیاں بھی رہتی تھیں۔ اس علاقے میں اکثریت سکھوں کے
 ہنگوں کی تھی! چنانچہ امرتسر میں جب مناسات کا شعلہ بھڑکا تو اس ہوسٹل سے بہت کم مسلمان رڑکیاں
 نکل کر ٹرین پورہ کیمپ میں آسکی تھیں۔ وہ کہاں گئیں! وہ کہاں ہیں! اس کا جواب نہ میرے پاس
 ہے اور نہ ان لیڈروں کے پاس جو امرتسر کی انجمن پارک اور گول باغ میں دھواں دھار تقریریں
 کیا کرتے تھے اور جولاہور میں آج ایئر کنڈیشنڈ ڈرائینگ روموں میں نیم دراز اپنے سیکڑیوں
 کو تازہ بیان قلمبند کر رہے ہیں۔

ایگزینڈا گراؤنڈ، درینگر پارک میں ڈی اے دی کالج، ہندو صبحا کالج اور گرینٹ کلب
 اور ایم اے او کالج کے درمیان کرکٹ میچ ہوا کرتے تھے۔ ہم ایم اے او اسکول میں پڑھتے تھے
 چنانچہ میچ کے روز چھٹی ہوتی۔ ہم بستے گھروں میں پھینک میچ دیکھنے کہنی باغ پہنچ جاتے۔ زندہ دھان
 امرتسر، جوم درجوم یہاں آئے ہوتے۔ قلمچھو لے، قمیے کے پکڑے اور نان ہر لیسہ عام بک رہا ہوتا۔
 سردیوں کی خوشبودار چکیلی دھوپ میں لوگ منڈیاں بناتے، مدیاں اور قالین بچھائے بیٹھے
 میچ دیکھ رہے ہوتے۔ سبز سبز میٹھی مولیاں بیچنے والے گراؤنڈ سے چکر لگا رہے ہوتے۔ پہنچ کا وقت
 ہوتا تو ایک کس کر باندھی ہوئی پگڑی وال سکھ ہاتھ سے گھنٹی بجاتا ساری گراؤنڈ کا چکر لگا۔ لوگ
 ہنستے، مذاق کرتے کھیل پر تہرہ کرتے اور پھر کھانے پینے میں مشغول ہو جاتے۔ ہم گراؤنڈ میں دوڑیں
 لگانا شروع کر دیتے، درختوں سے پتے توڑ توڑ کر ان کے تاج بناتے۔ اسی بھاگ دوڑ میں امپیریل
 ہوسٹل کی طرف نکل جاتے جس کے صحن میں بوڑھے انگریز آرام کر سکیں پر نیم دراز اخبار پڑھ رہے
 ہوتے۔ وہ ہمارے شور غل سے تنگ اگر وہ دی پوشی بیروں کو ہماری مزیت کو بھیجتے۔ مگر ہم جان
 چہ بند امرتسر کی کشمیری رڑکے بھلا ان کے ہاتھ کب آنے والے تھے۔

شام کو کرٹل ہوسٹل کے کینوں کی روشنی باہر آئے کے پانی میں جھلایا کرتی۔ ہم نالے کی چھٹی سی
 بنیا پر بیٹھے لوگوں کو شیشوں کے پیچھے آئیں کریم کھاتے اور چائے پیتے دیکھا کرتے۔ ایک بار ہم سب
 رڑکوں نے آپس میں چندہ کر کے وہاں جا کر آئیں کریم کھائی اور ان کے دو گلاس توڑ کر بھاگ آئے۔
 باغ کی لاٹری کی وال گراؤنڈ میں سردیوں میں پھولوں کی نمائش لگا کرتی۔ مختلف رنگوں کے
 گل داؤدی کے سیکڑوں گئے بڑے قرینے سے سجادیے جاتے۔ سخت کالروں میں بھنسی ہوئی تھی
 گردنوں والے افسر بیڈ مایوں کے ساتھ گوم پھر کر پھولوں کا معائنہ کرتے اور نوٹ بک میں کچھ لکھتے جاتے
 —۔ تپکھلے پیرافان سے پہلے میں سیر کرتا اس گراؤنڈ میں پہنچنا تو گل داؤدی کے پھول ٹھنڈی سبب شبنم
 سے تر تر ہوتے۔ تاروں کی جلی جلی نورانی روشنی میں یوں گت جیسے بے شمار دھاتی گڑیاں اپنے رنگ برنگ
 ریشمی بال لٹکائے گلوں میں کھڑی ہیں۔ میں دونوں ہاتھوں میں گل داؤدی مقام کر اپنی آنکھیں گرم ہو جاتی
 اور نیم گرم سونے کی خوشبو میرے رگ و پے میں سرایت کر جاتی۔ پھر ٹھنڈی کھوٹی کی جانب آم کے جھڑوں
 کے پیچھے سورج طلوع ہو جاتا اور زندہ سفید، پگ، قرمزی اور گلابی گل داؤدی کے پھولوں پر شبنم کے قطرے
 زرد و جاہر بن کر دکھ اٹھتے۔ ایک ایک شبنم کے موتی میں سیکڑوں سورج طلوع ہوتے دکھائی دیتے
 میری آنکھوں کی شبنم سے سورج کی سنہری کرنیں ٹکرا کر پھولوں کی شبنم پر منعکس ہوتی اور وہاں سے پھر میری
 آنکھوں میں آکر چمکنے لگتی۔ گویا میں ہزاروں سورجوں کے بیج میں سورج بن کر پھولوں، شبنم کے موتیوں
 موتیوں کے سورجوں اور کہنی باغ کے درختوں، شاخوں، شگوفوں کے نور کے گرد گھوم رہا ہوں۔ میں
 طلوع ہوتے آفتاب کی لٹائی کرن بن کر سورج کی خوشبودار فضاؤں میں تحلیل ہو جاتا۔

کہنی باغ میں سورج آج بھی طلوع ہوگا، لیکن صبح کسی نہیں ہوتی ہوگی۔ مساند میرے شبنم
 پھولوں پر گرتی ہوگی مگر ان کا منہ نہیں چومے ہوگی۔ باد بھرا نہیں یاد کرتی درختوں پر ہماری چھتوں
 کے نشانوں کو بوسہ دیتی چپ چاپ گزر جاتی ہوگی۔ سادوں کی گھٹائی باغ کے آسمان پر بھی اٹھیں
 دے دے کر گرجتی ہوں گی۔ بارشیں اُجڑی ہوئی مسجدوں کے شکاف زدہ گنبدوں اور خزاں نصیب بیڑوں
 پر روتے ہوئے برسی ہوں گی۔ ٹھنڈا زرد چاند آم کے درختوں پر ٹھوڑی رکھ کر دیریں باغ میں ہیں تلاش
 کرتا ہوگا اور نیر کا پانی پھسل شب کی نورانی روشنی میں کناروں کی گھاس پر بے ہنگام اپنی آبی سسکوں سے
 ہیں دیکھنے کی بے سند کوشش کرتا ہوگا۔

آخروہ خوبصورت، خوش پوش لوگ کہاں چلے گئے! کہنی باغ ضرور سوچتا ہوگا۔ اسے کیا معلوم کہ پت
جہڑ میں سوکھے پتے جس ٹہنی سے ٹوٹتے ہیں اس کے نیچے کبھی نہیں گرتے۔ ہوا میں چکر کھاتے، جہڑی
کے بے آواز نوحے پڑھتے، وہ ایک سسکی کے ساتھ زمین پر آکر بچھ جاتے ہیں اور پھر ہوا انہیں جدھر
کو چاہے اٹھا کر لے جاتی ہے۔

میں کہنی باغ کے درختوں کے پتوں کے ساتھ کئی بار ٹوٹ کر گرا ہوں اور ہوائیں مجھے اڑائے لئے
پھرتی رہی ہیں۔ میں بھی تو ایک ہوں۔ جانے کس شاخ سے ٹوٹا کس سرزمین کی خاک پر آکر بچھ گیا وہ
اب ہوائیں کس دیس کو اڑائے لیے پھر رہی ہیں! کیا اب کبھی اپنی شاخ سے لگ کر بھول کھلتے دیکھنے
نصیب نہ ہوں گے؟

کہنی باغ! میں تجھے ہمیشہ یاد رکھوں گا۔ اُن پرندوں کو یاد رکھوں گا جو صبح دم تیرے درختوں
کے جھنڈوں میں چھپایا کرتے تھے اور اُن کوٹوں کو جو ساؤن کی سیاہ کالی بھینگنی راتوں میں نام کے پیرلوں
میں بولا کرتی تھیں اور لوکاٹ کے اُن نند گچھوں کو جو تیری نہر کے شفاف پانیوں میں جھک کر اپنا عکس
دیکھا کرتے تھے اور اُن گلابی شگوفوں کو یاد رکھوں گا جو بہار میں تیری ناشپاتی کی ٹہنیوں پر کھلا کرتے
تھے اور اُس اذن کو یاد رکھوں گا جو تیری مسجد کے گنبد سے بلند ہوا کرتی تھی اور اُن نورانی چہروں کو جو
تیرے معنوں میں نمازیں پڑھا کرتے تھے۔ میں اس لیے یاد رکھوں گا کہ مجھے یہ سب کچھ تجھ سے
واپس لینا ہے اور تو اُس لیے یاد رکھنا کہ ایک دن تجھے یہ ساری امانتیں بھییں واپس کرنی ہوں گی۔

میرے غرناطہ! میرے اندلس! میرے قرطبہ! ہم تیرے دریاؤں میں ڈوبے ہوئے اپنے موتیوں
کی غلامی کرنے ایک دن ضرور آئیں گے۔ ہم اپنے تاج، اپنے زبرہ بکتر اور اپنی تواریں اُسے عالی نسبوں
کو دلانے کے لیے عجائب گھروں میں نہیں رکھیں گے۔ ہم اللہ کے نام پر اپنی تلواروں کو بے نیام کریں گے
اور اللہ کے لیے تجھے ایک بار پھر حاصل کریں گے۔ ہماری مسجدوں کے میناروں، ہمارے عظیم کتب
خانوں کے گنبدوں اور ہمارے الحرا کے باغات کے پھولوں بھرے تختوں پر سورج کو طلوع ہوتے
دیکھ۔ اپنی سبز پوش وادیوں کی نفاذوں میں ہمارے رجزید اشعار کی آگے بڑھتی ہوئی آواز سن! اور
اپنے قلعوں کی رنگ خورہ فصیلوں پر کھڑے ہو کر دور گردوغبار میں ہمارے شہسواروں کی چمکتی ہوئی
تکداریں دیکھ اور اپنی خندقوں پر پل گرا دے اور شاہی قلعوں کے دروازے کھول دے۔

میری کھڑکی سے اب سرفیدے کے درختوں میں سُرخ زہرہ سیارہ انگارے کی مانند دھکنے لگا ہے
اس سیارے نے میرے چہرے کو سُرخ کر دیا ہے اور یہ سُرخ ہی ہے عفت، غیرت اور شکوہ کی
دودھیا گنبدوں کو چمکاتے سورج طلوع ہو رہے ہیں۔ پتے ٹوٹی ہوئی تلواروں کے قبضوں پر جمے
ہیں۔ گرد آلود پاؤں رکابوں میں پیوست ہیں اور صباگ اڑاتے، مہنہ ہاتھ گھوڑوں کی گردنیں تنی ہیں
ڈوبا ہوا سورج روشنی کے تحت پر بیٹھا ایک بار پھر مشرق سے ابھر رہا ہے۔

طلوع ہو! طلوع ہو! اے میرے اللہ کی عظیم نشانی! میں اندھیروں میں کھڑا ہوں اور
تیرے طلوع ہونے کا وقت اُن پہنچا ہے۔

کون سی منزل میں ہے کون سی دلیلیں
عشق بلا خیر کا قافلہ مسخست ہاں

امر تسر کی ایک گلی

پاکستان بن جانے کے سات آٹھ برس بعد جب میں پہلی بار امر تسر گیا، تو بال بازار والے سندھ شکار پور ہوئی میں ٹھہرا۔ کل امر تسر میرا گھر تھا، لیکن آج وہ مجھے اجنبیوں کی طرح دیکھ رہا تھا۔ میں بھی وہاں اجنبی تھا۔ سیکھ اور ہندو دوستوں کے گھر ٹھہرنا مجھے پسند نہ تھا۔ اس لیے کہ ان کے گھروں سے ہمیشہ ایک خاص قسم کی بو آتی تھی، جو مجھے ناگوار تھی۔ میں پوچھے ہوئی سے نکلا اور کمپنی باغ کی سرکرتا ہوا اپنے محلے کی جانب آگیا۔ اپنی گلی میں داخل ہوا، تو امر تسر کی صبح کا اجال چاروں طرف پھیل چکا تھا۔ سب سے پہلا فرق جو میں نے گلی میں داخل ہوتے ہی محسوس کیا وہ یہ تھا کہ کسی بھی مکان کی کھڑکی یا دروازے پر جتنی نہیں تھی۔ پر وہ داری اور حیاداری مسلمانوں کے ساتھ ہی پاکستان چلی گئی تھی۔ چتوں کے بغیر کھڑکیوں پر مجھے ان حیا بافتہ آنکھوں کا گمان ہوا جن کی ہلکی غائب ہو چکی ہوں۔ اکثر مکانوں کے پٹ کھلے تھے اور دیوڑھیوں سے دالانوں تک نظر جاتی تھی۔ آٹھ برس پہلے یہ گلی ایک برقعہ پوش خاتون تھی اور آج کسی طوائف کی طرح کھڑکی میں بیٹھی راہ چلتوں کو اشارے کر رہی تھی۔

مکانوں کی حالت خستہ بود ہی تھی۔ دوسری منزلوں کے چبھے مزید جھک گئے تھے۔ مٹیوں مٹیوں پر ڈھے چکی تھیں۔ رقیقہ کے مکان کا دروازہ کھلا تھا اور جس دیوان خانے میں وہ ٹھہرادیوں جیسے وقار کے ساتھ قالین پر بیٹھ کر سنی مشین پر اپنی ویڑٹ کی قیض سیا کرتی تھی وہاں اب ایک گھنٹے بندھی تھی۔ میں نے مکان کے آگے سے گزرتے ہوئے رضیہ کو یاد کیا، تو گائے نے گردن گھما کر میری طرف دیکھا۔ میں نے گائے سے پوچھا "ان گھروں میں سرگوشیوں میں باتیں کرنے والی اور بے داغ میز پرشوں پر نیلے خوبصورت پھول کاڑھنے والی شریف زادیاں کہاں چلی گئیں آگائے

نے کوئی جھب نہ دیا اور میں حاجی قمر الدین شال مرچنٹ کے مکان کو نکلنے لگا۔ جس کی قیسری منزل کے چبھے پر اخروٹ کی ٹکڑی کا کام کیا گیا تھا۔ وہاں اب سوائے جے کے ڈھیر کے اور کچھ نہ تھا۔ مسجد عبدالنور کے صحن کو توڑ کر وہاں پیل کا درخت لگا دیا گیا تھا۔ محرابوں پر "اوم" لکھا تھا اور منبر پر کرشن کی مورتی رکھی تھی۔ اس مسجد کے سامنے بہلا مکان تھا۔ بہلا پہلا مکان۔ جس کے دیوان خانے میں بیٹھ کر میں خلیل جبران کے ترجمے پڑھا کرتا تھا اور جس کے آگے تخت پر سا اور گرم کیے میرے دادا جان اپنے دوستوں کے ساتھ بیٹھے کشمیری چائے پیا کرتے اور پہلوانوں، دنگوں اور مشہور کشتیوں کی باتیں کیا کرتے۔ جس کے دالان میں موسیٰ، رجن جو اور عیش بیجاں کے گلے رکھتے ہوئے تھے اور گرمیوں کی راتوں میں موسیٰ کی میٹھی خوشبو سے سانا گھر تک جاتا۔ اس مکان کو میں پہچانہ سکا۔ اس کا دروازہ اکھڑ چکا تھا۔ دوسری منزل غائب تھی۔ جس دیوان خانے میں بیٹھ کر میں خلیل جبران کی کتابیں پڑھا کرتا تھا، اس کا ادھاپٹ کھلا تھا اور اندر ایک بوڑھی ہندو عورت فرش پر گائے کے گوبر کا لپ کر رہی تھی۔ جہاں میرے دادا جان تخت پوش پر سا اور گرم کیے کشمیری چائے پیا کرتے تھے وہاں ایک بوڑھی دولا ہندو لالہ باسی پکڑوں کی چھابڑی رکھے سینا رام سینا رام کا چل کر رہا تھا۔

ماسٹر رفیق سٹار کی دکان میں ایک موٹی توند والا سکھ حلوئی بیٹھا اپنے گندے گندے ہاتھوں سے لسی بنا رہا تھا۔ ماسٹر رفیق بڑا صاف ستھرا نوجوان تھا۔ وہ دکان کو شیشے کی طرح جھکائے رکھا۔ دیوار الٹی پالتی ماسے بیٹھا لاکھ میں جڑی سونے کی انگوٹھی میں لگے جڑا ہوتا۔ اس کے بال سدری تھے، آنکھیں شفاف اور بے داغ تھیں۔ طانت صحت مند مونگ پھلی کے ندی مائل سفید دانتوں کی طرح ہموار اور مہترے تھے۔ صلم کہتے مجھے ساتھ ہی ساتھ یہ نعت بھی پڑھتا جاتا۔

نئی جی کرو سٹار ڈکھیا ریاں نوں

محببت دودھ غم دیاں ماریاں نوں

اسے ہم ماسٹر سہیل بھی کہا کرتے تھے۔ وہ محلے کی نعتیہ پارٹی کا صدر بھی تھا۔ ان دنوں میں بھی میلاد کی محفلوں میں نشک پڑھا کرتا! چنانچہ ماسٹر رفیق مجھے ہر محفل میلاد میں اپنے ساتھ لے کر جاتا۔ قمری پھول دار دھال میرے گے میں ہوتا جسے میں نعت پڑھتے ہوئے سرچ کر لیتا۔ جازم پر طشتوں میں پھل سٹائیاں، چھوڑا رے، کھانے سبجے ہوتے۔ آٹا بھرے پیالوں میں لگی ہوئی اگر بیاں اپنا خوشبودار

دھواں پھیلا رہی ہوتی۔ تنواری تنواری دیر بعد کوئی الہی فضل گلاب دانی بے اعتناء اور ہم پر گلاب کا عرق چھڑک دیتا۔ نعت پڑھتے ہوئے میری آنکھیں بند ہوتی۔ جب گلاب کے عرق کا ٹھنڈا اور خوشبو دار قطرہ میری بند پلکیں، ہونٹوں اور گالوں پر پڑتا، تو مجھے روحانی سرور ملتا۔ محفل میلاد سے واپسی پر یہیں الگ الگ تبرک ملتا ہے ہم اپنے اپنے رومالوں میں باندھ لیتے۔

ماسٹر رفیق کی دکان پر اس کے دوست بیٹھے اکثر سہل کائن بال، ماسٹر نثار اور اس دور کے مشہور فلم ایکٹروں کی باتیں کیا کرتے۔ دراصل ماسٹر رفیق کو فلم میں کام کرنے کا بھی بہت شوق تھا۔ وہ خوش شکل تھا۔ آواز سُرلی تھی۔ اس کا خیال تھا کہ اگر نئی تصویر فلم کہنی والے اسے بلا لیں، تو وہ سہل سے کم ثابت نہیں ہوگا۔ نئی ہر روز صبح سامنے والی مسجد کے سقاوے میں نہایا کرتا۔ ماسٹر رفیق بھی روزانہ اسی مسجد میں آکر نہایا کرتا۔ وضو کرنے والی ٹونیوں کے سامنے بیٹھا وہ کتنی ہی دیر مسواک کرتا۔ پھر کالی نوں ٹونہ پیسٹ سے رگڑ رگڑ کر دانتوں کو صاف کرتا۔ اس کے بعد سقاوے میں کس اور پام ایو صابن سے خوب مل کر نہاتا۔ مصیبت یہ تھی کہ اس کا رنگ گہرا سا نواں تھا اور اس کی بڑی خواہش تھی کہ کسی طرح وہ گونا جو جائے۔

سنو کہ سردی گراؤند میں ایک تعمیریل کمپنی نے آکر قبور لگائے۔ تو خدا جانے کس کی سفارش سے ماسٹر رفیق کو ایک روز وہاں کی کوئی انتہا ہی نہ تھی۔ رات کے بار بجے تعمیر سے گھر واپس آیا تو نہ پر لگی سڑخی پاؤڈر سمیت ہی سو گیا۔ صبح مسجد میں آیا۔ تو لوگوں نے پوچھا۔

ماسٹر! یہ مشہور کیا گیا ہے؟
"میک آپ ہے اور کیا ہے؟"

اس میں کوئی شک نہیں کہ ماسٹر رفیق اپنے اور اپنی دکان کے میک آپ کا ہر لحظہ خیال رکھتا تھا مگر آج اس کی دکان کا میک آپ اجڑا چکا تھا۔ جس جگہ وہ قالین کا ٹکڑا بچھا کر اسے ہر روز فرش سے صاف کیا کرتا تھا وہاں آج چوکی پر میل سے بھرا ہوا بوریا بچھا تھا جس پر میل کچیل تو ندیل سیکھ بیٹھا، لسی بنا رہا تھا۔ میں آگے نکل گیا۔ گھرے جولاہے کے مکان کی ڈیوڑھی ڈھکے گئی تھی۔ پچھلے دروازے پر مورخ دار بوریا پڑا تھا جس کے آگے جھنگا سی چارپائی پر ایک بیار بوریا بندھ لیٹا کھانسی راتھا، مگر اب وہ شالوں کی رونگی کا کام کرتا تھا۔

گل خان بڑے بڑے گل چھوں والا ادھیر عمر آدمی تھا۔ جس کا گلی کے پچھلے کونے میں چائے خانہ تھا۔ چائے خانہ دراصل برائے نام ہی تھا۔ وہ اپنے چوباسے پر جوا کر داتا تھا۔ ہر جمعے کی جمعے فتم شریف بھی کرواتا اور ردو کر گزرا کر خدا سے اپنے پچھلے ہفتے کے گناہوں کی معافی مانگتا۔

مسجد خیر الدین کے جلگاتے صحن میں ہم مولانا غلام محمد ترنم اور مولانا عطار اللہ شاہ بخاری کی پرجوش اور ایمان افروز تقریریں سنا کرتے تھے۔ آج اس کی محرابوں میں درازیں پڑی تھیں۔ صحن والا حوض خشک ہو چکا تھا جس میں جال لگا کر دو سکھ لڑکے چڑی چھینکا کھیل رہے تھے۔ وضو کرنے والے بڑے نلکے کے ساتھ ایک گائے بندھی تھی۔

مسجد جان محمد میں لائل پور کے سکھوں نے ڈیرے ڈال رکھے تھے۔ خطیب مسجد مولوی سلام بیام مرحوم و مغفور کے حجرے میں ایک سکھ مرت کچا پہنے چارپائی پر بیٹھا اپنے گندے بالوں میں لنگھا کر رہا تھا۔ میری آنکھوں میں مولوی سلام بابا کا بھرا بھرا شیرایا گول پرنور کشمیری چہرہ گھوم گیا۔ ان کی بارعب کڑک دار آواز مسجد میں گونجا کرتی تھی۔ حضور نبی اکرم صلی اللہ علیہ وسلم کا اسم مبارک کہی نہیں نے زبان سے پورا ادا کیا تھا۔ حضور کا اسم مبارک زبان پر آتے ہی مولوی صاحب کی ہچکی بندھ جاتی۔ میں نے کئی بار اپنی آنکھوں سے دیکھا۔ مولوی صاحب جمعے کا خطبہ دے رہے ہیں۔ حضور کا نام زبان پر آیا اور زار و تار رونے لگے۔ آنکھوں سے دیکھا۔ مولوی صاحب جمعے کا خطبہ دے رہے ہیں۔ حضور کا نام زبان پر آیا آنکھوں سے آنسوؤں کی جھری لگ گئی۔ ہچکی بندھ گئی۔ اے! کیسے کیسے مردان پاک طینت و مردان حق آگاہ تھے کہ جن کے سوز و گداز سے زمین کا دامن خالی ہو گیا۔

مسجد قاصد کے دونوں میناروں پر اکالی سکھوں نے اپنے زرد جھنڈے گاڑ رکھے تھے اور اس کی محرابوں پر سکھ عورتیں اوپے تھاپ رہی تھیں۔ یہ وہی مسجد تھی جس کے در و دیوار جمعے کے روز مولانا غلام محمد ترنم کی ولولہ انگیز تقریروں سے گونج کرتے تھے شہر کے ہر دروازوں سے مسلمان مسجد قاصد میں مولوی ترنم کی تقریر سننے آیا کرتے۔ سیاہ کالی گھنی ڈاڑھی، ٹھٹھا ہوا مضبوط بدن چوڑا چپکلا ہر وقت مسکاتا ہوا نورانی چہرہ۔ مولوی ترنم گیندے اور سرخ گلاب کے اردوں سے لہے پھندے جب منبر پر چڑھتے، تو نمازیوں میں عقیدت اور جوش میں نہایت ایک نہر دوڑ جاتی۔ مسجد کا صحن، مال کمرہ، چشتیں اور گلی نمازیوں سے کچا کچھ بھری ہوتی۔ مسجد کا صحن،

بال کمرہ، چتیں اور مکی نمازیوں سے کچا کچ بھری ہوتی۔ چت پر تہو تہاتیں لگی ہوئی جہاں پر وہ دار
بیاباں سہرہ تن گوش ہوتیں۔ مولوی ترمذی عشق رسالت کاب میں سرشار آنکھوں سے مجمع پر نگاہ ڈالتے۔
والہانہ انداز میں گردن کو دائیں بائیں گھماتے اور پھر جیسے خدا کے حضور میں مودب ہو کر آنکھیں بند کر
لیتے اور لب معجز گفتار سے یہ الفاظ نکلتے:

نحمدہ و نصلیٰ و نصلیٰ.....

اس کے بعد خطابت و بلاغت کا ایک دریا بہہ نکلا جو پرتیچ وادیوں کے ٹیلوں سے ٹکراتا تھا
کو پڑھتا، سنگلاخ چٹانوں کو پیچے چھوڑتا بالآخر ایک بحر زخار میں جا ملتا۔ مجھے یاد ہے ایک بار محترم کے فضل
میں مولانا ترمذی شہداء کو بلا کا ذکر کر رہے تھے۔ کوئی آنکھ ایسی نہ تھی جو اشکبار نہ ہو۔ چت پر عورتیں جھلکیں
مار مار کر رو رہی تھیں۔

مولانا ترمذی تبلیغ دین کے لیے لگی محنت محنتی جا کر چلے گیا کرتے۔ ان کی طبیعت میں ظرافت بھی
بہت تھی۔ تقریر کرتے ہوئے ایک آدھ جملہ سامعین پر کچھ اس طرح چست کر جاتے کہ فضل زعفران
زارین جاتی۔ ان دنوں امرتسر کے سینا گھروں میں بدھ ولسٹیل زیادہ شونیا نیا شروع ہوا تھا۔ ترمذی صاحب
ہمارے محلے میں بعد از نماز عشاء تقریر کر رہے تھے۔ لگی میں کہیں تل دھرتے کو جگہ نہ تھی۔ مکانوں کی چتیں آؤ
اور کھڑکیاں عورتوں سے بھری ہوئی تھیں۔ تقریر کرتے کرتے مولانا نے زمانہ فلمی شوکی ات شروع کر دی۔
اچانک مکانوں کی منڈیروں کی طرف دیکھ کر بولے۔

۔ آؤں اسٹ نہ سنٹ دیتا۔

پھر انہوں نے نقشہ بیان کرنا شروع کر دیا کہ ہندو کو ٹینی شو پر جانے کے لیے کس طرح ایک
دوسری کو اکھی کرتی ہیں۔

۔ نی سکینہ! آج منڈو سے چٹا اسی۔ مدنی جلدی پکا لیں۔

۔ نی دلاں! جلدی جلدی کپڑے دھو۔ آج بدھوار سے۔ لوگ ہنس ہنس کر بے حال ہوجاتے
پھر فضا ہی مولانا ترمذی کا لہجہ پڑ عتاب ہو جاتا اور کہتے۔

۔ سنو! ہماری بیٹیوں اور بہنوں کو تو خدا کے حضور میں جانے کی تیاریاں کرنی چاہیے تھیں۔

یہ مسلمان میں جنہیں دیکھ کے شرمائیں یہود

ایک جلسے میں کشمیری گھروں کی شاہ فرخیں اور خاص طور پر بیاہ شادیوں کے موقع پر ان کی خوش
خواری اور بے جا اسراف پر تقریر کر رہے تھے کہ شادی کی دعوت کا نقشہ کھینچنا شروع کر دیا۔

۔ دیکھیں کھل گئی ہیں۔ دسترخوان لگ گئے ہیں۔ پلاؤ کی مہک اڑنے لگی ہے۔ زردہ، برانی
متنجن سے بھرے ہوئے قاب جا رہے ہیں۔ اونے چھید سے قدمہ ہو روئے جا۔ کاجی، پٹھو کی
بونی بھیج دیا ہے نی صفراں! متنجن واک کاب دے جا۔

لوگ بے اختیار ہو کر ہنسنے لگے۔ چانک مولانا ترمذی کا لہجہ بدل گیا۔ بجلی کی طرح کڑک کر رہا۔
”شرم کرو بہنستے ہو کیا تمہیں یاد نہیں ہمارے نبی اکرمؐ نے پیٹ پر پتھر باندھے تھے۔ ان کے گھر
میں لاقہ آجاتا تھا۔ مسلمانو! تم کہاں سے چلے تھے اور کہاں آگئے ہو؟۔۔۔۔۔“

اس کے بعد اسلامی تاریخ کے اوراق کچھ ایسے دلگداز انداز میں النفا شروع کرتے کہ وہی مجمع جو
ایک منٹ پہلے ہنس رہا ہوتا سب سکیاں بھرتے لگتا۔

اب میں اپنی لگی کی لال حویلی کے سامنے سے گزر رہا ہوں۔ اس حویلی سے محرم کے سو گواروں
میں جھول نکلتا تھا۔ ہم اپنے باندر میں کھڑے جھوٹے کابے تابی سے انتظار کیا کرتے۔ جب کڑمنی
کے چوک میں سیاہ عظم نظر آتا، تو ہم بھاگ کر جھوٹے میں شامل ہو جاتے۔ سوز خوانوں کی آواز میں آواز
ملا تے۔ ماتم والوں کے پیچھے پیچھے چلتے جاتے۔ مکانوں کی چتوں سے عورتیں جھوٹے پرائیاں اور گیند
گلاب کے پھول پنچا در کرتیں۔ جو پھول جھوٹے سے نیچے سڑک پر گر پڑتے ہم انہیں فوراً اٹھا کر چوستے
آنکھوں سے لگاتے اور جیب میں رکھ لیتے۔ ہماری والدہ فرمایا کرتی تھیں کہ جھوٹے سے سڑک پر گر
پڑتے ہم انہیں فوراً اٹھا کر چوستے، آنکھوں سے لگاتے اور جیب میں رکھ لیتے۔ ہماری والدہ فرمایا کرتی تھیں
کہ جھوٹے سے گرا ہوا پھول چوم کر گھر لے آتا۔ وہ ان پھولوں کو چینی کے مرتبانوں میں سنبھال کر رکھا
کرتی تھیں۔ ہندی کے دن محنت کے ہر گھر سے ریشی شروع دوپٹے سے کرتہ ان کے علم بنا
کر تانگوں میں بیٹھ جاتے اور سوز خوانوں کی معیت میں آدھے شہر کا چکر لگاتے۔ ہاں لگی
سے کئی تعزیے نکلتے۔ رام بارغ والا تعزیہ اپنے کڑی کے بے مثال کام اور آٹھ منزائے
کی وجہ سے سارے محلے میں اول تھا۔ نویں محرم کو شبیبہ ذوالجناح ہمارے محلے سے گزرتی
تو گتے بازوں کی ٹولیاں آگے آگے ہوتیں۔ شیو سنی کا وہاں کوئی سوال نہ تھا۔ سب اسلام

امرتسر کی مسجدیں

امرتسر میں مسجدیں بہت تھیں۔ پڑ شکوہ پربلال اکشودہ، رب عظیم کی حمد و ثناء سے گو نجی ہوئیں اور توحید کی
فغان سے سرمدی میں سرشار شادی نیم روشن ڈیوڑھیوں اور بھول داریلوں میں چھپی ہوئی خرابوں اور پڑ سکون،
برآمدوں والی مسجدیں۔ جن کے دودھیا گنبد اور سنہری کس و صوب میں چمکا کرتے تھے۔ ان میں ایسی مسجدیں
بھی تھیں جنہیں محلے کے مکانات نے اپنی آغوش میں لے رکھا تھا۔ کچھ مسجدوں کے کشادہ صحنوں میں
لبالب بھرے ہوئے تالاب بھی تھے جہاں بیٹھ کر نمازی و منوکیا کرتے ان تالابوں میں سرخ مچھلیاں
تیرا کرتی تھیں۔ جمعہ کے روز بیاں شامیانے تان دیئے جاتے اور مسجدوں کی چھتیں اور صحن ابے ابے
پاکیزہ کپڑوں والے نمازیوں سے بھر جاتے۔ فضا میں عطر گلاب اور عطر حنا کی خوشبوئیں بس جاتیں غاص
قاص موقوفوں پر ان مسجدوں کو جھاڑ فانوس کیلے کے پتوں اور رنگ برنگی جھنڈیوں سے خوب سجایا جاتا
رات کو چراغاں ہوتا اور اگر قیوں کی خوشبو سارے محلے کو بھکا دیتی۔

لیکن یہاں میں صرف ان مسجدوں کا ذکر کروں گا جن سے میرے بچپن اور جوانی کی خوبصورت یادیں
دالستہ ہیں۔ یہ وہ مسجدیں ہیں۔ جو آج بھی میرے خوابوں میں آتی ہیں اور جن کی پھولوں میں چھپی ہوئی
خرابوں سے لگ کر میں بند آنکھوں سے آنسو بہاتا ہوں ان میں سے کوئی بھی مسجد میرے لئے
مسجد قرطبہ سے کم نہیں۔ امرتسر میرا ہسپانیہ تھا۔ میرا اندلس تھا اور کہنی باغ میں اندلس کا الجمل تھا۔
جہاں میں سات سو سال تک رہا اور پھر مجھے میری مسجد قرطبہ اور میرے الجمل کی روشنیوں پر شہید کر دیا
گیا۔ گلاب کے وہ سرخ پھولوں جوان باغوں اور مسجدوں کے صحن میں کھلا کرتے تھے آج بھی میری
یادوں کی سجدہ گاہوں میں شگفتہ و تروتازہ ہیں اور میں اپنی بند آنکھوں میں ان پھولوں کی شبیہ منڈک
اور نفس گرم میں ان کی آسمانی خوشبو محسوس کرتا ہوں۔

آیتے میں سب سے پہلے آپ کو اپنے محلے کی، اپنی گلی کی مسجد میں لئے چلتا ہوں۔ میں نے
تو اس مسجد میں داخل ہونے سے پہلے اپنے آنسوؤں سے وضو کر لیا ہے۔ آپ بھی وضو کر لیں۔
یہ مسجد ہمارے گھر کے عین سامنے تھی اور مسجد عیدالون کہلاتی تھی۔ وہ دیکھتے پیر جی صفت بیٹھے
غراب کی دیوار سے نیک رنگائے کتابت کر رہے ہیں۔ لکڑی کا لمبو تراروغنی قلدان قریب بڑا ہے
یہ ہماری مسجد کے امام ہیں نام ان کا بھول گیا ہوں۔ سب انہیں پیر جی کہتے تھے اونچے لمبے دھڑلے
بدن، بھری بھری ڈاڑھی، جس میں سفید بال بھی تھے۔ غاص کشمیری تھے۔ محلے کے باتوں اور
میری نانی سے کشمیری زبان میں گفتگو کرتے تھے سر پر گاہ پہنتے۔ جمعہ کی نماز سے پہلے خطبہ دیتے
تو نسواری رنگ کا ایک جیزہ زیب تن ہوتا۔ فرصت کے وقت محلے کے بچوں کو دینیات پڑھاتے
اور حدیث و فقہ کے مسودات کی کتابت کرتے۔ کسی وقت مسجد کی رومٹ پر بیٹھے گلی میں آنے
جانے والوں کو غور سے دیکھا کرتے۔ ہماری شرارتوں پر بڑی سختی سے ہمارے کانوں میں ناخ
چھو کر بڑی نرم آواز میں سرزنش کرتے تھے۔ کشمیری لہجے میں پنجابی بولتے تھے۔ ہم وضو کرنے والے
حوض کی ٹونٹیاں کھل چھوڑ کر بھاگتے تو ہمیں لپک کر پکڑ لیتے۔ کان کی ٹو میں انگوٹھے اور شہادت کی
انگی کے ناخن چھو کر بڑی شفقت سے کہتے۔

”ٹوٹی کھل نہیں چھوڑ دی۔“

مسجد کے پیچھے ان کا گھر جس کا ایک راستہ حجرے میں سے بھی جاتا تھا۔ پیر جی کا بڑا کامین
میرا بھول تھا۔ غصہ کا شرارتی تھا۔ کبھی آرام سے نہیں بیٹھتا تھا اور کچھ نہیں تو مسجد کی چھت
پر چڑھ کر گلی میں سے گزرتے لوگوں کو روٹے مارنے شروع کر دیتا۔ امرتسر میں ایک سرکس آیا۔
جس میں ایک کتابندی سے آگ میں چھلانگ لگاتا تھا۔ ہم دونوں نے مسجد کے پچھڑے ایک
چوٹا سا گڑھا کھود کر اس میں بالٹی سے پانی بھرا۔ کتے کو لے کر امین چھت پر چڑھ گیا۔ میں نے پانی
میں مٹی کے تیل سے بھری ہوئی بوری کو آگ لگا کر ڈال دیا۔ امین نے اوپر سے کتے کو پھینک دیا۔
کتے کی قسمت اچھی تھی کہ باہر گرا اور بچ گیا۔ پیر جی کے حجرے میں ایک نوبت پڑی تھی۔ رمضان
المبارک میں سحری اور انتظار کے وقت یہی نوبت بکائی جاتی۔ یہ نوبت کبھی میں بکاتا اور کبھی امین
بکاتا تھا۔ زیادہ تر یہ فرض مسجد کا موزن ہی سراسر انجام دیتا تھا۔ لیکن ہمیں نوبت بجانے کا بڑا فرق

تھا۔ ایک روز افطار کے وقت سے پانچ چھ منٹ پہلے ہی نوبت بجا دی۔ پیر جی ڈنڈا لے کر ہمارے پیچھے بھاگے۔ رات کو مجھے بھی گھر سے مار پڑی اور امین کی بھی خوب فیر لی گئی۔

ایک روز میں اور امین ساتھ ساتھ کھڑے نماز پڑھ رہے تھے۔ پہلے سجدے کے بعد سر اٹھایا تو میری جیب سے ایک دوٹی نکل کر صاف پر گر پڑی۔ دل میں سوچا کہ سلام پھیرنے کے بعد اٹھاؤں گا لیکن دوسرا سجدہ کرنے کے بعد جو دیکھا تو دوٹی غائب تھی۔ معلوم ہوا کہ امین نے سجدے کے دوران کمال چاکل دستی سے اٹھائی تھی۔ ایک روز امین نے مجھے کہا۔

”میں ہوا میں اڑ سکتا ہوں۔“

”نکواس کرتے ہو۔“

”میرے ساتھ آؤ۔ میں تمہیں اڑ کر دکھاتا ہوں۔“

وہ مجھے ساتھ لے کر قبرستان گھی منڈی والی سڑک پر آگیا۔

”یہاں کھڑے ہو کر دیکھتے رہنا۔ وہ جو ٹاٹا ہے نا۔ بس اس کے پاس جا کر میں ہوا میں اڑاؤں گا۔ یہ کہہ کر امین نے شلوار کے پائے سے پیر کے اور ساتوں کی بند منیوں کو چوم کر اندھا دھند بھاگ اٹھا۔ میری نظر اس ٹاٹا پر تھی۔ جہاں سے امین نے ٹیک اوت کرنا تھا۔ آپ یقین کریں کہ وہ اس ٹاٹا کے پاس پہنچ کر غائب ہو گیا۔ مجھے یقین تھا کہ وہ ضرور اڑ گیا ہوگا۔ پھر تھوڑی دیر بعد وہ سڑک پر دکھائی دیا۔ دونوں ہاندوں کو ناچنے والیوں کی طرح لہراتا میری طرف بھاگا چلا آ رہا تھا۔ اس کا سانس سھولا ہوا تھا۔ کہنے لگا۔

”تم نے مجھے اڑتے ہوئے دیکھا تھا نا؟ پورے قبرستان کا چکر لگا کر آیا ہوں۔ جمائی روڈ والے بجلی کے کنبے سے لگاتے لگاتے بچا۔“

تج بھی جب وہ منتظر یاد آتا ہے کہ امین کس طرح رقص کرتا میری طرف بھاگا چلا آ رہا تھا تو بے اختیار ہنسی آ جاتی ہے۔

گریموں میں مسجد کے کنوئیں پر نہانے والوں کا جھوم رہتا۔ دو سقاوے تھے۔ جن کی ٹوٹیوں میں مسواکیں ٹھنی ہوئی تھیں۔ فرش پر پھیلی تھی اور دیواریں پر سبز کاٹی جی تھی۔ کئی بار ایسا ہوتا کہ منہ سر صابن کی جھاگ میں چھپا ہے اور سقاوے کی مسواک نکل کر فرش پر گر پڑی ہے اب ایک اتھ سقاوے کے سوراخ پر ہے کہ پانی نہ نکلے اور دوسرے اتھ سے فرش پر سے مسواک تلاش کی جا رہی ہے نہ مسواک تھی اور

نر پانی کی دھار نکلتی۔ باہر سے حیرت انگیز سقاوے میں ہوا ڈال کر اوز لگا آ رہے۔

چو بھٹی چوٹے خلید! اندر اتنی دیر کیوں لگا دی۔ گارڈ محمد حسین بٹ اپنے داخل پر کالی ٹوس ڈرتے بیٹھ کر تے ہوئے کہتا۔

”یہ لڑکا اگر شعلے میں ہو تو اس پر واٹر ٹینکس لگ جائے۔“

مسجد کے چوترے پر مٹی کا ایک بڑا پالا رکھا ہوتا جس میں مجلس کے بچے اور عورتیں آکر کڑوا تیل ڈال جاتی تھیں۔ یہ تیل مسجد کے لئے ہوتا۔ چوٹی پہوان سقاوے کے باہر بیٹھ کر اسی تیل سے اپنی مالش کیا کرتا۔ ایک بار پیر جی نے اسے کہا۔

”چوٹی! کبھی نماز بھی پڑھ لیندی۔“

چوٹی پہوان کو بڑی شرم آئی۔ اسی روز نماز کے وقت وضو کر کے جماعت کے ساتھ کھڑا ہو گیا۔ بعد میں مجلس کے ایک آدمی نے اس کی نماز پر سخت تنقید شروع کر دی۔

”تمہارا وضو غلط تھا۔ تمہارا رکوع ٹھیک نہیں تھا۔ تم نے اتھ ٹھیک طرح سے نہیں باندھے تھے۔ تمہاری نماز قبول نہیں ہوگی۔“

چوٹی کو بڑا غصہ آیا۔ سر پر بندھا ہوا صافہ اتار کر زور سے فرش پر مارا اور اتنا کہہ کر مسجد سے باہر نکل گیا۔

”اب کبھی یہاں نہیں آؤں گا۔“

امام مسجد پیر جی کو بڑا افسوس ہوا۔ وہ اسی وقت چوٹی کے گھر گئے اور اسے کچھ ایسی محبت پیار اور اخلاق کے ساتھ سمجایا کہ وہ اس کے بعد سے پکا نمازی بن گیا۔ پیر جی کا اخلاق بڑا بلند تھا۔ مسجد کی رونت پر بیٹھے ہوتے اور گل میں گورتے ہر چھوٹے بڑے کو سلام کرنے میں ہمیشہ پہل کرتے۔ میں نے کبھی انہیں کسی کے ساتھ اونچی آواز میں بات کرتے نہ سنا تھا۔ مسجد میں اگر ہم شور مچاتے تو اپنے بونٹوں پر شہادت کی انگلی رکھ کر ہمیں منع کرتے۔ زیادہ شرارتیں کرتے تو بس کان میں ذرا سانان چھو دیتے۔

عید میلان کے مبارک دن اسی مسجد کے باہر سے جلوس تیار ہوتا۔ ہم تیس سے چار پڑے کی بچی خواہش ہوتی کہ سبز پرچم تمام کر جلوس کے آگے آگے چلے اس روز امین کی دوستی بڑی کامی ہوئی۔ وہ مجھے ایک بڑا ایک جھنڈا ضرور تھا دیتا جسے کندھے کے ساتھ لگا کر میں بڑی شان سے جلوس کے ساتھ

چلتا۔ رات کو مسجد میں ختم شریف ہوتا تو فیروز نعت خوان کی آواز ملنے کے بر گھر میں جاتی۔ میں بڑے شوق سے تبرک کے مکھانے اور کھجوریں لے کر گھر جاتا۔

مسجد کی چھت میں ایک خوبصورت فانوس لگا تھا جس کی روشنی میں دیواروں پر لگی زرد و خنی ٹائیلیں اور ان پر ابھرے ہوئے۔ گلاب کے پھول چمکا کرتے۔ گرمیوں کی سسنان دھبوں میں مسجد کے صحن سے اذان کی آواز ابھر کر فضا پر چھا جاتی۔ نماز کے وقت مسجد کے دروازے کے آگے عورتیں اور محلے کی لڑکیاں اپنے کسین بچوں اور بھائیوں کو کاندھے سے لگائے کھڑی رہتیں نماز کے بعد نمازی باہر نکلتے تو ان بچوں پر پھونکیں مارتے جاتے۔

سن ۱۹۴۷ء کے اگست کے مہینے کی چودہ تاریخ کی رات کو ہمارے محلے پر ہندوؤں اور سکھوں نے اس قدر شدید فائرنگ کی کہ اتنی گولی پہلے کبھی نہیں چلی تھی۔ پانی رات ہی میں مسجد کے حجرے میں انتقال ہو گیا دوسرے روز ہمارے گلی کے آسمانی دروازے پر ڈوگرہ فوج نے بم مارا ہر طرف جگمگ چمک گئی۔ عورتیں، بچے جھان اور بوڑھے سرسید ہو کر گلی کے دوسرے دروازے سے ہو کر جی ٹی روڈ پر آ گئے۔ سامنے شریف پورہ تھا بیچ میں ایک سڑک تھی۔ برج پھولا سنگھ میں نہنگ سکھ بیٹھے اندھا دھند گولیاں برسا رہے تھے۔ غلام محمد مثال مرچنٹ کا بڑا لڑکا موسیٰ اپنے بچے کو گود میں اٹھائے نالا عبود کر رہا تھا کہ گولی بچے کے سر میں لگی اور کھوپڑی کو توڑ کر اس کے باپ کے سینے سے نکل گئی۔ دونوں نالے میں گرے اور پاکستان پر قربان ہو گئے۔

کیا کچھ پاکستان پر قربان ہو گیا! کیسے کیسے انمول موتی خاک میں مل گئے! ہمارے تاریخ کا یہ ایک الم انگریز باب ہے جس کا ہر ورق ہمارے عظیم شہداء کے خون سے سرخ رو ہے۔ جس کی ہر سطر ایک دیوار گریہ ہے۔ کبھی کبھی دل چاہتا ہے کہ پاکستان کی نئی نسل کو اس دیوار گریہ کے سامنے لے جاؤں۔ اس کی ایک ایک اینٹ پر اپنے شہیدوں کے خون کے چھینٹے دکھاؤں اور پھر ن سے پوچھوں کہ کیا یہ قربانیاں اتنی بھی اہمیت نہیں رکھتی کہ ہم اپنے وطن کی ابرو پر اپنی جانیں قربان کر دیں؟

تقسیم کے بعد میں دیر سے کراچی آ گیا تو اپنے محلے میں ہی آیا۔ مسجد عیدالون کے صحن میں پہلی کا دفعت آگ۔ باقاعدہ اندر جہاں کبھی پتھر کے منبر پر بیٹھ کر پیر جی جعفر کا خطبہ دیا کرتے تھے۔ وہاں گیش دیو کی مدد تھی۔ کھی تھی۔ اور ایک مہنت وہاں بیٹھا پوچھا پوچھا کر رہا تھا۔

بہار والی مسجد ہمارے بازار میں کی گئی کے سامنے تھی۔ ڈیوڑھی سے گزر کر سیدیں مسجد کی گیلری کو جاتی تھیں جو مسجد کے اندر بنی ہوئی تھی۔ اس گیلری کا فرش کھڑی کا تھا اور رمضان شریف کے مہینے میں ہم لوگ یہاں تراویح پڑھا کرتے۔ گیلری میں تراویح اس لیے پڑھتے تھے کہ جب تک جاتے تو چپکے سے کھسک جایا کرتے۔ اس مسجد کے امام کا نام اگر بھول نہیں رہا تو احمد شاہ تھا۔ گورے چٹے ادھیر عمر کے کشمیری بزرگ تھے۔ شرعی دائرہ تھی۔ بیٹھ سفید لباس پہنتے۔ سنہری فریم والی عینک لگی ہوتی۔ چہرے پر نور برسا کرتا۔ سر پر سفید صاف باندھتے تھے۔ بڑے ہی پاک صاف رہتے۔ ہر اہم عمارت کی دکان شربت پینے آتے تو پہلے بیٹھے کے گلاس کو تنگ سے دھواتے۔ پھر بوتلوں پر تل کا دھلا دھلا یا رسال رکھ کر شربت پیے۔ ہفتے میں شاید ایک بار وہ چپ کا روزہ رکھتے۔ پھر وہ چارٹا سبزی والے کی دکان پر کھڑے ہو کر اٹھارے سے بڑی خریدتے۔

اس مسجد کے باہر بڑا گھٹا درخت تھا۔ جس نے اس پاس کے مکانوں پر اپنا سایہ کر رکھا تھا۔ کنواں باہر کی طرف تھا۔ جہاں سے محلے کے بھتی مشکیں بھر آتے۔ سحری کے وقت سخت سردی میں اس مسجد کی گیلری کی فضا گرم ہوتی۔ محرابوں پر کندے گرے ہوتے۔ جماعت کھڑی ہوتی تو مسجد کی فضا میں ایک پرجلال خاموشی چھا جاتی۔ اس مسجد کی دیواروں پر قرآنی آیات کے قلعے لگے تھے یہ مسجد بھی اتنی کٹاوت نہیں تھی۔ مسجد عیدالون کی طرح یہ بھی مکافہ میں گھری ہوئی تھی۔ اس کے کنویں کے قعر سے پر سبز کائی جی رہتی۔ جس پر گرمیوں میں زرد بھڑی اگر بیٹھا کرتیں۔ ہم ان پر گلیا کا قد مار کر پڑتے۔ ان کے ڈنک نکال کر دھاگہ باندھ کر اڑایا کرتے۔ عید شبرات اور رمضان شریف میں اس مسجد میں بڑی رونق ہوتی۔

تقسیم کے بعد اس مسجد کو دیکھا کہ فترتہ حالت میں تھی لیکن کشمیری باتو اور پانڈی یہاں رہ رہے تھے جن کی وجہ سے یہ بندہ بیٹھے سے بچ گئی۔

ہمارے محلے میں ہی کھٹی کے باغ کے پہلو میں مسجد جان محمد تھی یہ مسجد دوسری منزل پر تھی لہذا کافی کٹاوت تھی۔ نیچے دکانیں تھیں۔ ایک طرف سے یہ مال بازار کو گنتی تھی۔ ال بازار کی جانب مسجد کے نیچے امرتسر کے مشہور و معروف پینٹر عبدالغفار کی دکان تھی۔ مسجد کا دروازہ ہمارے بازار میں تھا۔ دونوں جانب دھوکے لئے نلکے لگے تھے۔ پیچھے سقاہ سے تھے۔ صحن چوڑا تھا۔ محرابوں پر کندے سبز

میں گرا دیئے جاتے اور گرمیوں میں پٹے رہتے۔ دائیں جانب ایک اماں میں مسجد کے بانی مان محمد کی قبر تھی۔ جو مسجد سے باہر تھی۔ اوپر کھلا آسمان تھا۔ امرتسر کا خوبصورت نیلا آسمان!

سلام بابا اس مسجد کے پیش نام تھے۔ بھادی بھر کم، گھنی سفیدی مائل داڑھی۔ چوڑا قد مگر مضبوط جسم امرتسر کے پرانے کشمیریوں کی طرح سرج و سفید رنگت تھی تیز تیز باتیں کرتے تھے۔ میڑیاں چڑھ کر مسجد کے دروازے کے با مقابل ان کا جبرہ تھا مگر بازار میں اپنے الگ مکان میں رہتے تھے ان کا ایک بڑا کالہ بالکل ان کی شکل کا تھا۔ عجیب سے بڑا تھا۔ بینک لگا تھا۔ اوپر والے ہونٹ پر سردیوں میں بھی پسینہ آیا رہتا۔ پانگ شو کے سگریٹ پیتا تھا۔ جس کی خوشبو مجھے بڑی اچھی لگتی تھی۔ مگر کی بیٹھک میں ہر وقت کتے ہیں پڑھتا رہتا۔ بڑا کم گو تھا۔ کسی وقت میری طرف دیکھتا تو مجھے موٹے شیٹوں کے پیچھے اس کی آنکھوں میں ایک گہری اداسی کی جھلک دکھائی دیتی۔ تقسیم کے بعد پھر ان صاحب سے ملاقات نہیں ہو سکی مجھے ان کا نام بھی یاد نہیں رہا۔

اس مسجد کی ایک خاص بات یہ تھی کہ سال میں ایک بار یہاں کوئی کانفرنس ہو کرتی جو تین روز تک جاری رہتی۔ اس کانفرنس میں شرکت کرنے کے لئے ہندوستان کے بڑے بڑے شہروں سے علماء کرام تشریف لایا کرتے۔ ایک بار معراج شریف کے موضوع پر باہر سے آئے ہوئے ایک مولانا صاحب نے مائیک فونک حوالوں کے ساتھ ایسی پر مغز تقریر کی کہ لوگ عیش عشق کراٹھے۔ میں بھی اس جلسے میں بیٹھا تھا امرتسر میں مدتوں ان مولانا صاحب کی تقریر کے چرچے رہے۔ اس مسجد میں مجھے اپنا نماز پڑھنا یاد نہیں۔ لیکن کانفرنس کے اجلاسوں میں ضرور جاتا تھا۔ تقسیم کے بعد اس مسجد کو بھی سرنگر سے آئے ہوئے کشمیریوں نے اپنی تحویل میں لے لیا اور سنا ہے کہ بوڑھو والی مسجد کی طرح یہاں بھی پانچوں وقت اذان ہوتی ہے۔

مسجد خیر الدین ال بازار میں تھی کشادہ صحن بیچ میں پانی کا حوض جس میں سرج مچھلیاں تیرا کرتیں۔ چھٹی ہوئی ڈیوڑھی میں ٹھنڈا ٹھنڈا نیم روشن اندھیرا سا چھایا رہتا۔ مولانا عطار اللہ شاہ بخاری نے اس مسجد میں جو دولہ لگیو پر خوش تقریریں کیں وہ امرتسر کے مسلمانوں کو آج بھی یاد ہوں گی۔ جس روز شاہ صاحب کی تقریر ہوئی مسجد میں تل دھرنے کو جگہ نہ ہوتی چونکہ لڑکیوں کی یادوں کے سہارے یہ مضمون لکھ رہا ہوں اس لئے شخصیتوں کے منسوبوں کے تعین کے سلسلے میں اگر کوئی سہو ہو جائے تو معذرت

چاہوں گا میرا خیال ہے کہ امرتسر کے مشہور اور جید عالم دین مفتی محمد حسین اس مسجد کے پیش امام تھے۔ میں انہیں اکثر اس مسجد میں تشریف لاتے دیکھا کرتا تھا۔ ان کے ایک پاؤں میں تکلیف تھی۔ جس کی وجہ سے وہ پیوں والی کرسی پر بیٹھ کر تشریف لاتے ان کے قابل قدر صاحبزادے حافظ عبید اللہ میرے دوست تھے اور ماٹار اللہ اب بھی ہیں حافظ عبید اللہ اس مسجد میں حدیث اور فقہ پڑھتے بھی تھے اور درس بھی دیتے نو عمری میں ہی علوم کی بہت سی منزلیں طے کر چکے تھے ان کی بڑی بڑی قابلیت آنکھوں کو ہم چشم غزال کی کرتے تھے ایسی خوبصورت آنکھیں ہمارے دوستوں میں سے کسی کی بھی نہیں تھیں آج بھی جب کہیں وہ مجھے ملتے ہیں تو میں ان کا ٹھنڈا چشمہ اتار کر چشم غزالاں کا دیدار ضرور کر لیتا ہوں۔ مسجد کی ڈیوڑھی میں دائیں جانب ایک حجرہ تھا یہاں حافظ شفیع بچوں کو قرآن شریف پڑھایا کرتے دبلے پتلے خوش مزاج، خوش اخلاق دیرینہ گھر، استعنا اور توکل علی اللہ کی زندہ تصویر مجھ سے عمر میں پندرہ بیس سال بڑے تھے۔ سبحان اللہ! تکیہ کلام تھا۔ کھانے کو مل گیا تو سبحان اللہ فاقہ آگیا تو بھی سبحان اللہ کہہ کر مسکرا دیتے۔ بارہ سے دو آنے کی چائے کی چٹنگ منگواتے صندوقچی میں سے ٹین کی گول ڈبئی نکال کر اس میں سے تھوڑا سی زعفران چائے میں ڈالتے اور پھر جب زعفران کی خوشبو اڑتی تو یہاں ہمارے آگے بڑھاتے ہوئے مسکرا کر کہتے۔

”سبحان اللہ“

بات کرتے وقت ان کے منہ سے لوگ کی خوشبو آتی۔ کیونکہ وہ پان میں لوگ ڈال کر کھاتے تھے۔ مسجد کی ڈیوڑھی میں ان کے حجرے کے باہر ایک گھنی بیل کا سایہ تھا جس کی شاخیں موسم بہار میں گلابی پھولوں کے جھروں سے لد جاتیں۔ یہ پھول فرش پر بھی گرا کرتے۔ حافظ شفیع ان پھولوں کو دیکھ کر کھا کرتے۔

”سبحان اللہ! میری بیل نمازیوں کے قدموں میں پھل بچھا کر کرتی ہے۔“

اب میں آپ کو مسجد عید گاہ کی طرف لئے چلتا ہوں۔

یہ ہمارے محلے کی عید گاہ والی مسجد تھی۔ دروازہ رام باغ سے نکل کر سیدھا کہن: کا دروازہ چلیں تو جی روڈ گزریں گے بعد یہ مسجد بائیں ہاتھ کو روٹے پھاٹک سے پہلے آتی تھی یہ گاہ کی چار دیواری میں ایک دروازہ تھا۔ دروازے کی ڈیوڑھی میں سے گزریں تو سامنے ایک درخت

نے اپنی شہدائی چھاؤں ڈال رکھی تھی۔ اس کے بعد عید گاہ کا محقر سامیان تھا۔ یہاں ہم اگلے اگلے پہن کر ماؤں کے لگائے ہوئے سرے اور عطر میں لیے عید کی نماز پڑھنے آیا کرتے تھے۔ تھوڑے تھوڑے فاصلے پر یہاں چھوٹے چوڑے بنے تھے۔ جن پر بکر کھڑے ہوتے اور اللہ اکبر کی صدا کو آگے بڑھاتے آج کل لائڈ سپیکروں کی وجہ سے بہت کم بک کر دیکھنے میں آتے ہیں۔ ہر شخص نے اپنے گھر سے لایا ہوا کپڑا آگے بچھایا ہوتا۔ جس پر گھر سے ہو کر عید کی نماز پڑھی جاتی اور بیٹھ کر عید کا خطبہ سنا جاتا۔ خلیفہ یسین صاحب اس مسجد کے امام تھے جن کا گھر ہماری گلی میں تھا۔ سیاہ گھنی ڈارمی اور مشہدی کے ساتھ بڑے بارعب گئے۔ مسجد کے چھوٹے سے باغچے میں ان کا حجرہ بھی تھا۔ ریوس لائن عید گاہ کی دیوار کے پار تھی ہم اس دیوار پر بیٹھ کر ریل گاڑیاں دیکھا کرتے تھے مسجد کے حوض کے ارد گرد برسات میں موٹی موٹی جاچیں ٹپکاتیں جہیں ہم بہت شوق سے کھلیا کرتے۔ مسجد کے سامنے والے درختوں میں اہر پکتے تو ہم خلیفہ صاحب کی نظریں بچا کر انہیں توڑ کر نیکر کی بیروں میں بھر لیتے سادوں کی لمبی جبریاں لگتی تھیں تو انی جاموں میں کوئیں بولا کرتیں۔

برسات کی بارش میں خالی نیکریں پہنے، ننگے پاؤں اپنے محلے سے نکل کر عید گاہ والی مسجد میں آتے اور جامن کے درختوں پر چڑھ کر جامنیں توڑا کرتے۔ بچپن ہی سے ہمارے دلوں میں یہ فوف بٹھا دیا گیا تھا کہ جامن کا پیڑ بڑا کچا ہوتا ہے پھر بھی ہم بند روں کی طرح ان درختوں پر چڑھ کر پھل کھاتے اور کھیل تماشے کیا کرتے۔ گرمیوں کی راتوں کو چھت پر سوتے ہوئے میری آنکھ کھل جاتی تو میں دیکھتا کہ لہتر کے پچھلے پیر کے آسمان پر نیلے چمکیلے ستاروں کے ٹافوس جگمگا رہے ہیں۔ ہر طرف گہری، ٹھنڈی، شبنم آلود خاموشی ہے اور عید گاہ کی طرف سے کوئی کے بولنے کی آواز آرہی ہے یہ قلب کو گواہ بننے والی اور روح کو تڑپا دینے والی آواز میں آج بھی آدمی آدمی راتوں کو کبھی کبھی سنتا ہوں اور کمرے سے باہر نکل کر آسمان پر چمکتے ستاروں کو دیکھتا ہوں لیکن وہ سبز پانی کا حوض اور جامن کے درختوں کے جھنڈ کہیں نظر نہیں آتے۔

پاکستان بننے کے بعد یہ مسجد بھی دیران ہو چکی تھی۔ عید گاہ میں لوگوں نے کوڑیاں لگائیں تھیں اور امام صاحب کے حجرے میں ایک سکھ شزارستی سا بیگلوں کو پکڑ لگا رہا تھا۔ حوض پر چمکے ہوئے جامن کے درخت دیران ہو گئے تھے اور حوض میں لمبی لمبی خشک گھاس اگی تھی، مسجد کے صحن

میں ایک جانب سکوں نے گائے بھینس باندھ رکھی تھیں اور سادوں کے درخت کہیں بھی نہیں تھے نہ آثار تھے۔ نہ آثاروں والا راستہ تھا۔

مسجد قاصداں ہمارے گھر سے دوسرے محلے میں تھی۔ مجھے اس محلے کا نام یاد نہیں رہا۔ کڑوا جیل سنگھ سے نکل کر ہم چڑے کی دکانوں والے ایک بازار میں آ جاتے۔ یہاں سے نکلے تو دائیں جانب ایک گلی مڑتی۔ آگے گوبروں کا دیہڑا آ جاتا۔ یہاں مکانوں کی دیواروں پر بھاتیاں لگی ہوتیں گوبر کی بدبو پھیل جاتی تھی اس گلی میں ایک جگہ سفید چھوٹے میناروں اور دودھیا گنبد والی چھوٹی سی مسجد قاصداں مکانوں کے درمیان میں جیسے کونے سے صحری کی طرح رکھی ہوئی تھی۔ جمعہ کی نماز میں اپنے چھوٹے بھائی یا کسی دوست کے ساتھ بیٹھ اسی مسجد میں پڑھنے آ جاتے۔ اس کی وجہ اس قدر کہ نقش نوا اور شعلہ بیاں مبلغ دین مولانا ترم کا خطبہ تھا پھندے والی رونی ٹوپی بھری بھری گھنی ڈارمی اور چوڑے شانوں والا گٹھا ہوا جسم۔ درمیانہ قد، پاٹ دار آواز تقریر کرتے ہوئے جوش میں آتے تو گردن کو دائیں بائیں ہلاتے جاتے۔ حضور صلی اللہ علیہ وسلم کے ذکر عالی پر مولانا ترم کی آنکھوں میں آنسو چھلک پڑتے عموماً سفید قمیض شلوار میں ہوتے۔ چھتے وقت رونی ٹوپی کا پھندا گردش میں ہوتا۔ امرتسر کا بچہ بچہ ان کے نام سے واقف تھا۔ جن محلے میں ان کی تقریر ہوتی وہاں لوگ شہر سے کھینچ کھینچ جاتے ہیں۔ ان کی تقریر کرتے کرتے اچانک بچان میں مکالمے شروع کر دیتے۔ جب لوگ ان کی کسی بات پر محفوظا جوتے تو مولانا اچانک کوئی جملہ بلند آواز میں ادا کرتے اور ہر طرف سنا جاتا جاتا۔

جمعہ کے روز اس مسجد میں شاملانے تن جاتے چھت پر عورتوں کے لئے نماز ادا کرنے کا انتظام ہوتا مسجد میں تن دھرنے کو جگہ نہ ہوتی۔ مسجد چھوٹی تھی اور دھون کرنے کا انتظام خود ہوتا۔ میں مولانا گھر سے دھون کر کے جایا کرتا۔ خلیفہ کے وقت مولانا ترم سرخ گلاب کے باروں سے لدے پھندے، سیاہ جینے پہنے، رونی ٹوپی کے نوپر سفید رومال لپیٹے منبر پر تشریف لاتے تو مجھے یوں لگتا جیسے عباسی دور کا کوئی خلیفہ مسجد میں نکل آیا ہے۔ ان کی گردن سرخ گلابوں میں چھپی ہوئی۔ پھولوں کی کچھ ٹہنیاں ان کی ڈارمی میں بھی لگی ہوئی ہیں ان کے کتے ہی مسجد کے صحن میں ہر شخص جہتیں گوش ہوتا، وہ خدا اور اس کے رسول مقبول کی حمد و ثنا کے بعد قرآن حکیم کی کوئی آیت پڑھتے اور پھر خلیفہ کی تقریر سننے چلے سے نکل کر عظیم سمندر کی طرف بڑھنا شروع کر دیتی۔ وہاں کوئی مانگر و فون و رلاؤڈ پیکر نہ تھا کیوں نہ ہو

کی آواز سے گئی محفل کے درو دیوار گونج رہے ہوتے۔

اب نہ وہ مسجد رہی ہوگی اور نہ اسی گلی محفل کے درو دیوار مولانا ترنم کی تلاوت کا کام پاک سے گونج رہے ہوں گے۔ پاکستان بننے کے بعد میں اس مسجد کو نہ دیکھ سکا۔ ظاہر ہے اب وہاں سب کچھ ہوگا مگر مسجد نہیں ہوگی۔ امرتسر سے ہجرت کرنے سے دو تہائی سوز پہلے سنا تھا کہ مسجد قاصدال کے حلقے میں خوفناک آگ لگی ہوئی ہے۔

بہاولپور روڈ سے ایک سڑک قبرستان سے ہو کر سن آباد کو جاتی ہے۔ اس کے موڑ پر سڑک کے کنارے مولانا ترنم خوفناک ہیں۔ میں وہاں سے گزرتے ہوئے انہیں بہت یاد کرتا ہوں اور ان کے حق میں دعائے مغفرت کرتا ہوں۔ مسجد قاصدال میں خطبہ دیتے ہوئے ان کا مسکراتا، نورانی چہرہ یاد آتا ہے تو سوچتا ہوں کہ کہیں یہ خیال بھی آیا تھا کہ یہ زندگی سے بھرپور چہرہ جس مرقہ میں خوفناک ہوگا اس کا لوح مزار میں ہر روز آتے جاتے پڑھا کروں گا۔ یہ میرے امرتسر کے انمول میرے تھے جولاہور میں اگر آسودۂ خاک ہوئے خدا ان کے درجات بلند فرمائیے۔ آمین!

اب میں آپ کو ایک ایسی مسجد میں لے جاتا ہوں جو حجم میں شاید امرتسر کی سب سے چھوٹی مسجد تھی یہ کہنی باغ کی ٹھنڈی کھوٹی کے پہلو میں گویا کسی بڑی مسجد کے چھوٹے ماٹل کی طرح زمین پر کھئی ہوئی تھی۔ ساری کی ساری بڑی مائل پتھر کی تھی اور اسے شیخ صادق حسین نے تعمیر کروایا تھا۔ اس کا گنبد نہیں تھا۔ چھوٹے سے دو مینارے تھے۔ پندرہ بیس نازیوں کے بیٹھنے کی جگہ تھی۔ دیواروں میں پتھر کی جالیاں لگی تھیں۔ چت میں بجلی کے دو سبز گوب لگے جسے رات کو ان کی سبز روشنی جالیوں سے کرنوں کی طرح پھوٹ پھوٹ کر باہر آ کر تھی۔ دور سے دیکھنے پر یوں لگتا جیسے آسمان سے کوئی تنہا سا سبز ستارہ کہنی باغ میں اتر آیا ہے۔

ان کی مدنی میں یہ درختوں پھولوں میں گھری ہوئی چھوٹی سی مسجد خود بھی ایک پھول لگتی۔ سبز پھول جو کسی درخت کی شاخ سے ٹوٹ کر زمین پر گرتے ہی پتھر ہو گیا ہو۔ بہار کے موسم میں اس کی چھت پر درختوں سے پھول گرا کرتے۔ اس کے عقب میں ایک چھوٹی سی ندی بہتی تھی۔ گرمیوں کی مہجوں کو میں منہ اندھیرے میں کرنے آتا تو مجھے دور سے اس مسجد سے جندہ ہوتی اذان کی آواز

سنائی دیتی۔ مجھے یوں لگتا جیسے کہنی باغ کے سارے وقت، سارے پھل، سارے پھول اور شاخے ٹٹکھنے ایک ہی آواز کی بہروں میں بدل گئے ہیں۔ اللہ بہت بڑا ہے! اللہ بہت بڑا ہے۔ مجھے منہ اندھیرے کی پُر نور خاموشی میں اس اذان کی آواز میں درختوں، پھولوں اور ٹٹکھوں کی ٹھٹھکی آتی محسوس ہوتی اور ٹٹکھنے گلاب کے سرخ پھولوں سے مجھے اذان کی آواز خوشبو بن کر ابھرتی سنائی دیتی ہے۔ میں پردہ کلب کے قریب سے گزر کر حوض والے درختوں کے جھنڈ میں آتا تو دور اس مسجد کی جالیوں میں سے چھوٹی سبز روشنی دکھائی دیتی۔ معلوم ہوتا آسمان سے فرشتے صبح کی نماز پڑھنے وہاں اترے ہوئے ہیں۔ میں سیر کرتا ہوا مسجد کے کچھوڑے چھوٹی ندی پر اگر رک جاتا۔ یہاں مجھے ایک خوشبو آتی۔ موتیے کے پھولوں میں لپٹی ہوئی لالچیلوں کی خوشبو۔ یہ ایک عجیب و غریب اور حیرت انگیز خوشبو تھی۔ معلوم ہوتا جیسے وہ چھوٹی سی سبز مسجد سانس لے رہی ہے۔

مذہب یہ اس مسجد کے سانس کی خوشبو تھی۔ میں ندی کے چھوٹے سے پل پر بیٹھ جاتا اور مسجد کے ساتھ سانس لینے لگتا۔ افسوس! میرا سانس چھوٹا تھا اور خوشبو بہت بڑی تھی۔ بہت وسیع تھی۔ سارے کہنی باغ، ساری دنیا، ساری کائنات پر محیط تھی۔ اس وقت دل یہی چاہتا تھا کہ میری ساری زندگی ایک سانس میں سمٹ آئے۔ جسے میں اس خوشبو کے ساتھ اپنے اندر جذب کر لوں اور پھر کہیں اسے باہر نہ نکالوں۔ میں لمبا پر بیٹھا ندی میں بہتے پانی کی آواز سنتا سر۔ سر ایک دھیمی۔ بہت دھیمی سی سرسراہٹ ایک خواب آلود سی سرگوشی۔ جیسے پچھلے پہر میں خاموشی میں ندی کا پانی کچھ کہہ رہا ہو۔ کچھ سنار رہا ہو اس پر جھکے ہوئے ام اور ناشپاتی کے درختوں کی شاخیں اور زیادہ جھک جاتیں۔ گویا جھک کر ہمہ تن گوش ہو کر ندی کی سرگوشیاں سن رہی ہوں۔ پانی کچھ بولتا ہو اگر چاہتا اس کی لہروں پر تیرتے پھول بھی آگے نکل جاتے اور ان کی خوشبو ان کی دھیمی سرگوشیاں پیچھے رہ جاتیں۔

اللہ بہت بڑا ہے۔ اللہ بہت بڑا ہے۔ آج یہ دھیمی خوشبودار سرگوشیاں بھی آگے نکل گئی ہیں اور میں وقت کے پل پر اکیلا بیٹھا، بہتے دنیا کو دیکھ رہا ہوں۔ پاکستان بننے کے بعد میں امرتسر گیا تو کہنی باغ کی اس خوبصورت چھوٹی سی سبز مسجد چھوٹے سے سبز پھول کو اس حالت میں دیکھا کہ وہاں سوائے دو چار ٹوٹے پھولے پتھروں کے در کچھ

نہیں تھانہ سبز جالیاں نہ سبزوشیروں کے گوب اور نہ صبح کی شبیہی فضلوں میں ابھرتی اذان کی آواز اور نہ اس مسجد کے مانس کی مقدس خوشبو۔ سبز پھول آخری مانس لے کر مر جھا گیا تھا۔ اور ہوا اسے اڑا کر لے گئی تھی۔

لیکن ہر قسم کی میری مسجدیں ان کی اذانیں ان کے سامنے پھول ان پھولوں سے انھیں خوشبو نہیں میرے سینے میں محفوظ ہیں۔ میں ہانچوں وقت ان مسجدوں سے بلند ہوتی اذانوں کی آواز سنا ہوں۔ مجھے ہر مانس کے ساتھ ان اذانوں کی جھک آتی ہے اور میں گلاب کے ہر پھول میں محرابوں سے پھوٹتی روشنیوں کی کرنیں دیکھتا ہوں۔ اندلس نہ رہا۔ قرطبہ نہ رہا۔ لیکن مسجد قرطبہ کی اذانیں تو ہمارے ساتھ ہیں ہمارے لئے تو ساری دنیا ایک مسجد ہے۔ مارا وطن پاک، ایک مسجد ہے اور اس مسجد کو صحن کس قدر کشادہ ہے۔ کتنے صحن میں وہ باغ جو اس مسجد کو اپنی آغوش میں لئے ہوئے ہیں، کس قدر خوب صورت ہیں یہ ٹھنڈی چھاؤں والے درخت جن کی شاخوں کے پھول خانوس بن کر اس مسجد کی دیواروں پر پھول رہے ہیں اور کتنی سحر خیز ہیں یہ اذانیں جو اس مسجد کے میناروں سے صبح و شام بلند ہوتی ہیں۔

وطن پاک خدا کا گھر ہے۔ خدا مجھے دنیا کی جنت سے نکال دے لیکن اپنے گھر سے کبھی نہ نکالے۔

امر تسر کا رمضان المبارک

(میری والدہ محترمہ) کے چلنے اور برتن اٹھانے دیکھنے کی آواز آرہی ہے۔ سامنے طاق مسجد میں باجی ٹوٹلی کھول کر دھڑک رہا ہے اور زور زور سے کھانسی کر گلا صاف کر رہا ہے۔ کہیں کہیں مسلمانوں کے مکانوں سے پانی پینے کی آوازیں آنے لگی ہیں۔

آپو جی نے باورچی خانے سے میری بڑی بہن سرور کو آواز دی ہے۔

آج اٹھنا نہیں بانو!

میری بڑی بہن کمر پڑھتے ہوئے اٹھی ہے اور سر پر دوپٹے لے کر باہر نکل گئی ہے۔ کیوار ٹکھنے سے برت کی ماتہ ٹھنڈی ہوا میری ناک کو لگی ہے۔ میں آنکھوں پر سے لحاف ڈرا سا اٹھائے طاق پر چلتے ہوئے کڑوے تیل کے دیتے کو دیکھ رہا تھا۔ دیتے کی لوسرو ہوا میں ذرا سی کپکپا کر پھر سیدھی الف ہو گئی ہے۔ مجھے اس نوٹ میں روشنی و نور کی نعمی منی پریاں ناچتی نظر آ رہی ہیں۔

”اے حمید! اے اٹھو تے دہی لیا“

اب آپو جی نے مجھے آواز دی ہے۔ میری ڈیوٹی یہ ہے کہ میں مکان پر سے جا کر دھو لؤں۔ زور گونگے بگل والے کے بگل کی بے سُر آواز گونجی ہے۔ ساتھ ہی اس نے اپنی گونگی زبان میں زور سے آواز لگائی ہے۔ مٹی کے کونے میں غلام رسول علوانی کی دکان کے پاس حافظ جی نے اپنی نوبت بکائی ہے۔ ان کے نوبت بجائے کا انداز یہ ہے کہ پہلے دو ہاتھ کھلے بھا کر یک ٹی کے لیے کتے ہیں اور پھر ایک منٹ تک دھڑا دھڑا بجاتے چلے جاتے ہیں۔ یہ نوبت ان کے گھٹے میں ٹکی ہوئی ہے۔ گھنی سیاہ ڈاڑھی، گنھا ہوا بدن بچاس برس کی عمر میں جوان لگتے ہیں۔ بینائی سے خرم ہیں لیکن رزق حلال کی دولت سے مالا مال ہیں سارا دن غلام محمد ہٹوانیہ کی دکان پر ٹٹے مہرے

کی بوریاں ڈھوتے ہیں۔ انہیں گلی محلے کے ایک ایک گھر کا پتہ ہے۔ بشمیری ہیں۔ دو ڈھائی من کی پوری کمرہ لاد کر قرآن شریف کی آیات کا ورد کرتے گلی میں چل پڑتے ہیں اور سیدھے اسی گھر کا جا کو روٹھ لکھنساتے ہیں جہاں انہیں جانا ہوتا ہے۔ لاشی اُن کے ہاتھ میں ہوتی ہے۔ پسینے میں شرابور حافظ جی پوری کے ساتھ ٹیک لگا کر ڈیوڑھی میں بیٹھ جاتے اور لاشی دروازے پر مار کر آواز لگاتے۔

• خلیفہ جی آٹے کا پوری کیا •

رمضان شریف میں وہ گلی میں نہایت طفا کر محلے کے روزہ داروں کو سحری کے وقت جگایا کرتے انہیں سب معلوم تھا کہ کس مکان میں کون رہتا ہے، چنانچہ ہر گھر کے آگے جا کر نوبت بجاتے اور پھر لاشی مکان کے بند کیواڑوں پر مار کر اُس مکان میں رہنے والے کا نام لے کر اُسے جگاتے۔ ہمارے دروازے پر نوبت بجا کر وہ ہمیشہ کہا کرتے۔

• خلیفہ عبدالعزیز! اٹھو میاں اٹھو! •

ہماری گلی میں شیخ سناڑ کے مکان کے بالکل سامنے دو بھائی جلال دین اور کمال دین رہا کرتے تھے۔ انہیں فوت ہوئے مدت ہو چکی تھی، لیکن حافظ جی سحری کے وقت اُن کے مکان پر جا کر ہمیشہ یہی آواز لگاتے۔

• جلال دین کمال دین مرحوم! اٹھو میاں اٹھو! •

حافظ جی کی نوبت اب ہمارے مکان تک پہنچ گئی ہے۔ آپو جی نے مجھے پھر آواز دی ہے میرا بڑا بھائی لحاف کے اندر ہی اندر مجھے ٹھوکے دے رہا ہے۔

• چل بھئی اٹھ! •

مجھے نیند بھی آرہی ہے، مگر سحری کے وقت گلی میں نکلنے کا شوق ہی ہے۔ اُن لوگوں کو دیکھ کر شوق جو معمول تاشے بجاتے روزہ داروں کو جگاتے ہیں۔ بچی گلی کی طرف سے نعتیں گانے والوں کی ٹولی کی آواز آتی ہے۔

جلوہ گر جلوہ گر جلوہ گر ہو گیا

مشاء جن و بشر جلوہ گر ہو گیا

سامنے والی مسجد عیدالون کے باجی نے سحری کے شروع ہونے کی نوبت بجا دی ہے۔ دھواں

دھواں دھواں۔ اب میں لحاف سے آنکھیں ملتے ہوئے اٹھا ہوں اور باہر صحن میں آگیا ہوں۔ برف آٹھ ٹنڈی ہوا کے جھونکے نے میرے ماتھے کو چوم لیا ہے۔ باورچی خانے کے دروازے پر مندا پڑا ہے میں مندا اٹھا کر اندر جاتا ہوں۔ باورچی خانے کی فقنا گرم ہے۔ یوں لگتا ہے جیسے کسی نے گرم شال اوڑھا دی ہو۔ آپو جی نے دونوں چوہے مل کر کھائے ہیں۔ دیواروں پر کٹڑیوں کے شطوں کی جھک پھیلی ہوئی ہے۔ ایک چوہے پر رات کا پکا ہوا گرم پالک کا ساگ گرم ہو رہا ہے اور دوسرے چوہے پر سبز چائے دم ہو رہی ہے۔ چائے کی خوشبو آ رہی ہے۔ آپو جی کا سرخ و سفید گول کشمیری چہرہ چائے کی خوشبو اور آگ کی روشنی میں دکھ رہا ہے۔ میں وہی کا برتن اٹھا کر باہر جانے لگتا ہوں کہ آپو ڈانٹ کر کہتی ہیں۔

• فردے کے جاویں دے •

فرد یعنی گرم کشمیری شال اوڑھ کر جانا۔ میں فردے سے بڑا گھبراہٹا تھا۔ میں چھوٹا تھا۔ زیادہ سے زیادہ دس بار سال کی عمر ہوگی اور فرد بڑی تھی۔ وہ گلی میں مجھ سے سنبھالے نہیں سنبھلتی تھی۔ ویسے بھی اس عمر میں سردی کم ہی لگا کرتی ہے اور پھر ہم غریب محنتی ماں باپ کی اولاد تھے۔ سردیوں میں تنگے پیر ہی گلیوں میں بھاگتے پھرا کرتے تھے۔ کبھی زکام تک نہیں ہوا تھا۔ میں ٹھنڈا کٹورہ ہاتھ میں لیے گلی میں آگیا ہوں۔ آسمان پر چکیے ستارے بڑے بڑے موتیوں کی طرح چمک رہے ہیں۔ گلی دھندل سی ہوئی ہے۔ مسجد کے کنوئیں میں سے برکت ماشکی بو کے نکال نکال کر مشک بھر رہا ہے۔ کنوئیں کی چرخ کی چیلوں چیلوں کی آواز گلی کی خاموشی فضا میں گونج رہی ہے۔ برکت ماشکی بچپن سے لوگوں کے گھروں میں پانی بھر رہا ہے۔ اب وہ بوڑھا ہو گیا ہے۔ مگر جھک گئی ہے۔ ہاتھوں اور ہنڈیوں کی سبز رنگیں بھول گئی ہیں۔ وہ کنوئیں میں سے پانی نکالتے ہوئے ساتھ ساتھ گا بھی رہا ہے۔

کد کی نیں دی مدینے جاواں۔

سیدہ کے گھر کی کھر کی بند ہے۔ روشن دان میں سے جلی جلی روشنی گلی کی کھر آلود فضا میں چھنی رہی ہے۔ وہ سحری کے لیے اٹھی ہوگی۔ اُس نے بے سنہری بالوں کو پیچھے سے مقام کر سر پر جوڑا سا جالیا ہوگا اور پرست میں آٹا گوند رہی ہوگی۔ چودھری نور دین کے مکان میں سے بے شعلوں کی خوشبو آرہی ہے۔

میں گلی کے سرے پر پہنچا تو دھول والا بازار میں پہنچ گیا تھا۔ اُس نے بڑے زوردار انداز میں
دھول کو خوب پیٹا۔ پھر آواز لگائی۔
جاگو اندھے پیارو! خلیل دین آگیا!
سو توں کو جگا گیا!

میں بڑے اشتیاق سے اُسے دیکھ رہا ہوں۔ اُس نے دکان پر بیٹھے ہوئے میرے والد صاحب
سے پوچھا:
"خفیہ کی کیہ وجہ لگیا ہے؟"

اور پھر دھول بجاتا تیز تیز قدموں سے اُگے نکل گیا۔ ڈک خانے کے پاس گونگے کا تیز آواز
تین بگ گونگے تھا۔ پھر وہ تارزن کی طرح اپنی گونگی آواز میں چیخ اٹھا۔ میں دی برتن میں ڈلا کر واپس
گلی کی طرف مڑا تھا کہ گونگے کے بگل کی آواز بہت قریب ہی گونجی۔ اب وہ بھاگتا ہوا ہاتھ میں بگل
تھامے بازار میں نمودار ہوا۔ گلی کی طرف منہ کر کے اُس نے زور سے بگل بجایا۔ تارزن کی آواز میں
ایک وحشی چیخ ماری اور اُگے کو نکل گیا۔ میں اپنے مکان کے پاس پہنچا تھا کہ سامنے سے نعت خوانوں
کی ٹولی کے گیس کی روشنیوں میں گلی میں جھلپٹیں۔ میں اپنے مکان کے سامنے مسجد کے تھڑے پر
کھڑا ہو گیا۔ ٹولہ سبز رنگ کے گونا گوارے گئے جھلاتے جھنڈے اُٹھائے نعت پڑھتی آرہی تھی۔
وہ مسجد کے سامنے آکر کھڑی ہو گئی۔ نعت خوانوں نے سروں پر سبز مٹھے باندھ رکھے تھے۔
ایک دُنی نے گیس اٹھا رکھا تھا۔ گیس کی روشنی میں نعت خوانوں کے چہرے چمک رہے تھے
اور سردی میں گاتے وقت منہ سے بھاپ نکل رہی تھی۔ میں فرد میں لیٹا۔ وہی کا کٹورہ ہاتھ میں
مسجد کے تھڑے پر کھڑا گردن ایک طرف ڈھکائے آنکھیں کھلیں گھبرائے اُس ٹولی کو نعت پڑھتے دیکھتے
رہا۔ مجھے ان ٹولیوں کو دیکھنے کا بڑا شوق تھا۔ اکثر وہ میرے سوتے ہی گلی میں سے نفیس پڑھتی نکل
جایا کرتی تھیں۔ لیکن اگر میری آنکھ کھل جاتی تو میں بھاگ کر کھڑکی میں آن کھڑا ہوتا یا گلی میں لٹک آتا۔
مجھے یوں لگتا جیسے نعت خوانوں کی یہ ٹولیاں خیال کی دنیا سے آتی ہیں اور خواہوں کی سرزمین کو چلی
جاتی ہیں۔

ٹولی نہ تھک پورا بند وہاں بڑے ذوق و شوق سے پڑھا اور پھر نعت پڑھتی ہوئی وہاں

سے نکل گئی۔ میں نے آنکھوں سے سیدھے مکان کی طرف دیکھا۔ سعیدہ وحقی ذرا سی اوپر اٹھائے نعت
خوانوں کو گلی میں سے گزرتے دیکھ رہی تھی۔ گیس کی روشنی میں سعیدہ کی ناک کا سُرخ نیل چمکا اور
پھر وہ پیچھے ہٹ گئی۔

بالائی مسجد کے روضہ پر بیٹھا تھا۔ اُس نے مجھے تھڑے پر کھڑے دیکھ کر کہا۔
"اوتے اونہی لے کے گھر جا۔"

نمدو کا کانا بنائی کے تھور میں سے نارنجی رنگ کے شعلے نکل کر چھت کو چھو رہے ہیں۔
گلی سینڈ و دونوں ہاتھوں سے سیدھے کے پیرے جلا کر تھوٹے پر ساتھ ساتھ جوڑے ہار رہے۔ نمدو
کا کٹورہ میں دودھ اور کھجوریں بھگور رہا ہے۔

بودی چوکیدار منہ سر لیٹے گرم فوجی برانڈی میں لیٹا پنچ پر ڈنڈا ہاتھ میں لیے بیٹھا سگرت پی رہا
ہے اور اس کا بادی رنگ لکٹا اُس کے پاؤں میں سگرتا بیٹھا ہے۔ بودی اپنی لڑکا کا واحد پہرے دار
ہے۔ وہ ساری رات بوٹ بیٹی کے منہ سر لیٹے پنچ پر دراز رہتا ہے۔ دودھ اُدھر کہیں کوئی کھٹکا ہو تو
لگتا جا کر خیر لاتا ہے۔ بودی اپنی جگہ سے ہرگز نہیں ہٹا۔ ایک دفعہ الیا ہوا کہ غزنی گلی کی جانب کسی شے
کے گرنے کی آواز آئی۔ رات کے دو بجے کا عمل تھا۔ بودی نے کتے کو اشارہ کیا۔ کتا لپک کر دوڑا اور
کوئی ایک منٹ بعد گتے کے بھونکنے اور چور کے شور مچانے کی آوازیں آرہی تھیں۔ کوتوالی کے
پاس جا کر کتے نے چور کو گرایا۔ پھر بودی بڑے آرام سے اٹھا۔ برانڈی کی پیٹی کسی ہاتھ میں ڈنڈا
ٹھاما، سگرت سلگایا اور کوتوالی کے پاس جا کر چور کو اس حالت میں پکڑا کہ وہ نیچے سرک پر گرا ہوا تھا
اور کتا اس کی چھاتی پر چڑھا بھونک رہا تھا۔ بودی ہر فن مولا بھی ہے، محلے میں کسی کا چمکا، گرامفون
مشین، بجلی کی ستری، تالہ چاہے کچھ خراب ہو بودی اُسے ایک دم سارا کھول کر دوبارہ ٹھیک کر دیکھ
اب گلی کے ہر گھر کے باورچی خانے میں لیمپ روشن ہیں اور کہیں کہیں پر نالوں سے پانی
گرنے کی آواز آرہی ہے۔ میر صاحب بھی جاگ اُٹھے ہیں اور بڑی اونچی آوازیں کسی آیت شریفہ
کا بار بار درود کر رہے ہیں۔ بوڑھا تھکی ہوئی کمر والا گاما شکی کمر پر پانی سے بھری ہوئی مشک لیے
میرے قریب سے گزر گیا ہے۔ چہرے کی گیلی مشک میں سے پانی کے قطرے ٹپک رہے ہیں۔ اتنی سردی میں وہ صبح صبح لوگوں کے ہاں پانی بھرتا ہے خدا جانے اُسے سردی کیوں نہیں لگتی۔

نہیں دہی لے کر اپنے گھر آگیا ہوں۔ گھر میں سبھی بیدار ہو چکے ہیں۔ ایک اور نعت خوان ٹول
نعت گاتی ہوئی گلی میں سے گزر گئی ہے۔

تینڈی سواری یا نبی عرشی بریں آئے گئی لے دیکھ کے جلوہ ملتے ہوئی نون ہوش دہی لے
میں کھڑکی کی طرف ہانکتا ہوں۔ ٹولی گیس کی روشنی میں مہر جھٹلے لہرائی گلی کا موڑ گھوم رہی ہے
اُن دنوں ہمیں روزہ رکھنے کا بڑا شوق تھا۔ ہم بڑے اشتیاق سے سحری کے وقت اٹھ کر سحری کھاتے
لیکن دوپہر کے بعد جب بھوک برداشت سے باہر ہو جاتی تو ہم پانی پی کر روزہ توڑ دیتے، مگر گھر میں کسی
کو نہ بتاتے۔ افطاری کے وقت گھر پہنچ جاتے اور صبح وغیرہ رکابی میں دیکھ کر یوں نوبت بچنے کا انتظار
کرنے لگتے جیسے بڑے روزہ دار ہوں۔ کسی روز روزہ رکھ بھی لیتے تھے۔ اس روز تو گھر کے علاو
سامنے والی مسجد میں جا کر بھی افطاری کی مٹھائی اور پل وغیرہ اڑاتے۔

میرے ہم جولیوں نے ڈیوڑھی میں اگر مجھے آواز دی ہے۔ میں نے جلدی جلدی سحری کھا لی
ہے اور اُدھے پراٹھے میں ایک بوٹی رکھ کر اپنے ساتھ لے کر نیچے آگیا ہوں۔ ہم بچے خیر دین گئی
دلے کی بند دکان کے پھٹے پر ایک دوسرے میں گھس کر بیٹھ گئے ہیں اور باتیں کرنے لگے ہیں۔ اب
گلی میں سے نہ تو کوئی نعت خوانوں کی ٹولی آرہی ہے اور نہ دھول تاشے بجا کر جگانے والے آرہے
ہیں۔ یہ لوگ بھی اب سحری کھانے میں مصروف ہوں گے۔ اب گلی میں اکا دکا فقیروں کی صدائیں
کسنے لگی ہیں۔ گلی کی ٹکڑ پر اکتارے والا سائیں نمودار ہوا ہے۔ ایسی جٹائیں، سرتھ، آنکھیں، پر سوز آواز
اور کندھے پر بوند لگا کبل۔ وہ اکتارے پر گاتا ہوا چلا آرہا ہے۔

تیرا ہوا جائے کا بارغ دیران

تے والی نے تر جاناں

مجھے یاد ہے میں اس کی آواز پر بڑا اُداس ہو جاتا تھا۔ مجھے یوں لگتا جیسے والی چلا گیا ہے اور
بارغ دیران ہو گیا ہے۔ درخت سٹوکھ گئے ہیں۔ ندی نالے خشک ہو گئے ہیں۔ گھاس پر زرمند
پتے بکھرے پڑے ہیں۔ ابراہیم عطار کے گھر کی جانب اس بوڑھے فقیر کی آواز گونجی ہے جو ہر مکان
کے پاس گھڑا ہو کر حضرت بابا فرید گنج شکر کا یہ شعر پڑھتا ہے اور پھر آگے چل دیتا ہے۔
اٹھ جاگ فرید استیاری ڈاڑھی آیا بور • اٹھانیرے گیا، تیرے بچا رہ گیا دور

اُن دنوں میں اس شعر کے مفہم سے بے خبر تھا۔ میں بوڑھے فقیر کی زبان سے اسے سنا تو مجھے
یوں لگتا جیسے ایک بوڑھا آدمی سے جس کی ڈاڑھی پر آم کا بور گر رہا ہے۔ مجھے اس بوڑھے کا چہرہ بڑا اُداس
لگتا اور میری آنکھوں میں ٹنڈے نور کی روشنی سی سما جاتی۔

سحری کا وقت ختم ہو رہا ہے۔ گلی میں چیل چیل شروع ہو گئی ہے۔ مکانوں کے دروازے، محلے
میں۔ کوئی دودھ لے کر جا رہا ہے۔ کوئی دہی لے کر جا رہا ہے۔ گرم بچھونوں سے زبردستی اٹھوائی گئیں بچیاں
سردی میں ٹھنکرتی، میند بھری آنکھیں بے تنور کے پاس رومال بچھائے بیٹھی ہیں اور اپنی باری کا انتظار
کر رہی ہیں۔ کسی کے مکان کا در کچھ کھلتا ہے اور کسی عورت کی آواز بلند ہوتی ہے۔
• کا کا جی! بڑی دیر ہو گئی۔ اذان ہونے کو ہے۔ لالی کو کچھ دے دیں باب۔

کا کا عمدہ ادھر سے ادھر جھولتے ہوئے تنور میں کچھ لگا بھی رہا ہے اور لوہے کی لمبی سلاخوں
سے انہیں نکال بھی رہا ہے۔ گرم گرم بادھی اور سرخ رنگ کے خستہ کچے، گردے تاخانے تنور سے نکلتے
ہی رومال اور ٹوکریوں میں سمٹ کر گلی محلے کے مکانوں کو جا رہے ہیں سینڈ وٹھے دہی کا پیالہ اپنے
پاس ہی تختے پر رکھا ہے۔ وہ میدانے کے پڑے بھی گھڑ رہا ہے اور ساتھ ہی کچھ بھی کھا رہا ہے
یہ اس کی سحری ہے۔ میدانے کی بوڑیوں کے پاس چوکی پر رکھے ہوئے سادار میں سبز چائے جوش
کھانے لگی ہے۔ کا کا عمدہ پٹے کا ریکر کو آواز دیتا ہے۔

• جیوے اوٹے۔ چانوں دیکھو •

سحری کا وقت ختم ہو گیا۔ گلی والی مسجد کی نوبت و سجادہ منجھنے لگی۔ ہم بھاگ کر مسجد میں گھس
گئے اور بانگی کو نوبت بجاتے دیکھنے لگے۔ دل میں ہمیشہ یہ آرزو رہتی کہ ہمیں بھی نوبت بجانے
کا موقع ملے۔ بانگی ادنیٰ لمبا پورا کشمیری آتو تھا۔ وہ دھڑا دھڑا نوبت کو کوٹ رہا ہوتا۔ جب وہ
ٹھک جاتا تو ہم باری باری نوبت بجاتے اور بڑے فوش ہوتے۔ بانگی پانی پی کر گل صاف کرتا اور
اذان دینی شروع کر دیتا۔ اُن دنوں مسجدوں میں لاڈلا سپیکر نہیں لگے ہوتے تھے، مگر موزوں کی آوازیں
بڑی صاف، روشن اور ہاٹ دار ہوتی تھیں۔ ہمارے محلے کی اذان بکرواں بازار میں جاتی اور وہاں
کی اذان کی آواز ہماری گلی میں آیا کرتی تھیں۔ اذان کی آواز کے ساتھ ہی ہم سارے بچے و منکر غیولی
ٹوٹیوں کی طرف پکٹے۔ موزوں جب اذان کے آخر میں اٹھ اٹھ کر کتا تو ہم ٹوٹیوں سے منہ لگا دیتے

اور پیٹ بھر کر پانی پی لیتے۔ اس خیال سے کہ ہم نے روزہ رکھا ہے اور اب افطاری تک پانی نہیں پینا یہ دوسری بات ہے کہ ہم اسکول کے نلکے پر چھپ چھپ کر پانی پی لیا کرتے تھے۔

مسجد کے خرابی و دواؤں پر غور کرتے ہوئے۔ باہر ٹھنڈے فرش والے محن میں سخت سردی ہوتی۔ لیکن مسجد کے اندر کی فضا نیم گرم ہوتی اور نمازی بڑے سکون سے عبادت کرتے۔ یہیں نماز پڑھنی نہیں آتی تھی۔ کچھ نماز پڑھنے کا شوق اور کچھ دسمبر کی ٹھنڈی رات میں مسجد کے اندر کی گرم فضا کا تصور بھی کھینچ کر مسجد کے اندر سے جاتا۔ سب سے بچھلی قطار میں ہاتھ باندھے، آنکھیں بند کیے کھڑے ہو جاتے اور کبھی کبھی آنکھ کھول کر دیکھ لیتے کہ نمازی کب رکوع میں جا رہے ہیں اور کب سجدے میں۔ — مجھے یاد ہے ایک بار مسجد میں شاید سائیسویں کی رات تھی۔ ترہوی کے بعد ختم شریف تھا تمام نمازی مسجد کے اندر دھارے کی شکل میں بیٹھے تھے۔ بیچ میں رکابیوں اور خوانوں میں قسم قسم کی مٹھائیاں، کھجوریں گلاب کے عرق سے بھری ہوئی گلاب دانیاں اور پھولوں کے گلدستے رکھے تھے۔ اگر دانوں میں اگر بتیاں سنگ رہی تھیں۔ فضا پھلوں، پھولوں، مٹھائیوں اور گریوں کی خوشبوؤں سے بوجھل ہو رہی تھی۔ اس پر تفریق کہ باگی ہر دو منٹ کے بعد گلاب دانی اٹھا کر لوگوں پر گلاب کا عرق چھڑک دیتا۔ ہم عرق کے ٹھنڈے چھینٹوں سے بچنے کے لیے ہانڈوں میں منہ چھپا لیتے۔ آخر ایک نمازی نے اسے منع کر دیا کہ وہ بار بار عرق نہ چھڑکے۔

ایک مقام ایسا آیا کہ بتیاں گل کردی گئیں اور اندھیرے میں نمازی بندہ آواز سے بڑے ذوق شوق کے ساتھ ”یا حئی و یا قیوم“ کا ورد کرتے گئے۔ اندھیرے میں خدا جانے مجھے کیا سوچھی کہ میں نے آہستہ آہستہ اپنا ہاتھ بیچ میں رکھی ہوئی شکر پاروں کی پیٹ کی طرف بڑھا، شروع کر دیا۔ جونہی میرے ہاتھ نے پیٹ میں رکھے ہوئے شکر پاروں کو چھوا، میں نے ٹڈک کر ایک دم ہاتھ پیچھے کھینچ لیا۔ بات یہ ہوئی تھی کہ مجھ سے پہلے کسی کا ہاتھ شکر پاروں کی پیٹ تک پہنچ چکا تھا اور ہم دونوں کے ہاتھ ایک دوسرے سے ٹکرائے تھے۔ مجھے یقین ہے کہ دوسرے نے بھی اپنا ہاتھ ڈر کر کھینچ لیا ہوگا۔ اتنے میں بتیاں روشن ہو گئیں۔ میں نے اپنے سامنے بیٹھے ہوئے ایک ہارٹس بزرگ کو بڑے غور سے دیکھا۔ مجھے آج بھی اس بات کا یقین ہے کہ مجھ سے پہلے شکر پاروں کی پیٹ تک پہنچا ہوا ہاتھ ان بزرگ کا نہیں تھا۔

عشاء کی نماز کے بعد تراویح کا وقت ہوتا تو محلے بھر میں بڑی رونق ہو جاتی۔ کوئی اس مسجد میں تراویح پڑھنے جا رہا ہے تو کوئی اس مسجد میں۔ ان دنوں میں خوب نمازیں پڑھا کرتا اور تراویح تو بڑے شوق سے پڑھتا تھا۔ آخری تراویح کے قریب پہنچ کر ٹھک جاتا، مگر جماعت نہ چھوڑتا تھا۔ خاص طور پر جب نمازی دو تراویح کے درمیانی وقفے میں ”یا ارحم الراحمین“ کا ورد کرتے تو جذبہ پر ایک عجیب سی کیفیت طاری ہو جاتی۔ میں آنکھیں بند کر لیتا اور پھر تصور میں خوبصورت باغ گھنے درخت، ادھرتوں پر کھلے ہوئے پھول، سنہری دھوپ میں نیلے آسمان پر اڑتے سفید کبوتر اور آلوچوں کے باغ میں سے ہو کر گزرنے والی شگ رفتار نمایاں دیکھتا۔ — آج بھی رمضان المبارک کے مہینے میں نہیں جب کسی مسجد، یہ آواز سنا ہوں تو بعینہ بچپن کی اسی کیفیت میں ڈوب جاتا ہوں۔

شبیز یعنی سائیسویں کی رات کو شہر میں اور خاص طور پر ہمارے محلے میں بڑی رونق ہوتی۔ اس رات میرا خیال ہے شاید ہی کوئی شخص سوتا ہوگا۔ گل گلی، محلے محلے لوگوں کی چل قدمی رات بھر ماری رہتی مسجد میں حجاز فانوس روشن ہوتے۔ میناروں اور گنبدوں پر لال پیل بتیاں روشن ہوتیں۔ مسجدوں کے صواوڑوں کو کیلے کے پتوں اور گیندے کے کیسری پھولوں سے سجایا جاتا۔ ان دنوں گیندے کے کیسری اور زرد پھولوں میں ایک عجیب قسم کی جھک سہا کرتی تھی۔ اور یہ پھول امرتسر میں بڑا عام تھا۔ ویسے تو امرتسر کے باغوں اور کھیتوں میں سجا پڑی رنگ کا گلاب بھی بڑی کثرت سے پایا جاتا تھا، لیکن گیندے کا دواغ زیادہ تھا۔ بیاہ شادیوں پر گیندے کے ہار پہنے جاتے تھے۔ میں سروپوں کی ٹھنڈی میچ کو سیر کے لیے باہر کھیتوں میں جاتا تو چالیس کنوؤں کی جانب ٹوب دیں کے کچھوڑے بنالہ گورو اسپور کو جاتی ہوئی ریلوے لائن کے پاس کھیتوں میں گیندے کے پھول ٹھنڈی بیج شبنم میں بھیگے ہوتے۔ میں ذرا مٹھ لگاتا، اور میرا ہاتھ ٹھنڈی شبنم سے بھر جاتا۔ میں وہ آنکھوں پر لگاتا۔ آج لاہور کی گود گود سڑکوں پر چلتے چلتے گیندے کے ان پھولوں کی یاد آتی ہے تو اپنا خالی ہاتھ آنکھوں پر رکھ لیتا ہوں اور میرا ہاتھ آنسو کی گرم شبنم سے بھر جاتا ہے۔ دواغ! گیندے کی ٹھک! دواغ! گلاب کی ٹھک! دواغ! سبز چائے اور بونگ کی خوشبو! دواغ! رمضان المبارک کی خوشبو!

شبیز کا ہم بڑی بے تابی سے انتظار کیا کرتے اور ساری رات جگ کر گزارتے۔ ابھی مسجد میں لوگوں کی تابی تو ابھی مسجد جہاں محمد میں — وہاں سے اٹھتے ہیں تو مال بازار والی مسجد خیر الدین میں تبرک

کھا رہے ہیں۔ ایک مسجد کے ندوٹ پر بیٹھ کر نان اور عود کھاتے۔ دوسری مسجد میں جا کر پیالوں میں تیز نمک والی سبز چائے پیتے۔ سبز چائے کے بڑے بڑے پتیلے ہر مسجد کی ڈیوڑھی میں آگ پر چڑھ جاتے اور وہ ایک بوڑھے آن کے پاس بیٹھے آگ تپ رہے ہوتے اور ساتھ ساتھ پتیلے میں پانی کے ڈونگے بھی اُٹھاتے جاتے۔ مسجد کے صحن سردی میں ٹھٹھ رہے ہوتے۔ مسجد کے خرابی دروازوں پر نمک لگے ہوتے اور اندر سے حافظ کے تھن تیز قرآن شریف پڑھنے کی آواز آرہی ہوتی۔ سردیوں کی رات کے کھرے ہوئے آسمان پر ستارے بڑی آب و تاب سے جھللا رہے ہوتے۔ لوگ ٹوٹیلوں کے ٹھنڈے پانی سے دھو کر تے اور جلدی جلدی بچہ بستہ صحن عموں کے مندا آٹھا مسجد کے اندر چلے جاتے۔

افطاری کے وقت یوں تو محلے کی دوسری دکانیں بھی خوب اہتمام سے سجائی جاتیں، مگر کاکا عود کی دکان کی سچ دھج لڑائی ہوتی تھی۔ پہلے رعوے ہی کو وہ دکان کے آگے فرش سے لے کر دکان کی پیشانی تک لکڑی کے لمبے لمبے تختے جوڑ کر میڑھیاں سی بنا دیتا۔ ان میڑھیوں پر سفید چادریں ڈال دی جاتیں اور ان پر ورق لگی باقر خانیں، بڑے بڑے ادا روت، شیر مال، کھنڈ کھوں کے تھال ٹنکین کھوں کی سینیاں، خشکاش لگے گردے تافٹلے اور کچے اس طرح سجا دیے جاتے کہ کہیں کوئی جگہ نہ بچتی۔ کاکا عود بوسکی کی قمیض، ریشمی تھیل اور کالا پپ شوپنے خوشی سے جھوم جھوم کر دھان کے اندر باہر پھر رہا ہوتا۔ وہ اپنا سماوار تخت پر لا رکھتا۔ افطاری کی فست بچتی تو وہ سبز چٹے کا خوشبودار گونٹ پی کر روزہ افطار کرتا۔ اس کا کارگر سینڈ وک بکوں کو سودا دینے میں مصروف ہوتا اور ساتھ ساتھ چائے بھی پیتا اور کاکا عود کی آنکھ بچا کر ایک آدھ کھنڈ کچر اٹھا لاپنی ہجائی میں بھی گرا لیتا۔ حتمی حلوئی کی دکان پر بھی بکلی کے قینے روشن ہوتے اور تختوں پر انواع و اقسام کی ورق لگی مٹھائیاں بکلی کی روشنی میں چمک رہی ہوتیں۔ اس کا لکھو گرج بھی مٹھائی کے سرخ گلاب جانے میں بڑا ماہر تھا۔ یہ گلاب بالکل سرخ گلاب کے پتھوں کی طرح مٹھائی کے ہر تھال میں ہاروں کی طرح سجے ہوتے۔ دور سے وہ اصل گلاب کے ہار معلوم ہوئے۔ مٹھائی کے یہ سرخ گلاب بڑے پیارے لگتے۔ میں حیران ہوتا کہ لوگ اسے کیس طرح کھا جاتے ہیں۔ مگر میں مٹھائی کی ٹوٹری آتی تو میں گلاب کا پھول اٹھا کر اپنی المدی میں چسپا لیتا۔ دوسرے روز اس پر چیریاں چڑھی ہوتیں۔ میں پتھو ٹکیں مار مار کر چوٹیلوں کو جھاڑتا، مگر وہ دو ایک روز میں مٹھائی کا آدھا گلاب کھا جاتیں۔ اب مٹھائی کے وہ گلاب نہیں بنتے

اب گلاب ویسے بھی دکھائی نہیں دیتا۔ سرخ گلاب سے اب بیاہ شادی یا جلانے ہی پر ملاقات ہوتی ہے بیاہ شادی پر وہ موٹر کے پتے بونٹ پر ٹل رہا ہوتا ہے اور چھانے پر لوگوں کے پاؤں تلے کچلا جا رہا ہوتا ہے۔

امر تر کے رمضان المبارک کی سحری میں کبھی نہیں بھلا سکوں گا۔ سحری کا انتظار میں اس شوق سے کرتا گویا صبح عید ہے۔ تراویح کے بعد گھر کے سب لوگ سو جاتے، مگر میں جاگ رہا ہوتا۔ کان سحری کے وقت جگانے والی نعت خوانوں کی آوازوں یا ڈھول تاشوں کی دُور سے آتی صداؤں پر لگے ہوتے اسی انتظار میں میری ہلکی بوجھل ہو جاتی اور میں سو جاتا۔ اُسی رات کو کسی وقت آنکھ کھل جاتی تو چپکے سے کھات سے نکل سخت سردی میں ابھر صحن میں آجاتا۔ آسمان پر ستارے موتیوں کی طرح چمک رہے ہوتے۔ میں نے چند ستاروں کا حساب لگا رکھا تھا کہ جب یہ آسمان کے ایک خاص حصے میں آجائیں تو سحری کا وقت ہو جاتا ہے۔ میں بکلوں میں ہاتھ دیتے، سردی میں ٹھٹھتا۔ اُسی رات کو مکان کے ٹھنڈے صحن میں اکیلا کھڑا آسمان کی طرف مناسٹائے اپنے مطلب کے ستارے تلاش کرنے لگتا، مگر وہ ستاروں کے عظیم جھرمٹ میں گم ہو گئے ہوتے اور مجھے کہیں نظر نہ آتے۔ پھر میں کھڑکی میں سے نیچے لگی میں جھانکتا۔ لگی کھینٹ کے لمپوں کی دھیمی روشنی میں سنان ہوتی۔ پھر میں سانس روک کر بہہ تن گوش ہو کر دُور سے آنے والی کسی ڈھول کی آواز سننے کی کوشش کرتا۔ پھر بجلاوات کے ایک بجے کون جھانکتے آتا ہے! اب مجھے سردی لگنے لگی اور میں نا اُمید ہو کر واپس اپنے کھات میں گھس جاتا اور گرم کھات بہت جلد مجھے ایک بار پھر نیند کی دنیا میں لے جاتا۔ اور جب ڈھول تاشوں اور ٹوٹیوں کے نعتیں پڑھنے کی آواز پڑ آنکھ کھلتی تو یوں خوش ہوتا گویا کھویا ہوا خیر دل گیا ہو۔

رمضان شریف کی آخری سحری بڑی دل گداز اور آفاس ہوتی۔ تراویح پڑھنے کے بعد روزہ دار ایک دوسرے سے مصافحہ کرتے۔ حافظ اور سامع کو نذرانہ دیا جاتا۔ سر پر ٹیکا باندھا جاتا سحری کے وقت بہت کم ڈھول بجانے والے آتے۔ جوں جوں رمضان خریف کی آخری تار کھینچ کر قریب آتی جاتیں، ایک ایک کر کے سب بچھڑتے جاتے۔ صرف گونا گوں بگل والا، حافظ نوبت والا اور نعت خوان ٹولیاں باقی رہ جاتیں۔ نعت خوان ٹولیاں رمضان المبارک کی رخصتی کے گیت گاتے ہوئے آتیں۔

بہن ہوں جدا ہوں گئیں نے

پچھلے پہر مگی کی شہر تھی ہوئی سنسان فضا نکلیں لہاوہ سا اور مہیتی۔ میں مگی میں اگر ایک ایک
نعت خوان کی صورت کو تکتا رہ جاتا۔ اب یہ شکلیں ایک برس تک دیکھنے کو نہ ملیں گی۔ کون کچھ رات
کو ستاروں کی چھاؤں میں اٹھتا ہے اور مگی کی نعتیں پڑھتے ہوئے روزہ داروں کو جگاتا پھرتا ہے بھلا!
میں ان کے غم زدہ الوداعی گیت سن کر اداس ہو جاتا۔ بعض نعت خوانوں کی آنکھیں آبدیدہ ہو جاتیں
مجھے یوں لگتا جیسے مگی سے کوئی دلیں ڈول میں بیٹھ کر رخصت ہو رہی ہے بابل کے پیارے گھر
کو چھوڑ کر سسرال جا رہی ہے۔ مجھے سحری ایک دلیں کے روپ میں دکھائی دیتی۔ سرگیں آنکھوں او
تاروں جڑے آنچل والی دلیں! پچھلے پہر کی دلیں! آنکھوں میں آنسوئیں۔ بابل کی دلیں سے قدم نہیں اٹھ
رہے، مگر جانا ہی ضرور ہے۔ جدائی! جدائی! جدائی! مقدس ہو چکی ہے۔ بوجھل دل نے کر ڈول میں بیٹھ چکی
ہے۔ سسکیاں ہیں۔ سکھیں کی آہیں ہیں۔ محبت کرنے والوں کی نگاہیں دور تک تعاقب کر رہی
ہیں۔ ڈول مگی میں سے ہونے ہوئے رخصت ہو رہی ہے۔ الوداع! الوداع! الوداع! الوداع!
تو نے گہر دم اٹھ کر ہمارے منہ شبنم سے دھلائے۔ یہاں ستاروں کی چھاؤں میں گیندے اور گلاب کے
باغوں کی سیر کرائی۔ ہم نے تیرے دامن کو تمام کر صبح کی شبنمی ہواؤں میں پرواز کی ہم تیرا خیال دل میں
لے کر سوئے اور تیری یاد کو گے لگا کر تجھ سے رخصت ہوئے الوداع! الوداع! الوداع! الوداع! الوداع!
کی خوشبو! دار چینی اور لونگ کی خوشبو! سبز چائے اور گیندے کی خوشبو!

میں نے گیندے کو ہاتھ لگایا تھا تو میرا ہاتھ پاکیزہ شبنم کے موتیوں سے چمک اٹھا تھا الوداع
میں جس پھول کو ہاتھ لگاتا ہوں مجھے کسی مردہ جسم کو چھونے کا احساس ہوتا ہے۔ آہ! خوشبو، میرے بازوؤں
میں پھول کی لاش چھوڑ کر گئی!

امرتسر کی عیش

امرتسر کی عید کا خیال تھا ہے تو آنکھوں کے سامنے ایک بھولی بھالی معصوم بچی کی تصویر آ جاتی ہے۔
اس کے ریشمی کپڑوں پر گونا گونا گے سر پر جھلک کر تکی جتی ہے۔ آنکھوں میں کاجل لگا ہے۔ پیروں میں
لال گرگابی ہے۔ لال پٹیل چڑیاں کھٹک رہی ہیں۔ ایک ہاتھ میں غبارہ ہے اور دوسرے ہاتھ میں دھن کی
سوتیوں سے بھری ہوئی تھالی ہے جس پر کروٹھے سے کاڑھا ہوا سفید رومال پڑا ہے اور وہ مگی میں سے
گزر رہی ہے۔ مگی عید کی خوشیوں بھری صبح کے ساتھ بیدار ہو گئی ہے۔ غباروں کے ساتھ گئے باجوں کی
آوازیں آرہی ہیں۔ گھروں میں مائیں بچوں کو نہلا دھلا کرتے نئے کپڑے پہنا رہی ہیں۔ گرم گرم سوتیوں سے
بھرے ہوئے مٹھتوں پر چاندی کے دھن لگا رہی ہیں۔ ہر گھر سے اصل گھی ملی سوتیوں کی مہک کے
ساتھ جتا کے عطر، افغان سنو اور پاؤڈر کی خوشبوئیں آرہی ہیں۔ بچے لال گرگابی داسکٹیں، تیلی پٹیل ٹوپیاں اور
نئے جوتے پہن گھروں سے نکل کر اپنے بہن بھائیوں اور ہم جویوں کے ساتھ مگی میں عنایتی مٹھائی
دائے، گاما گلیٹینوں دائے، جان کھلوتوں دائے اور عید دو ہی بچے دائے کی دکانوں کے باہر موڑھوں پر
بیٹھ کر کھاپی رہے ہیں اور بے دھڑک عید کی پیسے خرچ کر رہے ہیں۔ سوتیوں کی تعابیر
بھی سبائی بچیوں کے ہاتھوں ایک گھر سے دوسرے گھر کو جا رہی ہیں۔ مگی والی مسجد میں نئے کے
برگھر سے سوتیاں پہنچ رہی ہیں۔ بانگی بھری ہوئی تھالی حجرے میں لے جاتا ہے اور خانی تھالی نے
کر باہر آ جاتا ہے۔ سوتیوں کے گھی سے اس کے ہونٹ چمک رہے ہیں۔ آج اس کی شور قیص
بھی اصلی دھلائی ہے اور ڈاڑھی میں تیل لگا ہے۔

سحری کے وقت ڈھول تاشے بجا کر جگانے والے مگی میں گھوم پھر رہے ہیں۔ وہ بہر مکان سے آگے
ہل کر ڈھول بجاتے ہیں اور وہی آواز لگاتے ہیں جو رمضان المبارک میں سحری کے وقت بجاتے

تھے۔ ایک بڑے سے چھوٹے میں وہ سوتیاں، پلاؤ، چاول، انا، گڑ کی ریوڑی جو کچھ ملتا ہے ڈالتے جاتے ہیں اور پھر گے مکان پر جا کر آواز لگاتے ہیں۔

• خیر دین آگیا، سوتوں کو جگا گیا۔

ہم انہیں بڑے شوق سے دیکھ رہے ہیں۔ اچھا تو یہ وہ پراسرار ڈھول والے تھے جو سڑکوں میں پچھلے پیر کے اندھیروں میں ڈھول بجاتے گل میں سے گزر جایا کرتے تھے۔ ایک طرف سے گونگا بگل والی آواز ہوتا ہے اور اپنے مخصوص انداز میں بگل بجا کر ٹانڈن کی طرح چیخ مار کر گلی من سے گزر جاتا ہے۔

بازار میں سے سینا والوں کا جلوس گزر رہا ہے۔ دو آدمی دھڑا دھڑا ڈھول بجا رہے ہیں۔ ان کے چہرے سردیوں میں بھی پسینے سے تر ہیں۔ پہلے ٹانگیز والا مشہور سکھ ترمی اچکن، چوڑی دار پاہا مارا اور سیاہ جوتے پہنے ساتھ ساتھ ٹکی بجا رہا ہے۔ ٹکی بجاتے ہوئے ڈھول کی نے پراس کا سر بھی ہل رہا ہے۔ پہلے ٹانگیز میں بھی عید کی خوشی میں نئی فلم لگی ہے۔ گلی کے بچے جلوس کے ساتھ ساتھ ہولیتے ہیں اور جلوس کو اگلے محفل تک چھوڑ کر واپس آجاتے ہیں، محفل کی دکانیں دکانوں کی طرح سب سوئی ہیں۔ کاکا مندو کی دکان کی تو آج سچ سچ ہی نرالی ہے۔ تخت پوش سے لے کر چھت تک ورق لگے لاروٹ، باقر قاریوں، کندھ تلپوں اور شیر مالوں کے تعال سب ہوئے ہیں۔ عنایتی حوالی نے قسم قسم کی مٹھائیاں بنا رکھی ہیں۔ لوگ کپاس کے سرکٹوں سے بنی ٹوکریوں میں سیر سیر دو دو سیر مٹھائی لیے اپنے رشتے داروں کے گھروں کو عید کی مبارک دینے جا رہے ہیں عنایتی نے آج محفل نہیں بنائے۔ قلعے ٹوڑ کے دن بنائے جاتے ہیں، کوئی کاندرا ایسا نہیں جس نے محنت بچا کر دکان آدمی سر تک نہ بڑھالی ہو۔ کیر سنگھ اور میر حسن منہا کی دالے کی دکان پر بڑی گاڑی ہے۔ بچیاں ابھی تک کپ، کانٹے، کبوترے، گونا اور رنگ برنگے ربن خرید رہی ہیں۔ نوجوان اپنی پسند کی چیزیں دیکھ رہے ہیں۔ ایک آدمی جھک کر اپنے بچے کی نیکر میں نئی پٹی ڈال رہا ہے۔ دوسرا اپنے ننھے بچے کو دکان کے تھیلے پر کھڑا کیے اس کے نئے بوٹ کے تسمے کس رہا ہے۔ دوست محمد تصانی کی دکان پر بھیڑ لگی ہے۔ وہ خود گوشت کاٹ رہا ہے۔ دوست محمد کا نورانی سفید ڈھمکی والا سرخ و سپید چہرہ آج بھی میری آنکھوں کے سامنے ہے۔ پاؤں کے انگوٹھے میں چھری اٹکا کر وہ بڑے اٹھاک سے گوشت بنا رہا ہوتا تو

اس کے ہونٹ بائیں طرف کو اپنے آپ لٹک جاتے اور زبان کا پتلا سیراب ہر جھلکنے لگتا اس کا بڑا بیٹا حسین شین چلا کر قہر تیار کر رہا ہے اور چھوٹا بیٹا تیز رفت جیرا سری پائے بنا رہا ہے۔ جیرا میرا دوست تھا۔ منہ اندھیرے وہ اپنی دکان کھول تو ہم رات کا بچا ہوا گوشت اور چربی اگل جلا کر پکاتے اور مزے لے لے کر کھا جاتے۔ ایک بار وہ ملنے مجھے دے لے کھو میں سری پائے بھونانے گیا تو میں بھی اس کے ساتھ گیا۔ تنور میں سے آگ کے سرخ و زرد شعلے باہر نکل رہے تھے۔ ایک کالا بھونگ آدمی سانسے بھریے پر بیٹھا تھا۔ وہ بکسے کی سری کو سلاخ میں گاڑ کر تنور میں لے جاتا۔ گوشت اور بالوں کے جلنے کی بو کے پھپکے اٹھتے۔ وہ جلدی سے بھنی ہوئی سیاہ کالی سری کو تنور سے باہر نکال کر دوسری طرف پھینک دیتا۔ میں آؤ جیرا اپنے سری پائے ٹوکری میں ڈال کر ایک طرف نکلے کے پاس بیٹھ گئے اور جھانپیں سے انہیں نکل نکل کر دھونے لگے۔ میں خیرے کو منع کیا کرتا۔

• بازار ان کی آنکھوں پر جھانپیں مت پھرو۔

اور جیرا ہنس کر کہتا۔

• اونٹے، یہ تو میری بھولی سریاں ہیں۔

جیرا اور میں بڑے دوست تھے۔ ہم ایک ساتھ لی کر ہندو سکھوں کے محلے کے بکلی کے طبقہ توڑتے۔ اپنے محفل کی مرغیاں اٹھا کر قبرستان میں لے جاتے۔ وہیں ذبح کر کے انہیں خشک جھلیاں جلا کر پکاتے اور کھا جاتے تھے۔ سنا ہے جیرا آج کل کراچی کی لی مارکیٹ میں مکان کتا رہا ہے اور مجھے بہت یاد کرتا ہے۔

ابراہیم عطار اور سندھ سنگھ پنہاری کی دکانوں سے لوگ چاندی کے مدق، چینی، شہد، چھوٹے سے مسمے گری اور یا نام خرید رہے ہیں۔ بھاری بھر کم بدن، ناٹھ، سرخ رنگ اور عینک کے شیشوں کے بھیجے جھلانی آنکھیں۔ یہ ہے ابراہیم عطار۔ دکاندار کی سے زیادہ طب کی پڑائی کتابیں پڑھنے کا بے حد شوقین۔ ایک روز صبح صبح اگر دکان کھول۔ خربت کی بوتلوں پر پانی چھڑک کر تانبے کی ٹوپیاں آن پر ڈالیں۔ اندر جھاگندی پر بیٹھ گیا اور عینک صاف کر کے طب کی پڑائی کتاب کے مطالعے میں ڈوب گیا۔ اتنے میں ایک بچہ لگا اس آتھ میں لیے آیا اور بولا۔

• حکیم جی! اتنی کبھی ہے ایک آنے کا بیزوری خربت دے دیں۔

ہر اہم عطلہ نے بڑے غصے سے بچے کو دیکھا۔ کتاب بند کر کے گدی پر رکھی اور یہ کہہ کر شربت کی بوتل اٹھائی۔

عجیب مصیبت ہے۔ اور مکان کو لو، اور گھر گھر آنا شروع ہو جاتے ہیں۔

گلی میں طرح طرح کے فقیروں کی صدائیں گونج رہی ہیں بٹے کئے گز مارا ستنوں میں کاٹتے مار لوہے کے گز اور شاتے لیے ہر مکان کے آگے آواز مار کر خیرات مانگ رہے ہیں۔ کوئی خیرات دینے سے انکار کرے تو گز اپنے سر پر مار کر لوہان ہو جاتے ہیں۔ ایک فقیر ہمیشہ ہماری گلی میں آیا کرتا۔ اس کے ساتھ اس کی بیوی بھی ہوتی۔ اونچا لمبا اور عریض عکرا یہ فقیر دھسے دھسلائے کپڑوں میں طپوں ہوتا سر پر سرمئی رنگ کی سمور کی ٹوپی ہوتی۔ وہ پان کھارہ ہوتا اور بڑی بڑی مونچھوں میں کہیں کہیں سفید، بالوں کے تار چمک رہے ہوتے۔ وہ میٹرہ ضلع کا رہنے والا تھا اس کی آواز بڑی پاٹ دار تھی۔ اس کا بچہ یہ مصرع یاد رکھا کرتا ہے۔

• بھائے گیسوؤں والے •

اُسے دیکھ کر بچے ہمیشہ میکہ گوڑی کے قازق کردار یاد آ جاتے تھے۔ اب گلی میں کمیاں یعنی کنول کے پھول بیچنے والی لڑکیاں نمودار ہو گئی ہیں۔ ان لڑکیوں نے سیاہ لمبی قمیضیں اور سیاہ تہمند باندھ رکھے ہیں۔ کانوں میں چاندی کی بالیاں ہیں۔ کندھوں پر کنول کے لیے لیے ڈنٹھلوں والے پھول ڈالے ہیں اور گلی میں آوازیں لگاتی پھرتی ہیں۔

• کمیاں نے لوگیاں •

عمر میں کنول کے پھول خرید کر ان کے گھنے بنایا کرتیں۔ عید کے روز یہ جس گھر میں پھول بیچنے جاتیں وہاں سے سڑیاں فروزا اپنے صوبے میں بھر کر لاتیں۔

بھگتیں سروں پر مثال اٹھائے ہر گھر میں جا رہی ہیں اور عید کی سڑیاں اور عیدی وصول کر رہی ہیں۔ اسرتر میں عید کی تیاریاں ایک رات پہلے ہی شروع ہو جاتی تھیں۔ اُس رات کو حرفے کی رات کہا جاتا۔ حرفے کی رات میں خوشی سے نیند نہیں آتی تھی۔ تقریباً ساری رات جاگتے رہتے۔ حرفے کی رات کی خوشی بھی عید سے زیادہ ہوتی۔ یہ عید کی آمد کا اعلان تھا جس طرح دلہن کی زندگی میں شادی سے ایک روز پہلے کی رات، سہاگ رات سے زیادہ پُر اسرار اور اہمیتوں بھری ہوتی ہے اس

رات کو حسین خوابوں کا محل تیار کیا جاتا ہے۔ سہاگ رات کو تو خواب ٹوٹ جاتے ہیں اور تعمیر کا سفر شروع ہوتا ہے یا زندگی کے دریائے سرسبز کناروں پر خوشیوں بھری کپکپ کا آغاز اور یہ عبور عبور دریائے شوق۔

حرفے کی رات کو ہمارے محلے میں منہا رکی، پنساری، سبزی والے، گوشت والے اور درزی کی دکانیں نصف شب کے بعد تک کھلی رہتیں۔ اسرتر کے کشمیری گھڑلوں میں خاص طور پر یہ دستور تھا کہ حرفے کی رات کو شب دیگ اور ساگ مچھل ضرور کپتی۔ شب دیگ کے لیے لال لال شبنم دوپہر ہی کو گھر میں آ جاتے۔ گوشت خاص طور پر گھر کا کوئی بڑا بوڑھا جاکر لے تا۔ عشاء کی نماز کے بعد شب دیگ کو کڑیاں جلا کر چولہے پر چڑھا دیا جاتا۔ دوسرے چولہوں پر ساگ مچھل اور سفید چاول یعنی بھتہ پکنا شروع ہو جاتا اور گھر میں گرم سالوں کی تیز خوشبوئیں پھیل جاتیں۔ رات گھسے کے لیے قبوہ تیار ہو جاتا اور ان سالوں میں در چینی اور بادیاں خٹائی کی خوشبوئیں بھی شامل ہو جاتیں۔ جس چیز کی ضرورت ہوتی جھٹ بازار سے منگوا لی جاتی۔ مجھے یاد ہے میں دوسرے بہن بھائیوں کے ساتھ آدمی آدمی رات باورچی خانے میں بیٹھا رہتا اور آپوچی اور بڑی بہنوں کو مختلف ٹانڈیوں اور تیلیوں میں کھلیں چلاتے دیکھتا رہتا۔ دل میں اس خیال سے پھول کھل رہے ہوتے کہ بس ابھی کوئی دم میں عید کی صبح طلوع ہو جائے گی اور ہم نئے نئے کپڑے پہن کر گلی میں دوستوں کے ساتھ نکل جائیں گے۔ نجات سے خریدیں گے۔ وہی بھٹے کھائیں گے۔ سڑیاں اڑائیں گے۔ خواہ مخواہ رشتے داروں کے ہاں جا دھکیں گے اور عیدیاں وصول کرتے پھریں گے۔ ویسے اُن دنوں رشتے دار بھی آپس میں بڑا پیار کیا کرتے تھے۔ اب تو سونے اپنے بچوں کے دوسروں کے بچوں سے کوئی پیار ہی نہیں کرتا۔ میرا خیال ہے کہ وہ دور ہی محبت کا تھا۔ برکت کا تھا۔ اب ہر شے سے محبت اڑ گئی ہے۔ برکت جاتی رہی ہے ہم خوب بنے سٹنے خالوں، پھوپھیوں کے ہاں جاتے۔ ہماری بڑی آؤ بھگت ہوتی۔ منہ سر چومے جاتے۔ زبردستی سڑیاں کھلائی جاتیں اور پھر عیدی دیکر ہاتی ساس روز ہم بڑے شاہ خرچ ہوتے۔ ہر دکان پر جا کر کچھ کچھ ضرور کھاتے۔ اب تو عید کے دن میں وہ مدق نہیں رہی۔ حرفے کی رات آج کل ہی ختم ہو گئی۔

اُس رات ہر دکان پر گیس یا بڑے بڑے بلب بلب رہے ہوتے لوگ خرید و فروخت کرتے

ہوتے۔ گھروں میں مشینوں سے سوئیاں نکل رہی ہوتیں۔ سردی کے باعث درزیوں کی دکانوں کے پھاڑ
نیم داہوتے۔ اندر مدہنی میں ماسٹر صاحب اپنے کاریگروں کے ساتھ بیٹھے عید کے کپڑے تیار کر رہے
ہوئے۔ ہماری گلی کے ماسٹر شفیق بڑے وضع دار ٹیلر ماسٹر تھے۔ کیا مجال جو کبھی دھسے پر کسی کو قمیص یا
شلوار دے دیں۔ ایک بار میں اُن کی دکان پر بیٹھا تھا کہ ایک صاحب تشریف لائے اور بولے۔

”لایے ماسٹر صاحب قمیص“

ماسٹر صاحب نے بڑے اطمینان سے حقے کا کش لگایا اور کہنے لگے۔
”بس ذرا بٹن لگنے والے رہ گئے ہیں۔ آپ ایسا کریں گول بٹن سے جا کر بٹن لے آئیں۔“

وہ صاحب بولے۔

”مگر ماسٹر صاحب میں تو ملیے پر جارا ہوں۔ آپ نے تو صبح کا وعدہ کیا تھا۔“

”میں نے کب انکار کیا ہے خواجہ صیب! آپ بٹن لائیں اور قمیص لے جائیں۔“

وہ صاحب سر جھکا کر بٹن لینے چل دیئے۔ اُن کے جاتے ہی ماسٹر صاحب نے حقے کی

پرسے کی اور کاریگر کو چیخ کر کہا۔

”اُمٹے لیا اُمٹے خواجہ کی قمیص۔“

معلوم ہوا کہ قمیص صرف کٹی ہوئی ہے، سلائی ابھی نہیں ہوئی۔ لیکن آفرین ہے ماسٹر شفیق پر

کہ جب تک خواجہ صاحب گول بٹن سے بٹن لے کر آئے، قمیص سل کر تیار ہو چکی تھی۔

غایتی حلونی عید پر مٹھائی بنانے کے لیے دکان کے آگے سڑک کے کنارے نئی جھٹی بناتا۔

حرفے کی ساری رات جھٹی کو لینے پوتنے اور دکان کے اوپر شامیانے لٹانے میں گزار جاتی۔ سشامیانہ

ہمارے محلے میں قریباً ہر تیسرا دکاندار ضرور اپنی دکان کے اوپر تان دیتا۔ اس کی وجہ سے محلے میں چھاؤں

سی ہو جاتی جس کے نیچے سے گزرتے وقت میں بڑی خوشی ہوتی۔ دوست محمد کی دکان میں گردن کٹے

بکریے اور دنبے لٹے لٹے ہوتے اور گھروں میں دھڑا دھڑا گوشت جارا ہوتا۔ چراغ سبزی

والے کو سر کھلانے کی فرصت نہ ہوتی میر حسن منہاری والا کبھی کوئی پکیٹ کھوتا، کبھی الماری

کھوتا، کبھی کسی گاہک کی فرمائش پر دیوار کے ساتھ چھت تک گئے غالوں پر سیر می لگا کر چرچہ

جاتا اور کبھی کسی بچی کو گز سے ربن ناپ کر دیتا۔ اسد جو نے شاد سنار کی دکان کے تختے پر اپنا سامان

کر رکھا ہوتا۔ قدیم روکی جہاز رانوں ایسی بڑی بڑی مونچھوں کے اندر اُس کے دانت چمک رہے

ہوتے اور وہ سمور کی کوٹ میں لپٹا لپٹا یا پائے کی چٹکیاں سے رہا ہوتا۔ بوری چوکیدار بجلی کے کھمبے

کے نیچے اپنے پنج پر برائٹکی اوڑھے بیٹھا پنڈلیوں پر گرم خاک پٹیاں لپیٹ رہا ہوتا۔

اب حرفے کی رات ادھی کے قریب گزر گئی ہے۔

بچے عید کی مسرتوں کے خواب آنکھوں میں تھانے بچھونوں میں دُک بگ گئے ہیں۔ ایک

بچے کے بعد محلے کی دکانیں بند ہو گئی ہیں صرف ماسٹر شفیق کی دکان کے بند کاریوں کے پیچھے

سے سنگر مشین چلنے کی آواز آرہی ہے۔ کسی وقت ماسٹر صاحب اقبال کا کوئی شعر گنگانے لگتے

ہیں۔ وہ عام طور پر کپڑے پر بخیہ مارتے ہوتے یہ شعر گایا کرتا ہے۔

دشت تو دشت ہیں دیا بھی نہ چھوڑے ہم نے

بجڑکھات میں دوڑا دیئے گھوڑے ہم نے

مستری عبادت حقے کا کش لے کر اسے ضرور ٹوکا کرتا۔

”ماسٹر! گھوڑے تو ہم نے ضرور دوڑا دیئے تھے پر اب ہم مسلمان کیا کر رہے ہیں؟“

اوجھڑ عمر کا خستہ ڈاڑھی والا مستری عبادت معمار تھا، لیکن وہ ہر فن میں ٹانگ اڑا دیا کرتا۔

سنگیے کا کشتہ بنانے کی بات ہو رہی تو مستری عبادت ضرور سیچیں بول پڑتا۔

”جب تک اُنہوں کی آگ میں دھرن ہوئی کا براہ نہ قہر کا داسے سنگیہ کبھی

تعبیں مارتا۔“

ایک بار ماسٹر شفیق نے کہا۔

”سننا ہے جرمن کی فوجیں لندن کے آس پاس پہنچ گئی ہیں؟“

مستری عبادت جھٹ بولا۔

”جرمنی والوں نے ایک ایسا لوہے کا چیلہ ایکا کر لیا ہے جسے وہ جرمنی میں دکانوں کے

اوپر بھیل دیتے ہیں۔ اوپر سے جویم آتا ہے وہ چھینکے میں ہی گر کر رہ جاتا ہے اور پھٹتا نہیں۔“

مستری عبادت ہمیشہ گائے کا دودھ پیتا۔ دکان پر بکرہ ایک پیسے کا دودھ ہوا ہے بٹن

دودھ کے برابر پانی ڈالتا اور ایک ہی گھونٹ میں چڑھا جاتا۔ وہ اکثر کہا کرتا۔

”گوئے دودھ میں ماں کے دودھ کی تاثیر ہوتی ہے۔“

ایک بار وہ دلی گیا۔ واپس آیا تو دونوں کے علاوہ بھائی کے فرنی سفر کی دست بھی سنا ڈالی۔ مزار وہ بڑا بڑیک اور پائے کا تھا۔ یونہی چلتے چلتے کسی مکان کے سامنے کھڑا ہو جاتا۔ دو قدم ادا کر دو قدم اوجھا کر گردن ٹیڑھی کر کے اس مکان کو اوپر سے نیچے دیکھتا اور پھر اپنے ساتھی سے اتنا کہہ کر آگے چل پڑتا۔

”مکان کی کڑی ٹیڑھی رہ گئی ہے۔“

زرنے کی رات ڈھل رہی ہے اور عید کی صبح طلوع ہونے والی ہے۔

امرتسر میں عید کی صبح کو اذان کے وقت لوگ قبرستان میں اپنے اپنے عزیزوں کی قبروں پر فاتحہ خوانی کو جایا کرتے تھے۔ ہمارے آبا و اجداد کی قبریں بھی امرتسر کے گھی منڈی والے قبرستان میں تھیں۔ میں اپنے آبا جی کے ساتھ منہ اندھیرے قبروں پر جاتا۔ امرتسر کا یہ قبرستان ہمارے محلے سے دو ایک فرلانگ کے فاصلے پر تھا۔ دروازہ مہال سنگھ سے باہر نکلتا تو واسپتے باغ کو باغ کے ساتھ ساتھ کئی سڑک نکلتی باغ کو جاتی تھی۔ بائیں ہاتھ کو دھوبی گھاٹ اور برجن چوہا سنگھ آجاتا۔ یہاں سے ایک کچا راستہ قبرستان کو جاتا تھا۔ یہ قبرستان لاہور کے قبرستانوں کی طرح ویران اور خاک آلود نہیں تھا۔ یہاں امرتسر کا کٹ اور لوپے کے باغ تھے، بلکہ قبرستان ان سرسبز باغوں کے بیچ میں آگیا تھا۔ ان باغوں میں ٹھنڈے اور شگاف پانی کے نالے بہتے تھے جن کے کناروں کی ہری گھاس میں نیلے مہول کھجے رہتے۔ بڑی نہر سے نکل کر دریا صاحب کو جانے والی ہنسلی اسی قبرستان سے ہو کر گزرتی تھی۔ یہاں گیندے کے کیسری پھولوں کے کھیت بھی تھے۔ یہی دسمبر کی نیم گرم پگلی دھوپ میں ان پھولوں پر تپتیاں منڈلیا کرتیں اور سنہری فضا میں گیندے کے پھولوں کا کیسری رنگ اڑتا ہوا نظر آتا تھا۔ اسی قبرستان میں حسین شاہ صاحب کا دربار غوثیہ بھی تھا جس کے سبز گنبد کے عقب میں چھوٹا سا چڑیا گھر تھا اور داہنے ہاتھ کو پچھلے گلاب کی کھیتی تھی۔ گرمیوں کی دوپہروں کو اس کھیتی کی طرف سے گلاب کی گرم خوشبو آیا کرتی۔

قبرستان کے باہر پھلیں سے بڑی بڑی چنگیریں میں گلاب کے سڑج پھولوں کے ڈھیر لگائے۔ بیٹھے ہوتے۔ صبح کی پہلی نیلاؤں روشنی میں ان ٹھنڈے پھولوں پر شبنم کے موتی

چمک رہے ہوتے۔ آبا جی پھول خرید کر رومال میں باندھ لیتے۔ میں یہ رومال ان سے لے لیتا اور قبروں پر جاتے جاتے ان پھولوں کی ٹھنڈی گہری خوشبو کو کئی بار سونگھتے قبرستان میں داخل ہوتے ہیں! امرتسر سے قرآن مجید کی تلاوت کی آوازیں آتی شروع ہو جاتیں۔ قبروں پر جگہ جگہ موم بتیاں اور کڑوے تیل کے دیئے ٹھارے ہوئے۔ فضا میں اگر بیٹوں اور گلاب کے پھولوں کی خوشبو پھیل جاتی۔ کہیں کہیں دیوں اور موم بتیوں کی روشنی میں قرآن پڑھتی عورتوں اور مردوں کی شکلیں نظر آ جاتیں، پچھلے سپر کے آسمان پر سردیوں کے ٹھنڈے ستارے چمک چمک کر ماند پڑ رہے ہوتے۔ رومال بندھے ہوئے گلاب کے پھول ٹھنڈے ہو جاتے امرتسر کے جھنڈوں کے عقب میں ہمارے اجداد کی قبریں تھیں ہم ان پر چادل بکھیرتے قبروں کے سرانے پڑے مٹی کے پیالوں میں تازہ پانی بھرتے، اگر بتیاں لٹکتے آبا جی قرآن شریف کی تلاوت کرتے رہتے اور میں درختوں پر سے اوس گرتی دیکھتا رہتا۔ مشرق کی طرف آسمان پر نیلی روشنی کا غبار سا بلند ہونا شروع ہو جاتا اور میرا دل اس خیال سے لبریز ہو جاتا کہ ابھی گھر جا کر نئے پھولوں کا عید کی ملے گی اور دوستوں کے ساتھ خوب مزے اڑائیں گے۔

جب ہم واپس ہوتے تو دن نکل آیا ہوتا۔ عید کا دن۔ عید کی صبح — حسین اور فربہ صبح — محلے میں داخل ہوتے ہی تختی تختی بچیاں گونے گونے کناری والے کپڑے پہنے سہیلیوں کے ساتھ ہنسی کھیتی دکھائی دیتی۔ گاما رتو گر کہنی باغ کی طرف اتنا نظر آتا۔ اس نے سرخ رنگ کی شال اوڑھ رکھی ہوتی اور ہاتھ میں گلاب کے دو ایک پھول ہوتے۔ گلی میں آتے تو جان اپنی چھوٹی سی دکان سہارا ہوتا۔ اس نے مکان کے باہر تخت بچا کر اوپر سفید چادر ڈالی ہوتی۔ مدغنی پیالوں کے بیچ میں گلاب میں پھول ٹھکرا رہے ہوتے۔ دیوار کے ساتھ کھلونوں کی قطار لگی ہوتی۔ وہ نہا دھونے کپڑے پہن گئی پر بیٹھا ایک ایک پیسے دو دو پیسے میں مٹی کے کھونڈے بیچ رہا ہوتا۔

مسجد کے سامنے گلاب گٹھیاں والی بیٹھا تھا۔ تانہ کے نیچے والا حقہ قریب ہے۔ ہانڈی میں مٹی کی پیالیاں رکھی ہیں۔ اونچا لمبا، اوپر دھڑل پتل گلاب گٹھیاں والا ہر روز صبح کو چھابڑی میں سورا سجا کر حقہ ہاتھ میں لیے گھر سے نکلتا اور اتنا کہہ کر گلی گلی سود نیچے چل پڑتا۔

”چل اوئے گامیال دی دے جتھے لکھن نوں۔“

اس کا لب س بیٹھ یہ ہوتا۔ سر پر بغیر کراہ کے گڈری، لمبی قمیص، دھوک، پاؤں۔ یہ جی رہی

اور تیسے واسے بادامی بوٹ۔ ہم بڑے شوق سے اس کی چھاڑی کے اگے بیٹھ جاتے۔ وہ مٹی کی پیالی میں اُبل ہوئی گنگنیاں ڈالتا۔ اس میں بارہ مسالے ملاتا۔ کھٹا نڈیٹا اور پھر مین کی پتل کی چمپی رکھ کر پیالی تھما دیتا۔ گرمیوں سردیوں صبح کے وقت ہر روز گلی میں اس کی یہ صدا گونجا کرتی۔

گنگنیاں دیکھ کر کھاؤ گی گنگنیاں بھی کھاؤ گی

گامے کا ایک بھائی فیروز اپنے گھر پر قالینوں کا رنڈ کیا کرتا۔ کام کا منہ پڑا تو اس نے اپنے مکان میں ایک کھڈی لنگالی اور کھیس بن کر بیٹھ لگا۔ وہ کام بھی نہ چل سکا تو فیروز نے نعت خوانی شروع کر دی۔ اب ہر عید میلاد اور جمعے کو گلی والی مسجد میں اس کی کانپتی ہوئی آواز سنا کرتی۔

عید کی صبح کو گامے کی بچہ بیچ کر لائی ہوتی۔ لال صافہ باندھ رکھا ہے۔ ٹھٹھے کی تہ پر گیند سے کار پڑا ہے۔ چھاڑی میں جگہ جگہ گلاب اور گیند سے کے پھول سج رہے ہیں۔ بچوں کو سودا دے رہا ہے۔ ہر کھانے فرمت نہیں۔ برکت پساری نے دکان کے تخت بچا کر منیا کی سجا رکھی ہے۔ کھٹی مٹھی گولیاں ہیں۔ بادام کی گولیاں ہیں۔ دل بہا رہی ہیں۔ کاج کے ڈنک ہیں جن کے اندر سرخ پانی بھرا ہے اور شیشے کی تنقی کی پھل تیر رہی ہے۔ لٹری کی پڑیاں ہیں۔ ایک پیسے کی چاہ ہے جو کسی پڑیا سے لو۔ اگر خوش قسمت ہیں تو ایک آنے کی چیز نکل آئے گی۔ نہیں تو وہی دھیلے والی سیٹی یا اچھڑک پڑیا کو کونٹ کے بسکٹ میں اور انڈے کی فلاٹیاں ہیں۔

گو سینڈو نے اپنے مکان کے اگے تخت پر ڈانس گھر رکھا ہے۔ ایک آنہ دے کر بھنجر می انگل سے گھرو۔ سوئی کسی منبر پر رکے۔ اتنے پیوں کا کوئی کھلونا۔ کوئی نذرین۔ کوئی نقل گھڑی یا زنجیر والی سیڑ سے لو۔ اگر صفر نمبر پر رکے تو میں ختم آنہ بھنم۔ گو سینڈو نے ~~میں~~ میں سے کوئی پرزہ نکال رکھا تھا۔ سونے جیسے صفر پر ہمارکتی۔ حاجی احمد شاہ سامنے مسجد کے رونٹ پر بیٹھا سونیاں کھاتے ہوئے سینڈو کو سرزنش کر رہا ہے۔

گلو ایہ جو آئے ہے۔ اس نے باز آگیا

اس کے جواب میں گو سینڈو صوف بھنس دیتا ہے۔ کیا خیال جو حاجی صاحب کے سامنے گستاخی سے پیش آئے۔ دراصل وہ زمانہ ہی بڑے ادب کا تھا۔ گولیاں کھیتے بچے بڑوں کو دیکھ کر ادھر ادھر جگہ جاتے۔ اب تو سینہ تان کر سامنے کھڑے ہو جاتے ہیں، بلکہ بزرگوں کو بھی گولیاں کھینے کی دعوت دیتے

ہیں۔

عید کی نماز پڑھنے میں گھر والوں کے ساتھ رام باغ والی عید گاہ میں جاتا۔ عید گاہ کی مسجد کا صحن عید ہی بھر جاتا۔ لوگ مسجد کی چار دیواری کے باہر والی گراؤنڈ میں اپنی اپنی دریاں اور قالین کے ٹکڑے بچھا کر نماز پڑھتے۔ اسی کے درختوں کے نیچے چبوتروں پر ادھر ادھر ٹکڑے ٹکڑے ہو جاتے۔ لاڈلے سپیکر والے گانے دنوں رواج نہیں تھا۔ مسجد کے اندر سے اللہ اکبر کی آواز آتی تو چبوتروں پر کھڑے ٹکڑے بعد دیگرے اس آواز کو دہراتے چلے جاتے۔ نماز کے بعد عید گاہ سے باہر نکلتے تو گرز مار، نقل کنگلے، فقیر اور فقیر نیاں چمٹ جاتیں۔ خیراتی اداروں کے کارکن چند مانگ رہے ہوتے۔ غبارے اور بھنجیریاں بک رہی ہوتیں۔ ہر طرف بے سبائے خوش و فرم چکے بچے بچیاں اپنے بزرگوں کی انگلیاں تھامے، ہنسی مسکراتیں، بلجے بجاتیں، غبارے پھلاتے نظر آتیں۔ عید گاہ سے واپس پر گلی گلیوں میں عید کی رونقیں اپنا رنگیں اُچھل پھیل دیتیں۔ میں سننے چڑھ کر کرتے جوتے نئی قمیص، نئے کوٹ اور نئی جرابیں پہنے کوٹ کی جیب میں ریشمی رعل سجائے اپنے دوستوں کے ساتھ گلی گلی سیر کرنے نکل کھڑا ہوتا۔ جس محلے میں جاؤ عید کی رنگینیاں بکھری ہوئی ہیں۔ گھروں میں عید تیں پہلے بچوں کو تیار کرتیں اور سب سے آخر میں خود تیار ہوتیں۔ گھر میں ہر آنے جانے والوں کو سونیاں، شپ، دیگ، پلاؤ اور ساگ مچھلی سے تواضع ہوتی۔ ریکھ اور بندر کا تاشا دکھانے والوں نے محلے محلے سجا جھار رکھی ہوتی۔ ڈگ ڈگ بچ رہی ہے بندر ناچ رہا ہے۔ بچے تالیاں پیٹ رہے ہیں۔ بڑے بوڑھے بھی بندر کی مٹھکے خیر حرکتوں پر ہنس رہے ہیں۔

عید کے روز سینا گھروں کو بھی رنگ برنگ جھنڈیوں سے خوب سجا یا جاتا۔ ہر سینا گھر میں عید کی خوشی میں چار شو ہوتے۔ پہلا شو صبح دس بجے شروع ہو جاتا۔ امرت ناکیز، ریا شو، رانی ناکیز، نشا و سینا اور پرل ناکیز میں لوگوں کا جھوم ہوتا۔ سینا گھروں کے باہر تھو قتا تھو لگ ہوتیں اور منھانی، پان گریٹ کی دکانیں بھی ہوتیں۔ دوپہر کو ہم کہیں باغ میں سیر کو نکل جاتے۔ ٹھٹھے کے تھنوں میں پھول کھلے ہوتے۔ خوشی میں سرٹ مچھلیاں تیر رہی ہوتیں۔ سیر کرنے والی ٹولیاں باجے بھاتیں، سنسی مذاق کرتی لوتھوں پر گھوم رہی ہوتیں۔ پردہ کب کے باغ میں لڑکیاں جھوسے جھول رہی ہوتیں۔ باغ میں آن کے مسرور تھکتے گونج رہے ہوتے۔ وہ پیٹنگ اور چڑھاتیں تو جھاریوں کی دیوار کے اوپر ان کے ریشمی اڑتے اُچھلوں کی ایک جھلک دکھائی دے جاتی۔

نول بارغ میں سرکس اور کھیل تماٹے دکھانے والوں نے ڈیرے جہاں رکھے ہوتے۔ پروے کی چار دیواری کے اندر شیخ پر عورتیں سُرخی پوڑتھو پے ناچ رہی ہوتیں۔ زمین کھود کر دریاں بچھا دی گئی ہیں۔ اُن کے پیچھے بچے سکھے ہیں۔ ابرائیس کی چان پر مسخرہ چارلی چلن ایسا علیہ بنائے اوچل کود رہا ہے اور لوگوں کو تعظیم دیکھنے کی دعوت دے رہا ہے۔ ایک پل کے نیلے سامنے کا پردہ اٹھا دیا جاتا۔ سامنے شیخ پر لمبے لمبے بالوں والی عورتیں ناچتی نظر آتیں۔ لوگوں کا اشتیاق دیکھ کر فوراً پردہ گرا دیا جاتا۔ سرکس تمبوؤں کے اندر سے شیر کے گرجنے کی آواز آرہی ہے۔ یوں لگتا ہے جیسے کوئی آدمی گھڑے میں منہ ڈال کر شیر کی بولی بول رہا ہے دھو تو والے گراموفون بج رہے ہیں۔

لال بازار میں سبکدوش نے بھی پھولوں کی دکانوں کو عید کے لیے سجا رکھا ہے۔ فالوورے والا سکھ دھبے دھلائے کپڑے پہنے بیٹھا ہے۔ کٹوے چمک رہے ہیں۔ پتل کی فٹریوں میں رتن جو کے پھول پڑے ہیں۔ سارترس میں رتن جو کا پھول عام طور پر مندروں اور گردواروں میں چڑھایا جاتا تھا۔ مسلمان گلاب اور گیندے کو پسند کرتے تھے۔ صبح صبح ہندو لائے دکان کھولتے تو اندر پتوں میں لپٹا ہوا رتن جو کا پتلا سا بار پھول والا پھینک گیا ہوتا۔ وہ سب سے پہلے رتن جو کا بار دکان میں لگی کرشن جی کی تصویر کو پہناتے اور پھر کاروبار کو شروع کرتے۔ مسلمانوں کے ہاں تہواروں عید میلاد کی محفلوں اور بیاہ شادیوں پر گیندے اور گلاب کے پھول استعمال کرنے کا رواج تھا۔

جوں جوں عید کا دن گزرتا جاتا، میں آداس ہونا شروع ہو جاتا۔ کاش! عید کا دن کبھی نہ گزرے! تیسرے پیر جب سائے لمبے ہو جاتے تو اس خیال سے دل کو جوصلہ ہوتا کہ چلو کل ٹرڈ کا میلہ دیکھیں گے۔ ٹرڈ کا میلہ امرتسر میں عید کا لازمی جزو تھا۔ ٹرڈ کے میلے کے بغیر آپ امرتسر کی عید کا تصور نہیں کر سکتے۔ امرتسر کی عید گور جاتی، مگر اس کی خوشبو ٹرڈ کے میلے میں موجود رہتی۔ عید کی رات کو ہم ٹرڈ کے میلے کے خواب آنکھوں میں سے کر سوجاتے اور ٹرڈ کی صبح میلے کی خوشیاں اپنے دامن ہی سے کر طلوع ہوتی۔

یہ میلہ امرتسر کے سکتری بارغ میں لگتا۔ یہاں ادھپے لمبے مدخت ہوا میں جھومکرتے۔ نیک جگہ نیم دائرے کی شکل میں لڑائی کی جالیوں سے جافری سی بنی تھی۔ اس جافری کو عشق بیجاں کی بیلوں نے دھانپ رکھا تھا۔ اندر دو چار میزیں رکھی تھیں۔ یہ سکتری بارغ کی لہریں تھیں۔

بارغ کے لاؤڈ سپیکر پر شام کو ریکارڈنگ ہوا کرتی۔ "مگتی" فلم اُن دنوں امرتسر میں بڑا شہر ہے۔ مٹی میں اور میرا دوست شانتی سروپ اس بارغ میں بیٹھ کر کانن بالا کا یہ گیت بڑے وجد کے عالم میں سنا کرتے۔

سپنوں میں کوئی کتاب ہے
کچھ چکے سے کہہ جاتا ہے

شانتی سروپ منہ سے ستار بجانے میں بڑا ماہر تھا۔ وہ شعر و ادب اور موسیقی کا دلدادہ تھا۔ اور میرا بڑا پکا یار تھا۔ فسادات کے دنوں میں وہ ایک روز اچانک ہماری گل میں آنکلی۔ ہر طرف قتل و خون کا بازار گرم تھا۔ میں اُسے دیکھ کر حیران رہ گیا۔

شانتی ماتم کیوں آگئے دھڑ

تمہاری غیریت دریافت کرنے آیا ہوں

حالات کی سنگینی کا شانتی سروپ کو بھی احساس نہ تھا۔ میں اُسے بڑی مشکل سے اپنے محلے سے نکال کر باہر کو توالی کی طرف لے گیا اور ملکہ کے بت کے پاس پہنچ کر گیا۔ شانتی یار! تم نے تو کمال کر دیا۔ خدا کے لیے ابھی اصرار کیا کرو۔ شانتی اپنے مخصوص انداز میں سر کو جھٹک کر ہنس دیا۔

یار حمید! کیا اب ہم اپنے دوستوں سے بھی نہیں مل سکتے؟

اس کے بعد شانتی سروپ سر کو ایک طرف جھکا کرے ہوئے وہاں سے بارغ رانا نند کی طرف نکل گیا۔ پھر اُس سے کبھی ملاقات نہ ہو سکی۔ سکتری بارغ کے ساتھ ہی ایک گراؤنڈ تھی۔ اس گراؤنڈ میں ٹرڈ کا میلہ لگتا تھا۔ ایک روز پہلے ہی دکانیں لگا دی جاتیں۔ قناتیں تن جاتیں۔ میلے کے روز یہاں بڑا ہجوم ہوتا۔ بارغ کی بڑی روش پر دونوں طرف کھوٹوں بیچنے والوں کی قطاریں لگی ہوتیں۔ فضا میں رنگ برنگ غبار سے لہرا رہے ہوتے۔ لڑائی کے رنگدار پنگوڑوں کی چیں چیں گونج رہی ہوتی۔ قتلے تلے ہار رہے ہوتے لوگ قتلے خرید کر گھاس پر درسی بچھا کر وہیں اپنے بچوں کیساتھ بیٹھ جاتے اور کھانے پینے میں مشغول ہو جاتے۔ سٹھانی کی عارضی دکانوں پر لوگوں کا رش ہوتا۔ ایک طرف چند مچلے نوجوان بینک بڑھا رہے ہیں، دوسری طرف ایک ٹولی تنگاریوں پر گیت گاتی

گوہری ہے۔ شہر سے میلہ دیکھنے والوں سے لہے ہوئے تانگے اٹھ کر باغ کے باہر رکتے اور میلے کی مدتی میں اجافہ ہوتا چلا جاتا۔

سورج ڈھلنے کے ساتھ ساتھ میلے کی رونقیں ماند پڑنے لگتیں ہم بھی اپنے بزرگوں کے ساتھ تانگے میں بیٹھ کر تنگاریاں بجاتے مٹی کے کبوتر، کوتے اور طوطے اور ہتے سر والے سفید ریش مٹی کا باوا تھلے گھر کو چل پڑتے۔ واپسی پر میلے سے قلمہ اور صوفہ ضرور لاتے۔ میلے میں بڑا فاصلہ قلمہ مٹا تھا۔ اس لیے کہ یہاں حوائی دیہاتوں سے نہیں آتے تھے، بلکہ شہر کے نامور اور مشہور حوائی اپنے کاربجروں سے میلے میں دکانیں کھولتے تھے۔ گلی میں آتے تو وہاں میلے سے واپس آتے والے بچے ایک دوسرے کو اپنے اپنے کھلونے شوق سے دکھاتے ہوتے۔ جگہ جگہ تنگاریاں بچ رہی ہوتیں حوائی کی دکان پر تل دھرنے کی جگہ نہ ہوتی۔ لوگ قلمے اور منٹائیوں سے ٹوکریاں بھر بھر کر اپنے گھروں اور رشتے داروں کے گھروں کو لے جا رہے ہیں۔ جسے دیکھو چہرے پر خوشی کی چمک ہے۔ ہونٹ حلوے کے گلی سے تر ہیں۔ آنکھوں میں سُرمد لگا ہے۔ ہاتھوں میں تیل چمک رہا ہے۔ لڑکیوں کی مانگ میں میٹھی بھری ہے جو بکلی اور گیس کی روشنی میں دکھ رہی ہے۔ جنا کے عطر کی گرم خوشبو ہر سمت اڑ رہی ہے۔ ہاتھوں میں گیندے کے کیسری پھولوں کے گجرے ہیں۔ ہتھیلیوں میں مہندی لگی ہے مہندی میں امرتسر کے باغوں کی مہک ہے۔ گیندے، گلاب اور دوسری کی مہک ہے اور عید کا سونچ، میلے کا سورج غروب ہو رہا ہے۔ اندھیرے کی چادر پھیل رہی ہے ہجر کی دیوار گھڑی ہو رہی ہے۔ ہجرت کا سفر شروع ہو رہا ہے، قطرہ سمندر سے، کرن سورج سے خوشبو پھول سے اور گوشت ناخن سے جدا ہو رہا ہے۔

اتنے برسوں بعد آج امرتسر کی عید کو یاد کرتے ہوئے یوں محسوس ہو رہا ہے جیسے کوئی عمر رسیدہ بیوہ اپنے جہیز کا پُرانا صندوق کھولے اپنے سہاگ کا خستہ حال عروسی جوڑا دیکھ رہی ہو۔ کہاں چلے گئے؟ کہاں چلے گئے وہ جن کی خوشبوؤں میں بے ہوشے ریشمی ریشمی بریشیم کی ڈھیری میں پروئے ہوئے سچے موتی اور پھولوں بھری بیک پر سوتے ہوئے چمکتے، دھکتے، روشن اور پرمست دن۔ میرے امرتسر! میرے یر و شلم! میرے قریبہ اترے معبود کی تبتیں ویران ہو گئیں۔ تیرے سُرخ نصیلوں کے برج کھنڈ بن گئے تیرے المراؤں کے شہ نشین خون سے بھر گئے اور تیرے جالی دار مری جہز کوں کے سینے چھپتی ہو گئے۔

امرتسر کی ایک درگاہ

دروازہ مہان سنگھ سے باہر نکلیں تو سیدھی سڑک آرٹ سکول کے پہلو سے گزرتی دائیں جانب بدوی شاہ کے ٹیکے کو اور بائیں طرف پامنتی گراؤنڈ کو پیچھے چھوڑتی سامنے تحصیل پورے کی طرف نکل جاتی ہے۔ تحصیل پورے کی آبادی ختم ہوتے ہی دو طرفہ لوکاٹ کے گہری سبز چھاؤں والے باغوں کے بیچوں بیچ ایک تنگ سا کچر راستہ جالندھر بنالہ ریو سے لائن کی طرف نکل جاتا ہے۔ اس کچرے راستے پر کھٹے کے پودوں نے چھت بنا رکھی تھی۔ مارچ اپریل کے دنوں میں جب کھٹے کے جھاڑوں میں سفید پھول کھلتے تو سارا راستہ مہک جاتا۔ میں صبح کی سیر کو جاتے یہاں سے لمبے لمبے سانس لیتا۔ اہستہ اہستہ گزرا کرتا تھا۔ اور سفید پھولوں کو۔۔۔ لیکن یہ میں کہاں نکل آیا؟ کھٹے کے سفید پھولوں کی خوشبو مجھے ایک پل میں کہاں سے کہاں لے کر نکل گئی۔ میں واپس دروازہ مہان سنگھ میں آتا ہوں۔

دروازہ مہان سنگھ ہمارے غلے کا دروازہ تھا۔ اُن دنوں مجھے کسی یہ احساس نہ ہوا تھا کہ یہ مسلم اکثریت کا علاقہ ہے۔ یہ عید مہندو مسلم فسادات کے بعد کھلا۔ اس دروازے سے باہر نکل کر آپ دائیں طرف سڑک گھوم جائیے۔ ایک طرف شیشم کے سایہ دار درختوں کی قطار دو ٹک پہن گئی ہے اور دوسری طرف گلاب، ڈیلا اور چنیل کے پھولوں سے بکنا باغ سڑک کے ساتھ ساتھ دروازہ گلی منڈی تک چلا گیا ہے۔ اسی باغ میں یو لکٹس کے نو عمر چہرے سے درخت ہوا کرتے تھے۔ جن کی لمبوتری تینوں دلی ہنسیاں گرمیوں کی بھگ کی ٹھنڈی ہوا میں جھومارتی تھیں۔

۱۹۴۷ گشت سسٹم کی خون آلود، دھواں دھواں، دہشت زدہ دور۔ کو جب ہم فخر کے عام میں دروازہ مہان سنگھ سے نکل کر شریف پورہ کیمپ کی طرف بھاگے تو گور و سیر ریو سے لائن کے بادلوں میں آگ کی سُرخ زبانیں لپک رہی تھیں اور اس باغ کے نو عمر یو لکٹس کے

درختوں کی لمبی تازک ٹہنیاں جھکی ہوئی تھیں۔ سکت و جامد تھیں۔ جیسے وہ چتر ہو گئی ہوں۔

قیام پاکستان کے پانچ سال بعد جب میں امرتسر گیا تو ان درختوں نے مجھے دُور سے آتا دیکھ کر اپنی شاخیں ملا کر مجھے اپنی طرف بلایا۔ مجھے اپنی بے زبانی میں غاموش آوازیں دیں۔ اپنی ہونٹوں کو خوشبو کی آوازیں میرا نام لے لے کر پکارا۔ اور جب میں اُن کے پاس گیا تو وہ چُپ ہو گئے۔ میں نے ایک درخت کے تنے پر ہاتھ رکھا۔ اس کا دل دھڑک رہا تھا۔ درخت کی ایک ٹہنی نے میرے سینے پر ہاتھ رکھا۔ میرا بھی دل دھڑک رہا تھا۔ ہم دونوں کے دل ایک ہی تال پر دھڑک رہے تھے۔ یہ محبت کی تال تھی۔ ہمسیر، ہمہ اوست، ہمراز اوست، ہمہ تن ساز، ہمہ تن گوش کسی نہ بھلائی جانوالی، کسی نہ یاد آنے والی محبت کی تال۔ کسی نہ چڑھنے والی کسی نہ اترنے والی شراب کا نشہ کسی نہ طلوع ہونے والے، کسی نہ غروب ہونے والے سورج کی روشنی! میں اور درخت کتنی ہی دیر تپتی کرتے رہے اُنس نے کہا۔

تم بھی مجھے چھوڑ کر چلے گئے؟

میں نے کہا۔

سبھی چلے گئے تھے۔ تم نے دیکھا نہیں؟ امرتسر تو مسلمانوں کے لئے جہنم بنا دیا گیا تھا اور مسلمان جہنم میں نہیں رہا کرتا۔ لاہور کے چیرنگ کراس اور سن آباد میں کچھ یوگپش کے درخت ہیں۔ میں اُن سے تمہارا حال پوچھ لیا کرتا ہوں۔ ویسے بھی مسجد میں جب سن آباد کی مسجدیں افان کی صداؤں سے گونجتی ہیں اور میں نیم روشن مومن میں ٹٹلتے تاروں بھرے آسمان تلے اگر گہرے سانس لیتا ہوں تو مجھے تمہاری خوشبو آتا کرتی ہے۔ تمہارے پتوں کی سرگوشیاں سنائی دیا کرتی ہیں۔ یوگپش کی ٹہنیاں خوشی سے لہراتے لگیں اور۔۔۔۔۔

معاف کیجئے گا۔ میں پھر اپنے موضوع سے ہٹ گیا۔ میری اور درخت کی باتیں تو کبھی ختم نہیں ہوں گی۔ یہ ہٹ گیا۔ میری اور درخت کی باتیں تو کبھی ختم نہیں ہوں گی۔ یہ سلسلہ تو موت کے بعد بھی جاری رہے گا۔ اُن۔۔۔ تو میں کہہ رہا تھا کہ یہاں یہ باغ ختم ہوتا ہے وہاں اکالی سکھوں یعنی ٹہنوں کا ایک چھوٹا سا قلعہ ہے جسے بڑا پھولا سنگھ کہتے ہیں۔ سکندر حیات کی وزارت میں سکھوں

نے اپنے گرد و دوسرے کے پاس اس کی تعمیر شروع کی تو امرتسر کے مسلمانوں نے حکومت پنجاب سے شدید احتجاج کیا۔ جیسے ہوئے۔ سرسکند کے پاس مسلمانوں کے دفد گئے۔ لیکن کچھ نہ بنا اور قلعے کی تعمیر شروع رہی۔ قلعہ بن گیا۔ اس قلعے میں سکھوں نے اسلحہ جمع کر رکھا تھا۔ مہ اپریل ۱۹۱۹ء کو سکھوں نے اسی قلعے کے سوراخوں سے گولی منڈی اور دھان سنگھ دروازے کے مسلمانوں پر اندھا دھند فائرنگ کی۔ ہمارے محلے کا جون جید امان والا انہی سکھوں کی گولی لگنے سے شہید ہوا۔

اس قلعے کے سامنے ایک چھوٹی سی پختہ سڑک نیچے کو اترتی ہے۔ کونے پر ایک مسجد ہے کنواں اور اکھاڑہ ہے۔ ذرا آگے جا کر بسلی آجاتی ہے اور پھر قبرستان شروع ہو جاتا ہے جس دگاہ کے بارے میں، میں لکھنے والا ہوں وہ اسی قبرستان میں واقع تھی۔ ہم سب نے ایسی ہیبت سے درگاہیں دیکھی ہوں گی جو صدیوں سے آباد ہیں اور جن کی رونقوں اور جگمگاہٹوں میں وقت کے ساتھ ساتھ اضافہ ہو رہا ہے۔ لیکن امرتسر کے قبرستان والی یہ پہلی دگاہ تھی جو میری آنکھوں کے سامنے عالم وجود میں آئی۔ برقی قمتوں سے بقتہ نہ بنی، اس کی فضائی بیہم ورنی کے عارفانہ کام سے گونجیں، وہاں دودھ کی نہریں بہیں اور میری آنکھوں کے سامنے وہ اُجڑ گئی۔ لوگ اس کے برقی قمتے اور ٹوٹیاں اتار کر لے گئے اور دودھ کی نہروں میں مکڑیوں نے جاسے بن لئے۔ یہ درگاہ امرتسر کی ہماری کشمیری برادری کے ایک قریبی عزیز خواجہ صاحب نے اپنے نانا کی قبر پر بنائی تھی۔ میں اُن دنوں ایم اے او ای سکول میں ساتویں یا آٹھویں جماعت میں پڑھتا تھا۔ خواجہ صاحب کے پاس اچانک کہیں سے بہت سی دولت آگئی۔ انہوں نے فوراً قبرستان میں اپنے نانا کی قبر پر (جیسا کہ والدہ مرحومہ اور خالہ جان جہیں بنایا کرتی تھیں) ایک عظیم الشان دگاہ کی بنیاد رکھ دی۔ درگاہ کی تعمیر شروع ہو گئی۔ دُور دراز سے کاریگر محامدوں کی خدمات حاصل کیں۔ میرے خالہ زاد بھائی رشید نے نے داں بجلی کی ساری فٹنگ خود کی۔ میں آج بھی چشم تصور میں اُسے جپ کس دانتوں میں رہا نے سیر می پر جھلک کرتا ہوں کو ایک دوسرے سے جوڑتا دیکھ رہا ہوں۔ درگاہ کے گنبد کے اندر جو روشنیاں لگیں وہ سبز انگوروں کے گچوں کی شکل میں لٹک رہی تھیں اگر وہ دن اور کھنڈ سے نہایت قیمتی اور حسین جھاڑ فانوس منگو کر اندر لٹکائے گئے۔ گنبد کے اندر ان قوتوں سے توجہ تھے۔ ایک خواجہ صاحب کے نانا کی قبر کا تعویذ تھا۔ دوسرا خالہ اُن کی نانی صاحبہ کی قبر کا تعویذ تھا۔

اور میرا تعویذ اُن کی اپنی قبر کا تھا جو تویند کے نیچے تہہ خانے میں گھل پڑی تھی۔ انہوں نے وصیت کر رکھی تھی کہ مرنے کے بعد انہیں وہیں تہہ خانے میں دفن کیا جائے۔ ایک دفعہ میں تہہ خانے میں اُتر گیا۔ چوٹا سا لحد تہہ خانہ تھا۔ چھت اور دیواروں پر سینٹ کیا ہوا تھا۔ بلکہ جگہ چکی بریکٹوں والے دو دھیا غبارہ ناب لب لگے تھے۔ وہاں مرنے کے بعد خواجہ صاحب کی قبر تعمیر ہونی تھی۔ جیسا کہ میں پہلے بھی لکھ چکا ہوں۔ امرتسر کا یہ قبرستان بڑا خوبصورت تھا۔ آپ نے دیکھا ہوگا کہ لاہور میں مسلمانوں کے ننگے قبرستانوں پر گر میوں میں چھپتی دھوپ پڑتی ہے اور سردیوں میں گہرا گر تہا ہے۔ جب کہ لاہور ہی میں عیسائیوں کے قبرستانوں میں سایہ دار درختوں کے جھنڈ ہیں اور قبروں کے کتبے پھولوں سے ڈھکے رہتے ہیں۔ امرتسر کا ہمارے محلے کے باہر والا قبرستان لاہور کے گورا قبرستان سے بھی زیادہ شاداب اور پُر سکون تھا۔ دراصل یہ قبرستان آم، لوکاٹ اور امرود کے باغوں کے بیچ ہی اُگ رہا تھا۔ یہاں کوئی قبر ایسی نہ تھی جس پر کسی نہ کسی درخت کا سایہ نہ ہو۔ اور پہلو میں گلاب یا گندے کے پھول نہ کھلے ہوں۔ ہم رات کو بھی قبرستان میں بے دھڑک چلے جاتے۔ ہمیں کبھی کسی قسم کا خوف یا دہشت محسوس نہ ہوتی۔ بلکہ یوں لگتا کہ واقعی ان قبروں کے اندر بڑے ہی نیک لوگ سو رہے ہیں۔ یہی وجہ ہے کہ ہم نے بچے ہوتے ہوئے بھی کبھی کسی چھوٹی سے چھوٹی قبر پر بھی پاؤں نہ رکھا تھا۔ یہاں پھلدار باغوں میں ندی کے مٹیا لے ٹھنڈے پانی کے چھوٹے چھوٹے ٹالے بہتے تھے۔ برسات میں ان ٹالوں میں درختوں سے نپکے ہوئے آم اور امرود بہا کرتے جنہیں ہم بچوں کسی پیا پر بیٹھ کر مزے لے لے کر کھاتے۔ برسات میں گھنگھور گھٹائییں برستیں اور ہم یہاں امرود کے درختوں پر چڑھ کر پڑھتے اور امرود پاؤں چھاتے امرود توڑ توڑ کر نیکر کی جھیں بھر کرتے۔

عید کی صبح کو منہ اندھیرے لوگ قبرستان جا کر فاتحہ اور قرآن فونی کرتے ہیں بھی اپنے چھوٹے آرٹسٹ بھائی کے ساتھ مزور ہاتا۔ ہم لوگ گھی منڈی واسے دروازے سے نکل کر کونے والی مسجد کے پاس آتے تو ہمیں نیچے گلاب کے پھولوں کی خوشبو محسوس ہوتی۔ سڑک کنارے گلاب کے پھول نیچے والے بیٹھے ہوتے۔ بڑی بڑی چنگریں سرخ لگا ہوں اور ان کی پتیوں سے بھری ہوتیں۔ دو پیسے میں وہ ڈھیر سارے پھول جھولی یا رومال میں ڈال دیتے۔ ہم بھی دو پیسے کے پھول لے کر رومال میں باندھ لیتے اور گرم کشمیری شالوں میں دیکے ٹھٹھرتی سردی میں قبرستان

میں داخل ہو جاتے۔ اُن دنوں بڑی سخت سردی پڑا کرتی تھی۔ ہمارے ہاتھ ٹھنڈے ہوتے اور بات کرتے وقت منہ سے بھاپ نکلا کرتی۔ اوپر نیلے آسمان پر طلوع آفتاب سے پہلے کی روشنی میں ٹٹلتے تارے زرد ہو رہے تھے۔ چوٹی سی سڑک کی دونوں جانب خانہ بدوش قسم کے فقیر جھولیاں بچھلائے بیٹھے اپنی اپنی بولیوں میں خیرات مانگ رہے ہوتے۔ ان کے پیچھے امرودوں اور اناروں کے باغوں میں گھپ اندھیرا چھایا ہوتا۔ اب ابو احمد صر سے دھیمی اثر انگیز آواز میں قرآن شریف کی تلاوت کی آویں سنائی دینے لگتی۔ لوگ اپنے اپنے عزیزوں کی قبروں پر مٹی کے دیئے اور موم قیاں جلا رہے ہوتے پھول اور چاول بکھیر رہے ہوتے۔ کہیں کہیں اُن کے آواز چیرے چرخوں کی پھڑپھڑاتی روشنی میں ابھرتے اور پھر غائب ہو جاتے۔ مٹی جون کی پتی سندان و دیپروں میں یہاں سے گزرتے ہوئے گلاب کے پھولوں اور کیکر کے پیلے پھولوں کی گرم خوشبو آ کر تھی۔ ذرا پرے ایک نہر بہتی تھی اور صر سے جو بھی آتی اُس میں بھنگ کی جھاڑیوں کی مرطوب بو ہوتی۔

اس قبرستان کا جو حصہ جالندھر کی طرف جاتی جی ٹی روڈ کو لگتا تھا اور یہ دگاہ تھی۔ اس درگاہ پر پلا عرس ہوا تو امرتسر کے گلی کوچوں کی دیواروں پر قد آدم اشتہار چسپاں ہو گئے۔ ان اشتہاروں پر بڑے بڑے جلی حروف میں لکھا تھا۔ "امرتسر میں دودھ کی نہریں بہنے لگیں۔ اس کے بعد درگاہ کے بائیں میں تفصیل درج تھی اور اس بات کا اعلان تھا کہ عرس شریف تین روز تک جاری رہے گا۔ پہلے روز کی محفل جماع کی صدارت حضرت سیدم وارثی فرمائیں گے۔ دکانداروں کو بدایت کی گئی تھی کہ وہ میلہ شروع ہونے سے پہلے وہاں آکر اپنی اپنی دکانیں سمجھائیں۔ ایسا نہ ہو بعد میں پچھتا نا پڑے۔ قوالوں میں تانا قوال اینڈ پارٹی کے علاوہ محمد علی فریدی قوال اینڈ پارٹی کا نام بھی درج تھا۔ میرے خالو جان مرحوم یہ اشتہار جھولے میں ڈال کر ہمارے گھر لائے اور سب کو پورے کا پورا پڑھ کر سنایا۔ پھر ہوئے۔

میں اس درگاہ کے عرس کے خلاف ہوں۔ یہ سب جھوٹ کا کھیل ہے۔ خالو جان ساٹھ پینسٹ برس کے دیوانست بھاری بھر کم اونچے بلے بزرگ تھے۔ لمبی دھڑکی کھٹا گندمی رنگ۔ لمبا کھدکا کرتہ کھدکی دھوٹی۔ لال چڑت کی جوتی ہاتھ میں موٹا عصا۔ بازار بکروانا کی روٹیاں والی مسجد کے پیش امام تھے۔ تحریک خلافت میں میری والدہ سمیت اپنے سب

گھر بار والوں کو لے کر کابل چلے گئے جہاں سے انتہائی کسی پر سی کے عالم میں واپس مقرر آئے۔ کابل میں مہاجر مسلمانوں کی حالت ناز کا نقشہ بڑے موثر انداز میں کھینچا کرتے۔ انہیں ایک بات کی بڑی خوشی تھی کہ انہیں کابل میں شہنشاہ ابر کے مزار کی زیارت نصیب ہوئی۔ بابر کے سنگ مزار پر لمبی ہوئی فارسی رباعی بڑے جوش و خروش سے پڑھ کر سنایا کرتے۔ کثیر ی بزرگوں کی طرز ڈٹ کر کھاتے۔ میلوں پیدل چلتے۔ جمعے کے جمعے ہر عزیز اور رشتے دار کے گھر خیریت معلوم کرتے جاتے۔ ڈیوڑھی میں ذرا کھٹکار کر گھر کے کسی حرکات نام سے کر پکارتے۔ جن دنوں میں فلمینگ دوا پر دیا کرتا تھا خالو جان کی پاٹ دار آواز پر جمعے کی صبح کو مکان کی ڈیوڑھی میں گونجتی۔

• بابو عبدالحمید — ۱ •

خالو جان کی سب سے بڑی خصوصیت میرے نزدیک یہ تھی کہ اُن میں ظرفیت کی جس بڑی تیز تھی۔ بڑے یلغے سناتے۔ بات کو خوب مزاج سالہ لگا کر پیش کرتے۔ اسی بات پر خوب کھل کھل کر بچوں کی طرح ہنستے۔ ایک روز میں خالو کے ہاں گیا ہوا تھا۔ ہم نو عمر بڑوں کو ایک جگہ اکٹھے دیکھ کر ہمارے پاس آئے اور عھا دیوار سے لگا کر تخت پوش پر بیٹھتے ہوئے بولے۔

• دو بھئی آج تمہیں عبدالرحمان جن کا قبضہ سناتا ہوں •

وہ بھئی خود بھی کبھی کبھی جن لگتے تھے۔ چہ فٹ سے نکلتا قد۔ بھاری جسم۔ رعب دار آواز اور قدیم یونانی فلاسفوں ایسا بھر پور چہرہ۔ لیکن اُس روز انہوں نے میں جس جن کے بارے میں سنایا وہ اُن کی مسجد کے حجرے میں رہتا تھا۔ کہنے لگے۔

• دو بھئی دوستو اگر خدا کا کیا ہوا کہ ایک روز میں نے اُن بچوں کو جو میرے پاس قرآن شریف پڑھنے آتے ہیں کہا کہ میرا بدن دابو۔ میں پہلو بدل کر لیٹ گیا اور سارے بچے میرے بدن پر ٹکی ٹکیاں مارنے لگے۔ مجھے کچھ ایسا مزہ آیا کہ سو گیا۔ آنکھ کھل تو سارے بچے جا چکے تھے صرف عبدالرحمان نامی بڑا میری پنڈلیوں پر ٹکیاں مار رہا تھا۔ حجرے میں کافی پرے طاق میں دیا جل رہا تھا۔ میں نے عبدالرحمان سے کہا کہ بیٹا دیا گل کردو اور تم بھی جا کر آرام کرو عبدالرحمن نے وہی بیٹھے بیٹھے پھونک مار دیا بجا دیا۔ پس پھر کیا تھا۔ میں وہیں اٹھ کر فوراً عبدالرحمان کی کوئی پکڑ لی اور کہا۔ سچ بتا تو کون ہے؟ عبدالرحمان گھبرا گیا۔ جب میں نے کلائی نہ چھوڑی تو

لٹا۔ میں عبدالرحمان جن ہوں اور کابل سے یہاں آپ کے پاس قرآن شریف پڑھنے آیا ہوں۔ دو بھئی دوستو! اب وہ جن میرا بار ہے اور مجھے کبھی کبھی کابل کے قندھاری اٹار لے کر کھلاتا ہے۔ پس چٹکی بجاتا ہے اور سرج قندھاری اٹار اُس کے اٹھ میں ہوتا ہے۔۔۔۔۔ درگاہ کے بارے میں بھی دوستو! اب وہ جن میرا بار ہے اور مجھے کبھی کبھی کابل کے قندھاری اٹار لے کر کھلاتا ہے۔

بھی خالو جان نے میرے والد صاحب کو کھلے لفظوں میں کہہ دیا۔

• مجھے عبدالرحمان جن نے سب کچھ بتا دیا ہے۔ عبدالعزیز! خواجہ نے وہاں درگاہ کی عمارت تعمیر کر کے چھ کام نہیں کیا۔ عمارت کے نیچے کئی نیک آدمیوں کی قبریں اُگنی ہیں۔ یہیں شریعت اس کی اجازت نہیں دیتی •

لیکن درگاہ کے پہلے عرس میں خالو جان پیش پیش تھے۔ درگاہ کے پھوڑے اپنی ٹکرائی میں زرو سے بریانی کی دگجیں دم کر رہے تھے۔ مہتی نائی کو کام کرتے ہوئے بار بار ٹوکتے۔

• تہ دسے میں سنگترے کے ترخ ڈال دیئے •

• مہتی! مجھے کی اُگ تیز لگتی ہے مجھے •

• بریانی تیار ہو گئی ہو تو ایک بڑ کی چکھانا مجھے۔۔۔۔۔ •

پہلے عرس پر درگاہ کے اندر بابر بڑی رونق تھی۔ شہر سے زیادہ لوگ دودھ کی نہروں کاٹن کر آئے تھے۔ دودھ کی نہر درگاہ میں ایسے چلائی گئی تھی کہ سیمنٹ کے بجٹے ایک مہتر سے ٹنک کو کچے دودھ کی لسی سے بھر دیا گیا۔ تانبے کا ایک پائپ گنبد کے گرد گرد چاروں طرف لگا تھا جس میں ٹونٹیاں تھیں۔ لوگ ٹونٹی کھول کر گلاس، پیاسے اور ڈول بھر بھر کر دودھ کی لسی پیتے اور حیران ہوتے کہ واقعی خواجہ صاحب نے دودھ کی نہریں چلا دیں۔ درگاہ کے سامنے سرسوں کے کٹے کٹے کھیتوں میں بموقعاتیں لگا کر لوگوں نے دکانیں کھول رکھی تھیں۔ قشکے تلے جا رہے تھے۔ جھیلے لگے تھے۔ موت کے کنوئیں میں موٹر سائیکل گرج رہی تھی۔ درگاہ رنگ برنگی جھنڈیوں سے سجی تھی۔ شہر کے علاوہ دیہات سے بھی عورتیں بچے بوڑھے اور جوان بھاری تعداد میں عرس میں شرکت کر آئے تھے۔ گنبد کی ممر میں جالیوں سے لگی عورتیں، بچے بوڑھے اور جوان دعا مانگ رہے تھے۔ فاتحہ پڑھ رہے تھے۔ جالیوں میں اقیان باندھ کر منتیں مانگ رہے تھے۔ میں نے

ایک جالی کی منڈی آنکھ میں سے اندر جھانک کر دیکھا۔ تینوں قبروں پر بچوں کے ڈھیر لگے تھے اس قبر پر بھی جس کی خدیجہ بھی خواجہ صاحب، دفن نہیں ہوئے تھے۔ لوگ اُن کی خالی قبر پر بھی فاتحہ پڑھ رہے تھے۔

ہماری ام ترسکی ساری کشمیری برادری، سارے رشتہ دار عرس پر جمع تھے۔ جہاں تک مجھے یاد آتا ہے کسی نے بھی درگاہ کے تقدس کو دل سے قبول نہیں کیا تھا۔ انہیں معلوم تھا کہ مقبرے میں کون دفن ہے۔ چنانچہ اپنے رشتہ داروں میں سے کسی کو مقبرے کی ہالوں کے پاس کھڑے ہو کر دعا مانگتے نہیں دیکھا۔ ان بھنڈا ارا کھانے میں وہ سب سے اُگے تھے۔ پلوں سے لبالب بھرے ہوئے قابوں پر وہ چن چن کر قورے کی بوئیاں رکھوا رہے تھے۔ پھولدار قاتوں کے پاس دریوں پر آلتی پالتی مار کر بیٹھے وہ جن بھوتوں کی طرح خود بھی کھا رہے تھے اور اپنے بال بچوں کو بھی مار مار کر کھلا رہے تھے۔ رات کو گیس کے مہنڈوں کی تیز روشنی میں قوالی شروع ہوئی تو ہمارے ایک رشتے دار کو حال آیا۔ وہ لوگوں کو ٹکریں مارنے لگا۔ وہ کسی کے قابوں میں ہی نہ آتا تھا۔ بڑی مشکل سے چھ آدمیوں نے پکڑ کر اسے رسیوں سے باندھا اور گھر چھوڑ کر آئے۔ اگلے صبح اُس کی رسیاں کھولیں تو وہ پھر حال کیلئے لگا۔

قوالی کی نہی محفلوں میں، میں نے پہلی بار مشہور شاعر حضرت بیدم دارانی کو دیکھا۔ پندرہ سون ڈو چہرہ، دھیمی من ٹم ٹمک واں آنکھیں۔ زرد رنگ کی چادر اوڑھے، اگلی قطار میں خاموش بیٹھے تھے قوال اُن ہی کا عارفانہ کلام گارہے تھے۔ محمد علی فریدی قوال اُن دنوں جو بن پر تھے۔ درگاہ کے کونے کونے میں اُن کی پُر سوز آواز گونج رہی تھی۔ میں اپنے خاندان کی عورتوں اور بچوں کے ساتھ تنبوڑ کے نیچے اُس حصے میں بیٹھا تھا جو عورتوں کے لئے مخصوص تھا۔ وہی کے نیچے تازہ بنا ہوا میٹھوں کا فرش ٹھنڈا تھا۔ قوالی میں میرا اکل جی نہ لگا۔ میں اپنے پھر بھی زاد بھائی کے ساتھ مقبرے کے گنبد کے پاس آگیا۔ یہاں دالان کے کونوں کھدروں میں لوگ کبل وڑھے سو رہے تھے، گنبد کے اندر جھاڑ ٹالوں روشن تھے۔ بے شمار اگر قبایاں سنگ رسی تھیں جن کی مہار کی خوشبو سے ہمیں بوہل ہو رہا تھا۔ درگاہ کے اپنے چڑیا گھر سے موروں کے کونے کی آوازیں آرہی تھیں۔ ایک، بوڑھی عورت مقبرے کی جالی سے منہ لگائے، آنکھیں بند کئے کچھ برا بھلا کہتی تھی۔

نئی کی بند آنکھوں سے آنسو بہہ رہے تھے۔ دالان کے مغربی حصے میں سجادہ نشین نائب سجادہ نشین متونی، خزانچی اور سیکرٹری سجادہ نشین کے کمرے تھے جن کے باہر اردو میں اُن کے ناموں کی تختیاں لگی ہوئی تھیں۔ ہم دونوں گھومتے گھومتے آدھر کونکل گئے ہم نے ہالوں میں سے اندر جھانک کر دیکھا۔ خواجہ صاحب گاؤں کے ساتھ لگے بیٹھے تھے۔ بلب کی روشنی میں بڑی بڑی مونچھوں والا اُن کا سرخ و سپید بارعب چہرہ چمک رہا تھا۔ کچھ لوگ بڑے ادب سے اُن کے سامنے بیٹھے اُن کی باتیں سن رہے تھے۔ ساتھ دالے کمرے کی ہالوں سے اندر جھانک تو ایک بھولی بھولی توند والا موٹا تازہ آدمی گرم کشمیری شل کی ٹیکل مارے تالین پر اکیلا آلتی پالتی مارے بیٹھا زردہ اٹا رہا تھا۔ ہم یہاں سے نکل کر درگاہ کے پھولدارے چڑیا گھر کی طرف آگئے۔ دس بارہ مرے زمین کے گرد باڑھ لگا کر اندر مختلف خانوں میں موڑ تیر لٹے، رکوتر اور دو تین ہرن چھوڑ دیے گئے تھے۔ یہاں بھی اوپر وسط میں ایک بڑا سا بلب روشن تھا۔ روشنی میں ہالز کچھ بے چین سی دکھائی دے رہے تھے۔ ہمیں جھلکے کے پاس آنا دیکھ کر ہرن آہستہ آہستہ چلتے ہمارے قریب آکر کھڑے ہو گئے۔ اُن کی بڑی بڑی چمکتی آنکھیں مجھے آج بھی یاد ہیں۔ ہم بڑی دیر تک اُن سے کھیلتے رہے۔ قوالی کی آواز یہاں بھی آرہی تھی۔ اچانک پیچھے آہٹ سی ہوئی ہم نے پلٹ کر دیکھا۔ ہمارے پیچھے امرود کے جھکے ہوئے درختوں کے گہرے سایوں میں قبریں ہی قبریں پھیلی ہوئی تھیں۔ ہم دونوں ڈر گئے۔ اہدواں سے بھاگ کر دالان کی رونق اور روشنیوں میں آگئے۔

رات، بجے کے بعد محفل سماع ختم ہوئی۔ قاولان اپنا عصا لے کر ہمارے خاندان کی عورتوں اور بچوں کی ٹولی پیچھے لگے گھر کی طرف چل پڑے۔ سارا رستہ قبرستان میں سے ہو کر گزرتا تھا۔ مجھے بڑا ڈر رہا تھا۔ میں اپنی والدہ کے ساتھ لگا چل رہا تھا۔ اور دل کو اس خیال سے طاقت دے رہا تھا کہ خواجہ صاحب نے یہاں ہی موت چڑھائیں اُن کی مطیع ہیں۔ درختوں پر اندھیرا اندھیرا سکھت چھایا ہوا تھا۔ کسی وقت کوئی آنسو ہونے لگا اور فضا اور زیادہ ڈراؤنی ہو جاتی۔ عورتیں اونچی آواز میں باتیں کر کے اپنے خوف کو دور کر رہی تھیں۔ ہٹے تڑگے قاولان موٹا عصا زمین پر بار بار مارتے، بار بار کھنکارتے کوئی بیس قدم آگے آگے چل رہے تھے۔ کسی وقت بلند آواز سے وہ کلمہ شریف کا ورد کرنا شروع کر دیتے۔ خدا خدا کر کے قبرستان کا رستہ خرابو ہم دروازہ گئی منڈی سے نکل کر بازار بکرواناں میں آگئے۔ اگلے روز قاولان نے ایک من عزت دانی مشہور کر دی کہنے لگے۔

رات اگر میں تم لوگوں کے ساتھ نہ ہوتا تو خدا جانے کیا ہو جاتا۔ تم لوگوں کو قبرستان سے لے کر گھر رات کو کھانی کے پاس پہنچ کر کیا دیکھتا ہوں کہ ایک چڑیل بچہ پر بیٹھی ہے اس کے بال کٹے ہیں۔ اسے میرا لٹے ہیں۔ دانت باہر کو نکلتے ہوئے ہیں۔ آنکھیں سرخ اور پوری ہیں۔ مجھے دیکھ کر جھٹ اٹھ کر کھڑی ہو گئی اور ماستے پر ہاتھ رکھ کر کہا۔ اسلام علیکم پیر جی!

یہاں پہنچ کر قالو جان باقاعدہ اٹھ کر چیل کی نقل اتارتے۔ ہاتھ اٹھا کر سر خٹکا کر چہرے پر لجا جت پیری مسکراہٹ لاکر چڑیل کے سلام کرتے کا انداز بتاتے۔

”میں نے عسا اٹھا کر چڑیل سے کہا۔ او نامراد! تو یہاں بیٹھی کیا کر رہی ہے! تجھے خبر نہیں کہ چچے میرے بچے آرہے ہیں! ہل دفع ہو جا میری آنکھوں سے۔ اٹھ! بھاگ!۔۔۔ اور چڑیل ہی ہی ہی ہی ہی سلام پیر جی! کہتی اُٹنے پاؤں بھاگ کر امرودوں کے درختوں میں غائب ہو گئی۔

رشتے دار عورتوں نے سنا تو انہیں قبرستان والی رات یاد کر کے پسینے اُگئے۔ خبر پر یہ اثر ہوا کہ اس کے لئے بعد میں دوپہر کے وقت بھی قبرستان جاتے کھڑے نہ گئے۔

عرس کے علاوہ بھی ہم دن میں اکثر کھینٹے اور پتنگ اڑانے دگاہ پر جایا کرتے تھے۔ باغوں میں گھس کر کچے پکے امرود توڑتے۔ کھیتوں میں ہاکر سولیاں اکھاڑتے اور انہیں دگاہ کے حوض پر لاکر دھوتے اور ٹنک مریچ لگا کر کھاتے۔ میرے دادا جان سردیوں کی دوپہر میں عام طور پر دگاہ پر ہی گزارتے۔ وہ مقبرے کے پاس فرش پر درسی بچھا کر بیٹھ جاتے روٹی کے بھورے کر کے چڑیلوں کو ڈالتے۔ پانی سے لبالب بھرا ہوا کھڑا پاس رکھ لیتے۔ چڑیاں وہاں اگر بڑی آزادی سے حادہ دیکھا چلتی اور کھڑے پر بیٹھ کر چنے ڈبا ڈبا کر منے سے پانی پیتیں۔ وہ دادا جان سے ذرا بھی نہ گھبراتیں۔ دادا جان بھی ان سے بڑا پیار کرتے تھے۔ انہیں پانی پیتا دیکھ کر بچوں کی طرح خوش ہوتے۔ کسی وقت ان سے باتیں کرتے گئے۔ ہم دونوں بھائی گڈی اور مٹلے کراتے تو وہ انہیں سب دھرتے۔ گڈی میں ڈور ڈالتے۔ جب ہماری گڈی یا پتنگ سرسوں کے کھیتوں کے اوپر تیلے آسمان کی ٹنڈی ہواؤں میں لہراتے لگتی تو دادا جان ماستے پر ہاتھ کا چھپا بنا کر اسے دیکھتے اور ساتھ ساتھ کہتے جاتے۔

”شاہنشاہ! ڈھیل مت دیا۔ ہوتیز ہے۔ ڈور کس کر رکھا۔ میرا خیال ہے انہی طرف کتنی کھانی ہے۔۔۔۔۔

دگاہ پر دو یا تین عرس ہی ہوئے تھے کہ اس کا زوال شروع ہو گیا۔ ایک روز میں سکول سے بستے لے کر گھر میں داخل ہو تو قالو جان میری والدہ کے ساتھ رازدار کی باتیں کر رہی تھیں۔ میں نے بستہ ایک طرف پھینکا جگر میں سے روٹی نکالی ہانڈی میں سے ایک آلو ایک بوٹی نکال کر اس پر رکھی اور وہیں کھڑے کھڑے لٹانے لگا۔ قالو جان اور والدہ محترمہ کی باتوں سے معلوم ہوا کہ دگاہ شریف واسے خواجہ صاحب اپنے ایک ساتھی کے ساتھ امرتسر سے اچانک غائب ہو گئے ہیں۔ میں نے اس بات کو زیادہ اہمیت نہ دی، مگر چونکہ والدہ فکر مند تھیں اس لئے میں بھی فکر مند ہو گیا۔ اور مجھے محسوس ہوا کہ خواجہ صاحب کے ساتھ ضرور کوئی افسوسناک حادثہ ہوا ہے۔ اس کا ثبوت مجھے بہت جلد مل گیا۔ کیونکہ دگاہ اجڑنا شروع ہو گئی۔ چکیداروں کو تنخواہ نہ ملی تو وہ درگاہ چھوڑ کر چلے گئے۔ خواجہ صاحب کے بڑے لڑکے خود پریشان تھے وہ دگاہ کی حفاظت پوری تو جبر سے نہ کر سکتے تھے۔ نتیجہ یہ نکلا کہ لگ حوض کی ٹوٹیاں اور دودھ کی نہروں واسے تانبے کے پائپ اکھاڑ کر لے گئے۔ رشید لالہ اگر مقبرے میں سے جھاڑ قالو اس اتار کر خواجہ صاحب کے گھر نہ پہنچائے تو لوگ وہ بھی اتار کر لے جاتے۔ سیدو نشین، نائب سجادہ نشین، خزانچی اور متولی کے کمروں سے جالی دھار دھارے بھی راتوں رات چوری ہو گئے چڑیا گھر کے کھوڑے اڑ گئے۔ مہروں کو قبرستان کے جنگلی بنے کھا گئے۔ کیونکہ اب دات کو ان کی چکیداری کرنے والا کوئی نہ تھا۔ خواجہ صاحب کا بڑا لڑکا ایک روز دونوں بہن کھول کر گھر لے گیا۔ ورنہ ان کا بچنا بھی محال تھا۔ خواجہ صاحب کی دگاہ اور ان کے خاندان پر زوال آ گیا۔ میں کبھی کبھی ان کے گھر جاتا تو وہاں والدین میں سناٹا چھایا ہوتا۔ دو منزلہ بڑا اونچا لمبا جالی دار دروازوں اور نیم روشن ٹھنڈے کمروں پرانے دکھڑے صوفوں اور مہروں قد آدم عینوں اور پرانی طرز کی مدغنی تصویروں والا گھر تھا۔ کبھی وہاں کشمیری عورتوں اور لڑکیوں کی مسرور کھانسی گونجنا کرتی تھیں اور اب وہاں خاموشی طاری ہوتی۔

ایک روز دوپہر کو میں ڈور پتنگ سے کر دگاہ پر گیا۔ سردیوں کے دن تھے۔ سامنے کھیتوں میں پہلی دکن سرسوں بھولی ہوئی تھی۔ دگاہ کے صحن میں دیوان مقبرے کے پاس درسی کا ٹکڑا بچھانے والا جان اسی طرف بیٹھے چڑیلوں کو روٹی کے بھورے ڈال رہے تھے۔ چڑیاں شور مچاتی ان کے کندھوں۔ سر اور زون پر اکر بیٹھ رہی تھیں۔ ان کے ہاتھ سے بھورے پھینک کر لے جا رہی تھیں۔ اور دادا جان ہنس ہنس کر مجھے آواز دیاں میں باتیں کر رہے تھے۔ سامنے کی طرف سجادہ نشین اور نائب سجادہ نشین کے اُڑے ہوئے ٹنڈے سے لڑکیوں کے باہر دھوپ میں خواجہ صاحب کا بڑا لڑکا چنگیر میں تنور کی روٹی رکھے بیٹھا تھا۔ ایک

اتاق میں نون متی۔ وہ خشک مولیٰ سے تور کی روٹی کے ٹکڑے توڑ کر کھا رہا تھا۔ اسی بات کو جانے کتنے بڑے بیت گئے ہیں۔ لیکن یہ عبرت انگیز منظر آج بھی میری آنکھوں کے سامنے ہے۔ یہ دو نائب سجادہ نشین تھے جو مرس کے موقوفوں پر اپنے اقد سے پلاؤ اور برائی کے طشت میں ہر کرشتے داروں کے گھر پہنچا رہے تھے۔ اُس کا چہرہ بھرا بھر گول مٹول ہوتا تھا۔ اب وہ چہرہ اتر گیا تھا۔ رخساروں کی ہڈیاں نمایاں ہو رہی تھیں۔ وہ عمر میں مجھ سے خاصا بڑا تھا۔ میں ڈورا اور پتنگ باغ میں لئے ایک طرف کھڑا تھا۔ وہ میری موجودگی سے بے نیاز بڑی مشکل سے روٹی کے خشک ٹوٹے نگہ نہ کرتا تھا۔ ایک چڑیا چوں چوں کرتی میرے سر پر سے اٹتی ہوئی دادا جان کے کندھے پر جا کر بیٹھ گئی۔ دادا جان کی یہ عادت تھی کہ جب چڑیا اُن کے کندھے یا سر پر آگ بیٹھتی تو وہ ساکت ہو جاتے اور زیادہ نہیں ہلا جلا کرتے تھے۔ میں نے دیکھا دادا جان بہت بے بیٹھے ہیں۔ اور بڑی نگہوں سے چڑیا کو دیکھ دیکھ کر بچوں کی طرح خوش ہو رہے ہیں۔

آج پچیس برس بعد مجھے اُس چڑیا کی یاد آئی ہے۔ کیا وہ گندمی چونچ اور بھولے بھالے چہرے والی معصوم چڑیا زندہ ہوگی؟ وہ تو مجھے بھول گئی ہوگی، لیکن میں نے اُسے نہیں بھولا۔ شاید وہ بھی مجھے نہیں بھول ہوگی۔ پرندے کبھی محبت کرنے والوں کو نہیں بھولتے۔ وہ انہیں زندگی میں بھی یاد رکھتے ہیں اور مرنے کے بعد بھی اُن کا انتظار کرتے ہیں۔ کسی حیرت انگیز باغ میں۔۔۔ اُس باغ کے حسین ترین صفتوں میں۔ شفاف پانی والی خبروں کے کنارے۔ ان دیکھے سفید بھولوں کی دایلوں میں اور۔۔۔ تم اند کی کن کن نعتوں کو جھٹلاؤ گے درگاہ کے عرس۔ اُس کی رونقیں، اُس کی روشنیاں، کچھ گئیں۔ گرمیوں کی تپتی دوپہروں کو اُس کے صحن میں گہریاں دوڑتی ہوئی اور اُس کے سجادہ نشینوں کے تاسک دیوان خانوں میں لپکتے جانوں والی چتروں کے نیچے منگ چرس، بھنگ پی کرتے رہتے۔ وقت اس درگاہ کے ایوانوں میں زوال کے جالے بنتا گزرتا چلا گیا۔

پاکستان بن گیا۔ ہم لوگ ہر ترس کو بھڑکتے شعلوں کے سپرد کر کے اپنے نئے شہر، نئے وطن میں آگے چھ یا شاید پانچ برس بعد یوم اقبال کے موقع پر جاتے ہوئے پاکستانی انی کیشن کی جانب سے ایک زبردست شاعرانہ اجلاس میں لاہور کے معروف شاعر کو شرکت کی دعوت دی گئی۔ یہ لوگ میرے دوست تھے پاسپورٹ میں پاس موجود تھا۔ میں بھی اُن کے ساتھ جالندھر جانے کے لئے تیار ہو گیا۔ دل میں یہ خیال تھا کہ جیسا کہ میرا اُسے امرتسر کے کہنی باغ، ریا لٹو سینٹر، میگو پارک اور دروازہ مہان سنگھ کے باہر والے باغ کے یو کپش کے درخت سے ملنا ہو جائے گی۔ جاتی دفعہ ہم لاہور سے سیدھا جالندھر چلے گئے۔ واپسی پر جالندھر سے امرتسر آتے ہوئے بس

تھیں۔ پورے کے پاس پہنچی تو میں وہیں اتر گیا۔ جانے کس شاعر نے کہا۔

”اے حمید! تمہیں راستہ معلوم ہے ناں؟“

میں سڑک پر کھڑا کپڑے جھاڑا تھا۔ قیوم نظر کی آواز آئی۔

”یہ اُس کا اپنا شہر ہے۔ وہ راستے کیسے بھول سکتا ہے؟“

میں جانے کتنی دیر سگریٹ پر سگریٹ پیتا، دیران، اور اجنبی امرتسر کے بازاروں اور گلیوں میں آوارہ گوی کرتا رہا۔ مہان سنگھ دروازے والے یو کپش کے درخت سے ملا۔ اس تاریکی ملاقات کا حال میں اس مضمون کے شروع میں لکھ چکا ہوں۔ تیسرے پہر میں رُوح پھولا سنگھ کے قریب سے ہو کر قبرستان کی سڑک پر اتر گیا۔ قبروں پر ہی پیر دیا گیا تھا۔ جہاں کل قبروں پر اگر تیاں سلگتی تھیں۔ چراغ جلتے تھے، آج وہاں کئی کے کھیت تھے اور بعض جگہوں پر سننے مکانوں کی بنیادیں کھڑی تھیں۔ لوکاٹ اور امرود کے باغ اُڑ گئے تھے، کیونکہ امرتسر میں باغبانی مسلمانوں کے پاس تھی۔ میں نے کسی ہندو اور کسی سکھ کو باغبانی کرتے نہ دیکھا تھا۔ اب میں درگاہ کی زیارت کرنا چاہتا تھا۔ میں اُس کھائی کے پاس سے گزرا جہاں غلامان مرحوم کے بیان کے مطابق انہیں اُلٹے ماتہ پاؤں والی چڑیاں ملی تھیں۔ اس کھائی کا پل آدھا ڈھلے گیا تھا۔ اُن ندی نالوں کا ہم نشان ملک باقی نہ تھا جو تاشپاتی اور امرود کے باغوں کی آبیاری کیا کرتے تھے۔ اسی قبرستان میں ایک عورت کی قبر تھی جس پر سنگ مرمر کی بارہ درسی بنی ہوئی تھی۔ یہ خوبصورت قبر مرمر کے خاوند نے بڑی محبت سے بنوائی تھی۔ مجھے یاد ہے کہ محبت کرنے والے خاوند نے سنگ مرمر پر اپنی بیوی کی یاد میں بڑے ہی درد انگیز شعر کندہ کرائے تھے۔ عجیب اتفاق ہے کہ اُنھوں نے جوئے قبرستان میں یہ سنگ مرمر کی بارہ درسی والی قبروں کی توں موجود تھی۔ اب میں درگاہ کی طرف چل پڑا۔ اب میں درگاہ کے سامنے تھا، لیکن وہاں درگاہ نہیں تھی۔ نہ دالان۔ نہ چہرہ۔ نہ کمرے نہ سجادہ نشینوں کے دیوان خانے اور نہ مقبرہ۔۔۔ میری آنکھوں کے سامنے گیند کی آدمی دیوار تھی جس پر تھاپیاں نیچے سے اوپر تک لگی ہوئی تھیں۔ جہاں سجادہ نشین کا مرقہ تھا وہاں ایک لگے بندھی تھی۔ جہاں نائب سجادہ نشین کا مرقہ تھا وہاں ایک جٹا دھاری سادھو بیٹھا، انگ بھجوت رہا تھے جس کے سونے لگا رہا تھا۔ اور جہاں کبھی دودھ کی نہریں بہا کرتی تھیں وہاں ک اور عورت کی چائیاں لگی ہوئی تھیں۔ اس کے بعد مجھ سے کچھ نہ دیکھی گی۔

ہاں۔۔۔ پلٹے ہوئے میں نے ایک نظر اُس طرف دیکھا جہاں دادا جان درسی پر اتنی بے بسی

بیٹھے چڑیوں کو بھروسے ڈالا کرتے تھے۔ چڑیوں کو پانی پلایا کرتے تھے۔ اور جب کوئی چڑیا ان کے کندھے پر بیٹھ جاتی تو اس سے باتیں کیا کرتے تھے۔ وہاں کوئی چڑیا نہیں تھی۔ کوئی دوا جان نہیں تھے، لیکن ایک بڑی ہی پیاری آنکھوں والی گھری، شیشم کے پتوں پر بیٹھی، سورج کی تابناک روشنی میں میری طرف دیکھ رہی تھی۔

الوداع! میری پیاری گھری! میری پیاری چڑیو! میری پیاری بیٹو!

امرتسر اور سیب کا درخت

میں بی آر بی نہر کے کنارے گنجان ٹاہلیوں کے سائے میں کھڑا ہوں۔ میری بائیں جانب دھلان پرانیٹوں کا وہ چبوترہ ہے جہاں میجر عزیز بھٹی ٹینک کا گولہ لگنے سے شہید ہوا تھا۔ میں اس نہر پر پہلے بار آیا ہوں۔ آج سے اسیس بیس برس پہلے میں نے پاکستان ٹائمز میں اس نہر کی ایک تصویر دیکھی تھی جس میں لاہور کے طلباء، دیہات کے لوگ اور شہری کڈالیں اور بچاؤ کے چلاتے اس نہر کی کھدائی کر رہے تھے۔ ٹی ٹاؤس میں بیٹھے ہوئے دوستوں نے اس نہر پر معمولی سا تبصرہ کیا اور پھر فورس ڈسے کی سحر انگیز آواز اور ولیم فاکرز کے تازہ ترین ناول پر باتیں شروع ہو گئیں۔ دوسری دفعہ میں نے اس نہر کو اس وقت دیکھا جب میں پاسپورٹ جیب میں رکھے امرتسر جاتے ہوئے اس کے ٹی پر سے گزر رہا تھا۔ چوڑی چمکی لہالب، سست رفتاری سے بہتی ہوئی ایک پُر وقار نہر۔ میں اس سے بڑا متاثر ہوا اور مجھے امرتسر کی بڑی نہر یاد آگئی۔ ام کے گنجان درختوں کی دھندلی قطاروں کے بیچ میں سے گزرتی ٹھنڈے پہاڑی چٹانوں کے پانی سے بھری ہوئی نہر۔ جہاں پر مٹی جھلکی چمکتی دوپہروں میں نہانے جایا کرتے تھے۔ ویسے بھی امرتسر نہروں سے بھرا پڑا تھا اور ہمارا بچپن نہروں میں چھپا لگتا تھا۔ گزرا تھا۔ بڑی نہریں، چھوٹی نہریں اور پھر ان سے نکلے ہوئے نالے جو اکوچے، ناٹ اور لوکاٹ کے ٹھنڈی چھاؤں والے باغوں میں سے ہو کر گزرتے تھے۔ میں امرتسر کی بڑی نہر یاد کرتا ہی آر بی کے ٹی سے گزر گیا اور بی آر بی کو بھول گیا تھا۔ میرا دل امرتسر کی یاد سے لبریز تھا۔ وطن سے ہجرت کرنے کے بعد پہلی بار امرتسر مارا تھا۔ امرتسر جو کبھی میرا وطن تھا۔ جس کے گل کپڑوں کی خاک میں ابھی تک میرے پاؤں کے نشان تھے اور جس کی خاموش فضاؤں میں ٹھنڈے بنی مسکندوں کی آوازیں موج خواب تھیں۔ جس کے مکانوں کی نیم تاریکی ڈیوڑھیوں میں پہلانی یادوں کے سائے

ہزار ہے تھے۔ جس کے باغوں کے درخت اپنی شاخیں ہلاتے ہوئے آج بھی ہماری یاد میں سبے قرار ہیں اور ہمیں اپنی طرف بلا ہے۔ امرتسر۔ جہاں کہیں سورج ہمارے ساتھ طلوع ہوتا تھا۔ سچے گلاب کے پھول بھی کپنی باغ میں داخل ہوتے دیکھ کر کھل اٹھا کرتے تھے کہ ہم چلا گئیں لگا کر انہیں پکڑ لیں۔ میری بس داگہ چیک پوسٹ کی طرف آگے نکل گئی اور بی آر بی قیچے رہ گئی۔ امرتسر سے واپسی پر میں ایک بار پھر بی آر بی کے ٹی پرست گزرا اور بیس کی کھڑکی میں سے سگریٹ سگاتے میں نے یونہی ایک سرسری نظر سے نہر کے چوڑے پاٹ کو دیکھا۔ جس طرح ریل میں بیٹھا مسافر اُس چھوٹے سے شیش کی عمارت کو دیکھتا ہے جہاں ریل رُکے بغیر تیزی سے نکل جاتی ہے، لیکن آج بی آر بی نہر ایک زندہ پُر نور اور برگزیدہ ہستی کی طرح میرے سامنے سے گزر رہی رہی ہے اور گھڑی بھی ہے مجھے یوں محسوس ہوتا ہے جیسے میں ایک عظیم ماں کے حضور میں کھڑا ہوں جس کی وجوہ سے مامتا بھری بانہیں پھیلا کر اپنے بیشتر بچوں کی خون آلود مقدس لاشوں کو اپنے سینے سے لگا رہا ہے۔ ماں کی آنکھیں اُداس ہیں، مگر چہرے پر ایک جلال ہے، بڑا شکوہ عظمت ہے۔ گویا ایک روشن ترین سورج ہے جو رات کو طلوع ہو رہا ہے۔ میں بی آر بی نہر کے کنارے، عظیم ماں کے حضور میں سر جھکاٹے کھڑا ہوں اور۔۔۔ اور نہر کی طرف سے آنیوالی ٹھنڈی ہوا میں ماں کے پیار کا لمس محسوس کر رہا ہوں ہر طرف گہری خاموشی ہے اور اس خاموشی میں نہر کا پانی ایک دھیمی سی سرسراہٹ کے ساتھ بہتا چلا جا رہا ہے۔ یوں لگتا ہے گویا پُر جلال نورانی چہرے والی ماں مجھ سے خاموشی کی زبان میں باتیں کر رہی ہے۔ جیسے کہہ رہی ہو اب بیٹے اُم میرے کنارے چپ چاپ کھڑے کیا سوچ رہے ہو؟ کیا دیکھ رہے ہو؟ کیا تم نے اُس روز مجھے دیکھا تھا جب بھارتی ٹینکوں اور توپوں کے گولے آگ برساتے میرے اوپر سے گزر رہے تھے۔ جب میرے بچے اپنی ماں کے ناموس کو بچانے کے لیے حملہ آور دشمن کے ٹینکوں سے لگا گئے تھے۔ ماں! میں نے اپنے بچوں، پاک فوج کے غازیوں کے جھگمگاتے نورانی چہرے دیکھے ہیں۔ میں نے دشمن کے آگ و آہن کے طوفان میں چلا گئیں لگاتے ہوئے اُن کے اللہ اکبر اور یا علیؑ کے نعرے سنے ہیں۔ میں نے موت کو اُن کے آگے بھاگتے۔ دیکھا ہے اور آسمان سے اُن پر پھولوں کی بارش برستے دیکھی ہے۔ وہ ماں کے لعل تھے۔ بہنوں کے میرے موتی تھے۔ بیویوں کے سماگ تھے اور اپنے بچوں کے پیارے ابو تھے۔ اُن کے سروں

کے سائے تھے، لیکن اس وقت وہ اللہ کے خیر تھے۔ کاش، تم نے دشمنوں کے جنگل میں ماں شیروں کی دل ہلا دینے والی دھڑکی سنی ہوتی۔ وہ اللہ کے سپاہی تھے۔ کاش، تم نے اُن اللہ کے ہی سپاہیوں کو اللہ کے دین کی عزت، غیرت اور حرمت پر شہید ہوتے دیکھا ہوتا کہ بندہ مومن کا اللہ اللہ کا اللہ کیسے بننا ہے اور پھر اُس کی ضرب کا رگڑا، قالب و کار آفریں کیسے ہوتی ہے۔ مگر تم تو محض نہر کو دیکھ رہے ہو۔ اُس روز اگر تم یہاں ہوتے تو مجھے بھی دیکھتے۔ اُس پاک جہیں مقدس ماں کو دیکھتے جس کی حرمت کے لیے پاک فوج کے فرد کی آگ میں بے خوف و خطر جنتے مسکراتے۔ اللہ اکبر اور یا علیؑ کے فلک شکست نعرے لگاتے گور رہے تھے۔ اُس روز تم اس عالم فانی کا سب سے بڑا معجزہ دیکھتے۔ تم آگ کو گزار میں بدستے اور موت کو زندگی کا ندپ دھارتے دیکھتے تم دیکھتے کہ قرآن کے اوراق میں جب بندہ مومن کا خون گردش کرنے لگتا ہے تو دشت و جل اُس کی عمارت کس طرح تھر تھرا کر ریزہ ریزہ ہو جاتے ہیں۔ وہ بڑی عجیب گھڑی تھی۔ وہ بڑی عظیم گھڑی تھی تاریخ کے چودہ سو سال سمٹ کر میدان بدر اور میدان کربلا میں چلتی تھوڑوں کے سایل میں آگئے تھے ایک جانب وہی جبر و استبداد کی یلغار تھی اور دوسری جانب وہی ایک خدا، ایک رسول اور ایک قرآن کی عظمت کی عمارت۔ ایک طرف شرار بولہبی کا جہنم تھا اور دوسری طرف چراغ مصطفویٰ کی علم و استبداد کے اندھیروں کو پھاڑ دینے والی ضیا پاشیاں۔ کفار کی عبرت انگیز ہلاکت تھی اور بندہ مومن کی ایمان افروز شہادت مشین گنوں اور ریفلوں پر جے ہوئے ہاتھوں نے اللہ کی راہ میں جہاد کرنے والی تلوار اپنے چودہ سو سالہ نیام میں سے کوندے کی طرح لپک کر باہر نکل آئی تھی اور کفر و الحاد کی گھاٹوں کو پاش پاش کر رہی تھی۔ قرآن کی تلاوت کی باجبردت آوازیں تھیں اللہ اکبر اور یا علیؑ جیدر کے نعرے تھے مجھے اپنے آپ پر نہر فرات کا گمان ہونے لگا تھا جس کے کنارے آلِ رسول صلی اللہ علیہ وسلم، اللہ کے دین کا پرچم سر بلند کرنے کے لیے کفر کی طاقتوں سے لگرا رہی تھی۔ یا اللہ مجھے معاف کر دینا۔ میں نہر فرات کی ریگ کے ایک ذرے کا بھی مقابلہ نہیں کر سکتی۔ میں نہر فرات جہیں تھی، مگر میں نے تیرے مومنوں کو تیرے نام کی عظمت کی خاطر پُر سکون، پُر جلال، پُر نور چہروں کے ساتھ شہید ہوتے ضرور دیکھا ہے۔

شہادت ہے مطلوب و مقصود مومن نہ مال غنیمت نہ کثرت کشتائی

لیکن میرے بیٹے اُس روز تم کہاں تھے؟

اور میں نے سوچا کہ میں چہ ستمبر کو کہاں تھا! چہ ستمبر کی صبح کا سورج میں نے کوہ مری کی پہاڑوں میں طلوع ہوتے دیکھا تھا۔ میں سورج نکلنے سے پہلے ہی اپنے سنی بینک والے کالج سے نکل کر محکمہ ترقی اثمار کے ذخیرہ کی طرف آگیا تھا۔ اسی محکمے نے پہاڑ کی ڈھلان کے ساتھ ساتھ ہسپانوی لالہ اور فرانسیسی سیب کے درخت لگا رکھے ہیں۔ میں نے نیچے گڈنہ روڈ پر سے گزرتے ہوئے اکثر ان درختوں کو ڈھیلان کے ساتھ ساتھ دیکھا تھا۔ شاخوں میں لال لال سیب دھوپ میں چمکتے نظر آیا کرتے تھے اور مجھے بے اختیار گانہ زور دے کا ناول "سیب کا درخت" یاد آ جاتا تھا اور اس کے ساتھ ہی دم شرعی اٹھانے پر سکون باجیا آنکھوں والی سگن کا خیال بھی جس نے ایشرسٹ سے محبت کی۔ ایشرسٹ اور سگن چٹے کے پاس سیب کے درخت کے نیچے چاندنی راتوں میں ملا کرتے تھے۔ سگن کے تھے مٹے ہاتھ ٹٹے ہوتے اور ایشرسٹ انہیں چوم کر گرم کیا کرتا اور پھر ایشرسٹ اُسے چھوڑ کر ٹھہر چکا یہ پیشہ ہمیشہ کے لیے۔ سگن اُسے نہ بھلا سکی۔ وہ چاندنی راتوں میں سیب کے درخت سے جا کر کھڑی ہو جاتی اور چٹے کے پانی میں ہانڈ کو طلوع ہوتے دیکھتی رہتی اور پھر ایک روز گاؤں والوں کو اسی سیب کے درخت کے نیچے سگن کی لاش ملی۔ وہ چٹے کے سرد پانی میں ڈوبی ہوئی تھی اور اس کے تہری ریشی گیلے بال کافی زدہ پتھروں میں الجھے ہوئے تھے۔

گڈنہ روڈ پر سے گزرتے ہوئے میں جب بھی اوپر ڈھلان کی طرف نگاہیں اٹھا کر سیب کے درختوں کو دیکھتا تو مجھے یوں لگتا جیسے مجھ نے ہمارے چہرے والی پاک دل سگن سیب کے درخت کے ساتھ گئی ادا اس نظروں سے مجھے دیکھ رہی ہے۔

چہ ستمبر کی صبح کے لیے میں نے پتلی جانے والی گورنمنٹ ٹرانسپورٹ کی بس میں سیٹ بلک کر دار کئی تھی۔ میں ستمبر میں مری فرود جاتا ہوں۔ یہی وہ دن ہوتا ہے جب مری کے خوشبودر میٹھے سیب چلتے ہیں۔ ٹائر سرنج ہو جاتے ہیں ٹکوں میں بے دھڑک پانی آ جاتا ہے اور مری کی سڑکیں تند و عبرت انگیز چہروں والے لوگوں سے خالی ہو جاتی ہیں۔

یہ چہ ستمبر کی صبح تھی۔

پو پھٹنے والی تھی۔ موسم سرد تھا۔ میں جانے سے پہلے سیب کے درختوں سے مر مر رہا

چاہتا تھا، چنانچہ میں نے پل اور سپنا اور کمرے کے دروازے سے نکل کر برآمدے میں سے گزرتا چیرٹھ کے درختوں میں گھری ہوئی پہاڑی پگ ڈنڈی پر چل پڑا۔ مکنی کے کھیتوں کے گرد ہاڑھ لگی تھی اور مکنی کے بند بھٹوں پر سے اوس کی بوندیں گھاس پر گر رہی تھیں۔ مشرق کی جانب کچھ دیر بعد طلوع ہونے والے سورج کی ہلکی نیلی جھلکیاں نمودار ہونے لگی تھیں۔ آسمان پر ستارے ہانڈی کے پھولوں کی طرح چمک رہے تھے۔ ایک بے مد روشن سنہری بڑا سا ستارہ چیرٹھ کے جھنڈ کے بالکل اوپر دمک رہا تھا۔ یوں لگتا تھا جیسے وہ درختوں کے اوپر چمک کر نیچے کچھ دیکھ رہا ہے۔

اُس وقت بھارت کی فوجوں نے پاکستان کی سرحد پر پانچ گنا بڑی طاقت کے ساتھ حملہ کر دیا تھا اور اُس کی بکتر بند گاڑیاں بہتے دیہاتیوں پر گولیاں پلاتی پاکستان کے سرحدی گاؤں میں گھس آئی تھیں۔

ذخیرے والے سیب کے درختوں میں اندھیرا تھا۔ اسی ذخیرے کی طرف سے شبنم الود ٹھنڈی ہوا کے جھونکے آرہے تھے میں سیب کی ہلکی ہلکی خوشبو بھی تھی۔

میں اُس درخت کے نیچے اکر کھڑا ہو گیا جہاں میں نے سڑک پر سے گزرتے ہوئے کئی بھارتی سگن کو دیکھا تھا۔ یہ درخت دوسرے درختوں سے پھیلاؤ میں بڑا تھا اور اُس کی مکنی شاخیں سرنج سرنج سیبوں سے لدی تھیں۔ تنے پر انگریزی میں لکھی ہوئی ایک تختی لگی تھی جو اندھیرے میں پڑھی نہیں جا رہی تھی۔ میں نے سگن کو یاد کر کے آنکھیں بند کر لیں اور گہرا سانس لیا۔ مجھے یوں لگا جیسے میں میٹھے سیب کی طرف لب خوشبو پی رہا ہوں۔ مجھے اپنے اوپر سیب کے درخت کا گمان ہونے لگا اور پھر میں نے اپنے تھے پر سگن کے پاکیزہ جسم کا گرم لمس محسوس کیا۔ میں نے آنکھیں کھول دیں مجھے یقین تھا اگر میں چند لمحوں آنکھیں نہ کھولتا تو میرے جسم سے ہری ہری شاخیں پھوٹ پڑتی اور سیبوں کے گلابی شگونے کھل اُٹتے۔ میں نے درخت کے تنے پر محبت سے ہاتھ رکھا۔ سگن نے اپنے ننھے منے ٹھنڈے ہاتھ میں میرا ہاتھ تھام لیا اور میں نے اُس کی ہتھیلی جو م کر گروشی میں کہا۔

"الو حار میگن؟"

اُس وقت پاک فوج کے جیالے سپاہی وطن پاک کی حفاظت کے لیے دشمن کی گلا لگتی

توپوں اور ٹینکوں کے آگے سیسہ پلائی دیوار بن کر کھڑے ہو گئے تھے۔

والو مارے میگوں! میرے پیارے سیب کے درخت! میرے سرخ سرخ سیبوں کے لدے
 جو مئے درخت تو نے میرے وطن کی مٹی سے نمو حاصل کی ہے۔ میرے وطن کے سورج سے
 رنگ لیا ہے اور میرے وطن کی راتوں سے شبیہ کی شیرینی لی ہے۔ تو سدا پھلا پھولا رہے۔
 اگلی بہار تک کے لیے الوداع! میں پھر آؤں گا۔ جب تیری ٹہنیاں گلانی شکوفوں سے لدی ہوں گی
 اور سیاہ بھنور سے اپنا میٹھا ماگ الاپ رہے ہوں گے۔

مشرق کی جانب سورج کی اولین سنہری روشنی نمودار ہو رہی تھی اور پھر ایک بے حد روشن کرن
 شعاع نور بن کر آسمان پر پھیل گئی اور سینی بینک کے درختوں، مکئی کے لہلہاتے پودوں کے ہرے
 ڈنٹھل اور دھلاؤں پر آگی ہوئی گھاس اور گھاس میں پھلے ہوئے بنفشہ کے پھول تصویر بن کر سامنے
 آ گئے۔ میں پہاڑ کی شفاف، ہنرے اور پھولوں کی جھک سے لبریز پاکیزہ ہوا میں سانس لیتا دلہا اپنے
 کاٹھ کی طرف چل پڑا۔ صبح ہو چکی تھی اور مری کے پہاڑی کاٹھ سفید دھوپ میں چمک رہے تھے کہ
 میں بس کے انتظار میں سینی بینک پوسٹ آفس کے سامنے اکر کھڑا ہو گیا۔ تھوڑی دیر میں بس آگئی اور
 میں پنڈی کی طرف روانہ ہو گیا۔

اُس وقت لاہور توپوں اور بموں کے دھماکوں سے ہل رہا تھا، لیکن مری کے قرب و جوار میں
 مکئی کے کھیت صبح کی دھوپ میں لہلہا رہے تھے۔ یہاں کسی کو ابھی تک کانوں کان خبر نہ ہوئی تھی
 اس سے پہلے آزاد کشمیر کی محاذ پر فوج کی فتوحات کی خبریں لوگوں تک پہنچ چکی تھیں۔ لیکن بھارت
 لاہور پر حملہ کر دے گا۔ یہ کسی کے وہم و گمان میں بھی نہ تھا۔ گورنمنٹ ٹرانسپورٹ کی بس راولپنڈی
 کی طرف آڑی جا رہی تھی۔ بس بولے بولے گرم ہونا شروع ہو گئی۔ یوں محسوس ہونے لگا جیسے
 کسی شاندار محفل کے ایئر کنڈیشننگ کمرے میں سکون سے بیٹھے ہوں کہ اُس کا ایئر کنڈیشنر خراب
 ہو کر بند ہو جانے اور کمرے کی ٹھنڈی فضا آہستہ آہستہ گرم ہونا شروع ہو گئی ہو۔ کہنی بارغ اور
 ٹریٹ سے نیچے اتر کر بس میدانوں میں آئی تو گرنی اپنے پودے جو بن پراگئی۔ میں نے اپنے
 بیگ کے اندر پرانے کپڑوں میں ماتہ ڈال تو وہ ابھی تک ٹھنڈے تھے۔

بس راولپنڈی پہنچ گئی۔ یہاں بھی ابھی تک کسی کو کچھ خبر نہ تھی۔ میں اپنے دوست کی تلاش

میں دو گلی ٹی اوکس پہنچا۔ ہم نے چلنے پی۔ مری اور لاہور کی باتیں کیں اور پھر ریوے سٹیشن پر آ گئے
 میں دوپہر کو پنڈی سے لاہور جانے والی ریل کار میں سیٹ بک کرانا چاہتا تھا۔ یہاں اگر معلوم ہوا کہ لاہور
 سے ابھی تک وہ ریل کار بھی نہیں آئی جسے صبح آنا تھا۔ بنگ کرک نے بتایا کہ دھونگل شریف کے
 سٹیشن پر بھارت کے ہوائی جہاز نے ریل گاڑی پر بم گرایا ہے جس کی وجہ سے گاڑیوں کی آمد و
 رفت رگ گئی ہے۔

اب بھی کچھ تشویش ہوئی۔ جس وقت ہم والہی صدر پہنچے تو سارے راولپنڈی شہر
 میں یہ خبر پھیل چکی تھی کہ بھارت نے پاکستان پر حملہ کر دیا ہے اور صدر پاکستان ابھی جتھوں
 میں قوم سے خطاب کرنے والے ہیں۔ ریڈیو پاکستان سے فحی گانے بند کر دیئے گئے تھے اور
 ٹی ٹرانس بجائے مار رہے تھے۔ ہم چوک میں ایک پنڈی کی دکان کے آگے کھڑے ہو گئے لوگوں
 کا بے پناہ ہجوم جگہ جگہ ریڈیو کے گرد جمع تھا۔ پھر صدر پاکستان نے بسم اللہ الرحمن الرحیم پڑھنے کے
 بعد قوم کو بتایا کہ بھارت نے رات کے اندھیرے میں یزدلوں کی طرح پاکستان پر حملہ کر دیا ہے
 لیکن وہ نہیں جانتا کہ اس نے کس قوم کو ہلکا کر دیا ہے۔ ہم کلمہ طیبہ کا ورد کرتے ہوئے دشمن کی بھینٹ
 کے آگے سیسہ پلائی دیوار بن کر بڑھیں گے اور اُس وقت تک بڑھتے چلے جائیں گے جب تک
 کہ دشمن کی توپوں کو ہمیشہ ہمیشہ کے لیے ٹھنڈا نہیں کر دیتے۔

صدر پاکستان کی تقریر کے بعد پنڈی کی فضا اللہ اکبر کے نعروں سے گونج اٹھی۔ میں
 نے دیکھا کہ پنڈی کے لوگوں کے حوصلے بہت بلند تھے۔ ہر شخص کے چہرے پر جوش اور دشمن کو
 ملامت کر دینے کا عزم تھا۔ اب میرا لاہور پہنچنا بڑا ضروری ہو گیا تھا۔ ریڈیو پاکستان کو میری
 ضرورت تھی۔ لاہور کو میری ضرورت تھی۔ وطن پاک کو میری ضرورت تھی۔ بڑی مشکل سے مجھے لاہور
 جانے والی ایک بس میں سیٹ مل گئی۔ بس ساڑھے پانچ بجے پنڈی سے روانہ ہوئی۔ پانچ بجے
 کی خبروں میں شگلی احمد نے گرجہ اراؤں میں بتایا تھا کہ حملہ دشمن کا لاہور پر حملہ پاپ کر دیا گیا
 ہے اور وہ لاشیں چھوڑ کر پیچھے ہٹے پر مجبور ہو گیا ہے۔ میرا دل ایک عجیب پر جوش جذبہ سے
 لبریز ہو گیا تھا۔ ۱۹۴۷ء میں مسلمانوں نے قائد اعظم کی قیادت میں اپنے لیے ایک علیحدہ وطن پاکستان
 حاصل کیا تھا۔ برہمن کے سینے پر اُس وقت سے سانپ لوٹ رہا تھا۔ سترہ سال کے بعد اس نے

اپنے زعم میں پاکستان کے وجود کو ختم کرنے کے لیے حملہ کر دیا تھا اور پاکستانی قوم کی آزمائش کا وقت آگیا تھا۔

خدا ہمیں اس آزمائش میں سربلین کرے۔ آمین!

میرے دل سے بے اختیار دعا نکل گئی۔ میرے لیے یہ تھا کہ ہم انشا اللہ اس آزمائش میں پورے اتریں گے۔ ہم نے پاکستان لاکھوں جانوں کی قربانی سے حاصل کیا ہے۔ ہمارے بچے پورے شہر کے گلی کوچوں اور مکانات کی دھڑوں اور کھیتوں اور میدانوں میں ابھی تک ہمارے عزیزوں بھائیوں اور ماؤں بہنوں کا خون جما ہوا ہے۔ ہمارے کانوں میں ابھی تک ہندو سکھوں کی تلواروں سے شہید ہوتے ہوئے معصوم بچوں کی چیخوں کی آوازیں گونج رہی ہیں۔ ہم ابھی تک اپنے آباؤ اجداد کے مکانات سے لگے شعلے بلند ہوتے دیکھ رہے ہیں۔ اور ان شعلوں میں ہمارے بچوں کی لاشیں مل رہی ہیں۔ ہم نے اپنے بچے قربان کر کے پاکستان حاصل کیا ہے۔ ہم اپنی جانیں قربان کر دیں گے مگر پاکستان پر حق نہ آنے دیں گے۔ پاکستان اسلام کے نام پر بنا ہے۔ اللہ کے نام پر، اس کے دین کی بقا کے نام پر بنا ہے۔ ہم اسلام اور اللہ کے دین کی حفاظت کریں گے۔ زندہ رہے تو غازی۔ مر گئے تو شہید۔

بس لاہور کی طرف اڑی جا رہی تھی۔

گوجرانولہ سے اُگے نکلے تو اندھیرا بڑھنے لگا۔ شام غروب ہو گئی۔ ہر طرف اندھیرا ہی اندھیرا تھا۔ ہر طرف بلیک آؤٹ تھا۔ گوجرانولہ سے کوئی سات میل آگے آئے ہوں گے پولیس نے بس روک لی اور راولپنڈی جانے کو کہا، کیونکہ پوری جی ٹی روڈ پر نہ صرف بلیک آؤٹ تھا بلکہ کرنیو بھی لگا تھا۔ مسافروں کے چہرے لٹک گئے۔ ایک کاروباری آدمی اپنی بیوی کیساتھ سفر کر رہا تھا۔ اس نے ڈرائیور سے کہا کہ وہ لاگ پور روڈ کی طرف سے لاہور چلے، پٹرول کا سارا خرچہ وہ خود ادا کرے گا۔ مگر ڈرائیور رخصت نہ ہوا۔ بس والی گوجرانولہ کے آؤٹے پر گر پڑی ہو گئی ڈرائیور نے گوجرانولہ کے پیسے کاٹ کر باقی پیسے سواروں کو واپس کر دیئے۔ میں نے سوچا کہ گوجرانولہ ریوے سٹیشن سے کوئی ٹرین پکڑ کر لاہور پہنچ جاؤں گا۔ چنانچہ میں ریوے سٹیشن کی طرف چل پڑا۔ ہر طرف گھپ اندھیرا تھا۔ کہیں کسی جگہ بھی کوئی لائٹن یا بجلی کا بلب نہیں چل

رہا تھا۔ ایک پراسرار، خفیف سی دہشت چاروں طرف اندھیرے میں منڈلا رہی تھی۔ لوگوں کے حوصلے بلند تھے، لیکن بہر حال دشمن نے ملک پر حملہ کر دیا تھا۔ قوم پر امتحان کا وقت آگیا تھا۔ شہادت کا وقت آگیا تھا۔ میں شہادت دیتا ہوں، کوئی معبود نہیں سوائے اللہ کے اور محمد اللہ کے رسول ہیں۔

بلنگل کرک اڈ میں تھقی سی موم بتی جلا کر کھڑکی میں بیٹھا۔ اس نے مجھے لاہور کا ٹکٹ دیا۔ کوئی گاڑی کب لاہور کو جاتی تھی؟ کچھ خبر نہ تھی۔ میں پلیٹ فارم پر آکر بیٹھنے لگا۔ تمام بیچ رُکے ہوئے تھے۔ آسمان پر تارے چمکتے لگے تھے جن کی دھیمی روشنی میں ریوے لائن دور تک اندھیرے کے غار میں گم ہوتی نظر آرہی تھی۔ ایک مٹری ایکسپریس آئی اور بغیر رُکے لاہور کی طرف تیزی سے نکل گئی۔ اب اندھیرے میں کچھ کچھ دکھانی دینے لگا تھا۔ لوگ ٹولیوں کی صورت میں ادھر ادھر بیٹھے جنگ کے بارے میں گفتگو کر رہے تھے۔ ٹی ٹال پر میں نے چائے کے ساتھ دو سلائس کھائے اور سگریٹ سلا کر بیٹھنے لگا۔ رات کے گیارہ بج گئے۔ میں تھک گیا اور ایک کعبے کے ساتھ لگ کر پلیٹ فارم پر جا بیٹھا۔ مجھے نیند آنے لگی اور میں پلیٹ فارم ہی پر نیم دراز ہو گیا۔ مجھے ۱۹۳۷ کے وہ دن یاد آ گئے جب ہم ہاجربن کرامت سر سے لاہور آئے تھے اور میں نے ایک رات وزیر آباد کے ریوے پلیٹ فارم پر سو کر گزار دی تھی۔ میرا حوصلہ اس وقت بھی بلند تھا۔ مجھے اپنی بہادری پر کامل یقین تھا اور اپنی فوج کی شجاعت سے بھی میں بے خبر نہیں تھا۔ میں جانتا تھا کہ برصغیر کی مسلمان قوم ایک جبری اور بہادر قوم ہے، کیونکہ وہ سوائے خدا کے اور کسی سے نہ ڈرتی ہے اور نہ خجست کرتی ہے۔ میں نے اپنی بہادر فوج کے جوانوں کو براہ العالمین اور طہر و ق کے فرنٹ پر بہادری کے جوہر دکھاتے دیکھا تھا اور آج تو وہ دشمن کے خون کا آخری قطرہ تک بہا دینے کا عزم ہے کہ وہ بگ فرنٹ کی طرف بڑھ رہے تھے۔ آج تو قوم کا بچہ بچہ سپاہی تھا اور محاذ پر تھا اپنی آن پر مرنا چاہتا تھا۔

پونے بارہ بجے کے قریب راولپنڈی کی جانب سے ایک ٹرین آئی۔ میں اس میں سوار ہو گیا۔ ڈبے میں کافی رش اور اندھیرا تھا۔ گاڑی تھوڑی دیر رُکنے کے بعد لاہور کی طرف روانہ ہو گئی۔ چند بلنگالی سپاہی بھی ہمارے ڈبے میں سوار تھے۔ وہ ہنس ہنس کر ایک دوسرے

سے جنگ میں باتیں کر رہے تھے۔ پھر ایک بنگالی جوان نے اونچی آواز میں نعت پڑھنی شروع کر دی۔ نعت کا بھیدیوں کھلا کہ وہ ہر بار گاتے گاتے شعر کے آخر میں صلی اللہ علیہ وسلم کا ذکر ضرور کرتا۔ جہلم پہنچتے پہنچتے ہماری گاڑی کئی بار رکی اور فوجی گاڑیوں کو راستہ دینا پڑا۔ اب دن نکل گیا تھا اور ہر طرف روشنی پھیل گئی تھی۔ میں نے بنگالی جوانوں کو دیکھا۔ وہ نوجوان لڑکے تھے اور ایک دوسرے کے ساتھ ہنس مہنس کر لطیفہ بازی کر رہے تھے۔ اب جو میں نے جی روڑ کی طرف نگاہ کی، کاروں، ٹیکسی کاوند، سکوتروں اور لیوں کا ایک جھوم پنڈی پشاور کی طرف زرداں تھا۔ میں سمجھ گیا لاہور کے سرمایہ دار اپنی کوشیاں اور مالی شان بیٹہ ندم چھوڑ کر بھاگ رہے ہیں۔

گاڑی دھونکلی سٹیشن پر سے گزری ہم نے وہ جگہ دیکھی جہاں بھارت کے ہوائی جہاز نے مسافر گاڑی پر بم گرایا تھا۔ اور جس میں مسطوی شبید ہو گئی تھی۔ وہاں لائن ٹیرمی ہو گئی تھی اور زمین میں سیاہ گڑھا پڑ گیا تھا۔ گوجر لوالہ کے قریب میں نے دیکھا کہ ایک مسافر گاڑی لاہور سے چلی آ رہی ہے جس میں اس قدر رش ہے کہ اس کی چھت پر بھی لوگ سوار ہیں۔ یہ سرحد کے ان دیہات کے لوگ تھے جنہیں بھارتی حملہ آوروں نے تباہ کر دیا تھا۔ گاڑی ہمارے قریب سے گزری تو میں نے ڈبوں میں ایک دوسری کے اوپر بیٹھی ہوئی دیہاتی عورتوں کے پسینے بھرے زرد چہرے دیکھے اور گرمی اور صبی کے مارے روتے بچوں کو دیکھا۔ مجھے وہ مہاجرین ٹرینیں یاد آ گئیں جو ۱۹۴۷ء میں امرتسر جالندھر لدھیانہ روہتنگ اور حصا سے لاہور آیا کرتی تھیں۔ جن پر راستے میں سکھ اور ہندو غنڈے حملہ کر دیتے تھے اور لاہور سٹیشن پر عورتوں، بچوں، بوڑھوں اور نہتے جوانوں کی خون میں نہائی ہوئی کٹی پھٹی لاشیں ڈبوں میں سے نکالی جاتی تھیں۔

مجھے آج بھی وہ منظر یاد ہے۔ میں لاہور سٹیشن کے اندر پلیٹ فارم نمبر چار اور پانچ کے پل پر کھڑے نیچے دیکھ رہا تھا۔ فیروز پور سے مسلمان مہاجرین کی ایک گاڑی ابھی ابھی آ کر رکی تھی اور اس میں سے مسلم لیگ کے رہنما کار عورتوں اور بچوں کی لاشیں باہر نکال رہے تھے۔ میں نے ایک مسلمان عورت کو دیکھا جس کی ایک ہلک اور ایک بازو تلوار سے کاٹ دیا گیا تھا۔ وہ نیم جان تھی اور بار بار اپنا زرد لٹکا ہوا منہ اپنے کی طرف اشارہ کر رہی تھی۔ متوڑی دیر بعد خون میں تری تر ڈبے میں سے اس کے شیر خوار بچے کی لاش باہر نکالی گئی اس معصوم بچے کی لاش کا حال میں

بیان نہیں کر سکتا۔ یہ دنگل زدہ دل خراش منظر جب بھی آنکھوں کے سامنے آتا ہے میرا یہ عقیدہ راسخ ہو جاتا ہے کہ پاکستان کے لیے ہم نے جو بے بہا قربانیاں دی تھیں، وہ ہرگز ہرگز مایاں نہیں جانیں گی۔

لاہور سٹیشن میں گاڑی داخل ہوئی تو وہاں تل دھرنے کی جگہ نہ تھی۔ باڈرائیو کے دیہات سے آنے ہوئے بے سرو سامان لوگ پلیٹ فارموں پر جگہ جگہ ڈیرے ڈالے پڑے تھے۔ ڈبوں میں مسافر ٹھاسٹس بھرے ہوئے تھے۔ گاڑیوں کی چھتوں پر بھی تل دھرنے کی جگہ نہ تھی۔ اب میرے دل میں سن سنبالیں کی تلخ یادیں تازہ ہو گئیں۔ وہی مناظر اپنی تمام اندوہناکیوں کے ساتھ ایک بار پھر آنکھوں کے سامنے آ گئے تھے۔ لاہور کے انہی پلیٹ فارموں پر میں نے شرقی پنجاب کے دھندلے علاقوں سے آئے ہوئے مہاجرین کو خستہ حالی اور بے سرو سامانی کے عالم میں بٹوسے دیکھا تھا۔ پھر زبردست بارشوں اور سیلابوں کے بعد بیماریاں پھوٹ پڑی تھیں۔ میں نے پلیٹ فارم نمبر ایک پر مسلمان مہاجرین کو دم توڑتے دیکھا تھا۔ مجھے یاد ہے ایک جگہ زمین پر پڑا ہوا کسان دم توڑ رہا تھا اور ایک ڈاکٹر اور پولیس والا جھگڑا اس کا نام اور گاؤں کا نام پوچھ رہے تھے۔ اس کا گاؤں۔۔۔ ہوشیار پور، گورداسپور، پٹھانکوٹ یا جتوئی کی کسی پڑکون ندی کے کنارے ام اور نیم کی گھنٹی چپڑوں میں گھرا ہوا اس کا پیارا گاؤں۔۔۔ جہاں وہ کھیل کود کر جوان ہوا۔ جہاں اس نے شادی کی، بچوں کا باپ بنا اور پھر اسی گاؤں میں اپنے بچوں، ماں باپ اور بہن بھائیوں کی لاشیں چھوڑ کر دم توڑنے کے لیے لاہور کے ٹھنڈے سنگین پلیٹ فارم پر آ گیا۔

میں جلدی جلدی لاہور ریلوے سٹیشن سے باہر آ گیا۔ اب مجھے دھماکوں کی دھیمی دھیمی گرج سناؤں سے رہی تھی جو واگہ کی جانب سے آرہی تھی۔ لاہور سٹیشن کے باہر پہلی بار میں نے محسوس کیا کہ لوگ پریشان ہیں۔ میں نے کچھ لوگوں کو سامان اٹھائے بدحواسی کے ساتھ سٹیشن کی طرف جاتے دیکھا۔ وہ لاہور چھوڑ رہے تھے۔ میں بڑا حیرن ہوا۔ میں نے ایک واقف کار سے پوچھا۔

”کیوں بھئی، لاہور چھوڑ چلے؟“

وہ مذاہنہ اور بولا:

”نہیں یار۔ بچوں کو پشاور چھوڑنے مارا ہوں۔“

میں نے رکشا کیا اور اسے فیلنگ روڈ چلنے کو کہاں۔ رکشے داسے نے تین روپے مانگے۔ میں نے کوئی اعتراض نہ کیا۔ رکشہ پٹرول لینے کے لئے پٹرول پمپ کی طرف مڑا۔ وہاں رکشوں اور ٹیکسیوں کی قطار لگی تھی۔ اب محسوس ہوا کہ جنگ شروع ہو چکی ہے۔ کوئی آواز گھنٹے بعد ہماری ہانکی آئی۔ میکوڈ روڈ پر لوگ ٹانگوں اور ٹیکسیوں پر سامان لادے ریڈیو سٹیشن کی طرف چلے جا رہے تھے۔ فیلنگ روڈ پر بڑی بھیڑی اور پُر جوش، ہول تھا۔ رضا کار روڑیاں پہنے پھر رہے تھے۔ ہمارے محلے میں جتنے داروں کے ناموں کا اندراج کیا جا رہا تھا۔ وارڈن پولیس وجود میں آچکی تھیں۔ کوئی دس منٹ گھر میں گزارنے کے بعد میں سیدھا ریڈیو پاکستان کی طرف چل پڑا۔

اب شام ہو رہی تھی۔ مغرب ہوتے سورج کی لالی نے سیٹ روڈ پر شیشم کے درختوں کو لالہ زار بنا دیا تھا۔ اب توپوں کے دھماکے زیادہ سنائی دیتے تھے ریڈیو سٹیشن کے گیٹ پر فوج کا پڑھا تھا۔ ایمپرس روڈ سے دو فوجی ٹرک گزرے لوگوں نے اپنے بہادر جوانوں کو دیکھ کر اللہ اکبر اور یہ علی اور پاک فوج زندہ باد کے پُر جوش نعرے لگائے۔ میں نے فوجی نو جوانوں کو دیکھا۔ ان کے چہرے گرد آلود تھے۔ لیکن آنکھیں انگاروں کی طرح دکھ رہی تھیں۔ ان آنکھوں میں حملہ آور دشمن کو نیست و نابود کر دینے کا آہنی عزم متاثر رہا تھا۔ ریڈیو سٹیشن میں ہر شخص پُر جوش پُر عزم تھا۔ دلوں میں ایک نیا ولولہ ہاگ، ٹھانڈا، شہر کے تمام شاعر، ادیب، آرٹسٹ، فنکار، گلوکار، موسیقار اور علم و کرم جمع ہو گئے تھے۔ ولولہ انگیز تقریریں ریکارڈ ہو رہی تھیں۔ پُر جوش جنگی ترانے لکھے جا رہے تھے ان کی دھنیں بنائی جا رہی تھیں۔ ان دھنوں کو ریکارڈ کیا جا رہا تھا۔ صادق علی مانڈو ایک سٹوڈیو سے دوسرے سٹوڈیو کی طرف جاتے جاتے ترانے کی طرز بنایا اور ایک گھنٹے بعد ریڈیو سے جنگی ترانے کی آواز گونج اٹھتی۔

پاک فوج کو سلام
سیالکوٹ تو زندہ رہے گا۔
ہجری داتا کی۔

اسے جوا کے ماہیوا
مردوہا میرا شہر۔

نصفہ ہے فامور۔

سٹوڈیو نمبر ۳ میں ملکہ ترقم نور جہاں بیٹھی ترانہ ریکارڈ کر رہی ہے۔
رنگ لائے گا شہیدوں کا لہو۔

مجھے یاد ہے۔ ایسے پتر جہاں تے تنیں دکھ سے۔ کیہ بھدی ایی وچ بازار کڑے۔ ریکارڈ کرواتے وقت میڈم کی آنکھوں میں آنسو آگئے تھے۔ یہ ترانہ انہوں نے میجر عزیز بھٹی کی شہادت کے اگلے روز ریکارڈ کر دیا تھا۔ سٹوڈیو میں ملکہ ترقم کے ساتھ ہر شخص کی آنکھوں میں آنسو تھے اور پھر جب دشمن نے قصور پر حملہ کیا اور اسے محکمہ کرن سے بھی ہاتھ دھوئے پڑے تو ملکہ ترقم نے اسی روز ریڈیو پاکستان لاہور کے سٹوڈیو میں یہ ترانہ ریکارڈ کرایا۔

نی میرا سوہنا شہر قصورنی
ایدیایں دُصھاں دُور دُورنی
ایسے شہر اسے شاہ عنایت دا
ایتے جتے شاہ دا ڈیرا اسے
ایتھے مات نول دن دا چائیں لے
ایتھے رہندانت سویرا اسے
نی میرا سوہنا شہر.....

ناظر کاظمی انبالے سے ہجرت کر کے جب پہلے پہل لاہور آیا تو آج سے بائیس برس پہلے ہمدی پاک ٹی ٹی میں ملاقات ہوئی۔ وہ انبالے کی پرماتوں کی باتیں کرتا رہا۔ انہوں نے جھنڈ۔ سادون کی لمبی جھڑیاں، کوئل کی پکار، سبزے کے فرش، انہوں میں پڑے جھوٹے — سترہ برس بعد جدت نے پاکستان پر حملہ کیا تو وہ ارضی پاک کے تحفظ کے جذبے سے مہرک اٹھا۔ اب انہاں نہیں، سرگودھا میں کا شہر تھا۔ اس کے قلم نے لکھا ہے

زندہ دلوں کا گہوارہ

سرگودھا میرا شہر

جنگ کے دوران میں ریڈیو پاکستان پر جتنے بھی فنکار، گلوکار، علمائے کرام اور شعرا

آئے۔ انہوں نے ایک پیسہ بھی معاوضے کے طور پر قبول نہ کیا، چنانچہ ریڈیو پاکستان کی تاریخیں یہ پہلا موقع تھا کہ سٹوڈیو میں گلوکار جنگی ترانہ گارہے یا کوئی عالم دین تقریر کر رہا ہے اور ڈیوٹی روم میں اس کے نام کا کوئی چیک نہیں جا ہوا جن کے چیک بعض دفتری تقاضوں کے تحت بنتے بھی تھے وہ انہیں وصول کرنے کی بجائے دارفرد میں دے دیتے تھے۔

سات ستمبر کو میں نے لاہور میں ایک نئی قوم ابھرتے دیکھی۔ ایک ایسی قوم جس کا دل زندہ نگاہ بیدار اور یقین محکم تھا۔ چہ ستمبر کی شام والی افراط فری اور بے نظمی مغفود ہو چکی تھی۔ اب کسی بھی پٹرول پمپ پر کوئی قطار نہیں لگی تھی۔ آپ جہاں سے جتنا چاہیں پٹرول لے سکتے تھے۔ راشن ڈپوز پر کھانے پینے کی ہر شے وافر مقدار میں موجود تھی۔ ملک میں چوری، ڈکیتی، قتل و غارتگری اور اغوا کی وارداتوں کا وجود تک باقی نہ رہا تھا۔ کہیں بھی کسی بھی جگہ لڑائی مار کٹائی یا فائرنگ کا واقعہ نہیں ہو رہا تھا۔ اخباروں میں جرائم کی ایک بھی خبر نہیں آ رہی تھی۔ ریڈیو سٹیشن پر دن میں ہزاروں فون کتے تھے۔ لوگ پوچھتے تھے کہ ہم ملک اور قوم کی کس طرح خدمت کر سکتے ہیں۔ ہمیں بتایا جائے۔ لوگ فوجی لڑکوں کو سڑکوں پر سے گزرتا دیکھ کر جوش میں آ جاتے۔ وہ حلق بھاڑ بھاڑ کر اللہ کے نعرے لگاتے۔ باغبانپورہ سے پاکستان بسنگ تک لوگوں کا تانتا بندھا تھا۔ وہ نماز پر اپنے فوجی جوانوں کے چہروں پر جلال تھا۔ سورج طلوع ہو رہا ہے۔ وہ اللہ اور اس کے رسول کے نام پر کفار سے جہاد کر رہے تھے۔ انہوں نے ایک بار پھر جنگ بدر کی یاد تازہ کر دی تھی۔ ان غازیوں صفت لشکر، خدا کے شہیدوں، اللہ کے سپاہیوں اور رسول اکرم صلی اللہ علیہ وسلم کے متوالوں نے دشمن کو ہر محاذ پر کس طرح ذلت آمیز شکست دی۔ کس کس طرح جو انفرادی اور ملحدہ جہتی سے کلمہ طیبہ کا درو کرتے ہوئے خود شہید ہو گئے، لیکن دشمن کو ارمین پاک پر ایک انج بھی آگے نہ بڑھنے دیا۔ اس کے باسے میں آپ بہت کچھ پڑھ چکے ہیں اور دنیا کا ہر ملک پاک فوج کی بہادری اور شجاعت کا معترف ہے۔ میں ان سنہری کارناموں کی تفصیل میں نہیں جاؤں گا کیونکہ ہو سکتا ہے میں انہیں بیان کرتے ہوئے فوجی نقطہ نگاہ سے ان کارناموں کے ساتھ ساتھ مذکر سکوں۔ میں صرف اتنا کہوں گا کہ ہماری پاک فوج کے ہیالوں نے سترہ دن کی جنگ میں یہ ثابت کر دکھایا کہ اسلام زندہ ہے، مسلمان زندہ ہے اور اللہ کے اس آخری دین کا جب بھی حیا

ہو تو اس عظیم نشاۃ الثانیہ کا مرکز پاکستان ہوگا۔

جنگ ستمبر کے دس سال بعد بھارت سے لگے ہوئے کچھ ہندو اور سکھ ادیبوں سے ملاقات ہوئی تو انہوں نے جنگ ستمبر کی باتیں شروع کر دیں اور کہا کہ یہ ایک سیاسی جنگ تھی جو بعض غیر ملکی طاقتوں کے ایما پر شروع ہوئی۔ اس کے بعد انہوں نے بین الاقوامی انسانیت اور ادب کی انسانیت پرستی کا تذکرہ شروع کر دیا۔ میں نے ان سے کہا۔

”اے میرے دوست، پہلی بات تو یہ ہے کہ بین الاقوامی انسانیت کا نام ہی اسلام ہے اور جب بھارت کی سرکار نے مقبوضہ کشمیر کو ہاتھ سے نکھٹا دیکھ کر پاکستان پر حملہ کیا۔ تو اس نے بین الاقوامی انسانیت ہی پر حملہ کیا تھا۔ ہماری غیرت کو سکاڑا تھا۔ تمہارا کیا خیال ہے اگر میں انسانیت پرستی کا لحاظ رکھتے ہوئے ہمارے حملہ آوروں کی یلغار کا مقابلہ نہ کرتا اور وہ لاہور پر قابض ہو جاتے تو کیا وہ نصف اس بنا پر مجھے معاف کر دیتے کہ میں بین الاقوامی انسانیت کا پرستار ہوں اور یہ کہ راجندر سنگھ بیدی میرا دوست ہے اور الہ آباد کے امپریل ہوٹل والا افسانہ نگار بوننت سنگھ مجھ سے محبت کرتا ہے۔ ہرگز نہیں۔ جب کسی ملک کی فوج فاتح بن کر کسی ملک میں داخل ہوتی ہے تو وہاں کے افضل ترین انسان کو ذلیل ترین انسان بنا دیتی ہے اور یہ بین الاقوامی انسانیت کے خلاف ہے، اسلام کے خلاف ہے۔ اس لیے کہ اسلام ذلت کی زندگی پر عزت کی موت کو ترجیح دیتا ہے۔ وہ غیرت نیت اور خود ماری کی تعلیم دیتا ہے۔“

غیرت ہے بڑی چیز جہاں تک وہ میں

پہناتی ہے درویش کو تاج سر دارا

میں جب بھارتی حملہ آوروں کے مقابلے میں سینہ پلانی دیوار بن کر ڈٹ گیا تھا تو میں نے بین الاقوامی انسانیت ہی کی اخلاقی اقدار کو ہال ہونے سے بچانے کی کوشش کی تھی میں تمہارے ناگ پور، کلکتہ، دلی، جہانسی، مدارس اور لکھنؤ سے پیار کرتا ہوں اور وہاں کے رہنے والوں سے دشمنی نہیں رکھتا۔ اس لیے کہ اسلام مجھے امن اور محبت کا درس دیتا ہے، لیکن اگر تمہارے شہروں کے رہنے والے دشمن بن گئے، تو میں، ٹینک اور بکتر بند گاڑیاں لے کر میرے امن پسند شہروں کو تباہ و برباد کرنے کے لیے حملہ کر دیں گے تو یاد رکھو تمہارے ناگ پور، لکھنؤ، کلکتہ اور جہانسی کا سینہ

چھلنی کرنے کے لیے سب سے پہلا گورہ میرے ٹینک میں سے نکلے گا۔ بھارتی ادیب خاموش ہو گئے وہ جواب کیا دیتے۔ وہ میری بات سمجھ بھی نہ سکے تھے۔ حیرانی مجھے اُس وقت ہوئی جب خود ہمارے پاکستان کے دو ایک افسانہ نگاروں نے چائے کی پیالی پر گفتگو کرتے ہوئے کہا۔

”چھوڑو یار، جنگ ستمبر تو محض ایک سنٹ تھا۔ ہم ادیب ہیں۔ ہمیں تو ساری انسانی برادری سے پیار کرنا چاہیے۔ ہمیں تو ساری انسانی برادری سے پیار کرنا چاہیے۔ ہمیں جنگ سے نفرت کرنی چاہیے۔“

میں نے ایک ادیب سے پوچھا۔

”میرے افسانہ نگار، ڈرامہ نگار دوست، تم انسانی برادری سے پیار کرتے ہو اور جنگ سے نفرت۔۔۔ مجھے بتاؤ تم اپنی جوان بیٹی کے ساتھ ایک سڑک پر سے گزر رہے ہو اور چند غریب تمہاری بیٹی کو اٹھا کر ٹیکسی میں ڈال کر فرار ہو جاتے ہیں تو کیا تم انہیں کچھ نہ کہو گے؟ کیا تم اپنی بیٹی کی پیچ دیکار سنتے رہو گے اور انسانی برادری سے محبت اور جنگ سے نفرت کا پرچار کرتے رہو گے معاف کرنا اگر تم ایسا کرو گے تو تم جانور سے بھی ارنل ہو گے، کیونکہ یہ بے غیرتی ایک جانور بھی گوارا نہیں کرتا۔“

میرا افسانہ نگار دوست قہقہہ لگا کر ہنس دیا اور بولا:

”تم جذباتی ہو رہے ہو۔ پھر کبھی بات کریں گے؟“

اس نے پھر کبھی مجھ سے بات نہیں کی۔ وہ مجھ سے بات کر بھی نہیں سکتا۔ وہ نہ کفر سے باغیر ہے نہ اسلام سے وہ اچھا مسلمان کیا بنے گا وہ ایک برا کافر بھی نہیں۔ زمانے کی قسم انسان کھائے میں ہے۔۔۔۔۔

ہاں۔۔۔ مگر جن کو خدا توفیق دے۔ حکمت کی، ایمان کی سلامتی کی، تم اپنے رب کی کن کن نعمتوں کو جھٹلاؤ گے؟

بی آر بی نہر پر شام کے سائے گہرے ہو رہے ہیں میجر عزیز بھی شہید کی شہادت گاہ پر کوئی اگر بتیاں سنا گیا تھا وہ مجھ کو بتی ہیں۔ اگر بتیاں سمجھ جاتی ہیں، لیکن اُن کی خوشبو باقی رہ جاتی ہے۔ شہادت گاہیں مٹ جاتی ہیں، مگر شہید زندہ رہتے ہیں۔ بی آر بی نہر کا پر سکون پانی بڑی سبک نشانی

سے بہا چلا جا رہا ہے۔ کنارے کے درختوں کا عکس پانی میں گہرا سبز ہو گیا ہے۔ سورج منزلِ افق میں غروب ہو رہا ہے نہر کے پانی میں ایک بھی لہر نہیں اٹھ رہی۔ اپنے شہید دل کی یاد کو سینے سے لگائے وہ ابدی سکون کے ساتھ بہا چلا جا رہا ہے۔ میں میجر عزیز بھی شہید کی شہادت گاہ کی بھی مٹی اگر بتیوں اور سوکھے ہوئے پھولوں کو دیکھتا ہوں اور مجھے سیب کے شگوفوں کا خیال آ رہا ہے۔۔۔

دور کسی گاؤں کی مسجد سے شام کی اذان کی صدا بلند ہو رہی ہے۔

”میں گواہی دیتا ہوں کوئی نہیں معبود سوائے اللہ کے اور محمد صلی اللہ علیہ وسلم، اُس کے

رسول ہیں۔“

اور میں شہید ہوں۔

امرتسر کی ایک ہولناک ات

یہ واقعہ نے کامریڈ موہن سنگھ بھل نے سنا۔

کامریڈ بھل آل انڈیا سوشلسٹ پارٹی کی امرتسر شاخ کا ممبر تھا۔ پارٹی کا دفتر ال بازار میں سندھو شاہ پور ہوٹل کے سامنے مسجد خیر الدین کے پہلو میں تھا۔ نیچے گراہوفن دیکھاٹوں کی دکان تھی جہاں سے دن بھر کسی کھجور یا کسی انٹری باقی فیض آبادی، کبھی پیادہ قوال اور کبھی سگی، کان اور بچکے کے گیتوں کی آواز آیا کرتی۔ اسی دکان کی بغل سے تنگ سیرتھیاں اور پارٹی کے دفتر کو جاتی تھیں۔ سوشلسٹ پارٹی کے دفتر میں ہی امرتسر تانگہ ڈرائیور یوہن کا دفتر بھی تھا جس کا سکریٹری کامریڈ چمن اور جنرل سکریٹری ظہیر کاٹھیری تھا۔ تانے قد اور گھٹے ہوئے بدن والا کامریڈ چمن کو چاندلوں کے چندے کی شراب پی کر شام کو پارٹی کے دفتر میں اگر خوب اودھم مچاتا، کامریڈ اللہ رکھا ساہو جتا کیپ اور گھر کی بھلی شور قیغ میں بڑا خفص معلوم ہوتا۔ وہ پنجابی کا شاعر بھی تھا۔ کسی کسی اردو میں بھی شعر کہتا۔ ایک روز میں اور احمد شاہی دفتر کی باکونی میں کرسیاں ڈالے بیٹھے ہال بازار کی رونق دیکھ رہے تھے کہ کامریڈ ساہو ہمارے پاس آکر کھڑا ہو گیا۔ بازار میں ہندو سکھ لڑکیاں بڑی تعداد میں گزر رہی تھیں۔ غالباً اُس روز کوئی تہوار تھا۔ کامریڈ ساہو پہلے تو ان لڑکیوں کو دیکھتا رہا۔ پھر ہلکا۔

• کامریڈ ایک شعر ہو گیا ہے اردو میں۔ عزم کیا ہے کہ ۔

ہے بات کیا جو بھڑ ہے اتنی گل ہوئی

کچھ دکھ رہا ہے آج یہ ہال بازار میں ۔۔

ظہیر کاٹھیری نے پارٹی دفتر کے اوپر دالے کسے پر قبضہ چار کھا تھا۔ چاندلوں طرف کتابوں کے ڈھیر پڑے رہتے۔ وہی پر ایک صندوقی رکھی تھی۔ کونے والی میز پر سیاہ پتھر

کا ایک چوڑی ٹکڑا پڑا تھا جس پر ٹیکور کے نقوش ابھرے ہوئے تھے۔ کامریڈ ساہو، کامریڈ بھل، کامریڈ شریف متین، کامریڈ چمن اور کامریڈ کنول۔ یہ لوگ سوشلسٹ پارٹی کے سرگرم رکن تھے۔ ظہیر کاٹھیری غانا ماں یوہن اور تانگہ ڈرائیور یوہن کے لئے کام کرتا۔ میں اور احمد شاہی کبھی بھی اس دفتر میں جا کر گپ بازی میں وقت گزارا کرتے۔

مجلس احرار کان و نل امرتسر میں بڑا نندہ قلعہ مسجد خیر الدین اور انجن پارک کی فضا میں سیدہ عطا اللہ بخاری اور شیخ حسام الدین کی جو شبلی بھڑکلی تقریروں سے گونجا کرتی تھیں۔ اس جماعت میں بڑے خفص کارکن بھی تھے مگر حکومت الہیہ کے پروگرام کی تفصیلات کو یہ واضح صحت میں امرتسر مسلمانوں کے سامنے پیش نہ کر سکے تھے۔ میرے خیال میں اس جماعت کا سارا جوش، شعلہ نشان تقریروں، ہنگامہ خیز جلسوں، پرجوش جلسوں اور فلک شکن نعروں میں صرف ہوتا تھا۔ جو کچھ بھی تھا امرتسر کی سیاسی فضا کو پرجوش، گرم اور بیدار رکھنے میں مجلس احرار بھی بڑا کام کر رہی تھی۔ اس خوش گواہ میں ڈاکٹر سیف الدین کچلو کی نئی پوش تحریک نے بھی خوب گرمایا اور جب مسلم لیگ پاکستان کا مہم لے کر سامنے آئی تو امرتسر مسلمانوں کو پہلی بار اندھیرے کے سمندر میں آواز دہنی کا ایک منار ٹٹانا دکھائی دیا۔ پاکستان کے قیام کا پروگرام ایک بڑا واضح اور مثبت پروگرام تھا۔ اس پروگرام کی قیادت ایک پرجوش اور مرد آہن کے ہاتھ میں تھی جس نے برہمن سامراج کے مکر و فریب کے پردے کو چاک کر کے اسلام کا پرچم بلند کیا تھا۔ پنجاب کے مسلمانوں اور خاص طور پر امرتسر کے مسلمان سیاسی طور پر ۱۹۵۷ء سے لے کر اُس وقت تک سیاسی بے یقینی کے اندھیروں میں بھٹکتے رہے تھے۔ ہندوؤں کی تہذیب، کچھ اور مذہب الگ تھا۔ ان کے ساتھ مل کر رہ رہیں سکتے تھے۔ اُن سے الگ ہو کر رہنے کی کوئی صحت نظر نہ آتی تھی۔ امرتسر میں ہر خرم اور عید میلاد پر ہندو مسلم فساد ہو جاتا تھا۔ پٹ رنگوں کا تعزینہ گورہ بازار میں سے ہو کر گزرتے تھے۔ جو کہ ہندو سکھوں کا گڑھ تھا۔ غیر مسلم اُس تعزینے پر پتھر پھینک کر بھاگ جاتے۔ ایک بار خرم پر کروڑوں ڈیوڑھی کے ہندو علوانی نے کھوتا ہوا گلی مسلمانوں پر پھینک دیا۔ جس کا بدلہ اسی وقت ہندو علوانی کی دکان کو تندر آتش کر کے لے لیا گیا۔ امرتسر کا مسلمان بیمار دلیر اور نڈر تھا۔ ہندو سکھ جیسے اُس سے دب کر رہتے تھے۔ پھر بھی غیر مسلم اپنی فرقہ دارانہ مثرات سے

باز نہ آتے اور ہم مذہبی تہوار پر فساد کھڑا کر دیئے۔ میں نے اپنی آنکھوں سے درشنی ڈیوڑھی میں عید میلاد النبی کے جلوس پر ہندو لڑکوں کو پتھر پھینکتے اور پھر بھاگتے دیکھا ہے۔ میں اُن دنوں ایم ایس، اومانی سکول میں انٹرویو جماعت میں پڑھتا تھا۔ عید میلاد کا جلوس شہر میں سے ہوتا ہوا سکری باغ کی طرف جاتا تھا۔ میں نے چاند تار سے والا سبز پرچم اٹھا رکھا تھا۔ ہمیں اُن دنوں جلوسوں میں جھنڈے اٹھانے کا بڑا شوق تھا۔ پرچم اٹھانے جب ہم سینہ تانے اپنے نعلے میں سے گزرتے تو ہمیں یوں محسوس ہوا کرتا گویا ہم دشمن پر فتح پا کر آرہے ہیں۔ جب یہ جلوس درشنی ڈیوڑھی میں پہنچا تو ایک ہندو کے مکان سے چند ایشیئیں ہمارے گمے اُن پڑیں۔ میں نے مکان کی طرف دیکھا تو وہاں مٹی پر سے دو چار ہندو لڑکے دوسرے مکان میں کود رہے تھے۔ ہم نے اُس مکان کا ہندو دوازہ توڑ دیا۔۔۔ پولیس نے مداخلت کر کے معاملہ رفع دفع کرادیا۔ ہندو ہمیشہ چیپ کر مسلمانوں کے جلسوں اور جلوسوں پر پتھر پھینکتے اور دم دبا کر بھاگ جاتے۔ وہ کھل کر کبھی میدان میں سامنے نہیں آئے تھے۔ جب امرتسر کے شیر مسلمان میدان میں آتے تو میدان خالی ہوتا۔ کچھ سمجھ میں نہیں آتا تھا کہ غیر مسلموں کو یہ استعجال انگیز حرکتیں کب تک جاری رہیں گی اور مسلمانوں کی ایندولی نسلیں بر بہوں کی نقشہ پردہ اور منافقانہ ذہنت کے ساتھ اپنا مستقبل کیسے سنوار سکیں گی؟

چنانچہ اسی تذبذب اور عدم الینان کے عالم میں جب پاکستان کی قرارداد سامنے آئی تو مسلمانوں کو پہلی بار اپنی منزل کا سرخ ملا اور انہوں نے اس منزلِ درخشاں تک پہنچنے کے لئے جان و مال کی قربانیاں دینے کا عزم بالجزم کریں۔ کچھ لوگ ایسے بھی تھے جو ابھی تک ہندو لیڈروں کے رام میں گرفتار تھے اور کانگریس کی برہمنی جماعت کو ہی ہندوستان کی واحد جماعت سمجھتے تھے لیکن وقت کے ساتھ ساتھ جب برہمنی سامراج اور مسلم دشمنی کے شعلے اُن کے گھروں تک پہنچ گئے تو اُن پر ہندو کا منافقانہ اور اسلام دشمن اندازِ فکر کھل کر سامنے آگیا۔ میں ان دنوں برک کا امواں دسے رہا تھا۔ لیکن میری فائدہ بدوشیاں مجھے اتنی عمر میں ہی بھٹی سے کلکتے، ناگ پورے مدراس، ترخیاپلی، رامیشورم اور وہاں سے لنکا اور پھر وہیں سے رنگون تک گھٹا پھرا لاتی تھیں۔ میں نے مدراس کے دوپٹے مسلمانوں کو اسلامی شکار پر انتہائی پابندی سے عمل کرتے دیکھا تھا۔ میں نے وزیرِ اچٹم میں مرہٹے مسلمانوں کو سرخ آنکھیں لئے سلطان

شہید ٹیپو کے مزار پر نامعلوم غلاظتوں میں گھورتے دیکھا تھا۔ میں نے رنگون کی سڑکی جامع مسجد میں مسلمانوں کو نماز جمعہ کے بعد دین اسلام کی مرکزیت اور عالم اسلام کی ترقی و خوشحالی کی دعائیں مانگتے سنا تھا۔ میں نے رنگون کے زیرِ باد کی بری مسلمانوں کے محلوں میں صبح کے وقت قرآن کریم کی تلاوت کی پُر شکوہ آوازیں سنی تھیں اور میں کولمبو کی ٹیپو مسجد میں ہر نماز پر مسلمانوں کے اجماعِ عظیم کو اپنی آنکھوں سے دیکھ چکا تھا۔ پھر میں نے اُجین اور ناگ پور کے برہمنوں کو مسلمانوں کے ساتھ چھوٹ چھات کرتے اور دامن بکھا کر نفرت سے گزرتے دیکھا تھا۔ میرے سامنے ہندو لگنے کی ذکر یا سڑیٹ والی مسجدِ ناخدا کے آگے سے باجے بجاتے اور مسلمانوں کو مشتعل کرتے گزرا کرتے تھے۔ اُس عمر میں ہی مجھے سیاسی بصیرت نہ سہی مگر اتنا مزور معلوم ہو گیا تھا کہ ہندوستان کے ہندو مسلمانوں سے نفرت کرتے ہیں اور اُن کے بھوٹے برتنوں کو ہاتھ لگانے بغیر کتوں کے آگے بھینک دیتے ہیں۔ امرتسر کے ہندو محلوں میں جگہ جگہ پانی کی سبیلیں لگی ہوئیں۔ ان سبیلوں پر ہندو اور سکھ یا تو شیشے یا تانبے کے گلاس میں پانی پیتے اور یا کسی غریب سیل پر اوک سے پانی پی لیتے۔ لیکن مسلمان کو ہر ہندو سیل پر باتس کی ٹکی میں پانی ڈال کر جانوروں کی طرح پینا پڑتا۔ گویا مسلمان کو ہندو اچھوتوں سے بھی کم تر سمجھتے تھے۔ یہ وہ ذلت انگیز رویہ تھا جسے کوئی بھی غیور قوم برداشت نہیں کر سکتی۔ اور مسلمان ایک بہادر اور غیور قوم ہے۔ اُس نے کئی سو برس تک ہندوؤں پر حکومت کی تھی۔ وہ بھلا اس ذلت کو کیوں بجز زیادہ دیر برداشت کر سکتی تھی۔ قرارِ دادِ پاکستان نے مسلمانوں کو اُن کی عزت نفس، دین، کلچر اور غیرت کے تحفظ کا پیام دیا تھا۔ چنانچہ امرتسر کے تقریباً ہر مسلمان کے دل میں پاکستان کی شمع روشن ہو گئی اور وہ آندھیوں اور طوفانوں کے مقابلے کے لئے سینہ سپر ہو گئے۔

دوسرے مسلمان گھروں کی طرح ہمارے گھر میں بھی مسلم لیگ اور پاکستان کا چارہ بہتے
 لگا۔ جہیں اور تو کچھ علم نہیں تھا۔ ہاں اتنا ضرور معلوم تھا کہ پاکستان بن گیا تو مسلمانوں کو ایک عظیم
 مل جائے گا۔ جس میں وہ آزادی اور عزت کے ساتھ رہیں گے۔ اور ایک مسلمان کے لیے سزاؤں
 اور عزت سے بڑھ کر اور کوئی شے اس دنیا میں نہیں ہے۔ شہر میں لیگ کے بچے منعقد ہونے
 اور جلوس نکلتے شروع ہو گئے۔ ایک بار انجمن پارک میں مسلم لیگ کا جلسہ ہوا۔ میں اپنے

چھوٹے بھائی مقصود کے ساتھ جلسہ سننے گیا۔ مجھے آج بھی اچھی طرح یاد ہے کہ جب راجہ غفتر علی خان تقریر کے بعد تالیوں کے شور میں شیخ سے نیچے اتر رہے تھے تو ایک لگی کارکن نے نعرہ لگایا۔

”راجہ غفتر علی خان — زندہ باد“

اور میں نے اپنے بھائی کو بتایا کہ یہ لفظ اصل میں غفتر ہے۔

وقت گزرتا گیا۔ جنگ شروع ہو کر ختم ہو گئی اور شہر میں سیاسی ہنگامے زیادہ تیز ہو گئے۔ گول باغ، انجن پارک، مسجد خیر الدین، سکری باغ اور مسجد جان محمد میں ہر جمعے کو جلسے ہونے لگے۔ شاید انہی دنوں لندن سے کینٹیشن آیا۔ شملہ کانفرنس ہوئی۔ پاکستان کی منزل قریب آ رہی تھی اور امرتسری مسلمانوں میں جوش و خروش بڑھ رہا تھا۔ عورتوں کے جوش پاکستان زندہ باد کے نعرے لگاتے لگاتے شروع ہو گئے۔ پولیس ان پر آنسو گیس پھینکنے لگی۔ امرتسری کوئی دکان، کوئی ہوٹل، کوئی پیشک ایسی نہ تھی جہاں پاکستان اور قائد اعظم کے بارے میں بات نہ ہوتی ہو۔ مارکیٹ قلم سنگھ میں موٹی غلام محمد ترک کا ترک ہوٹل اور کامریڈ ہوٹل امرتسری شاعر ادیبوں اور دانشوروں کے ٹاؤس اور کافی ٹاؤس تھے۔ یہاں صبح و شام گرم بجشیں ہوتیں سوشلسٹ پارٹی کے دفتر میں بھی پاکستان زندہ باد کے نعروں کی گونج پہنچ چکی تھی۔ ایک روز مجھے کامریڈ موہن سنگھ بھلی نے کہا۔

”یار تم لوگ تو معلوم ہوتا ہے پاکستان بنا لو گے۔ لیکن ہمارا کیا بنے گا؟“

ہم لوگ ہندوؤں کے ساتھ کیسے گزارا کریں گے؟“ میں نے کہا۔

”بہر حال اسلام کے مقابلے میں تم لوگ ہندو مذہب کے بہت قریب ہو۔“

تمہارا گزارہ ہو جائے گا۔“

اس پر کامریڈ موہن سنگھ بھلی گہری سوچ میں ڈوب گیا تھا اور اس کے بالوں بھرے اومیر عمر کے پیچھے سے چہرے پر لگی عینک کے شیشے ماند پڑ گئے تھے۔ کامریڈ بھلی بڑا مخلص سکھ تھا۔ اسے نہ اسلام سے دلچسپی تھی، نہ ہندو فاضل سے اور نہ سیکھ مت سے۔

مگر کڑا کرپان وہ ضرور پہناتا تھا اور کبھی کبھی اس نے رکھے ہوئے تھے۔ یہ حقیقت اس زمانے میں ہی میرے تجربے میں آچکی تھی کہ ہندو اور سکھ کمیونسٹ ہو کر دہریہ ہو کر بھی اپنے مذہبی شعائر پر کسی نہ کسی طور قائم رہتے تھے۔ ہمارے محلے کے راکھڑا حیا بالی سکول میں ہمارا حساب کھاسٹرونا سکھ تھا۔ اور دہریہ تھا۔ یعنی اس نے ڈاڑھی مونچھ اور بال صاف کر رکھے تھے پھر بھی وہ صبح کے وقت شبہ گیر تن بڑے اب سے ہاتھ باندھ کر سنتا اور ہر بات میں گورو نامک اور گوروارجن کے کسی قول کا حوالہ ضرور دیتا۔ اور اند ہی اند وہ دین اسلام کا کٹر دشمن بھی تھا۔

لیکن کامریڈ موہن سنگھ بھلی بڑا مرنجیاں مرنج سکھ تھا۔ جب امرتسری ۱۹۴۷ء کے بعد ہندو مسلم فسادات کی آگ زیادہ تیزی سے بھڑک اٹھی پھر بھی کامریڈ بھلی کرفیو کھینے کے بعد پارٹی کے دفتر کا ایک چکر ضرور لگاتا۔ پارٹی کا دفتر مسلم اکثریت کے محلوں میں گھرا ہوا تھا۔ ہم نے اسے کئی بار سمجھایا کہ وہ یوں محلے بندوں نہ آیا کرے مگر اس نے ہر بار مسکرایا ہی کہا۔

”کامریڈ مجھے مار کر کوئی کیاے گا“

مگر لاہور اسمبلی ہال کی سیرٹھیں پر ماسٹر تارا سنگھ نے ننگی عمارت لہرا کر اعلان کر دیا تھا کہ سکھ پاکستان کبھی نہیں بننے دیں گے اور مسلمان ہر وقت پر پاکستان بنانے کا فیصلہ کر چکا تھا۔ اور امرتسری کے گلی کوچے پاکستان زندہ باد کے فلک شکن نعروں سے تھرا رہے تھے۔ چنانچہ ایک روز کامریڈ موہن سنگھ بھلی پر حملہ ہو گیا۔ کامریڈ بھلی نے بڑی مشکل سے جان بچا کر پارٹی کے دفتر میں آکر پناہ لی۔ اس کے بعد اس نے ہال بازار میں دفتر کی طرف آنا بند کر دیا۔ موہن سنگھ بھلی محرابیے والا کھوہ میں تاروں والے باغ کے سامنے ایک گلی میں رہتا تھا۔ یہ محلہ ہندو اکثریت کا محلہ تھا۔ اس سے آگے جا کر چوک لوہڑو آتا تھا جہاں دروازہ لوہڑو کے آس پاس دو چار محلے مسلمانوں کے تھے۔

جو واقعہ مجھے کامریڈ موہن سنگھ بھلی نے سنایا اس کا تعلق اگست ۱۹۴۷ء کے اواخر سے ہے۔ یہ بڑے آگ اور خون لہریں ہونے والے دن تھے۔ کٹر مذہبیل سنگھ چوکوں سے لے کر پیم والے بازار تک اور وہاں سے لے کر مسجد قاصداں تک سارے کاروبار میں رکھ ہو چکا تھا۔ ادھر بازار راکھڑا حیاں، کٹر کرم سنگھ، بازار سرسے رام داس، بازار جٹیاں، محلہ

ابوایاں اور بندہ اکثریت میں گھیرے ہوئے اسی قسم کے دوسرے محلوں میں مسلمانوں کے گھروں کو نذرِ آتش کیا جا رہا تھا۔ مغل گورداسپور اور امرتسر ہندوستان میں شامل کر دیئے گئے تھے۔ ہندوستان نے مکلوں پر ترنگے لہرا دیئے تھے۔ وہ فوج کے ساتھ مل کر مسلمانوں کے خالی مکانات کو ٹوٹ کر آگ لگا رہے تھے۔ ہندو محلوں سے مسلمان محلوں پر مسلسل فائرنگ ہو رہی تھی۔ امرتسر کے گھر کچھوں، بازاروں، پارکوں، باغوں اور عمارتوں میں پڑی ہوئی لاشوں کو گدہ گدہ اور گتے کوچ رہے تھے۔ مسلمان اپنا سب کچھ لٹوا کر مہاجر کیمپوں میں دم بخود بیٹھے شہر کی چار دیواری سے لٹختے سیاہ دھوئیں اور سرخ شعلوں کو تنگ رہے تھے۔ شریف پورہ کی مسلم آبادی کو مہاجر کیمپ قرار دیا جا چکا تھا۔ اس کے باہر ہماری مشہور بوجہ رجسٹریشن گیس لے بیٹھی تھی۔ اُسے جی ٹی روڈ عبور کر کے شہر میں داخل ہونے کی اجازت نہ تھی۔ شہر میں گورکھا، ڈوگرہ اور سیکھ رجسٹروں کا راج تھا۔ سوائے ہمارے محلے کٹرہ مہان سنگھ کے امرتسر کی ساری زخم خوردہ مسلم آبادی کیمپوں میں کوچ کر گئی تھی۔ کٹرہ مہان سنگھ کے مسلمان سمٹ سمٹا کر ہماری گلی کوچہ ڈبیراں میں آگئے تھے اور ہم ان لوگوں کا انتظار کر رہے تھے جو ہمیں اُس گلی سے اٹھا کر شریف پورہ کے کیمپ میں پہنچانے والے تھے۔ مرقیو کے کھلتے اور گتے کا سوال ہی پیدا نہ ہوتا تھا۔ سوائے ہمارے محلے کے سارا امرتسر ہندو فوج کی تحویل میں تھا۔ اتنے بڑے شہر میں رہنے والی مسلم اکثریت کے مکانات کو ٹوٹ کر آگ لگا رہا کہ ہندو سیکھ تھک چکے تھے۔ ہماری گلی کے منہ پر لوہے کا مضبوط دروازہ چڑھا دیا گیا تھا۔ پتی گلی، کیسری باغ، محلہ کبریاں، چوڑا کھوہ، پیلا ہسپتال اور کوچہ انگریزاں کے سارے مسلمان گھرانے ہماری گلی میں پناہ لے چکے تھے۔ یہ لوگ ننگے سر، ننگے پاؤں اپنے مکانات سے بھاگتے تھے۔ ہندو فوج نے دستی بموں اور سنٹن گنوں سے ان کے گھروں پر حملہ کر دیا تھا۔ ان میں سے کسی کا سارا عائدان سامنے قتل کر دیا گیا تھا۔ تو کسی کے جوان بچے کے سینے میں گولی مار دی گئی تھی۔ کوئی بچہ اپنی ماں کو پکار رہا تھا تو کوئی اپنے شہید ہو چکے باپ کو رو کر آوازیں دے رہا تھا۔ پاکستان ٹائمرز کے مشہور آرٹسٹ اور پاکستان کے نامور باکسر محمود بٹ کا بڑا بھائی حامد بٹ میرا کلاس فیلو تھا۔ اونچا لمبا جوان خوبصورت اور اکی کا بہترین کھلاڑی۔ اُس کی منگنی بھی ہو چکی تھی۔ جب ہندو فوجیوں نے اُن کے محلے پر حملہ کیا تو اُس نے ایک پلی کے لئے

کھڑکی کی چٹ اٹھا کر باہر دیکھا۔ متری ٹاٹ متری کی ایک گولی اُس کی گردن پر آکر گئی اور وہ وہیں شہید ہو گیا۔ اُس ہنگام قیامت میں غم نصیب گھروا لے حامد کی لاش بھی اپنے ساتھ نہ لے سکے۔ حامد بٹ اگر زندہ رہتا تو آج ہماری قومی ہاکی ٹیم کے اہم ستونوں میں سے ہوتا۔

پیر احمد شاہ کشمیری کڑی جوان تھا۔ سرخ و سپید رنگت۔ چہرے پر شرعی ڈاڑھی مونچھ۔ پانچ وقت کا نمازی۔ پرہیزگار۔ نیک سیرت۔ اور خوب صورت۔ ہماری گلی سے یہ پتہ کرنے نکلا کہ کوچہ رنگریزاں کے سارے مسلمان آگئے ہیں یا نہیں۔ دربار کی پنہاں کی دکان کے سامنے چوک میں ہندو تقانیدار بہتر نے اُسے گولی مار کر شہید کر دیا۔ اُس کی لاش بھی وہیں پڑی رہی۔ یہ آنکھیں کس کس مسلمان کی شہادت پر اٹک رہی ہیں؟ یہ سینہ کس کس کے ماتم میں فوں چکاں ہو؟ ہزاروں ماؤں کے محل مشرقی پنجاب کے شہروں میں بے گورہ کھن رہ گئے۔ جن بھائیوں کو ان کی بیٹیوں نے سہرے باندھنے تھے انہیں کفن بھی نصیب نہ ہو سکے۔ بے شک ہم نے پاکستان اپنے پیاروں کا خون دے کر حاصل کیا ہے اور اپنی جانیں دے کر بھی اس کی حفاظت کریں گے۔

امرتسر آگ اور خون میں نہا رہا تھا۔ فائرروں کی آوازیں گونج رہی تھیں فضا میں گلی گولی لاشوں اور جلے ہوئے مکانات کی بو تھی۔ ویران سڑکوں پر راتوں کو گتے روتے رہتے۔ بہر طوفان اور دہشت کا دور دورہ تھا کہ کامریڈ موہن سنگھ بجلی منجھ سے ہٹے میرے محلے میں آیا۔ میں گلی کے کونے والے مکان میں کھڑکی کے ساتھ لگا پہرہ دے رہا تھا۔ میں نے آہنی جھکے میں سے نیچے جھانک کر دیکھا کہ کامریڈ بجلی ایک پولیس جیپ سے نیچے اُترا اور گلی کے آہنی دھواڑے کو آہستہ آہستہ کھٹکھٹانے لگا۔ وہ پہرہ کا وقت تھا۔ مثالی بھیکی دھواڑا اُلو دھوپ نکل ہوئی تھی۔ میں نے بجلی کو دیکھ کر اوپر سے آواز دی۔

کامریڈ بجلی! کس لئے آئے ہو؟

مجھے پہلا خیال یہ آیا کہ شاید وہ ہندو سنگھ پولیس کو ساتھ لے کر ہمارے محلے پر حملہ کرنا چاہتے ہیں۔ میں نے سوچا اگر ایسی بات ہوئی تو میں اوپر ہی سے بندوق کا نذر کر کے اُسے ڈھیر کر دیتا۔ مگر آواز پر کامریڈ بجلی نے چہرہ اوپر اٹھا کر ہاتھ سے جینک درست کی اور بولا۔

• کامریڈ! نیچے آؤ۔ مجھے بتائیں ایک امانت دینی ہے۔

میں نے حیرانی سے پوچھا۔

• کوئی امانت؟ کس کی امانت کامریڈ بھلی؟

بھلی بولا۔

• تم مجھے آؤ۔ میں تمہیں سب کچھ بتائے دیتا ہوں۔

میں نے کہا۔

• مجھے تمہارے ارادے ٹھیک معلوم نہیں ہوتے۔ تم فوج کو لے کر ہمارے محلے میں کیوں لائے

ہو؟

اتنا سن کر کامریڈ بھلی نے پولیس سے کہا کہ وہ جیپ لے کر کووالا چلے جائیں وہ اپنے آپ

وہاں پہنچ جائے گا۔ جیپ وہاں سے چلی گئی۔ اب بھلی محلے میں اکیلا رہ گیا۔ سامنے دوکانیں نولی پڑی

تھیں اور ان کا سامان باہر کھرا ہوا تھا۔ ذرا دور چوک میں ایک بیل کی پھولی ہوئی لاش مجھے صاف

دکھائی دے رہی تھی۔ بھلی اوپر منہ کر کے کہنے لگا۔

• کامریڈ! میں اب بالکل نہبتا اور اکیلا ہوں۔ اب تو نیچے آ جاؤ یا مجھے اپنے پاس اور پر بلاؤ

والگور وکی قسم! مجھے ایک ضروری امانت تمہیں دینی ہے۔

اب میں سوچ میں پڑ گیا۔ میں اس مکان میں اکیلا ہی بندھ لے پیرہ دے رہا تھا۔ پیرہ

کیے تھا بس اتنی ہی ڈیوٹی پر تھا کہ اگر ہندو فوجی حملہ کرنے آنا دیکھوں تو فوراً اطلاع کر دوں تاکہ

میں کے مسلمان وہاں سے بھاگ کر شریف پورے والے کیمپ میں پہنچ جائیں۔ اس مکان

کا ایک دروازہ بازار میں بھی کھلتا تھا اور بھلی بازار میں کھڑا تھا۔ خدا جانے کیوں مجھے کامریڈ بھلی

کی بات پر اعتبار آ گیا پھر بھی میں نے محلے کے مسلمانوں کی زندگیوں کو خطرے میں ڈال کر گوارا نہ

کیا۔ میں نے چوبارے کے اوپر والے دروازے کو بند کر کے تال لگا دیا اور سیڑھیاں اتر کر

بازار والے دروازے پر کڑک گیا۔ میں نے دھڑکتے ہوئے دل کے ساتھ دروازے

کی کنڈی کھول دی۔ بندھن میرے ہاتھ میں تھی۔ اس کا رخ گرہ براہ راست بھلی کی طرف

نہیں تھا لیکن وہ میرے نشانے کی زد سے اب بھی نہیں تھا۔

• کوئی امانت ہے کامریڈ بھلی؟

مومن سنگھ بھلی کا چہرہ اتر اتر ہوا تھا اور ڈائری کے بالوں میں ہلکی ہلکی پڑی تھی۔ وہ بڑے اطمینان

سے چلتا ہوا میرے پاس آیا۔ جیسے اُسے بندوق کا ذرہ برابر بھی خوف نہ ہو۔ میرے پاس آکر بولا۔

• کامریڈ! یہاں سیر میوں میں بیٹھ کر ہی مجھ سے دوچار باتیں سن لو اور پھر اپنی امانت لے لو۔

والگور وکی کر پاتے کہ تم مل گئے درندہ پوچھ جانے کتنی دیر مجھ پر رہتا ہے

ہم دونوں سیر میوں میں بیٹھ گئے۔ اس کے دونوں ہاتھوں میں کوئی چیز رومال میں لپیٹی ہوئی

تھی جسے اُس نے اپنی صدی کے ساتھ لگا رکھا تھا۔ رنگ اس کا بھی اتر اتر ہوا تھا۔ میں نے سیر میوں

کا دروازہ اندر سے بند کر لیا تھا۔ سلاح دار روشندان میں سے مٹیائی مناد زور دھوپ کی ہلکی ہلکی روشنی

اور نہال سنگھ کی جل ہوئی دکان میں سے گندے بیروڑے کی بو آند آرہی تھی۔ مومن سنگھ بھلی نے

ٹوٹے پھوٹے نظروں میں جلدی جلدی جو دروناک واقعہ مجھے سنایا اُسے میں آج آپ کو اپنی زبانی

سناتا ہوں۔

جس روز کامریڈ مومن سنگھ بھلی پولیس کی جیپ میں بیٹھ کر مجھ سے ملے آیا یہ اُس سے

ایک روز پہلے کا ذکر ہے۔ جیسا کہ میں پہلے لکھ چکا ہوں مومن سنگھ بھلی والا کھوہ میں رہتا تھا

جو کہ ہندو اکثریت کا محلہ تھا اور ۱۵ اگست کے بعد تو ان علاقوں میں کسی مسلمان کے رہنے

کا سوال ہی پیدا نہیں ہوتا تھا۔ ان علاقوں سے مسلمانوں کی ساری آبادی دانہ گینچ اور گیو برج

کی جانب سے نکل کر جبار کیمپوں یا ریفریجی ٹرینوں میں بیٹھ کر پاکستان کی طرف کوچ کر چکی تھی

ان مسلمانوں کے چھوڑے ہوئے دیران محلوں میں ہندو سیکھ لوٹ مار میں مصروف تھے۔ وہ

مکانوں کو لوٹ ٹوٹ کر آگ لگا رہے تھے۔ امرتسر کا مشہور پنجابی شاعر اور ادبی مفنوں کی

جان ہاں چاچا عیسیٰ اسی علاقے میں شہید ہوا۔ وہ ہندوؤں کی بتائی امن کلیش کے ارکان کے

ساتھ امن کی بات چیت کرنے گیا کہ اُسے گولی مار دی گئی۔ ہم نے اُس کی لاش کو محل رنے

کی بیت کو شمش کی گھر کا میا بی نہ ہو سکی۔ ایک بھنگی نے ہمیں ترک ہوٹل میں آ کر بتایا کہ اُس

نے اپنی آنکھوں سے چاچا عیسیٰ کو گولی کھا کر گرتے دیکھا ہے۔

حق مغفرت کرے عجب آنا و مرد تھا

اب ان دیران و بہشت زدہ گل کو چوں میں مند و مکہ غنڈے فوج اور پولیس کے ساتھ مل کر
وندناتے پھرتے تھے۔ کہیں جل بجے مکان ٹٹک رہے تھے اور کہیں تازہ گئی آگ کے شعلے
آسمان سے باتیں کر رہے تھے۔ مسجدوں کے منبر توڑ کر بندوؤں نے وہاں مورتیاں لا کر رکھ
دی تھیں اور دروازوں پر پھر پامٹی سے "اوم" لکھ دیا تھا۔ موہن سنگھ بھلی کے بیان کے مطابق
وہ شام کے وقت کر فیو لگنے سے کچھ دیر پہلے گول باٹ کی طرف سے باستی گیٹ کی جانب آ رہے
تھا کہ سیتلا مندر کے پاس اُسے اُس علاقے کی نام نہاد امن کمیٹی کا چیرمین ہرام مل گیا۔ ہرام کبھی
کبھی پارٹی کے دفتر میں بھی آیا کرتا تھا۔ جیٹہ جھک کر ملے۔ بڑا انکسار دکھاتا۔ اُس روز
ہرام نے شراب پی رکھی تھی اور وہ موہن سنگھ بھلی کو زبردستی اپنے ساتھ سیتلا مندر کے چھوڑے
تالاب کے ساتھ ساتھ بنی ہوئی کوٹھڑیوں میں سے ایک کو ٹھٹھی میں لے گیا۔ یہاں ہرام کے
چھ سات بن و دوست شراب پی رہے تھے اور شور مچا رہے تھے۔ موہن سنگھ ان سب
کو جانتا تھا۔ اُس نے بہت کہا کہ اُسے گھر جانا ہے۔ کر فیو کا وقت پورا ہے لیکن کسی نے ایک
دھنسی۔ ہرام نے شراب کا گلاس اٹھا کر کہا۔

"بھلی! کونسا کر فیو! کیا کر فیو! امرتسر میں اب ہمارا راج ہے۔ آج ہم تمہیں سوگ
کی سیر کرائیں گے۔ اور قبہ رگہ رگہ پورا گلاس چڑھا گیا۔ اب موہن سنگھ بھلی کو علم ہوا کہ ان
بندوؤں نے شہر کے اندر سے کسی مسلمان لڑکی کو اغوا کر کے ساتھ والی کوٹھڑی میں بند کر رکھا
ہے اور شراب ختم کرنے کے بعد اُسے اپنی بربریت اور وحشت کا نشانہ بنانے والے ہیں۔
موہن سنگھ بھلی کا کہنا ہے کہ وہ سر سے پاؤں تک لرز گیا۔ خدا جانے وہ کس شریف باپ کی بیٹی
تھی اور یہ ٹوٹ اُسے اٹھا لائے تھے۔ موہن سنگھ نے دل میں فیصلہ کر لیا کہ وہ اُس لڑکی کو
ان درندوں سے ضرور بچائے گا۔ مگر ہرام اور اُس کے غنڈے دوستوں کی آنکھیں شراب
پی کر خون ہو رہی تھیں۔ یہ مجھ کے بھیر دینے کے جبرمیں سے اس کا ترنوالہ جھپٹنے والی بات تھی۔
مجھ بھی موہن سنگھ بھلی کہتا ہے کہ میں نے اُسکی بے کس و مجبور مسلمان بیٹی کی مدد کرنے کا فیصلہ
کر لیا اور اس مقصد کے حصول کے لئے خود بھی ہرام کے ساتھیوں کی ۲۲ توپیں شریک ہو گئی
ایک بندو خنڈہ متوک کر اُسے پاؤں سے مل کر بولا۔

"میں مسلمانوں کو یوں ہی مسل دوں گا۔ ۱۱-۱۔ ہرام اچلو اُس مسل (مسلمان عورت)
کے پاس چلو۔ سال کو اب ہوش اُگیا ہوگا۔
دوسرا بولا۔

"بھرا تا جی! میری مانو۔ اس نے بے ہوشی کا بہانہ بنایا ہے۔
ہرام اپنے گلاس میں شراب اٹھ اٹھاتے ہوئے جھکے کھا رہا تھا۔
بہت۔ چپ رہ رام مورتی!۔ ان مسلمانوں کی عورتوں کو ہم الٹا لٹکا دیں گے۔
کیا سمجھتا ہے۔

"بل جی! وہ سالی بچے ہند نہیں کہہ رہی تھی۔
موہن سنگھ نے پوچھا۔
کیا کہتی تھی وہ۔

ہرام میز پر مٹکا مار تے ہوئے چیخا۔

"کہتی تھی پاکستان زندہ باد۔ بہت۔ بہت۔ مڑا چکھا دوں گا۔ مڑا چکھا
دوں گا۔

کمریڈ موہن سنگھ کہتا ہے کہ میں نے موقع غنیمت جان کر ہرام سے کہا۔
"یار بل! میں جا کر اس مسلمان عورت سے بات کرتا ہوں۔ دیکھتا ہوں کس طرح
بچے ہند نہیں کہتی۔ اور فکر نہ کرو۔ میں اُسے راضی بھی کر لوں گا۔
موہن سنگھ نے آنکھ ماری جس پر ہرام قہقہہ لگا کر ہنس پڑا۔ سارے ہندو غنڈوں
نے موہن سنگھ کی بات کو پسند کیا۔ رام مورتی بولا۔
"بل جی! موہن سنگھ کو بھیج دو۔ پڑھا آدمی ہے۔ اس کی بات وہ مسل مان جائے
گی۔

چنانچہ موہن سنگھ بھلی ساتھ والی کوٹھڑی کا تال کھول کر اندر گیا۔ اندر طاق میں مٹی لکڑیا
جل رہا تھا۔ اندر گوبر کی بو پھیلی ہوئی تھی۔ کونے میں ٹوٹی ہوئی کھانٹ پر ایک لڑکی پڑی تھی۔
دیسنے کی دھیمی روشنی میں موہن سنگھ نے دیکھا کہ اُس کے کپڑے جگہ جگہ سے پھٹے ہوئے

تھے۔ بال یوں کھلے تھے جیسے کسی نے زبردستی نوپے ہوں۔ وہ بمشکل اٹھاں سترہ برس کی زردیسی
دہلی تیل لڑکی تھی۔ موہن سنگھ اس مسلمان لڑکی کے قریب گیا تو اس نے تڑپ کر گردن اٹھا کر
اس کی طرف دیکھا۔ مسلمان لڑکی کی آنکھوں میں خونخوار چپتے کی چمک تھی۔ اس کا سانس بھولا ہوا
تھا۔ اس نے گرج کر کہا۔

”خبردار جو مجھے ماتہ لگایا۔“

موہن سنگھ بکلی کہتا ہے کہ میں نے ماتہ جوڑتے ہوئے کہا۔

”بیٹی! میں تمہیں نقصان پہنچانے نہیں آیا۔ بلکہ میں تمہیں ان دندلوں سے بچانا چاہتا
ہوں۔ لیکن سمجھ میں نہیں آتا کہ میں تیرے لئے کیا کروں۔ وہ لوگ شرابیوں پی رہے ہیں۔ ان کی آنکھوں
میں خون اتر رہا ہے۔ اگر میں نے تمہیں یہاں سے بھاگ دیا تو وہ میرے ساتھ تمہاری بھی لٹکاؤٹی کر
دیں گے۔ اور پھر اگر تو یہاں سے بھاگ کر نکل بھی تو کسی دوسرے ہندو غنڈے یا ہندو سپاہی
کے ماتہ آجائے گی۔ مسلمان لڑکی نے جب موہن سنگھ کے منہ سے بیٹی کا لفظ سنا تو اسے ذرا حوصلہ
ہوا۔ ایک پل کے لئے اس نے موہن سنگھ کو غور سے دیکھا اور پھر اچانک گھسے میں سے ایک موٹا
ساتویں نکال کر اسے دیتی بھونٹی بولی۔“

”میری یہ امانت اپنے پاس رکھ لیں اور کسی بھی مسلمان کو دے دیں۔ میرا نام رضیہ بانو
ہے۔ میں ام اے اوگر لڑائی سکول میں دسویں جماعت میں پڑھتی تھی۔ ہندوؤں نے میرے
دو دوں بھائیوں اور ابا جان اور امی جان کو میرے سامنے شہید کر دیا اور مجھے اٹھا کر یہاں لے گئے
ان ہندوؤں سے جا کر کہہ دیں کہ ایک مسلمان گھرانے کی لڑکی کو اپنی عزت جان سے بھی زیادہ ہی
عزت دیتی ہے۔“

بقول موہن سنگھ بکلی اس مسلمان لڑکی نے اچانک موہن سنگھ کی طرف ماتہ بڑھایا
اور موٹا تقوید اسے دے کر چشم زندن میں موہن سنگھ کی کربان نیام سے کھینچی اور دیکھتے دیکھتے
اسے اپنے دل میں اتار لیا۔ خون کا فوارہ چھوٹا اور وہ مسلمان لڑکی ایک لمبی سی سسکی بھر کر
چادر پانی پر گر پڑی۔ موہن سنگھ ایک پل کے لئے تو پتھر سا ہو کر رہ گیا۔ لڑکی کے سینے سے
خون جاری تھا اور وہ تڑپ رہی تھی۔ پھر اس نے شور مچا دیا۔ ساتھ والی کوٹھڑی سے سارے

ہندو غنڈے سے لڑکھڑاتے گرتے پڑتے اندر آئے اس وقت تک وہ مسلمان لڑکی ٹھنڈی
خونچکی تھی۔ موہن سنگھ نے کہا۔

”اس نے میری کربان سے خودکشی کر لی۔ میں اسے سمجھا رہا تھا کہ اس نے میری کربان
کھینچ کر دل میں گھونپ لی۔“

ہندو غنڈوں نے وحشی ہو کر بھرپور ماریں اور ہرام نے کہا۔

”مر گئی ہے تو مرنے دو۔ ہم کوئی دوسری لڑکی اٹھا لیں گے۔ رام مورتی! چلو۔“

پلو یارو۔ کوئی دوسری عورت اٹھا لاتے ہیں۔ مسئلہ نہیں تو ہندو عورت ہی سہی! بابا۔“

اور وہ سارے شرابی شور مچاتے، بھڑکیں مارتے کوٹھڑی سے باہر نکل گئے۔ موہن سنگھ
اس مسلمان لڑکی کی لاش کے پاس اکیلا رہ گیا۔ بقول موہن سنگھ اس لڑکی کی لاش کے چہرے پر ایک
عجیب سکون اور نند تھا۔ دیتے کی دمیں مدھنی میں خون آلود کپڑوں میں اس کا سفید چہرہ ایسے لگ رہا تھا
جیسے گلاب کے پھولوں میں موتیے کا سفید گجرا پڑا ہو۔ موہن سنگھ بکلی کتنی ہی دیر رضیہ بانو کی لاش
کے پاس سر جھکائے بیٹھا رہا۔

”کامریڈ! ایک مسلمان لڑکی اتنی غیرت مند بھی ہو سکتی ہے۔ یہ مجھے اب معلوم ہوا تھا۔ سچ
کہتا ہوں۔ میری آنکھوں سے آنسو بہہ رہے تھے۔ اس کا دیا ہوا تقوید میرے ہاتھوں میں تھا۔ میں
کتنی ہی دیر سر جھکائے بیٹھا رہا۔ رات گہری ہو گئی تھی۔ شہر کی جانب سے کبھی کیسی گولی چلنے
کی آواز آجاتی تھی۔ پھر میں نے اس بیاد مسلمان بچی کی لاش کو اپنے ہاتھوں پر اٹھایا اور باہر
لے آیا۔“

ستیلہ مندر والے تالاب کے عقب میں کچا میدان ہے جو ذرا قدر فتح شاہ بخاری
اور حضرت شکر شاہ کے مزار تک چلا گیا ہے۔ یہاں کہیں کہیں لیکروں کے جھنڈ ہیں۔ موہن
سنگھ بکلی نے انہی لیکروں کے ایک جھنڈ میں زمین میں گڑھا کھودا اور رضیہ بانو کی لاش
کو دفن کر دیا۔ موہن سنگھ بکلی کہنے لگے۔

”کامریڈ! مجھے مسلمانوں کی طرح فاتحہ پڑھنا نہیں آتا تھا۔ لیکن میں نے ماتہ اٹھا کر
اپنے رب سے کہا تھا کہ اے سب کے پالنہار! اس غیرت مند مسلمان بچی کی تاکہ شانتی

میں سیر میوں میں دم بکود بیٹھا تھا۔ مومن سنگھ بھلی نے رضیہ بانو کی امانت وہ تعویذ میرے دلے لیا اور خشک سی آواز میں بولا۔

”کامریڈ! یہ بچی جہاں دفن ہے وہاں میں اس کی قبر نہیں بنا سکتا۔ کیونکہ مجھے معلوم ہے ہندو اسے ڈھادیں گے۔ میں وہاں مسلمانوں کے رواج کے مطابق جمہرات کو دیا بھی نہ جلا سکوں گا۔ اس پر پھول بھی نہ ڈال سکوں گا۔ لیکن کامریڈ! یقین کر میں جب تک زندہ رہا، ہر جمہرات کو وہاں آکر اپنے انسوؤں کے پھول اپن کر تارہوں گا۔ اچھا اب میں جاتا ہوں میں نے اس بچی کی امانت تجھے دے دی ہے اب میرے دل سے بوجھ اتر گیا ہے۔ اس نے کہا تھا کہ کسی مسلمان کو یہ تعویذ دے دینا۔ شہر میں کوئی مسلمان نہیں رہا تھا۔ میں نے سنا کہ تمہارے محلے میں مسلمان ابھی ہیں۔ چنانچہ میں تمہارے پاس آگیا۔ میں نے اپنا فرماں پورا کر دیا۔ میں جاتا ہوں۔ کو تو الی میں سپاہی میرا انتظار کر رہے ہوں گے۔“

اس کے ساتھ کامریڈ بھلی نے میرا ہاتھ اپنے دونوں ہاتھوں میں محکم کر دیا اور دروازہ کھول کر باہر نکل گیا۔ میں حیرت زدہ سا ہو کر رضیہ بانو شہید کا تعویذ ہاتھوں میں لئے سیر میوں میں بیٹھا رہا۔ کامریڈ بھلی کی باتیں ابھی تک میرے کانوں میں گونج رہی تھیں۔ اچانک ہانار میں فائر کی آواز آئی۔ میں چونکا جلدی سے دروازے کو اندر سے تالا لگا دیا اور چوہاسے میں آگیا۔ جنگے میں سے نیچے جھانک کر دیکھا تو ایک فوجی ٹرک چوک میں کھڑا تھا اور سکھ ہندو فوجی چھلانگیں لگا کر نیچے کود رہے تھے۔ میں چشم زدن میں سیر میاں اتر کر گئی میں آگیا اور محلے والوں کو ہندو فوجیوں کی آمد خبر سنائی۔ اتنے میں ایک زوردار دھماکہ ہوا اور گلی کا آہنی دروازہ ایک طرف سے جھٹک گیا۔ اس کے ساتھ ہی گلی میں بھگدڑ مچ گئی۔ اور لوگوں نے گلی کی دوسری جانب لال حوٹل کی طرف بھاگنا شروع کر دیا پیچھے ایک اور دھماکہ ہوا۔ اب آہنی گیٹ ایک طرف سے اڑ چکا تھا اور ہندو سکھ غنڈے تلواریں اور بھینے لئے اچھلتے کودتے شور مچاتے گلی میں آ گئے تھے۔ لیکن اس وقت گلی میں سولے ادھر ادھر کھیرے ہوئے گھریلو سامان کے سوا اور کچھ نہیں تھا۔ گلی کے سارے مسلمان لال حوٹل اور گوبروں کے دیڑھے میں سے گزر کر ہاتھی گروڈ

کے ساتھ والی دیوار سے ہوتے شریف پور سے دلے مہاجر کیمپ کے قریب پہنچ چکے تھے اور کیمپ میں متعن بلوچ رجمنٹ کے جوان اُن کے عقب میں کور فائرنگ کر رہے تھے شریف پور سے پہنچ کر میں ایک تھڑے پر بیٹھ گیا اور جیب میں سے رضیہ بانو شہید کے تعویذ کو نکال کر دیکھا۔ یہ ایک چھوٹا سا بوڑھا تعویذ تھا۔ میں نے اس کا ہن کھولا تو اندر بلوچی رنگ کا خستہ سا کاغذ نکلا جس پر قلم اور سیاہ روشنائی سے پوری سورہ فاتحہ لکھی ہوئی تھی میں نے اس مقدس امانت کو اپنی آنکھوں کے ساتھ لگایا اور میری آنکھیں بھیگ گئیں۔ میری آنکھوں میں فتح شاہ بخاری کے میدان والے لکڑوں کا وہ جھنڈ پھر گیا جہاں اسلام کی ایک غیور بیٹی دفن تھی اور جس کی کوئی قبر نہ تھی۔ جہاں کبھی کوئی دیا نہیں جلے گا۔ جہاں کبھی کوئی پھول نہیں ڈالے گا۔ لیکن رضیہ بانو کبھی نہیں مر سکتی۔ اس نے اپنی لاکھوں بہنوں، بھائیوں اور بیٹوں کے خون سے اس باجمروت قلعة کی بنیادیں استوار کی ہیں جس کی چوٹی پر پاکستان کا پرچم لہرا رہا ہے۔ زندہ باد! رضیہ بانو!

امرتسر کے دانشور

امرتسر میں جو مسلمان آباد تھے۔ یہ شہر ان کی وجہ سے علم و دانش کا گہوارہ تھا۔ چنگیزی، شعر بازی، کرکٹ میچ، ڈنگل، مشاعرے، اولیٰ مذاکرے اور علمی مناظرے، سیاسی ہنگامے اور دینی گرم جوشی یہ ساری گھاگہبی اور رستاخیزی ان امرتسری مسلمانوں کے دم قدم سے تھی جو امرتسری تہذیب، امرتسری کچر اور امرتسری ثقافت کے نقیب تھے۔ امرتسری تہذیب پر زیادہ اثر کشمیری کچر کا تھا۔ یہی وجہ ہے کہ پاکستان میں آباد امرتسری گھرانوں میں آج بھی سبز چائے گئے تو امرتسر وہ امرتسر رہا۔ امرتسر شہر کی محفل سے شمع آٹھ گئی اور بزم میں اندھیرا چھا گیا۔ بیس پچیس سال کی مدت میں امرتسر کے ہندو سکھ بڑی مشکل سے ایک پنچل نام کا ہندو لوگ گویا ہی پیدا کر سکے۔ جس کی آواز زنانہ بے سُر کی ہے اور جس کا گاتاشن کر سر پیٹے کو جی چاہتا ہے۔ مسلمانوں کی ہجرت کے بعد امرتسر بیوہ ہو گیا۔ دونوں پاکستان میں آگئی۔ اہم مردہ جسم امرتسر کے کہنی بارغ میں پڑا رہ گیا۔

جب اس شہر کا سہل سلامت تھا تو یہاں بڑے بڑے نابھہ روزگار رہا کرتے تھے۔ جن میں سے کچھ تو پاکستان چلے گئے۔ کچھ وہیں امرتسر کی خاک میں سما گئے۔ اور کچھ ایسے بھی تھے کہ جنہیں امرتسر کی مٹی نصیب نہ ہوئی۔ میں یہاں صرف ان اصحاب کا ذکر کروں گا جن سے میں ملا۔ جن کو میں نے قریب سے دیکھا اور جن کی مجلس میں بیٹھنے کی مجھے سعادت ملی۔ یہ لوگ علم و ادب کے سمندر تھے۔ لیکن دریافت نہیں ہوئے تھے۔ اپنے مہر کے سدھ سے۔ لیکن صبح کو ایک کنوئیں سے طلوع ہوتے تھے اور شام کو دوسرے کنوئیں میں غروب ہو جاتے تھے۔

حکیم فیروز الدین طغرائی بھی امرتسر کے ایک مہر تاباں تھے۔ ان کے بارے میں علامہ اقبال نے ایک محفل میں کہا تھا کہ طغرائی ایک ایسا کنواں ہے جس پر درہٹ نہیں لگ سکا۔ غصوں کہ میں وہ تو مسلم

امرتسر کے اس عظیم شاعر سے شرف ملاقات حاصل کر سکا اور نہ امرتسر میں وہ مکان ہی دیکھ سکا جہاں طغرائی صاحب رہا کرتے تھے۔ مونی تبسم صاحب ان کے شاگردوں میں سے تھے اور مجھے اکثر پاکستان میں ان کی باتیں اور فارسی اشعار سنایا کرتے تھے۔ انہوں نے بڑی محنت سے طغرائی کا فارسی دیوان بھی چھاپا۔ مگر خدا جلنے پھر وہ کہاں غائب ہو گیا۔ اصل میں طغرائی صاحب جس محلے میں رہتے تھے۔ وہ ہمارے محلے سے بہت دور تھا۔ امرتسر کا کافی باؤس اور ٹی باؤس ہمارے محلے میں تھا ایک کامیاب ترک ہوئی تھا اور دوسرا تھا کامریڈ ہوئی۔ مال بازار کے ایک بھلی بازار میں مارکیٹ ماکم سنگر تھی۔ یہ دونوں ہوئی اس تنگ سی گلی میں آئے مٹے مٹے تھے۔ ہوئی کیا تھے بس چائے خانے تھے۔ انگلیٹیویوں پر نیلی پیلی چٹکیں تھیں اور اندر لمبی میز پر اور پرانی کرسیاں اور بنچے۔

کامریڈ ہوئی میں ایک معمر بزرگ اکثر گاکر حکیم طغرائی کے اشعار سنایا کرتے ان کا رنگ کالا تھا۔ بے حد دبے پتے تھے اور گاتے گاتے ان کی آنکھوں سے آنسو گرنے لگتے جنہیں وہ سفید پگڑی کے پتے سے پونچھ لیتے اور پھر چائے کی پیالی پر جبک جاتے اور گرم ہو جاتے۔ ہماری عمر چھوٹی تھی۔ اتنا شور نہیں تھا کہ طغرائی کی شاعرانہ عظمت کا ادراک کر سکتے اور ان کی مجلس کی طرف کچھ چلے جاتے۔ حکیم صاحب کے بارے میں مونی تبسم بہت کچھ کہہ سکتے تھے اور میں نے ایک دوبار انہیں گزارش بھی کی تھی لیکن مونی صاحب بے حد معروف انسان تھے۔ اب میرے خیال میں اگر لاہور میں کوئی شخصیت طغرائی کے بارے میں کچھ کہہ سکتی ہے تو وہ عرشی صاحب ہیں۔ میں ان سے شرف ملاقات حاصل نہیں کر سکا لیکن ثابادہ ان کے تبحر علمی کا مداح ہوں۔ اگر انہوں نے بھی طغرائی صاحب پر کچھ نہ لکھا تو پھر شاید امرتسر کا یہ عظیم شاعر، مہر تاباں حکیم فیروز الدین طغرائی گمانی کے کنوئیں میں اتر کر وقت کے پاتال میں گم ہو جائے۔

حکیم طغرائی کی روایت عرتی اور میل کی روایت تھی لیکن اب میں امرتسر کی ایک ایسی شخصیت کا ذکر کرنے والا ہوں۔ جنہوں نے انشا اللہ خان انشا کی روایت کو آگے بڑھایا۔ ان کا نام غلام احمد تھا اور آغا عشق کشمیری کے نام سے علم و شعر کی دنیا میں جانے جاتے۔ سرج و سپہ رنگ و ہیلو قد، مہر، مہر، جسم ہٹلر ٹائپ کی موچیں، آواز تیز تھی۔ چہرے پر ہر وقت طنز یہ سی مسکراہٹ تھی پیچھے سے کوئی آواز دیتا تو مڑ کر نہیں دیکھتے تھے۔ ساتھ والے سے پوچھتے۔ کون ہے پیچھے؟

چال میں بڑا ضبط تھا۔ چلتے وقت کوئی فالتو حرکت نہیں کرتے تھے۔ کسی وقت لگتا کہ دبے پاؤں چل رہے ہیں۔ زیادہ سلام دعا لینے کے عادی نہیں تھے۔ ہاتھ ملانے سے گریز کرتے تھے۔ کامریڈ ہوٹل کے کونے میں اگر بیٹھ جاتے اور اگر بیٹھے ہوؤں سے بے نیاز باہر سے آنے جانے والوں کو ٹنگلی باندھ کر دیکھا کرتے۔ چہرے پر وہی طنزیہ مسکراہٹ ہوتی جو چہرے کی ایک مستقل حالت بن چکی تھی۔ کوئی بات کرتا تو اس کا جواب باہر نکلتے ہوئے ہی دیتے سوال کرنے والے کی طرف بہت کم دیکھنا گوارہ کرتے۔ آنکھوں میں ایک چمک تھی جو کسی وقت دھندلی ہو جاتی بھنویں اور لگیں گنتیاں تھیں۔ سوال آپ نے کیا ہے تو وہ جواب میری طرف دیکھ کر دیتے تھے، جون کی مدد پر میں وہ کہنی باغ کی بجائے سرودوں کے باغ کی سیر کرنے نکل جاتے اور امرود کی ٹہنی ہاتھ میں تھام لیتا ہوا کتے پڑے بڑے صاف ستھرے پہنتے۔

بہت کم بات کرتے تھے لیکن اگر کسی نے کہہ دیا کہ غالب بڑا شاعر ہے تو جب تک اسے جو بات نہ کر لیتے۔ دم نہیں لیتے تھے۔ غالب ہی کے اشعار کی ایسی ایسی تشریح کرتے کہ محفل میں بیٹھا ہر شخص سوچ میں پڑ جاتا کہ غالب نے یہ کیا کہہ دیا!

اس کے ساتھ ہی عروض، غزلیہ، مثنوی، ہندسہ نجوم، ہنیت، طب، فلسفہ، شعرا و معقولات و منقولات کا سمندر بہنے لگا۔ علم و حکمت کے سچے سچے پیچھے لگتے پر غلش کا شیریں گھنٹوں بولتے چلتے جاتے۔ لمبی سے لمبی اور مشکل سے مشکل بحر کی تقطیع آغا غلش کا شیریں ایک سیکنڈ میں کر دیتے ساتھ ہی علم عروض پر خیالات کا دھارا بہہ نکلتا۔ بات عروض سے چلی کر علم موسیقی کے بحر و غار میں پہنچ جاتی۔ پھر فلسفہ، اخلاق اور طب اکبر موضوع بحث بن جاتے۔ غلش صاحب بے حد اوق اور فطرتی اور دویں بولتے بارے ہیں۔ کیا مجال ہے کہ چہرے پر ٹنگلی کے پھر نمایاں ہوں یا آواز میں کمزوری پیدا ہو جائے۔ خیال سے خیال نکل رہا ہے دلیل سے دلیل روشنی ہو رہی ہے۔ ایک موضوع دوسرے موضوع میں جذب ہوتا جا رہا ہے۔ غلش صاحب کا چہرہ سرخ ہو رہا ہے۔ بالکل گنتار۔ آنکھوں میں جذب کی کیفیت آگئی ہے۔ آغا غلش کا شیریں کے سامنے ہے اور علم کی روشنی چاروں طرف پھیل رہی ہے۔ آج یہ روشنی ہمارے درمیان نہیں ہے مگر شمع فروز جل رہی ہے اور اس کی روشنی ہماری زمین سے آگے نکل گئی ہے۔ علم کی شمع کہیں نہیں بجتی۔ علم کا سفر سات آسمانوں میں بھی جاری رہتا ہے۔

صوفی ترک ہوٹل میں باران ادب کی محفل بھی تھی۔ چائے کا دور چل رہا تھا۔ کریون اسے اور ہالنگ ٹو کے مگرٹوں کی ڈبیاں کھلی تھیں۔ قالی میں بنارس پان سبے ہوئے تھے۔ آغا غلش کا شیریں حسب عادت خاموش بیٹھے اہل مجلس سے بے نیاز ہوٹل میں آنے جانے والوں کو ٹنگلی باندھ کر دیکھا کرتے تھے۔ چہرے پر وہی طنزیہ مسکراہٹ ہوتی جو چہرے کی ایک مستقل حالت بن چکی تھی۔ کوئی بات کرتا تو اس کا جواب باہر نکلتے ہوئے ہی دیتے سوال کرنے والے کی طرف بہت کم دیکھنا گوارہ کرتے۔ آنکھوں میں ایک چمک تھی جو کسی وقت دھندلی ہو جاتی بھنویں اور لگیں گنتیاں تھیں۔ سوال آپ نے کیا ہے تو وہ جواب میری طرف دیکھ کر دیتے تھے، جون کی مدد پر میں وہ کہنی باغ کی بجائے سرودوں کے باغ کی سیر کرنے نکل جاتے اور امرود کی ٹہنی ہاتھ میں تھام لیتا ہوا کتے پڑے بڑے صاف ستھرے پہنتے۔

تھوڑے دیر میں چائے کا دور چل رہا تھا۔ کریون اسے اور ہالنگ ٹو کے مگرٹوں کی ڈبیاں کھلی تھیں۔ قالی میں بنارس پان سبے ہوئے تھے۔ آغا غلش کا شیریں حسب عادت خاموش بیٹھے اہل مجلس سے بے نیاز ہوٹل میں آنے جانے والوں کو ٹنگلی باندھ کر دیکھا کرتے تھے۔ چہرے پر وہی طنزیہ مسکراہٹ ہوتی جو چہرے کی ایک مستقل حالت بن چکی تھی۔ کوئی بات کرتا تو اس کا جواب باہر نکلتے ہوئے ہی دیتے سوال کرنے والے کی طرف بہت کم دیکھنا گوارہ کرتے۔ آنکھوں میں ایک چمک تھی جو کسی وقت دھندلی ہو جاتی بھنویں اور لگیں گنتیاں تھیں۔ سوال آپ نے کیا ہے تو وہ جواب میری طرف دیکھ کر دیتے تھے، جون کی مدد پر میں وہ کہنی باغ کی بجائے سرودوں کے باغ کی سیر کرنے نکل جاتے اور امرود کی ٹہنی ہاتھ میں تھام لیتا ہوا کتے پڑے بڑے صاف ستھرے پہنتے۔

یہ شعر آغا صاحب نے اس وقت برجستہ کہے تھے اور تخلص امرتسر کے ایک مشہور و معروف پنجابی شاعر نادم عیسیٰ کا دے دیا تھا یعنی ظاہر یہ کیا کہ یہ اشعار چاچا عیسیٰ نے دھوپنی برادری کے خلاف کہیں تھے تو ظہور شاعر نے غلش صاحب سے پوچھا۔

دوستلہ جی! ہم نے چاچا عیسیٰ کو کب اپنی شادی میں بلایا تھا۔؟
غلش صاحب ہنسے۔ بلایا ہوا تو اس نے شعر کہے۔

تھوڑی دیر میں چاچا عیسیٰ بھی تشریف لے آئے۔ پس پھر کیا تھا۔ دونوں شاعروں کی وہ آپس میں جنگ ہوئی بحر بڑی مشکل سے سبز بکاؤ کرایا گیا۔ اس دوران آغا صاحب کے چہرے پر دھندلی سی طنزیہ ہنسی رہی۔ ایک بار بھی کھل کھلا کر نہیں ہنسے۔

آغا غلش کا شیریں کو برجستہ اور فی البدیہ شعر کہنے میں کمال حاصل تھا میں مطلع کہنے کی دیر نہ تھی اس کے بعد شعر پر شعر ہو رہا ہے۔ قافیے پر قافیہ خفا چلا کر رہا ہے۔ قافیے ختم ہو جاتے تو خود بخود شروع کر دیتے شعر کی زمین ختم ہو جاتی تو پانی میں اتر جاتے اور وہاں سے بھی شعر نکال لاتے۔ پچاس پچاس، سو سو شعر ایک نشست میں کہہ جاتے۔ مشکل گوئی پر اتر آتے تو ایسی ایسی دقیق ترکیبیں اور طرز کے مشکل لفظ استعمال

کرتے کہ سامعین منہ دیکھتے رہ جاتے۔ جو، بزل اور استہزائیہ لہجے میں کہتے کہ طالب دوڑ لگاتے۔ بچہ بچہ میں
 ہندی اور سنسکرت کے ایسے ایسے لفظ آتے کہ معلوم ہوتا آسمان سے چتر گر رہے ہیں۔ کبھی کبھی کشمیری اور ہندو
 زبانوں کے لفظ بھی استعمال کر جاتے۔ ان کی جو کسک سید انشا اور معنی کے معرکے یاد آ جاتے تھے۔
 آغا غلش کا کشمیری امر ترس کے تھے لیکن ہماری محوش میں ان کا قیام زیادہ تر بمبئی سے اکثر امر ترس آتے
 اور مہینہ مہینہ بھر یہاں رہتے اور موٹی ترک اور کاسریڈ ہونٹوں میں صبح سے رات گئے تک علم و ادب کی غفل
 گرم رہا کرتی۔ اپنے ہمسائے میں وہ کسی نہ کسی علمی ادبی شخصیت سے چیر چھاڑ جاری رکھتے تھے۔ ایک بار
 سیاب اکبر آبادی سے ایسا زبردست معرکہ ہوا کہ رات شر و شاعری سے نکل کر چتر اور دھات کے زمانے تک
 جا پہنچی۔ ضبط قریشی مقیم راولپنڈی آغا صاحب کے ہونہار اور قابل قدر شاگردوں میں سے ہیں۔ ایک بار میں
 ان کے ساتھ آغا صاحب کے گھر گیا تو دیکھا کہ وہ بینک میں صوفے پر بیٹھے برف کے ساتھ کچھ کھا رہے ہیں
 برف تو زبردستی ہائے میں رکھی تھی اور بائیں ہاتھ میں دو کپے تھے۔ ہمارے استفسار پر آغا صاحب نے صوفے
 کی ساخت، برودت صوفے کے اخراج، اور اس کے مزاج پر ایک زوردار کھیر دیا۔ ایک بار کیلا چھلکے میت
 کھا گئے۔ کہنے لگے۔

”میرا مزاج دھوی ہے جو طبی اقبالی سے تمام مزاجوں کا بادشاہ ہے۔“

آغا غلش کا کشمیری خود بھی امر ترس کے بے تاج بادشاہ تھے۔ ایک بار میں نے ان کے سر پر تاج بھی
 دیکھا۔ یہ تاج روایتی بادشاہوں کا تاج نہیں تھا بلکہ بارہ سنگے کا سر تھا۔ الیگزینڈر پارک میں ایم اے او
 کلب اور ہندو جم خانہ کے درمیان بڑے معرکے کے کرکٹ میچ ہوا کرتے تھے غلش صاحب نے اپنے
 محلے حسین پورے میں نوجوانوں کا ایک گروہ بنا رکھا تھا جس کا نام ہرجتہ تھا۔ ایک بار الیگزینڈر پارک
 میں ایم اے او کلب اور ہندو جم خانہ کے درمیان کرکٹ میچ ہوا۔ حیدر نے ساٹھ رنز بنائیں تو انرول میں آغا
 غلش کا کشمیری کا ہرجتہ نمودار ہوا۔ آغا صاحب نے بارہ سنگے کا سر اپنے سر پر رکھا ہوا تھا، نوجوانوں کا گروہ
 پیچھے پیچھے تھا اور انہوں نے ساری گراؤنڈ کا چکر لگایا۔ وہ گارہے تھے۔

حیدر نے جو ہٹ لگائی

گیند جا پیا رہیڑے

میچ جتن گے کیڑے ؟

ہرجتے والیو دستو

اور پھر سب اونچی آواز میں کہتے۔ ایم اے او، ایم اے او، شب بھات کے موقع پر یہ ہرجتہ
 اصلاح معاشرہ کا جلوس بھی نکال کر نکالتا تھا۔ جلوس کے نوجوان آغا صاحب کی قیادت میں ٹیچہ کورس کے صوفے
 انگ میں یہ شعر گاتے گیت کا چکر لگاتے۔

آغا شابی نہ تو جالا

دھلا تا پانی تا تو گودا

د آتش باشی نہ تو چلا۔ دولت اپنی نہ تو گنوا

حسین پورے میں پہلا ریڈیو آغا غلش کا کشمیری کے گھر آیا تھا۔ ۱۹۴۹ء میں دوسری جنگ عظیم لگی تو
 محلے کے لوگ ان کی بینک کے اندر اور باہر بیٹھ کر برین ریڈیو سنا کرتے تھے۔ جنگ کے دنوں میں ہمارے
 آغا صاحب بمبئی چلے گئے اور ہفتہ وار مصور کی دولت سنبھال لی جسے مرتے دم تک نبھایا۔ پاکستان
 بن گیا۔ ایک بار نسبت دوڑ پر ملاقات ہوئی تھی۔ ان کے شاگرد رشید ضبط قریشی میرے ساتھ تھے۔ غلش
 صاحب کے بالوں میں سفیدی پکڑنے لگی تھی۔ اس کے بعد پھر ان سے ملنا نہ ہوا۔ لوگوں کی زبانی سنا کہ بمبئی میں
 کسی عورت کو دل دے بیٹھے۔ شادی کا دن بھی مقرر ہو گیا۔ آغا صاحب نے دلہن کے لئے عروسی جوڑا
 بھی تیار کر دیا لیکن خدا جانے پھر کیا ہوا کہ لڑکی نے شادی سے انکار کر دیا۔ آغا صاحب نے غصے میں
 اگر دلہن کا عروسی جوڑا زیب تن کیا۔ سونے کے سارے زیور پہنے اور بمبئی کے بازاروں کا چکر لگا کر شروع
 کر دیا غالباً ۱۹۵۱ء کے آخر یا ۱۹۵۲ء کے شروع میں کسی اخبار میں چھوٹی سی خبر چھپی کہ بمبئی کے ایک خیراتی ہسپتال
 میں آغا غلش کا کشمیری کا انتقال ہو گیا۔ جنازے میں فلم انڈسٹری کے دس بارہ افراد نے شرکت کی اور انہیں غلش
 سے قبرستان میں دفن کر دیا گیا۔ سید انشا، اشد خان، انشا کی روایت نے ایک بار پھر اپنے آپ کو دہرایا۔
 عینی مادم لکھانی گنہری زندہ ہوتے تو مزدور مرثیہ کہتے لیکن وہ تو اس سے بھی بہت امر ترس میں کسی کیٹی
 بناتے ہوئے ہندوؤں کے محلے میں شہید ہو گئے تھے ان پر کسی نے مرثیہ نہ کہا۔

کیا بارغ و بہار شخصیت تھی چاچا عینے کی بھی پنجابی لہجہ دونوں زبانوں میں شعر کہتے تھے ان کی نعتیں
 تو آج بھی نعت فونوں کو از بریں موٹی ترک کے ہونٹوں میں سبز کادہ سر پر رکھے کرسی پر پاؤں رکھے اکڑاؤں
 بیٹھے پانی چہاتے ہوئے فکر سخی کیا کرتے۔ عید میلاد کے جلوس میں ہر چوک میں کرسی پر کھڑے ہو جاتے تو
 اپنی ہنر و کبھی ہونٹوں نعت تحت لفظ سناتے۔ امر ترس میں تحریک پاکستان نے زور دیا تو ہندو مسلم فساد شروع

ہم گئے چچا عیسیٰ نے ایک امن کمیٹی بنائی جس میں ہندو بھی شریک تھے چچا اس کمیٹی کے صدر تھے ایک روز تلووں والے باغ یا شایا تہبے والا کھوہ کی طرف امن کمیٹی کے اجلاس میں شرکت کے لئے گئے اور پھر واپس نہ آ سکے۔ بعد میں ایک شخص نے ان کی لاش ہندوؤں کے محلے میں ایک دکان کے پٹے کے نیچے سڑک پر پڑی ہوئی دیکھی تو آکر بتایا کہ چچا عیسیٰ شہید ہو گئے ہیں۔

ابو غلام محمد بٹ، صوفی ہوٹل اور کامریڈ ہوٹل کی محفلوں کی جان تھے، درمیانہ قدر، سہاری بدن، سر کے بال سیدھے پیچھے کو جاتے ہوئے، اگھٹا ہوا گندمی رنگ پر جوش انداز میں بات کرتے اور دل کھول کر قہقہہ لگاتے، کوئی نہ کوئی منطق، فلسفہ، تنقید کی ادبی کتاب ہمیشہ بغل میں ہوتی، شعر و ادب، فلسفہ، تنقید، منطق و جہن تواری کے علوم پر گفتگوں بہت کرتے اور کہیں نہ سکتے۔ دل انداز کی بغلی گلی میں ان کا قالینوں کا ایک چھوٹا سا بازار تھا چار پانچ کھڑیاں لگی تھیں۔ خود بہترین نقاش تھے اور ایسے ایسے حیدر قمر تیار کرتے کہ بڑے بڑے کراچی دنگ رہ جاتے۔ ایک بار روسی ترکستان سے ایک قالین کا ٹکڑا آیا۔ جس پر روسی ادیب گورکی کی تصویر بنی تھی ابو غلام محمد نے اس تصویر کو غور سے دیکھا اور کہنے لگے۔

میں قائد اعظم کی تصویر والا قالین بناؤں گا اور روسیوں کو بھیجوں گا، قمر بنانا یہ ہم سے سیکیں۔

اور پھر انہوں نے روسی قالین کے قمر کی کچھ ایسی دقیق قسم کی غلطیاں نکالیں کہ جنہیں ہم تو نہ سمجھ سکے لیکن ان کا منشی سن سن کر سر ہلا رہا تھا۔ بٹ صاحب نے اس روز قمر پر کام شروع کر دیا اور دو مہینوں میں قالین کا ٹکڑا تیار کر لیا جس پر قائد اعظم کی تصویر بنی ہوئی تھی پھر یہ قالین روسی ترکستان بھجوا دیا وہاں سے تعویضی خط آیا تو ابو غلام محمد حبيب میں ڈل کر ترک ہوٹل آگئے وہاں دوستوں کی محفل گلی تھی بٹ صاحب نے خط نکال کر میز پر پھینکتے ہوئے کہا۔

قائد اعظم نے اپنا لوازمیوں سے لگایا۔ اسے پڑھو۔

سگریٹ بٹ صاحب ہمیشہ منشی میں دبا کر پیتے تھے۔ چائے کے رسیا تھے اور مطالعہ کرتے وقت چائے اور سگریٹ ساتھ ساتھ پیتے جاتے تھے شروع شروع میں بیگل کے بدلے باتا قلعے سے بہت متاثر تھے۔ ہدایات کا لفظ ان میں کئی بار استعمال کرتے تھے ان کے کارخانے کے کشمیری کاریگروں کو مہینے کی سات تاریخ کو تنخواہ ملتی تھی اس روز سات سے کاریگروں کو مہینے کی سات تاریخ کو تنخواہ

ملتی تھی اس روز سات سے کاریگر جوا کھینے بیٹھ جاتے۔ جیتے والے سینا دیکھنے چلے جاتے اور ہر جا جاتے وہ منہ فلکائے بٹ صاحب کے پاس بیٹھا تھا کہ ایک بار سے ہوئے کاریگر نے اگر ان سے ایڈوانس مانگنے آجاتے ایک بار میں بٹ صاحب کے پاس ایڈوانس مانگا تو ابو غلام نے ہندو منشی میں سے سگریٹ کا زور دار کش کھینچ کر لیا۔

تم لوگوں کا جدیاتی نظام بر باد ہو گیا ہے۔

سگریٹ کی راگ ہمیشہ چٹکی مار کر گرتے، ایسا کرتے ہوئے سگریٹ والی ہندو منشی کو نعت دے دیتے تھے گھاتے دوستوں میں دل کھول کر خرچ کرتے، چائے کی جس محفل میں ابو غلام محمد بٹ بیٹھے ہوتے وہاں چائے، پان اور سگریٹوں کا سلسلہ کہیں نہ ٹوٹتا، ان کے تبحر علمی کا تمام احباب کو بڑا احترام تھا۔ ہندو باقی بھی بہت تھے۔ بحث کے دوران کہیں کہیں غصے میں بھی آجاتے اور چہرہ سرخ ہو جاتا قیام پاکستان کے بعد کراچی چلے گئے، طبیعت میں خوداری تھی لاکھوں کا کاروبار چھوڑ کر آئے تھے لیکن یہاں کسی کا زیر باد ہونا گوارا نہ کیا۔ بھلا پولیس میں کچھ دیر کام کیا۔ پھر کراچی سے ایک ادبی ماہنامہ "ادب" کے نام سے نکالا۔ مجھے خط لکھ کر ایک مزاحیہ مضمون "قبر سے ایک خط" منگوا یا۔ یہ پرچہ بھی نہ مل سکا، جب کہیں لاہور آتے تو ان سے کہیں ملاقات ہو جاتی، پھر ایک روز سنا کہ ابو غلام محمد بٹ کراچی میں انتقال ہو گیا، یقین نہ آیا کہ وہ زندگی اور علم و حکمت سے بھرپور شخصیت کراچی کے قبرستان میں دفن ہو گئی ہے۔ جو شمعیں امرتسر کے دبستان میں روشن ہوئی تھیں وہ ایک ایک کر کے پاکستان میں اگر بجھتی چلی جا رہی ہیں، وہ گلاب جنہیں امرتسر کی ٹھنڈی کوئی کے پانی نے تروتازگی اور شادابی بخشی تھی یہاں اگر مرجھاتے چلے گئے آج وہ پھول نظر نہیں آتے، کہیں کہیں تنہائی شب کے دیران جھونکوں کے ساتھ ان کی خوشبو آتی ہے۔ یادوں کی اندھیری رات میں ایک جگنو سا چمک کر بچہ جاتا ہے، کہیں کہیں جی چاہتا ہے کہ پھولوں سے بھرا ہوا گلدان میز پر رکھ کر بیالیوں میں گولڈن چائے ڈالوں اور پھر کچڑے ہوئے امرتسر کے ان تمام دانشوروں کو اپنے سامنے بٹھا کر چائے کی پیالی پیش کروں اور سگریٹ سلا کر کہوں۔

اسے پیارے لوگو! تم قدر کیوں ہو؟

امرتسر کا ماسٹر نثار

اس وقت جب میں ایک - سترنگ کپ آف ٹی، پی کر ماسٹر نثار پر کھتے بیٹھا ہوں تو میری گھڑی صبح کے ساٹھے پانچ بج رہی ہے اور میرے کمرے کی کھل کھڑکی میں سے باہر سکول کی گرافنڈ کے شبنم آلود سبزے کی نمک، آنگن میں کھلے موتیے کی خوشبو کو ساتھ لے کر اندر آرہی ہے۔ مجھے اچھی طرح یاد ہے۔ امرتسر میں اس وقت میں اور ماسٹر نثار تکیہ شیخ چلی کے اکھاڑے میں صراحی مارا مردوں کے درختوں تلے لگوتیاں باندھ کر بیٹھے بدن پر تیل کی مالش کر رہے ہوتے تھے اور کہنی باغ کو جاتی نہر کی جانب سے کھٹے کے پھولوں کی خوشبو آرہی ہوتی۔ ماسٹر نثار اور میں ہم عمر تھے، یہی کوئی چودہ پندرہ برس کی عمر میں ہوں گی، مگر وہ بڑا کمزور تھا۔ رنگ گہرا سا نولا تھا۔ تکی گردن پر کدو ایسا سر جھولتا رہتا اور زرد آنکھیں لوکاٹ کی نہنی سریشی شیا ماچڑیا کو دیکھ کر بے قرا۔ ہوا نہیں۔ ہمیں صبح صبح پہلوانوں کے ساتھ اکھاڑے میں کسرت کرنے کا بہت شوق تھا۔ ہم بھی پہلوانوں کی طرح بدن پر خوب مالش کرتے اکھاڑے کے کنارے گڑے ہوئے تیل میں چہرے بالاس کو تمام کر بیٹھیں لگایا کرتے جلد ہی تھک جاتے اور پھر اکھاڑے کی ٹھنڈی ٹھنڈی مرطب مٹی پر چٹ لیٹ کر لمبے لمبے سانس لینے لگتے۔ پھر ہم اکھاڑے میں اتر کر نانی گرائی پہلوانوں کی طرح پنچے میں پنچہ ڈال کر کھڑے ہو جاتے اور پھر یوں وادں پیچ سے کام لیتے گویا رستم زماں کے شاگرد ہوں۔ اپنے ہاڑی پننے کی دھبے سے ہم کشتی لڑتے لڑتے ہر بار بڑے پہلوانوں کی زد میں آ جاتے جو ہماری پیٹھ پر لات مار کر ہمیں پرے ہٹا دیتے۔ اکھاڑے سے باہر نکل کر ماسٹر نثار دھاگا اپنی رانوں کے گرد لپیٹ کر یہ دیکھا کرتا کہ وہ کل کے مقابلے میں آج کتنی بڑھ گئی ہیں۔ واپس کر ہم جتے گوجر کی دکان سے پیروں کی لسی پیتے ان کی طرح چھاتے۔

وہ پہلوانی جیور چکا تھا مگر اس کا جسم اب بھی بڑا سڈول تھا۔ جتنے میں ایک بار گانے کے دودھ سے ضرور نہاتا۔ مگر وہ بڑا ڈرپوک تھا۔ اندھیرے میں اس کے پاؤں نہ اٹھتے تھے اور روشنی میں چھپکلی کو دیکھ کر وہ دکان کی گدی پر اچھل پڑتا تھا۔ سارا دن وہ دکان پر دودھ دہی بیٹھا، گوجروں سے حساب کتاب کرتا اور شام کو تحصیل پورے سے واسے ٹھیکے پر جا کر بیٹ بھر کر مٹھ مالٹا شرب پیتا۔ ساتھ ایک کوٹڑا دہی کا کھا جاتا اور پھر سنی سرور کے ٹیکے پر جا کر گھر پر رات گئے تک ماہیا کا تارہتا۔ بتے گوجر کے کان ٹائروں کی طرح پھوٹے ہوئے تھے۔ ایک روز ہمیں لسی کا پیالہ تمنا کر بننے گوجر نے کہا۔ "اوسے امنڈیو اتسی کہاں سے پہلوان ہو؟ اوسے تمہارے ابھی کان بھی نہیں ٹوٹے۔"

مجھے یاد ہے اسی روز ہم تکیہ سنی سرور گئے تھے اور ماسٹر نثار نے ایک اینٹ نیچے رکھ کر دوسری اینٹ سے میرا کان توڑنے کی کوشش کی تھی۔ میں دور سے چیخ اٹھا تھا۔ خدا کا شکر ہے کہ میرے کان نہ ٹوٹ سکے۔

چیت بیسا کھ کے دنوں میں ہم بانس کی تیلیوں کے بنجرے لے کر کھیٹوں باغوں میں مرغیں پکڑنے جایا کرتے تھے۔ مادہ سرخ بنجرے میں بند ہوتی۔ پھرے کا دوسرا دوازہ کھول کر تھی کھینچ دیتے۔ پھرے کا دوازہ کھٹ سے بند ہو جاتا اور ہم خوشی خوشی گھر لوٹتے۔

ماسٹر نثار کا اصل نام کچھ اور تھا۔ یہ نام اُس نے میڈن تھیٹرز کے مشہور ہجو و ماسٹر نثار کے نام پر رکھ لیا تھا کیونکہ اُسے بھی اصل ماسٹر نثار کی طرح گانے اور اداکاری کا بڑا شوق تھا۔ انہی دنوں امرت ٹاگیز میں اصل ماسٹر نثار اور مس کچن بالی کی فلم "لیٹے محنوں" لگی تو ہم دونوں دیکھنے گئے سکرین پر جب ماسٹر نثار نے محنوں کے روپ میں قبرستان میں جا کر قبروں کو سونگنا شروع کیا تو ماسٹر نثار نے میرا ہاتھ دبا کر کہا۔ "دیکھتے جانا۔ اے اے۔ اے۔ اے۔"

تھوڑی ہی دیر میں سکرین پر محنوں نے ایک قبر کو جو جھک کر سونگھا تو خوش ہو کر بول۔ "اسی قبر میں سے میری بیٹی کی خوشبو آرہی ہے ضرور یہی میری بیٹی کی قبر ہے۔"

اس کے بعد اُس نے ایک ہاتھ ہوا میں پھیلایا، تختوں کو پھلایا اور گانا شروع کر دیا۔

اں اں۔ راحت کا اس طرح سے زمانہ گزر گیا

جھونکا ہوا کا جیسے دھڑکتا آدھریا

میرے ساتھ دو آنے والی تھوڑا کس میں بیچ پر بیٹھا ہوا ماسٹر نثار جو منہ لگا باہر نکل کر گئی
نے کہا "میں ذرا اپنے گانے کو پکا کروں پھر ہم دونوں بکلتے جا کر میڈن تھیٹر ڈانوں کی فلم کہنی میں
کام شروع کر دیں گے۔"

ماسٹر نثار کو "لیل مجنوں" "عاجہ ہرچندر" "جلتی نشانی" "سبب سنت" "دھوپ چھاؤں"۔۔
"ناتھ شرم" "حاکم طائی" اور نقش سیما کی فلموں کے کئی گیت زبانی مع طرزوں کے یاد تھے اس
نے یہ سارے کے سارے گیت ایک کاپی میں نقل کر رکھے تھے جس کے باہر موٹے قلم سے لکھا
تھا "ماسٹر نثار کی معرفت شمول"۔

ماسٹر نثار ڈھولک بہت اچھی بجاتا تھا۔ یہ فن اس نے کلیر شریف کے عرس پر ایک
استاد سے سیکھا تھا۔ جو ایک بیچرے کے پیچھے ڈھولک بجا یا کرتا تھا۔ ڈھولک وہ اس انماک
سے بجاتا کہ اس کی زرد آنکھیں بند ہوتیں۔ پل گردن پر تر بڑیا سر جھول رہا ہوتا اور دبلا بدن یوں
دائیں بائیں پیچ و خم کھا رہا ہوتا گویا کوئی اسے گدگدی کر رہا ہو، ساتھ ہی وہ گاتا بھی۔ اس کی آواز بہت
بڑی تھی، اسے راگ داری سے بھی کوئی واقفیت نہ تھی مگر وہ درد میں ڈوب کر گاتا تھا۔ جب
وہ ناک سے سانس لیتا تو ایک سیٹی سی بج اٹھتی۔ ذرا کی ذرا اپنی آنکھیں کھول کر ماسٹر نثار چیت
کی طرف دیکھتا اور آنکھیں بند کر کے گردن ایک طرف ڈھکا کر صرغ اٹھاتا۔

راحت کا اس طرح سے زمانہ گزر گیا

وہ گانے میں غفلتوں کو بگاڑ دیا کرتا تھا۔ مثلاً مجھے اچھی طرح یاد ہے، بلکہ اس وقت بھی جب
میں اس کے بارے میں لکھ رہا ہوں تو میرے کانوں میں اس کے گانوں کی آواز گونج رہی ہے
وہ راحت کا اس طرح سے زمانہ گزر گیا۔ میں "زمانہ کو ہمیشہ" نہائی نا، کہا کرتا تھا۔

راحت کا اس طرح سے زمانہ گزر گیا

اس کے علاوہ اس کی عادت تھی کہ وہ گاتے ہوئے ہر شعر یا گیت کے آخری لفظ کے ساتھ
"ہوم" ضرور لگا دیا کرتا تھا۔ اسے شاہو مودک کی فلم "آوارہ گرد راج کمار" کا یہ گانا بہت پسند
تھا۔

بے کس بوں مجبور ہوں میں جان سے لاچار ہوں

بائیں کو وہ یوں کیا کرتا تھا۔

بے کس بوں مجبور ہوں میں ہوم جان سے لاچار ہوں ہوم
کبھی کبھی وہ گانے کے شروع میں بھی ہوم لگا دیا کرتا تھا۔

ہوم آٹھ حاتم کیوں سویا تادلان ہوم اٹھ بندے رب کو پہنچان ہوم
کبھی کبھی جب وہ ماسٹر نثار ایسا الیکٹرک بن سکتے کی وجہ سے بڑا اداس ہوتا تو وہ پاسنگ شو
مگر سیٹ کا لمبا کش لے کر اور ناک سے سیٹی بجا کر مدعو ان نکالتا اور ڈھولک گھٹنوں میں دبا کر اسے کہتے
ہوئے کہتا: "میدے باؤ! کبھی اپنے بھی دن ضرور پھرے گے۔"

پھر آہستہ آہستہ ڈھولک بجانے اور گانے میں مگن رہتا۔ وہ دنیا کے جھنجھٹوں سے بے فکر ہو کر
گرا ہوتا کہ باہر سے اس کے والد امام دین حجام کی آواز آتی: "اوسے تان سین دیا پترا۔ بس کر مٹی
ستے نہیں جاتان؟"

ماسٹر نثار فوراً ڈھولک سے ہاتھ کھینچ لیتا اور آنکھیں کھول کر بلند آواز میں جواب دیتا: "ایا
میاں جی؟"

وہ اپنے باپ کا بڑا ادب کرتا تھا جس طرح اس زمانے میں سب بچے اپنے ماں باپ
کا ادب کیا کرتے تھے۔ حالانکہ اس زمانے کے باپ اپنے بچوں سے آج کل کے باپوں کی طرح
لڑ پھار نہیں کیا کرتے تھے الٹا مارا پیٹا کرتے تھے۔ ماسٹر نثار کا والد حجام تھا۔ بھرا بھرا گول چہرہ۔
سفید ڈارمی سر کے سفید بال۔ جن پر وہ ہندی لگا کر پیل گھے پتے باندھا کرتا تھا۔ زیادہ جھنگ پٹنے
کی وجہ سے اس کے چہرے کی رنگت سبزی مائل پھلکی پڑ گئی تھی۔ میری حجامت بناتے وقت وہ
بوریت پر بیٹھا میرا سر اپنے گھٹنوں میں دبا لیتا اور مشین سے خشناشی کرنے کے بعد سر پر جب آم
کی گٹھلی پھرتا تو مجھے بوریت پر تار بے چمکتے نظر آتے۔ ماسٹر نثار نے والد کا پیشہ اختیار کرنے
کی بجائے ترکھانہ کام کو ترجیح دی تھی۔ چنانچہ وہ حاجی اشد تترکھان کی دکان پر کام سیکھتا تھا
یہ حاجی اشد تترکھان بھی ایک طرف بزرگ تھا۔ وہ خربوزے کی سہانک بکوں اور چھکے سمیت
کھایا کرتا تھا۔ اس کے خیال میں خربوزے کی اصل اور سفید شے تو اس کے بیج درجہ کا تھوہ ہے
یہ گو دا تو لذت شے نہیں ساتھ لگا دکھا ہے۔

کبھی کبھی میں حاجی صاحب کی دکان پر ماسٹر شار کو ملنے جایا کرتا۔ دکان میں کئی مہوئی لکڑیوں کی گیل گیل خوشبو پھیلی ہوتی اور ماسٹر شار ایک طرف بوریٹے پر تیشہ بیٹے بیٹھا لکڑیوں کے تختے چیل رہا ہوتا۔ بازار میں سے گزرتے حنڈ کی لکڑیوں سے لدے ہوئے گڈے گزرتے تو میں ہلکو بچا کر ایک ڈنڈا کھینچ لیتا۔ ماسٹر شار اس کا بڑا خوبصورت گلی ڈنڈا گھڑ دیتا اور ہم گرمیوں کی شکر دوپہروں میں انجمن پارک یا لیگز نڈ گراؤنڈ میں جا کر گلی ڈنڈا کھیل کرتے۔

جمعے کے روز ہم ڈھلے ہوئے کپڑے پہن کر مسجد فیہ الدین ہال بازار میں جا کر جمعہ پڑھا کرتے تھے۔ میرا لباس عام طور پر سفید ٹاسے کی قمیض، کلکتے کی چارغانہ دار دھوتی اور سلپیر پر مشتمل ہوتا لیکن ماسٹر شار کی سچ دھج نکالی ہوتی تھی۔ وہ چاند خان پنواڑی کے آئینے کے سامنے کھڑے ہو کر دیر تک لنگھی سے تیل میں چپکے بال سنوڑتا اور لٹھے کی کھڑکھڑ کرتی شوار کے بل درست کرتا رہتا اور پھر یوں سنبھل سنبھل کر میرے ساتھ چلتا، گویا تنہا ہونی رسی پر چل رہا ہو۔ مسجد میں جا کر ہم حوض کے کنارے بیٹھ کر وضو کم کرتے اور حوض میں تیرتی سرخ مچھلیاں کو زیادہ دیکھا کرتے۔ انگریزی کا ایک لفظ وہ بہت بولا کرتا تھا۔ یہ لفظ تھا۔

ماسٹر شار اردو میں اس کو "نیورین" بولا کرتا تھا ایک بار بے گوجر کی دکان میں ماسٹر شار میرے ساتھ بیٹھا بے گوجر کو ہیر سٹار دھاکا لگی میں سے غلی مرگی کا گزر ہوا۔ وہ دکان کے سامنے رک گیا۔ کچھ دیر گردن جھکا کر ہیر سٹار دھاکا بولا۔ پتر راگ داری کا علیہ خراب نہ کرو۔ تم راگ داری کے لئے پیدا نہیں ہوئے۔ پس لوگوں کے سر موٹا کر دو۔

جلی مرٹی اتنا کہہ کر چل دیا۔ بے گوجر کو اور مجھے اس کی یہ بات بڑی بُری لگی۔ بسا گوجر کھونچے اٹھا کر خلی مرٹی کے پیچھے بھاگنے لگا تو ماسٹر شار نے اس کا بازو تھام کر کہا۔ پہلوان! نیورین۔ ماسٹر شار کو قہقہہ میں پارٹ کرنے کا بھی بے حد شوق تھا۔ اپنے اس شوق کو پورا کرنے کے لئے اس نے ایک صندوق میں نقلی مونچھیں، نقلی ڈاڑھی سرفی پاؤڈر، گتے کا شاہی تاج جس پر تارے لگے تھے اور مود کا پنکھ جڑا تھا۔ نقلی موتیوں کے ارد وغیرہ جمع کر رکھے تھے۔ ہم دونوں کبھی کبھی اپنے مکان کی ڈیوڑھی میں بچوں کو جھک کر کے ہیر رانجھے اور سوہنی مہینڈال کا ٹانگ کھینچا کرتے تھے۔ لنگے اور دوپٹے ہم اپنے اپنے گھروں سے چھوٹی چھوٹی صندوق کھول کر نکال لیا کرتے تھے۔ ایک دفعہ شہر میں سنو کھ سرنی گراؤنڈ میں ایک قہقہہ بیل کپنی اتری جس نے شکشا کا کھیل کھیل۔ میں اور

ماسٹر شار بڑے شوق سے یہ کھیل دیکھنے گئے۔ ٹکٹ کے لیے ہمارے پاس پیسے نہیں تھے چنانچہ ہم سوڑے کے ایک درخت پر چڑھ کر اندر پنڈال میں کود گئے اور ایک طرف قاتلوں کے پاس دیک کر بیٹھے کھیل دیکھتے رہے۔ اگلے روز ہم نے وہی کھیل اپنی ڈیوڑھی میں کھیل لیا۔ صبح ہی سے ہم نے کاپیوں میں سے کاغذ بھاڑ کر اور قلم و دوات سے صی حروف میں "شکشا" کے اش مار لکھ کر مکانوں کی دیواروں پر چسپاں کر دیئے تھے۔ شام کو ہم نے ڈیوڑھی میں تخت پوش بچہ اُڑھج بنایا۔ بانس جوڑ کر گڈے پر وہ گرا دیا۔ محلے کے بچے وہاں جمع ہو گئے تھے۔ ماسٹر شار راجہ دھشت بنا اور میں اس کا وزیر۔ ہم نے سیریلیوں میں بیٹھ کر چروں پر نقلی مونچھیں لگائیں۔ خوب سرفی پاؤڈر تقویا۔ ماسٹر شار نے سر پر مود کے پنکھ والا گتے کا تاج رکھ لیا۔ میں نے اپنی بڑی بہن کا دودھ نہ سرو پگڑی کی طرح باندھ لیا۔ ہمارے ایک دوست نے شیخ پر اکو پر وہ ہٹا دیا۔ اور شکشا کا کھیل شروع ہو گیا۔ ماسٹر شار دھشت کے روپ میں تیر کمان لئے جنگل میں کھڑا تھا اور میں وزیر بنا تھا باندھے سر جھکائے ساتھ کھڑا اسے کہہ رہا تھا۔ مہاراج! ہرن اسی جنگل میں گیا ہے۔

ماسٹر شار گردن کر بولا۔ مگر کہاں ہے ہرن! کہاں ہے ہرن! اگر ہرن نہ ملے تو ہم تیری گردن کاٹ کر رکھ دیں گے۔

میں نے ایک طرح اٹکھ اٹکھا کر دیکھا اور کہا، وہ رہا ہرن مہاراج! جس طرف میں نے اشارہ کیا تھا۔ وہ ڈیوڑھی کا دروازہ تھا جس کا نصف پٹ کھلا تھا۔ میرا اتنا کہنا تھا کہ ماسٹر شار نے فوراً کمان کے ساتھ تیر جوڑ کر چل دیا۔ تیر بچوں کے سروں کے اوپر سے سن سے ہو کر گزرا اور ڈیوڑھی کے دروازے میں سے نکل کر سیدھا بے گوجر کو لگا جو شراب کے نشے میں دھست سامنے ولے مکان کی دیوار کے پاس پیشاب کر رہا تھا۔ وہ چیخ مار کر گر پڑا۔ میں نے یہ متل دیکھ لیا تھا۔ چنانچہ میں نے ماسٹر شار کو کانپتی ہوئی آواز میں کہا۔ ماسٹر تیر بے گوجر کے لگ گیا ہے بھاگ چلو۔

ماسٹر شار نے گردن اڑائی اور مونچھوں پر ہاتھ پھیر کر بولا۔ نیورین۔ محلے میں ایک دم شور برپا ہو گیا۔ ڈیوڑھی میں بھگدڑ مچ گئی اور ہم دونوں بھاگ کر حاجی احمد تار کھان کے گھر میں جا کر چھپ گئے جو اُس وقت تنور کی روٹی کے ساتھ خربزہ بناتے تھے

بیچ اور چپکوں کے کھانا تھا۔ اُس نے چوبک کر کہا: اُسے کی خود چائے ادا دے۔
 ماسٹر نثار نے کہا: استاد جی، میں بسا گوشت داتا ہے۔

اُسے کیوں داتا ہے بتاؤ۔

کہتا ہے مجھے کہنی بارغ کی ٹھنڈی کھوٹی سے پانی لادو۔ بھلا استاد جی شام کو ہم وہاں کیسے جاسکتے ہیں۔
 بسا گوشت داتی ہو گیا ہے۔ تم آرام سے بیٹھ جاؤ یہاں۔

عید میدانی کے جلوس میں ہم نے ایک ایک سبز جھنڈا اٹھام رکھا ہوتا۔ اور ہماری سیی۔
 کوشش ہوتی کہ جلوس ہمارے محلے سے ہو کر مزدور گزرے۔ اور پھر جلوس جب ہمارے محلے سے
 ہو کر گزرتا تو ہم بڑے فخر کے ساتھ کنگھیوں سے اپنی گلی کے بچوں کو دیکھتے جو دکانوں
 کے پھٹوں پر کھڑے رشک سے ہمیں تک رہے ہوتے۔ کترو وہاں سنگھ سے سکری بارغ تک
 دھوپ میں جلوس کے ساتھ چلتے چلتے ہمارے چہرے سرخ ہو کر پسینے میں شرابور ہو جاتے
 لیکن جیسی بھی تھکان یا گرمی کا احساس نہ ہوتا تھا۔

کہنی بارغ میں ٹھنڈی کھوٹی کے سامنے والی گراؤنڈ میں ایک بڑا گنجان درخت تھا جس
 کی پھلی ہوئی شاخیں زمین کو چھوتی تھیں۔ میں اور ماسٹر نثار گلی کے ٹراکوں کے ساتھ یہاں جھٹ
 براہمن کھیل کتے تھے۔ میں ٹارزن کی طرح ایک ٹہنی کو پکڑ کر چھلانگ لگاتا اور جھولتا ہوا زانے
 کے ساتھ دوسری ٹہنی پر جا پہنچتا۔ ماسٹر نثار ٹہنیوں کے بیچ کسی دو شاخ پر بڑے ٹھاٹھ سے
 بیٹھ جاتا اور پھر راہ اندر کی طرح گردن اکڑا کر ایک دم پکارا اٹھتا۔ یہ آج میرا تخت کیوں بل رہا
 ہے؟ پھر خود ہی معاصی بن کر ادب سے گردن جھکا کر کہتا: حضور آپ کا شاہی تخت جنوں کی
 گردنوں پر رکھا ہے چوہا کو سبز پری کے محل کی طرف لے جا رہے ہیں۔

ماسٹر نثار راہ اندر کے روپ میں مسکراتا اور پھر ایک ہاتھ اٹھا کر گانا شروع کر دیا۔

ماؤم۔ راہ ہوں میں توہ کا اند میرا نام۔ ماؤم

سبز پرشی پر عاشق ہوں میں عشق ہے میرا کام۔ ماؤم

برسات کے دنوں میں ہم دو موٹی نہر کے کنارے لمبی سیر کرتے۔ لبالب نہر

میں تیرتے ہوئے سبز، زرد، سرخ، آسموں اور امروہوں کو چھلانگیں لگا کر پھرتے، نہر کی پیا پر کھڑے
 ہو کر مٹھیاں چوم کر پانی میں کود جاتے اور مردہ تاری لگایا کرتے۔ کبھی غوطہ لگا کر نہر کی تہ سے مٹھی
 بھر گیلی ریت اٹھا کر لاتے اور اُس سے اپنے دانت مانجھتے کیونکہ ہم نے بڑوں کو یہی کرتے دیکھا
 تھا۔

جنوری فروری کی سردی میں جب بارغ اُجڑ جاتے تو ہم امروہ کے باغوں میں نکل جاتے اور
 درختوں پر لگے اکوٹے امروہ توڑ توڑ کر اُدھا کھاتے اور اُدھا پیسٹک دیتے۔ بارش شروع ہو جاتی تو
 ہم ٹاہلیوں کے گرتے پتوں میں پھینکتے گھر واپس آ جاتے۔

بھلا خیال تھا کہ ہم اسی کہنی بارغ کے درختوں پر کھیتے۔ پیا پرست نہروں میں چھلانگیں لگاتے
 اور ڈیوڑھی میں سرفی پادور تھوپے۔ شکستہ کھیتے رہیں گے اور وقت کبھی نہیں گزرے گا۔ لیکن
 وقت گزرتا چلا گیا۔ اور پھر وقت جب ایک اہم موڑ پرست گزرا تو ہم سے امرتسر کہنی بارغ، مال
 بازار سکری بارغ، بجلی والی نہر اور مسجد خیر الدین جیٹھ کے لئے جدا ہو گئی۔ جب ہم کہنی بارغ کی نہروں
 میں چھلانگیں لگاتے پھر رہے تھے اور ماسٹر نثار آنکھیں بند کئے ڈھولک بجاتے ہوئے لیلے
 مجنوں کے گانے گارہا تھا۔ اُس وقت برصغیر پاک و ہند کے مسلمان یٹڈ مسلمانوں کے لٹالیک
 علیحدہ مملکت پاکستان کے لئے جدوجہد کر رہے تھے جہاں مسلمان عزت و ابرو کی زندگی بسر کر
 سکیں یہیں معلوم ہی نہیں تھا۔ چنانچہ ایک روز جو ہم نہر سے ڈبکی لگا کر نکلے تو امرتسر میں
 چاروں طرف گولیاں چل رہی تھیں۔ آگ لگی تھی، ہم پھٹ رہے تھے۔ دھواں ہی دھواں تھا۔
 لاشیں ہی لاشیں تھیں۔ آگ ہی آگ تھی۔ لبالب بھری ہوئی ٹھنڈے پانیوں کی نہریں سوکھ گئی
 تھیں۔ بارغ اُجڑ گئے تھے۔ ٹھنڈی کھوٹی کے پانی میں انسانوں کا گرم خون آن ملا تھا۔ مسجدوں کے
 حوض خشک ہو گئے تھے۔ ہم نے امرتسر چھوڑ دیا۔ امرتسر نے بھی چھوڑ دیا۔

خستہ حال زخمی، بیمار، نیم جاں مجاہدوں کے لئے پئے قافے لاسر کی سرحدوں میں داخل
 ہو رہے تھے ہر طرف ایک افراتفری، ہیجان اور پریشانی کم نفاذی تھی۔ بہن بھائی سے، ماں
 بیٹے سے، بیٹا باپ سے اور خاندان بھری سے بچھڑ گیا تھا۔ لاہور شیش پرکٹی ہوئی گاڑیوں پر رہی تھی
 وقت گزرتا چلا گیا ماسٹر نثار سے نہ مل سکا۔ معلوم ہوا کہ وہ کسی گاؤں کی طرف نکل گئے ہیں۔

پاکستان کو معرین وجود میں آنے۔ دس گیارہ برس گزر گئے۔ ایک روز میں انارکلی بازار سے گزر رہا تھا کہ میں نے با تو بازار کے کونے پر ایک دکان کے باہر ماسٹر نثار کو سڑک پر بیٹھے ایک انارکلی کو مرمت کرتے دیکھا۔ اُس کے بال سفید ہو گئے تھے۔ چہرہ سوکھ کر سیاہ ہو گیا تھا۔ آنکھیں اندر کو دھنس گئی تھیں۔ کپڑے میلے، بوسیدہ اور پیوند لگے تھے۔ وہ برے سے تختے میں سوراخ ڈال رہا تھا۔ اور اُس کے سفید بالوں میں لکڑی کا بورا پڑا تھا میں چپکے سے اُس کے قریب آکر بیٹھ گیا۔ اُس نے میری طرف دیکھا۔ اس کی زرد ویران آنکھوں میں ایک چمک سی پیدا ہوئی اور پھر وہ میرے گلے لگ گیا اور ہلکے ہلکے سکیاں بھرنے لگا۔ میں نے اس کا ہاتھ تھام کر کہا "ماسٹر نثار یہ کیا حال بنا لیا تم نے اپنا؟"

ماسٹر نثار میل قمیض سے آنکھیں پونچھ کر دھیرے سے مسکرایا اور خشک آواز میں بولا:

ماڈ حیدر انور میں!

امر تسر کی میاں پوترو

امر تسر کی ایک سرورات — کمپنی باغ کے صفت۔ جنوری کی دھند میں ڈوبے ہوئے ہیں۔ ایک گھر آلود غاموشی ہے جو سنان شہر کے گلی کوچوں میں اتر آئی ہے۔ ابھی شہر میں بجلی نہیں آئی۔ لمپوں کی روشنی کہیں کہیں سردی میں ٹھہر رہی ہے۔ آسمان پر ستارے سفید صفت کے ثقافت نگاروں کی طرح چمک رہے ہیں۔ روڑاں والی مسجد کے والوں کی گلابی سلیس رنگ ہو رہی ہیں۔ امر تسر کی بچے، بوڑھے، جوان گرم لحافوں میں دبکے گہری نیند سو رہے ہیں۔ مکانوں کے کواڑ بند ہیں۔ گھروں کی منڈیریں، مٹیاں، بکتوں کی کابکیں، ٹین کے چھتر، ریل کی پٹریاں اور سہائیاں والے باغ میں امرودوں کے اجڑے ہوئے صفت اوس میں بھیگ رہے ہیں۔

آدمی رات گور گئی ہے۔ ٹھہرتی رات شہر کے ہونٹوں پر اپنا بروت آلود ہاتھ رکھ کر خوب میں کھو گئی ہے۔ بازار بکرواناں کے ایک دو منزلہ مکان میں ویٹے کی لودھم ہو رہی ہے۔ چھ سات برس کی ایک بچی لحاف اوٹھ سے سو رہی ہے۔ ساتھ والی چارپائی پر ایک عورت لحاف کے اندر کانگری لے لے دم بخود بیٹھی ہے۔ فیروزی شال میں لپٹا اس کا چہرہ ساکت ہے۔ کان کسی آواز پر لگے ہیں۔ یہ آواز اس نے ابھی ابھی سنی تھی۔ ادھیر عمر کی یہ شریخ و سپید عورت لحاف کے اندر کانگری لے لے سو رہی تھی کہ اچانک اس کی آنکھ کھل گئی۔ اُسے یوں لگا جیسے کسی نے اس کی چارپائی کو ہلایا ہو۔ وہ اٹھ بیٹھی۔ اور پھر اس نے ایک آواز سنی۔ ڈھلانی، روٹنے کھڑے کر دینے والی آواز، جسے سن کر امر تسر چھپر ہو جاتا تھا۔ جس کی دہشت نے ایک طویل عرصے تک امر تسر کی سنان راتوں کو آسب زدہ بنائے رکھا۔ یہ آواز دوسرے آتی ستالی دکی تھی اور کسی عورت کی آواز تھی زمین کی گہرائیوں سے نکل کر مالت آسمان کی دستوں میں گم ہوتی ہوئی ایک کرب انگیز چیخ کی آواز۔ اس بھی کرتی آواز کے ساتھ دو

آپو جی یعنی میری والدہ نے میان پترو چڑیل کی آواز سنی تھی۔ چنانچہ ایک بار جب میں نے ان سے پوچھا۔۔۔

آپو جی! آپ نے میان پترو کی آواز سنی تھی، تو انہوں نے مجھے وہ سارا منظر سنایا جسے میں اوپر بیان کر چکا ہوں۔

میں بہت چھوٹی تھی اتنی چھوٹی بھی نہیں تھی کہ کچھ یاد نہ ہو۔ میان پترو کی آواز پہل بار میں نے اپنی بھوپھی کے پاس لیٹے ہوئے سنی بھوپھی کا خیال تھا کہ میں سو رہی ہوں میں جاگ رہی تھی اور میں نے صاف صاف میان پترو چڑیل کی آواز سنی۔ پہلی بار آواز شہر کے ایک کنارے سے آئی۔ بڑی نور سے آئی شاید چڑیل بلاتی شاہ کے قبرستان میں تھی پھر اچانک ہماری گلی میں مکان کے باہر سے آواز آئی۔ خدا جیوٹ نہ بولے وہ آواز تو جیتے جاگتے انسانوں کو پتھر کر دیتی تھی کہتے ہیں جس گلی میں آدمی دت کو میان پترو کی آواز آتی تھی وہاں اگلے روز ضرور کوئی نہ کوئی مرگ ہو جاتی تھی۔ بڑے کا کا جی کہا کرتے تھے کہ جوانی میں ان کے محلے میں ایک بار آدمی رات کو میان پترو چڑیل پھر گئی اگلے دن گلی میں سے چار جناحے اٹھے بڑی بھوپھی نے ایک بار میان پترو کی آواز سنی تو وہیں دم دے دیا آدمی رات کو شاید پانی پیئے اٹھی ابھی کھڑے میں گھر سے کے پاس ہی آئی تھی کہ گلی میں سے میان پترو کی ڈرافٹی آواز بلند ہوئی بس وہیں دھڑکے گری اور دم دے دیا اللہ بخشے وزیر خاں کہا کرتی تھی۔ میری ماں نے گلی میں میان پترو کی آواز سنی تو اٹھ کر کھڑکی کھولی اور کا گڑی کی ساری آگ گلی میں الٹ دی اور کہا سردی لگتی ہے تو لے آگ اور مرغا۔ شاید اسی لئے میری بھوپھی نے بھی اس رات گلی میں کا گڑی الٹ دی تھی کیونکہ یہ چڑیل، میان پترو ہمیشہ پوہ، ماگھ کی ٹھٹھرتی دیران اندھیری راتوں کو نکلتی تھی اور ہر بار میان پترو کی آواز لگانے کے بعد یہ ضرور کہتی۔ "وونی توڑ چھے لکن نہجے سردی لگتی ہے" ہماری آپو جی اب اس دنیا میں نہیں ہیں لیکن میں انہیں اپنے سامنے جا رہی ہوں پر بیٹھا دیکھ رہا ہوں۔ گلابی فرد میں لیٹی مجھے میان پترو کی کہانی سنارہی ہیں بچپن میں اس چڑیل کا نام سن کر میں بھی پتھر ہو جاتا میں مدتا تو میری بڑی بہن مجھے میان پترو کی آواز نکال کر ڈراتی اور میں جہاں کا تھاں ہو کر آنکھیں بند کر لیا کرتا۔

بڑا ہوا تو راتوں کو اندھیری گلیوں سے گزرتے ڈر لگتا کہ کسی مکان کے دروازے کے پیچھے سے اچانک میان پترو نہ نکل آئے، تپتی دیران دوپہروں میں سبائیاں ولے اندھروں کے بلنگ

میں ایک سناٹا چھایا ہوتا۔ ہم نے سن رکھا تھا کہ دوپہروں میں چڑیلیں پیچھے سے نام لے کر آواز دیا کرتی ہیں ایک بار میں باغ میں گھر سے پڑے کچے امرود کھا رہا تھا کہ اچانک یوں لگا جیسے کسی عورت نے میرا نام لے کر آواز دی ہے، امرود میرے ہاتھ میں رہ گیا اور ایک پل کے لئے میں پتھر بن گیا۔ پھر جو سر پر پاؤں رکھ کر بھاگا تو خریف پورے والے پھاٹک پر آکر دم لیا۔ ہو سکتا ہے یہ میرا دم ہو، لیکن میان پترو کا خوف ہر امرتسری لڑکے کے دل و دماغ پر چھایا رہتا تھا۔

کچھ حقیقت پسند امرتسریوں کا بیان ہے کہ اصل میں میان پترو ایک کشمیرن تھی۔ جو امرتسریں کو توالی کے پاس اپنے دو بچوں کے ساتھ رہتی تھی۔ کو توالی کی پرانی عمارت گرائی گئی تو اس کے دونوں بچے بے تلے اگر مر گئے اپنے بچوں کے غم میں وہ ہوش و حواس کھو بیٹھی اب وہ امرتسر کے گلی کو چوں میں پاگوں کی طرح پھرا کرتی اور اپنے بچوں کو آوازیں دیا کرتی۔ یہ حقیقت پسندانہ بیان کم از کم مجھے پسند نہیں تھا میان پترو کو ایک چڑیل کے روپ میں ہی دیکھنا پسند کرتا تھا ہمارے ساتھ والے محلے چیل منڈی میں میرا ہم عمر اختر نام کا ایک خوبصورت گورا چٹاڑ کا رہتا تھا۔ دس گیارہ برس کا ہو گا کہ اچانک لاری کے نیچے آکر مر گیا اس کی ماں بھاری بھر کم انتہائی سنجیدہ مزاج کشمیری خاتون تھی اور ہمارے گھر اکثر میری آپو جی کو طے آیا کرتی تھی۔ بیٹے کی موت کے صدمے نے اسے دیوانہ کر دیا۔ وہ سفید برقع کا نقاب اٹھائے گلیوں میں پھرنے لگی کسی بھی لڑکے کو دیکھتی تو پیچھے سے آواز دیتی۔

"دے اختر"

لڑکے ڈر کر بھاگ جاتے۔ ایک بار اس نے مجھے بھی پیچھے سے آواز دی۔ میں ڈر کر بھاگ گیا۔ یا تو اس ماں کی ماری کو شہر کا ہر لڑکا اپنا لخت جگر اختر نظر آتا تھا اور اسے اختر کہیں بھی نظر نہیں آتا تھا۔ مجھے وہم ہو گیا کہ یہی عورت اصل میں میان پترو چڑیل ہے اور میں اس کے سامنے سے بھاگنے لگا۔ ایک روز دوپہر کو میں نے دیکھا کہ وہ ریوے لائن کے ساتھ ساتھ چلی آرہی ہے۔ میں نے ریل کی پٹری سے بھاٹیوں میں چھلانگ لگا دی اور چالیس کنوڑوں کی جانب بھاگ گیا۔ میرے دادا جان روتا تنک بڑھ گئے تھے۔ سبز چائے اور درختوں پھولوں سے محبت کرتے تھے۔ ان کا پیشتر وقت محلے والے باغ میں گھومتا۔ مولسری کے ایک درخت کے نیچے مدی بچھا کر ٹیپ کرتے رہتے کسی وقت کوئی چڑیل ان کے کندھے پر آکر بیٹھ جاتی تو ان کے ٹیپ کرتے ہاتھ ایک دم ساکت ہو جاتے جب چڑیا اڑ جاتی تو فکرا

کر پھرتے پڑنے لگے۔ روانگ ہونے کی وجہ سے ہی شاید انہیں بھی میان پوترو کے بارے میں حقیقت پسندانہ توجیہ پسند نہیں تھی۔ جب کہیں میں ان سے میان پوترو کے بارے میں بات کرتا تو وہ سبز چائے کی پیالی میں پھونک مار کر ایک گھونٹ پیتے اور سفید مونچوں پر بڑی نقاست سے انگلی پھیر کر کہتے۔
 "میان پوترو کشمیر کی چڑیل ہے۔ امد کا کانے بیک بڑا بتایا تاکہ وہ پہلے ٹھکرگ
 میں رہتی تھی۔ جب وہاں بہت لوگ مرنے لگے تو ایک روز وہاں سے کوچ کر کے
 امرتسر آگئی۔ دوپہروں میں باغوں میں نہ جایا کرو۔
 "مگر وہاں ادا جان! میان پوترو تو رات کو ٹٹکتی ہے۔"

"تمہارے خالو کبہ رہے تھے کہ ایک آدمی بیتی دوپہر میں کہیں باغ میں سے گزر رہا تھا کہ میان پوترو نے آواز دی اس نے پیچھے مڑ کر دیکھا اور وہیں کھڑے کھڑے گر کر مر گیا، مگر یہ کیسے ہو سکتا تھا کہ میں دوپہروں میں کہیں باغ میں نہ جاؤں۔ کہیں باغ ہی میرا گھر میرا بھول اور میرا سکول تھا۔ گھر سے بھاگ کر کامریڈ ہونٹل کے دوستوں سے بھاگ کر اسکول سے بھاگ کر میں اگر کہیں جاتا تھا تو کہیں باغ میں۔ آج میرا کہیں باغ نہ سے پھر چکا ہے شاید اسی لئے میں اب گھر سے کہیں نہیں بھاگتا سوچا ہوں بھاگ کر جاؤں میں تو کہاں پہلے تو موت ایک ہی سڑک تھی جو سیدھی کہیں باغ کو جاتی تھی اور اب میرے دو گردن سڑکوں کا بال بچھا ہوا ہے مگر ان میں سے ایک بھی سڑک کہیں باغ کو نہیں جاتی وصحت الوجود سے کثرت الوجود میں آگیا ہوں اللہ مجھے توحید کی توفیق دے پچھلے دنوں ایک عزیز ویزا لے کر امرتسر گئے تو نجد سے پوچھا تمہارے لئے امرتسر سے کیا لاف! میں نے کہا کہیں باغ کا کوئی بھول لے آئیے گا۔ انہوں نے واپسی پر مجھے نکل کا ایک سرنج بھول لاکر دیا یہ بھول وہ کہیں باغ کی ایک روش سے اٹھا کر لائے تھے وہ بھول میرے پاس پڑے پڑے سیاہ ہو گیا ہے رنگ اڑ گیا ہے مگر کہیں باغ کی ہلک اس میں سبب بھی آتی ہے۔"

لیکن ان دنوں تو گرمیوں کی ٹھنڈی صبحیں بیتی دوپہر میں اور شاہیں کہیں باغ کی چوٹی نہر میں چلا گئیں لگاتے گزرتی تھیں۔ میان پوترو کا خوف مجھے کہیں باغ میں بہت ہی کم آتا تھا شاید میان پوترو ہی اس خوبصورت باغ میں اگر درخت بن جاتی تھی ایک روز شام کو میں نہر سے نہا کر نکلا تو پردہ کلب کی طرف آگیا یہاں ناشپاتی کے بے شمار درخت پھلوں سے بھرے ہوئے تھے باغ میں شام کا سڑنا

اندھیرا پھیلتے رہتا برسات کے دن تھے ٹھنڈی کھوئی واسے آموں کی طرف سے کونل کے بوٹے کی آواز آتی تھی۔ میں نے سوچا دو چار ناشپاتیاں توڑ کر لے جاؤں پردہ کلب کے عقب میں رکھواؤں کی جھونپڑی تھی کسی وقت رکھوا لے کی آواز بلند بلند ہو جاتی تھی میں جھاڑیوں میں سے نکل کر پردہ کلب میں آگیا۔ ناشپاتی کے درختوں کی کچھ شاخیں کلب کے لان میں جھکی ہوئی تھیں۔ زردی مائل سبز ناشپاتیاں توڑ کر نیکر کی جیب میں بھر لیں اور واپس مڑا ہی تھا کہ اچانک ایک ہاتھ نے پیچھے سے میری قمیض پکڑ کر کھینچی۔ میرا دل زور زور سے دھڑکنے لگا پٹ کر دیکھا تو پیچھے کون بھی نہیں تھا میں دہشت زدہ ہو کر بھاگ کھڑا ہوا۔

پردہ کلب کی جھاڑیوں کو چیرتا ہوا باہر نکلا اور پھلیوں واسے طالب کے اوپر سے ہو کر رہا تھا کہ ایک سفید برقع والی عورت نے اچانک میرے سامنے آکر کہا۔
 "وہے اختر!"

اس کے بعد کی مجھے کوئی خبر نہیں کہ میں کیسے ٹھنڈی کھوئی اور وہاں سے اپنے گھر پہنچا دو روز میں بخار میں مبتلا رہا۔ تیسرے روز آپو جی کو ڈرتے ڈرتے یہ واقعہ سنایا تو انہوں نے کہا۔
 "وہ ضرور میان پوترو تھی۔ خبردار جو تو اب کہیں کہیں باغ گیا۔"

بخار سے اٹھا تو ایک روز امرود توڑنے گئی ٹھنڈی واسے قبرستان میں نکل گیا یہ قبرستان جہاں سے محلے کشادہ جہاں سنگہ کے پاس ہی تھا امرتسر کے قبرستانوں میں بھی لوگوں نے پھلوں کے باغ لگا رکھے تھے لوکاٹ، امرود، آلوچہ، ناشپاتی، فالسہ اور شہوت کے درختوں کے جھنڈ کے جھنڈ اُگے تھے۔ بیچ بیچ میں قبری بھی بنی ہوئی تھیں۔ بڑے بہشتی تھے امرتسر کے آسودگان خاک بھی ایک چوٹی سی جہر گئی ٹھنڈی واسے قبرستان کے پہلو سے ہو کر گزرتی تھی اور پیچھے درختوں سے ٹپکے ہوئے پھل اس نہر میں تیرتے پھلے کتے اور ہم پانی میں اتر کر انہیں نکال کر کھایا کرتے تھے۔ عید کی صبح کو ہم منہ اندھیرے قبروں پر گر موم بقیاں روشن کرتے اگر بقیاں جلاتے اور گیند سے گلاب کے پھول بکھیرتے اور درختوں سے کیری رنگ کی لوکاٹیں اور کچے کچے امرود توڑ کر بھی کھاتے۔

میں دورہ جہاں سنگہ سے نکل کر تکیہ سنی سہر کی طرف چلا ساؤں کی گھٹانے آسمان تو اسی نہایت ٹھنڈی ٹھنڈی ہوا چل رہی تھی تکیے کے قریب سے گزرا تو بودی سانک کی سرلی وز سدا

دی۔ مگر پرکار تھا۔

ایہ بدل جوئے نے

دھوئی میرے دل والے

آسمان چھانے نے

امر تر کی گھاڑوں کے بادل واقعی دلوں سے اٹھ کر آسمان پر چھایا کرتے تھے یہ دھواں نہ دل سے اٹھتا ہے نہ جہاں سے اٹھتا ہے اور نہ ہی باد چنی خانوں سے اٹھتا ہے اگر کہیں سے اٹھتا ہے تو اونچی پس والوں کی گاڑیوں سے۔ برج پھولا سنگھ کو پیچھے چھوڑ کر میں اس چوٹی سی سڑک پر آگیا جو قبرستان کو جاتی تھی۔ دائیں بائیں پھلوں کے باغ شروع ہو گئے۔ طوطوں کی قطاریں امرود کے درختوں کو جا رہی تھیں میں بھی ان کے پیچھے پیچھے ہو گیا ہوا میں قبروں پر سگتی، مگر تپوں کے ساتھ ساتھ سرودوں کی خوشبو بھی ملی ہوتی تھی۔ اچانک میری نظر ایک سیاہ ناگ پر پڑی جو مجھ سے بچا اس اسٹھ گھر کے فاصلے پر ایک قبر میں سے اوجھل رہا تھا۔

ایک لمحے کے لئے میں اسی جگہ خوف زدہ ہو کر ساکت ہو گیا۔ سانپ کا پس چھڑا تھا اور اس کا رخ میری طرف تھا اگرچہ وہ مجھ سے کافی دور تھا۔ پھر بھی میں نے پیچھے کی طرف کھسکا شروع کر دیا جب کافی پیچھے چلا گیا تو دل میں ایک احمقانہ سی خواہش پیدا ہوئی کہ عقب سے ہا کر سانپ کو دیکھا جائے میں ندی پہلا لنگ کر لوٹ کے درختوں میں سے ہوتا ہوا سانپ والی قبر کے عقب میں ہا نکلا میں اب بھی اس قبر سے کوئی چالیس پچاس گز کے فاصلے پر تھا مجھے سانپ کہیں نظر نہ آیا خدا جانے کہاں چلا گیا تھا بچپن کا شوق فضول اور جرات نہ انداز مجھے کشاں کشاں قبروں میں آگے ہی آگے کیسے پھرتی لے گئی گھاس اور جنگلی پھولوں میں چھپی ہوئی قبریں خاموش تھیں۔ سرانے کے پتھروں اور نیٹوں سے موم قبوں کی پگلی ہوئی موم چپٹی تھی میں دک گیا اب مجھے خوف محسوس ہونے لگا اگر یہیں کسی قبر سے کالا سانپ نکل آیا تو کیا ہو گا میں پیچھے کو دوڑا اور ندی پر گر دم لیا۔ ندی کے گدے پانی میں ایک کپاٹم تیرتا ہوا آ رہا تھا۔ میں نے پانی میں اتر کر اسے اٹھایا اور مزے سے کھاتا ہوا سرودوں کے جھنڈ کی طرف ہمارا تھا کہ اچانک میری نظر اپنے مرحوم دوست اشہ کی دیوانی والدہ پر پڑی اس نے میلا کچھلا سفید برقع اوڑھ رکھا تھا نقاب اٹھا تھا اس کے سفید بالوں کی ایک لٹ ٹک رہی تھی اور وہ اپنے لختی جگر کی قبر پر بیٹھی۔ درستی تھی۔ پھر ایک ایسی

اس نے بین کرتے ہوئے ایک دلہن پر صبح ماری۔

ایک چنچ گویا میرے اندر سے بھی نکلی اور میں دہشت زدہ ہو کر وہاں سے دوڑا میں درختوں سے بچتا جھاڑیاں پھلانگتا بھاگا چلا جا رہا تھا کہ کسی شے سے ٹکڑ کر کھا کر متور کی کانٹے دار جھاڑی میں گر پڑا بے شمار کانٹے میرے بدن میں چبھ گئے۔ میرے جسم کو درد نے جیسے جکڑ دیا میں پھر بھی بھاگتا ہوا گیا قبرستان کی حدود سے باہر نکلا تو ایک سادھو نے مجھے روک لیا۔ شاید اس نے میرے جسم میں چبھے کانٹوں کو دیکھ لیا تھا۔

”مٹھر ہاڈ، یہ متوہر کے کانٹے ہیں اگر دیر کر دی تو یہ بدن کے اندر چلے جائیں گے۔“
سادھو نے مجھے کونین کے پاس پھل کے درخت تلے بٹھالیا اور بڑی محنت اور جانفشانی سے ایک ایک کر کے میرے کانٹے نکالنے لگا۔ اس نے مجھ سے پوچھا کہ میں متوہر پر کیسے گر پڑا۔ میں نے کہا۔

”میان پوترو نہ وہاں۔“

پھر میں نے اسے بتایا کہ میان پوترو چڑیل میرے سرور دوست اختر کی ماں کا روپ بدل کر قبرستان میں بیٹھی ہوئی تھی۔ سادھو کی باتیں مجھے یاد نہیں رہیں۔ اتنا یاد ہے کہ اس نے کمال درد مری کے ساتھ میرے جسم کے سارے کانٹے نکال دیئے تھے اور پھر مسکراتے ہوئے میرے سر پر ہاتھ پھر کر آگے چل دیا تھا۔ میں سادھو کا چہرہ بھی بھول گیا ہوں لیکن اس کے ہاتھ کے لمس میں جو انسانی ہمدردی اور دکھ درد میں کسی انسان کے کام کا جذبہ موجزن تھا اس کی گرمی میں آج بھی اپنے جسم میں محسوس کرتا ہوں۔

میں نے ڈر کے مارے گھر اگر کسی کو یہ واقعہ نہ سنایا مجھے یقین ہو گیا تھا کہ میان پوترو میرے کہنے ہوئے دوست اختر کی ماں کے روپ میں آگئی ہے اور یہی مہتا کی ماری راتوں کو سننا لگیں۔ ایک مکان کے باہر نہ کھڑی ہو اور مجھے آواز دے کر پتھر نہ بتا دے لیکن اختر کی ماں کو پھر کسی نے اپنے نطفے میں نہیں دیکھا تھا وہ ادھر رتی ہی نہیں تھی۔ دیوانگی کی حالت میں قبرستانوں، دیرانوں میں گھومنا رتی۔ دیوانگی کی حالت میں قبرستانوں، دیرانوں میں گھومنا رتی تھی۔ اور یا پھر میرے خیال کے مطابق بڑوں کی سنان راتوں میں شہر کی گلیوں میں اپنے پیارے بیٹے کو بین کرتی آواز میں بدیا کرتی تھی۔ وقت گزرتا گیا۔ ہم بڑے ہوئے تو امر تر کے گلی کو چوں سے میان پوترو کی آواز غائب ہو چکی

تھی۔ مرنے اس کی ایک دہشت ناک یاد باقی تھی اور مائیں اب بھی اپنے بچوں کو میان پترو کا نام لے کر ڈریا کرتی تھیں۔ آپو جی کی زبانی معلوم ہوا کہ میان پترو واپس کشمیر جا چکی ہے۔ اس کے ساتھ ہی اختر کی دیوانی ماں بھی اپنے مردہ بیٹے کی تلاش میں ویرانوں اور قبرستانوں میں ماری ماری پھرتی، اُسے پکارتی، اس کی یاد میں جین کرتی کہیں گم ہو گئی۔ کہیں کھو گئی۔ شاید اسے اس کے لختِ جگر نے اپنے پاس جنت میں بلوایا تھا۔ سب مائیں جنت میں جاتی ہیں۔ اور جن کے کفن پچے وہاں پہنچ جائیں وہ تو اپنی ماؤں کے لئے جنت میں محل و گھر کے محل بنا کر ان کا انتظار کرتے ہیں۔

مذکور میان پترو بھی جنت میں گئی ہو گی۔ کیا ہوا جو وہ چڑیل تھی۔ آخر وہ بھی ایک ماں تھی۔ جس کے بچے پرانی کو قوالی کی عمارت کے پیچھے اگر مر گئے تھے۔ وہ بھی تو راتوں کو اپنے بچے پرے ہوئے بچوں کو رو رو کر آوازیں دیا کرتی تھی۔

”میرے بچو! میرے بچو!“

وقت کا پہیہ کچھ اور گھوما۔ پاکستان بن گیا۔ امرتسر ہم سے بچھڑ گیا۔ سب کچھ وہیں رہ گیا مرنے یا دیں ہمارے ساتھ آ گئیں۔ ان میں میان پترو چڑیل کی یاد بھی ہے۔ امرتسر کی مائیں شاید اب اپنے بچوں کو میان پترو کا نام لے کر نہ ڈراتی ہوں لیکن ان کے دلوں میں میان پترو کی یاد آج بھی زندہ ہو گی۔ میان پترو چڑیل کی یاد میرے دل میں بھی زندہ ہے مگر مجھے اب اس سے خوف محسوس نہیں ہوتا۔ شاید اس لیے کہ اب میں بچہ نہیں رہا۔ شاید اس لیے کہ اب تو امرتسر کی چڑیلیں بھی خوبصورت لگتی ہیں۔

پھر بھی کہیں کہیں لاہور شہر کی کسی سڑک، کسی گلی، کسی باغ کسی قبرستان میں سے گزرتے ہوئے مجھے یوں لگتا ہے جیسے کسی عورت نے پیچھے سے آواز دی ہو۔

”وہ اختر!“

اور میں کہیں پیچھے مڑ کر نہیں دیکھتا۔ اس لیے نہیں کہ میں پتھر نہ ہو جاؤں بلکہ اس لئے کہ جس۔ یاں پترو نے مجھے آواز دی ہے کہیں وہ میری شکل دیکھ کر پتھر نہ ہو جائے۔

امرتسر کا ایک درویش

امرتسر کے ہال دروازے سے باہر نکل کر جب آپ داہنی جانب کو ہوں تو یہ ٹائمر اولیٰ کے مزار کے پہلو میں ایک تالے کا چھوٹا سا پل عبور کر کے سامنے انجن پارک کا ریتلا میدان آ جاتا ہے۔ یہ میدان ریلوے کے اونچے پل کی ڈھلانوں کے سامنے میں ہے۔ ان ڈھلانوں پر بزرگ کی اترائی کے ساتھ ساتھ نو بے کا جنگل لگا ہے جس پر یو کلیٹس کے گھنے درختوں کا سایہ پھیلا ہوا ہے۔ کونے میں ایک چھوٹی سی مسجد ہوا کرتی تھی۔ پاس ہی ایک کنواں اور اکھاڑ بھی تھا۔ انجن پارک امرتسر کی سیاسی اور سماجی زندگی کی آماجگاہ تھی۔ یہاں اگر ایم اے او کالج اور ڈی اے دی کالج کے معرکہ خیز کرکٹ میچ ہو کرتے تھے تو مجلسِ احرار مسلم لیگ اور نیلی پوشوں کے ہنگام پروردھے بھی منعقد ہوتے تھے۔ کرکٹ میچوں میں ایم اے او کالج کے دینیات کے استاد حافظ نور شاہ صاحب زمین پر چوکڑی مار کر بیٹھ جاتے اور تسبیح کا درد کرتے ہوئے دعا پڑھ پڑھ کر مروت حسین شاہ کو باؤنگ کرتے ہوئے دور سے پھونکیں مارا کرتے جب ہندو کالج کی وکٹ اڑتی تو حافظ نور شاہ اپنے خاکی کوٹ اور خاکی کلاہ گڑھی میں ہاتھیں پھیلا کر اللہ اکبر کا نعرہ لگاتے اور دوبارہ دھڑا دھڑا تسبیح اور دعاؤں کا درد شروع ہو جاتا۔ مجلسِ احرار اور مسلم لیگ کے جلسوں میں لوگ گلے بچھاڑتے پھر اسلام زندہ باد کے فلک شگاف نعرے لگاتے اور ٹٹ کر تیل کے قیمے واسے پھورے ورنان چھوئے کھاتے۔ کیا مجال جو کسی کے گلے میں خراش تک بھی پڑتی۔

دلی بمبئی سے کوئی سرکس امرتسر آتا تو انجن پارک کے میدان میں آکر اترتا۔ منبو، تن تین تن جاتیں۔ چولہا ریاں لگ جاتیں غار دار جنگلوں کی دوسری طرف زنجیروں سے بندھے ہوئے تو کی بٹہ ہاتھی گھاس کے ڈھیروں کے پاس جھولتے نظر آتے۔ پنجرہوں میں بند شرارتی بندروں کی نر خرو کی

آوازیں آتیں کبھی کبھی کسی بوڑھے شیر کی نیچ سی بائیں بائیں۔ بھی سنائی دے جاتی۔ سرکس کے درمیان میدان میں ادھر ادھر تھیں گاڑنے اور جانوروں کو چارہ ڈالتے ہیں معزوف دکھائی دیتے۔ ہم رات کو سرکس میں کرتب دکھانے والوں کی ایک جھلک دیکھنے کے لیے پیروں غار وار جگہوں کے پاس کھڑے رہتے مگر وہ لوگ سوائے رات کے دن کو کبھی دکھائی نہ دیتے تھے۔ انجمن پارک کے مشرق میں سبہ نور تھی جسکی ٹوئیں سے ہم منہ لگا کر بان پیا کرتے تھے اور جس کی اونچی چھت پر ستاروں کے قریب کھڑے ہو کر ہم سرکس والوں کے چھپے ہوئے شیر کو دیکھنے کی کوشش کیا کرتے۔ مغربی جانب گندے نالے کے پار پرل ٹاکیڑ کی پرانے طرز کی اونچی لمبی عمارت کھڑی تھی۔ اسے جہان سنگھ کا منڈا بھی کہتے تھے۔ کسی زمانے میں یہ تھیٹر تھا۔ اور الغریبہ تھیٹر کیل اور کورنٹھین تھیٹر کیل کپنیاں اس کی سیٹج پر مانا حشر کے کیل کھیل کرتی تھیں۔ اندر سے اس کی گیلری یوروپ کے تھیٹر گاہوں کی طرح بڑی منقش اور قدیم سنائیگی تھی۔ سینما کو عروج حاصل ہوا تو اس کی سیٹج پر پردہ لگا کر نجیت مودی ٹون کا "بھولا شکار"۔ "طوفان میل"۔ "روپ بسنت" پر بھات سینے ٹون کی "سیر نہ میری"۔ "استریوں کا راج" اور "ہڑوسی" ایسی فلمیں کی نمائش شروع ہو گئی نیو تھیٹر مازکی "دھوپ چھاؤں"۔ "منزل"۔ "ڈاکٹر منصور" اور "دیو داس" کی نمائش بھی اسی سینما ہاؤس میں ہوئی تھی۔ امرتسر کا یہ بڑا پرانا اور سب سے پہلا تھیٹر ہاؤس تھا۔

گندے نالے کی اس جانب ڈنڈے شاہ کا ٹکیہ اور تھوڑی سی آبادی تھی۔ اس آبادی کے مکانات کی کھڑکیاں اور اکثر کے دروازے گندے نالے کے داہنے کنارے پر کھلتے تھے ٹکیہ ڈنڈے شاہ میں جہاں تک جھے یاد ہے میں نے کئی اینٹوں کی دو چار قبریں، ایک اکھاڑے اور دھریک اور نیم کے سایہ دار درختوں کے سوا اور کچھ نہیں دیکھا۔ ہاں ذرا پرے مسجد ٹور کے قریب ہی ایک اونچے جوڑے پر کسی بزرگ کا مزار موزود تھا جس کے درخت پر سبز اور سفید جھنڈے ہوا میں پھر پڑتا کرتے تھے۔

امرتسر کے جس درویش کی میں یہاں کہانی بیان کرنے لگا ہوں اُن کا مکان بھی اسی ٹکیہ ڈنڈے شاہ کی آبادی میں تھا۔ مکان کیا تھا بس گندے نالے کے کنارے کچی کچی اینٹوں کی ایک کوٹھڑی تھی جس پر کھیریل ڈال کر گایا پھیر دیا گیا تھا۔ اُس درویش کا نام حافظ شفیع تھا۔ اور اس جھونپڑی نما مکان

میں غالباً اُن کی بوڑھی والدہ صاحبہ رہا کرتی تھیں حافظ صاحب والدہ کی بے حد خدمت کیا کرتے حافظ صاحب بڑے زندہ دل طفل پرست، پرہیزگار سنس ملکہ اور قناعت پسند درویش تھے۔ پان تنہا کو قوام والا کھاتے۔ تنہا کو بالکل نہ پیتے۔ چائے خود بنا کر اداس میں زعفران ڈال کر پیتے دو ستوں کو پلاتے۔ تھوڑی تھوڑی طلبا بت بھی جانتے تھے۔ کبھی کبھی کوئی مریض آجاتا تو اپنے پاس سے دوائی خرید کر اور گھوٹ کر بھی دیتے حافظ قرآن تھے اور نماز پنج وقتہ ادا کرتے تھے۔ وہ پتلا چہرہ پر ابدن ستوان ناک، باریک ہونٹوں کے پیچھے یعنی ہونٹ مونگ پھل کے دانوں ایسے ہموار دانت فرنج کٹ حقیر سی ڈارمی اور باریک مونچھیں۔ نرم چمکیے سیاہ بالوں کے پٹے گھر میں دھلی ہوئی بغیر استری کی قمیض اور شلوار، پاؤں میں بانٹا کی چل۔ سردیوں میں لونی کی لنگل مار کر ساری بریاں گزار دیتے ہرن ایسی بڑی بڑی آنکھوں میں شرمے کی لکیر اور ہونٹوں پر ہر دم کھیلی زندہ دل کی مسکراہٹ یہ تھے ہمارے درویش دوست حافظ شفیع۔

انہوں نے مسجد شیخ خیر الدین مرحوم میں ڈیرہ لگا رکھا تھا۔ یہ ہال بازار میں میو منڈی کے دروازے کے عین سامنے تھی۔ مسجد خیر الدین میں داخل ہوتے ہی ایک چھتی ہوئی ڈیوڑھی میں سے گھونٹا پڑتا تھا۔ اس ڈیوڑھی میں ہر موسم میں ٹھنڈا ٹھنڈا اندھیرا چھایا رہتا۔ کونے والے ستون پر عشق پیماں کی بیل چڑھی ہوئی تھی۔ اس ستون کے پہلو میں ایک حجرہ تھا جس میں حافظ شفیع کا ڈیرا تھا۔ حجرے میں ایک صرف بجھی تھی۔ کونے میں ایک حازم پر منہ دچی رکھی تھی۔ الہی میں شرع، فقہ اور حدیث شریف کی پرانی کتابیں پڑی رہتی تھیں۔ ایک دھمسہ۔ دو جوڑے قمیض شلوار اور ایک پرانا بستر۔ یہ حافظ شفیع کی کل کائنات تھی میں سردیوں میں عشا کی مانگ کے بعد حافظ صاحب سے ملنے اُن کے حجرے میں جاتا۔ مسکرا کر سر کو والہانہ انداز میں جھٹکتے اور کہتے۔

”سبحان اللہ“ یہ اُن کا ٹکیہ کلام تھا۔ مجھے اچھی طرح یاد ہے۔ جب انہیں والدہ کے انتقال کی خبر ملی تو اُس وقت بھی انہوں نے سر کو آہستہ سے جھٹک کر کہا تھا۔

”سبحان اللہ“ میں لکڑی کی پرانی منہ دچی کے پاس حازم پر کشمیری فرد کی لنگل مار کر بیٹھ جاتا تھا۔

[illegible]

• سبحان الله

پیر مجھے سنبھالتے اور کہتے۔

”بٹ صاحب اس سے کہتے ہیں اسی زعفران“

مختوڑا مختوڑا از غفران وہ دونوں پیالیوں میں ڈالتے۔ اور چائے کی محفل گرم ہو جاتی حافظ صاحب رومی اور شیخ سعدی کے فارسی شعر سننے لگتے۔ وہ رومی اور سعدی کے عاشق تھے میں نے بہت کم لوگوں کو اتنی محبت سے زعفرانی چائے پیتے اور رومی و سعدی کے شعر پڑھتے دیکھا ہے۔ چائے کے بعد وہ کسی لڑکے کو بھیج کر چوک سے پان منگواتے۔ بڑے سلیقے سے پان منہ میں رکھ کر حیب سے رومال نکال کر ہونٹوں کے کنارے پر نہتے اور جھوم کر کہتے۔

”سبحان اللہ! قوام چوک والی جی جاسکتا ہے۔“

اگر میں یہ کہوں کہ حافظ شفیق کو زندگی اور خدا کی نعمتوں سے پیار تھا اور وہ ان چیزوں کی قدر کرتے تھے تو یہ تکلف ہوگا۔ دراصل حافظ صاحب زندگی اور خدا کی نعمتوں کا ایک حصہ تھے۔ وہ کسی اچھائی یا نیکی کے کام کو اصول سمجھ کر سرانجام نہیں دیتے تھے بلکہ یہ فعل خود بخود ان سے جو رہا تھا۔ اور اصول نیت چلے جا رہے تھے۔ اصل میں وہ زمانہ ہی اچھے افعال کا تھا۔ اصولوں کی تبلیغ کا نہیں تھا۔ حافظ صاحب معمولی سے معمولی کام کو بھی اسی طرح کرتے جیسے وہ کسی بہت بڑی ایجاد کی بنیاد رکھ رہے ہوں وہ سڑک پر اس مزے سے چلتے جیسے دلوں میں سے نکل رہے پہلی بارنگی سڑک پر قدم رکھ رہے ہوں۔ باتیں اسی طرح بہک بہک کر کرتے گویا ایک مدت کی خاموشی کے بعد انہیں پہلی بار زبان ملی ہو۔ چائے یوں شوق سے پیتے جیسے وہ ان کی آفس پیالی ہو۔ ان کی عمر زیادہ نہیں تھی۔ بس یہی کوئی تیس تیس برس کے ہوں گے ایک بال بھی سفید نہیں تھا۔

پتلے دُبلے بدن میں ہرن ایسی چستی تھی صارفہ فون میں محنت اور حلال کی کمائی گردش کر رہی تھی۔ مسجد میں آئی ہوئی روٹی کو ہاتھ بھی نہیں لگاتے تھے۔ والدہ کی وفات کے بعد جیونی پڑی پر کسی دسک نے قبضہ جمانا چاہا تو آپ نے اپنا بستر سر پر اٹھایا اور سبحان اللہ کہہ کر مسجد خیر الدین میں آ کر ڈیرہ جمایا۔ اُن کی شرع، حدیث شریف اور فقہ کی باتوں کے اسرار و رموز میری ناپختہ سمجھ سے باہر تھے۔ میں اُن کی درویشانہ سکراہٹ، ادا چھی اچھی باتوں کا شہیدائی تھا۔ رمضان شریف میں وہ تحصیل پورے والی مسجد میں تراویح پڑھایا کرتے تھے۔ ایک بار مجھے بھی اپنے ساتھ لے گئے۔ یہ مسجد تحصیل پورے کی مسلمان آبادی میں ایک مگنی کے کونے پر تھی۔ حجرے میں دو تین مولوی صاحبان بیٹھے ڈاڑھیوں میں ہاتھ پھیر پھیر کر بڑے جوش و فردش سے باتیں کر رہے تھے میں نے بھی کندھوں پر مدیتے شریف کا بسنتی رومال ڈال رکھا تھا۔ مجھے دیکھ کر ایک مولوی صاحب نے حافظ شین سے پوچھا۔

”یہ ہر فوراً بھی حافظہ قرآن میں کیا؟“

اور حافظ شفیق نے بلا جھجک کہا۔

”جی ہاں، جی ہاں! سبحان اللہ“

بعد میں جب میں نے پوچھا کہ حافظ صاحب آپ نے ٹھوٹ کیوں بولا؟ تو سر ہل کر بولے

”سبحان اللہ! خدا جھوٹ نہ بولائے۔“

میں پہلی صف میں حافظ شفیق کے پیچھے کھڑا ہو کر تراویح پڑھتا۔ تراویح کے بعد جب انہیں دوسرے بھرا ہوا گلاس ملتا تو پہلے اُدھا مجھے پلاتے اور جھوم جھوم کر کہتے۔

کیوں خواجہ صاحب : اسے کہتے ہیں خالص دودھ میں نے اُن کی جیب میں دو تین
آنوں کے سوا کبھی ایک پائی نہ دیکھی تھی۔ انہیں فالتو پیسے کی ضرورت بھی نہیں تھی۔ خبر ہے میں
روہ پچوں کو فارسی اور قرآن شریف پڑھاتے مگر اُن سے کچھ نہ لیتے۔ مسجد خیر الدین کا فرش
دھوئے۔ برادر دل میں جھاڑ دیتے۔ سقاوے صاف کرتے۔ نماز کے وقت بچوں کے
ساتھ مل کر صغیں بچھاتے لیکن مسجد میں گلی محلے سے جو طرح طرح کے کھانے آتے اُن میں سے
ایک لقمہ تک نہ لیتے۔ جو تھوڑی بہت لمبا بت انہوں نے سیکھ رکھی تھی ایسے اُسی پر

قناعت تھی۔ دو چار آنے کی دوائیں روز بک جاتی تھیں۔ تنور سے دال روٹی منگو لو، میں
جگرے میں بیٹھ کر کھا لیتے اور سبحان اللہ کہہ کر سادار میں چائے کے نئے کوئلے سدھانے
لگتے۔

ایک بار بال بازار کے مشہور لکھ پتی تاجر تندر لعل کا اکوٹا لڑکا کندن لعل سخت بیمار پڑ
گیا۔ وہ میرا ہم جماعت بھی تھا۔ اُس کے سپٹ میں کچھ خرابی ہو گئی تھی اور حالت روز بروز
تشویش ناک ہوتی جا رہی تھی تندر لعل اپنے بیٹے کندن لعل کے لیے انتہائی پریشان ہو گیا۔ اُس
نے گھر پر امرتسر، جالندھر اور لاہور کے نامی گرامی ڈاکٹروں کو جمع کر دیا۔ مگر اتفاق کی بات ہے کہ
یہ سارے ڈاکٹر لعل کو بھی کندن لعل کی بیماری کو دور نہ کر سکے۔ اُس کی حالت بگڑتی چلی گئی میں
نے کندن لعل کے تاجی سے کہا کہ حافظ صاحب کو بھی دکھالیں کیا خبر اللہ شفا دے دے۔ لہ
جی خود حافظ صاحب کو لے کر گھر آئے۔ کندن لعل کی حالت واقعی بہت خراب تھی۔ دونوں میں
وہ سوکھ کر لاشا ہو گیا تھا اور نقابہت کے عالم میں ایک شاندار پلنگ پر لیٹا نحیف سانس لے
رہا تھا۔ اُس کی ماما جی سرانے سر جھکائے بیٹھی آنسو بہا رہی تھیں۔ میز پر بڑی بڑی قیمتی دوائیں
پڑی تھیں۔ لوہے کی الماریوں اور آہنی سیفوں میں ہزاروں روپے کے زیورات بند پڑے
تھے مگر کندن لعل کو کوئی دیکھا نہ تھا۔

حافظ صاحب کو اندر داخل ہوتا دیکھ کر ماتھی نے سفید ساڑھی کا گھونگھٹ سا نکال لیا۔
حافظ شفیع نے بسم اللہ پڑھ کر کندن لعل کی نبض ٹٹولی اور آنکھیں بند کر لیں تھوڑی دیر بعد
آنکھیں کھول کر مسکرائے اور تندر لعل سے بولے۔

”فکر نہ کریں لالہ جی! بچہ اچھا ہو جائے گا۔ سبحان اللہ!“

پھر چپ میں سے ٹین کی ایک ڈبیا نکال کر اُسے کھولا۔ اس میں سے ننھی ننھی چھ پڑیاں
نکال کر میز پر رکھیں اور کہا۔

”دو دو گھنٹے بعد پانی کے ساتھ ایک پڑیا دیتے جائیں۔ اللہ شفا دے گا خدا کی قدرت
کہ اگلے روز کندن لعل کی حالت سنبھل گئی۔ حافظ شفیع نے مزید چھ پڑیاں بھجوا دیں۔ تیسرے
روز کندن لعل پلنگ پر اٹھ کر بیٹھ گیا چوتھے روز وہ پہنے گھر میں چل پھر رہا تھا اور پانچویں دن وہ

اپنے والد کی دکان پر بیٹھا تھا۔ لالہ تندر لعل اسی روز اپنے لخت جگر کو لے کر حافظ صاحب کے
پاس جگرے میں حاضر ہوا۔ میں بھی وہیں شال کی ٹنگل مارے صف پر بیٹھا تھا۔ حافظ صاحب سادار
میں کوئلے سدھانے سے ہوا کر رہے تھے لالہ جی نے ہاتھ جوڑ کر بندگی کی ادا اپنے بیٹے کے ساتھ
دو زانو ہو کر بڑے ادب سے صف پر بیٹھ گئے۔ حافظ شفیع نے مسکرا کر کہا۔

”خدا نے آپ کے بچے کو شفا دے دی۔ سبحان اللہ“

لالہ تندر لعل بکھا جا رہا تھا۔ بڑے انکسار سے ہاتھ جوڑ کر بولا۔

”حافظ جی! میں آپ کی دعا کے پیسے دیتے آیا ہوں۔ انہیں قبول کیجئے“ اس کے
ساتھ ہی لالہ جی نے جیب سے سو سو روپے کے بیس نوٹ نکال کر حافظ شفیع کے قدموں
میں رکھ دیئے۔ حافظ شفیع نے نوٹوں کو دیکھا۔ پھر لالہ جی کو دیکھا اور سر جھٹک کر مسکراتے
ہوئے بولے۔

”مگر لالہ جی! میری دعا تو تین کتنے کی تھی“

میں وہ منظر ساری زندگی نہیں بھول سکتا کہ کس طرح امرتسر کا لکھ پتی تاجر لالہ تندر لعل حافظ
شفیع کو دو ہزار روپے قبول کرنے پر اصرار کر رہے تھے اور حافظ شفیع کس بے نیازی سے
صرف تین آنے لینے پر بعد تھے دو ہزار روپے ۱۹۴۵ء میں بیس ہزار سے کم نہ تھے۔ آخر
لالہ جی کو سارے نوٹ واپس لینے پڑے اور اپنے کوٹ کی جیب میں سے تین آنے
نکال کر حافظ جی کے قدموں میں رکھ دیئے۔ اُس وقت لالہ جی کی آنکھوں میں آنسو تھے۔
انہوں نے فرط عقیدت سے حافظ شفیع کے پاؤں کو چھو کر ہاتھ اپنے ماتھے پر رکائے۔ جب
لالہ جی چلے گئے تو حافظ شفیع نے پنکھا صف پر بھینک کر دروازے میں سے سر باہر نکال کر
دیکھا کہ لالہ جی مسجد سے نکل گئے ہیں، پھر چوہے ٹٹو ان کا چہرہ خوشی سے دھک رہا تھا۔
بچوں کی طرح مسرور ہو کر بولے۔

”سبحان اللہ! آج کی روٹی کا بندوبست ہو گیا بٹ صیب“

آج کی روٹی۔ یعنی دو پیسے کی دو روٹیاں اور پیسے کی دال۔ کسی وقت ہر
دونوں کمپنی باغ کی سیر کو نکل جاتے۔ راستے میں کوئی جنازہ مل جاتا تو حافظ شفیع کلمہ شریف

پڑھ کر اس طرف لپکتے اور کندھا دے کر ساتھ ہو لیتے میں بھی اُن کے ساتھ ہو جاتا۔ محلے میں کسی لڑکی کی شادی ہوتی تو حافظ شفیع بن بلائے بھی وہاں پہنچ جاتے۔ دریاں بچھا رہے ہیں۔ قناتیں لگا رہے ہیں۔ دسترخوان جھاڑ رہے ہیں۔ منوں میں پانی ڈلوا رہے ہیں براتیوں کو پانی پلا رہے ہیں۔ نکاح ہوتا ہے بھر بھر کر پلاؤ اندر سے جا رہے ہیں اور جب برات چلی جاتی تو عمر خورد خانے کی دکان پر آکر وہی دو روٹیاں اور دال لیتے اور سبحان اللہ کہہ کر کھانا شروع کر دیتے۔ صبح صادق کو اٹھ کر مسجد میں داخل دیتے مسجد کے صحن میں جھاڑو دیتے اور منبر کو اپنے بسنتی رومال سے جھاڑتے۔ روضہ شریف میں سحری کے وقت محلے میں ہر گھر پر جا کر روزہ کھٹکھٹاتے اور صاحب خانہ کا نام لے کر اُسے جگاتے۔ افطاری کے وقت مسجد میں انواع و اقسام کے پھلوں اور کھانوں کے ڈھیر لگ جاتے مگر حافظ شفیع کو میں نے ہمیشہ نمک اور کھجور سے ہی روزہ افطار کرتے دیکھا۔ افطاری کے بعد میرے ساتھ ادا کرتے۔ تنور پر جا کر دال روٹی کھاتے اور پھر مجھے ساتھ لے کر تراویح پڑھانے تحصیل پورے والی مسجد کی طرف روانہ ہو جاتے۔ سارا رستہ ہنس ہنس کر باتیں کرتے جاتے روٹی اور سحری کے شعر سناتے۔ زعفرانی چائے کے فوائد پر لہک لہک کر باتیں کرتے۔ سبحان اللہ! کیا لوگ تھے!

حافظ شفیع سے امرتسر میں میری آخری ملاقات ۲۳ اگست ۱۹۷۷ء کو شریف پورے کے باہر ریلوے لائن پر ہوئی۔ امرتسر کے درو دیار فسادات کی آگ میں جل رہے تھے۔ شہر پر ہندو سکھ فوج نے قبضہ کر رکھا تھا اور امرتسر کے مسلمان مہاجرین سے بھری ہوئی ریل گاڑیاں شریف پورے سے پاکستان کی طرف جا رہی تھیں ہر شخص پریشان اور بے حال تھا۔ چہروں کے رنگ اٹے ہوئے تھے۔ آنکھیں دیران ہو رہی تھیں۔ کسی کا بیٹا شہید ہو گیا تھا تو کسی کا باپ۔ کسی کے بھائی کی لاش بے گور و کفن شہر کی کسی سڑک پر پڑی رہ گئی تھی۔ تو کسی کی بہن محلے کے کنوئیں میں چھلانگ لگا کر عزت کی موت مر گئی تھی۔ امرتسر جل رہا تھا۔ ہر طرف آگ اور خون کا کھیل ماریا تھا۔

شریف پورے والی ریلوے لائن کے آس پاس مہاجرین کا بسیلاب اٹھ آیا تھا بلوچ رجمنٹ کے جوان مشین گنیں سنبھالے جالندھر اور بٹالے کی طرف پوزیشنیں لئے بیٹھے تھے۔

شریف پورے کے آس پاس کی آبادی کو مہاجرین کیمپ قرار دیا جا چکا تھا۔ شہر میں رہے رہے مسلمانوں کے پریشان حال تعلقے یہاں جمع ہو رہے تھے۔ رات رات بھر شہر کی طرف سے ہندو اور سکھ فوجی اس کیمپ پر فائر کھول دیتے۔ سارے کیمپ پر ایک دہشت کی فضا طاری تھی۔ ہمارے خاندان کے تقریباً سبھی افراد پہلی گاڑی میں لاہور بغداد ہو چکے تھے۔ اب مجھے یاد نہیں کہ میں کس لئے اکیلا شریف پورے میں رہ گیا تھا۔ بہر حال میں ریلوے لائن کے پاس دوسرے ہزاروں مہاجرین کے ساتھ ہتھوروں پر بیٹھا پاکستان جانے والی گاڑی کا انتظار کر رہا تھا اتنے میں امرتسر ریلوے اسٹیشن کی جانب سے چھک چھک کرتی غالی گاڑی آئی اور ہمارے پاس آکر رُک گئی۔ بس اس کے بعد کچھ فیر نہیں کہ کیا ہوا دیکھتے دیکھتے ریل گاڑی کے اندر، باہر اور چھت پر تل دھرنے کو جگہ باقی نہ تھی۔ میں بھی کسی نہ کسی طرح ہجوم میں ٹھس ٹھسا کر ایک ڈبے میں سوار ہو کر کسی کے سامان پر بیٹھ گیا میں ایک آدمی کی ٹانگ اور دوسرے آدمی کے بازو میں سے کمر کی کے باہر کا کچھ مقرر دیکھ رہا تھا۔ ہر طرف ایک شور، ایک ہنگامہ اور ایک قیامت برپا تھی۔ اتنے میں میں نے حافظ ثلین کو دیکھا۔ وہ ایک میلا سا تھلا کندھے پر ڈالے ایک طرف سگنی کے کھجے کے پاس کھڑے تھے انہوں نے دو ایک بار گاڑی میں سوار ہونے کی کوشش بھی کی مگر لوگوں نے انہیں دھکا دے کر پیچھے ہٹا دیا۔ وہ ایک بار پھر چپ چاپ سے کھجے کے ساتھ لگ کر کھڑے ہو گئے۔ وہ مجھ سے کافی فاصلے پر تھے اور میں انہیں آواز نہ دے سکتا تھا گاڑی چل پڑی۔ بچے کچے لوگ بھاگ بھاگ کر سوار ہونے لگے۔ میں نے دُور سے حافظ شفیع کو دیکھا۔ انہوں نے بھی ایک کر ایک ڈبے میں سوار ہونے کی کوشش کی لیکن ایک آدمی نے جو پائیدان پر لٹکا ہوا تھا حافظ جی کا ہاتھ پرے جھٹک دیا۔ گاڑی اب شریف پورے سے اُگلے نکل آئی تھی۔ شریف پورے کیمپ سے پاکستان آنے والی یہ آخری گاڑی تھی۔ اس کے بعد نو گاڑی بھی آئی اسے کاٹ دیا گیا۔ کچھ دُور تک میں حافظ شفیع کو دیکھتا رہا۔ وہ ریلوے لائن کے قریب اکیلے کھڑے، تھلا کندھے پر ڈالے چپ چاپ پاکستان کو جانے والی گاڑی کو تک رہے تھے۔ اُس وقت میں اُن کے پاس نہیں تھا مگر مجھے یقین ہے کہ انہوں نے ایک بار مزور سر جھٹک کر سڑک سے ہونے کہا ہو گا۔

”سبحان اللہ“

امرتسر کا اسد جو

نام اُس کا اسد جو تھا۔

سردیوں میں وہ محلے کی ایک ٹھکی ہوئی چھت والی بوسیدہ اور اندھیری دکان میں ہرلہہ بیچتا اور گرمیوں میں کوئی کام نہ کرتا عام طور پر وہ اس چھپلائی دھوب اور گرم ٹووالے موسم میں کشمیر چلا جاتا جہاں امیر اکمل کے کسی قریبی گاہک میں اُس کی شے میں کوئی بھوپھی رہا کرتی تھی۔ ستمبر کے شروع دنوں میں وہ کشمیر سے واپس امرتسر آتا تو اُس کا رنگ سرخ ہوتا وہ اپنے ساتھ کشمیر کے ابری سیب، بادام اور دو ایک لوتیاں ضرور لاتا۔ لوتیاں وہ محلے میں ہی کسی کے ماترینچ دیتا اور بادام اور سیب ہمسایوں میں بانٹ دیا کرتا۔ ایک بار بابا جی نے اسد جو سے بھٹے رنگ کی ایک لونی خریدی اور اُسے منڈا کر ہم بھائیوں کے کوٹ بنوا دیئے وہ اس قدر گرم تھے کہ پوہ ماٹھ کی سردی میں بھی اُن میں گرمی محسوس ہوا کرتی۔ کئی سالوں تک اُن کوٹوں نے ہمارا پیچا نہ چھوڑا۔ اسد جو اپنے لیے کوٹ کی جھولا مناجیب میں دو تین لال لال کشمیری سیب نکال کر ابا جی کو دیتا اور کہتا۔

”خلیفہ! ایسے خاص تیرے لئی کھدا اکی“

یہ امیری سیب جس کمرے یا دکان میں کاٹے اور چھیلے جاتے وہاں کی فضا اُن کی ٹھنڈی اور انتہائی شریں خوشبو سے بھک اٹھتی۔ اسد جو سردی کی اندرونی جیب میں سے لکڑی کے دستے والے پرانا چاقو نکال کر سیب کی ایک قاش کاٹتا اور مجھے دے کر کہتا۔

”اٹے کھا اٹے مجھے دے“

اسد جو کا لہجہ ٹیٹ کشمیری تھا۔ وہ کشمیری زبان بڑی روانی سے بولتا تھا۔ امرتسر کے کشمیریوں

کو کشمیر کی دادی سے ہجرت کرنے ایک دو پشتیں بزرگنی تھیں۔ اور اب اُن کے گھروں میں صرف، ہانیاں دادیاں یا بڑے بڑے ہی تھوڑی بہت کشمیری بولتے تھے لیکن اسد جو کشمیر میں ہی پیدا ہوا۔ وہیں اُس نے اپنا بچپن اور جوانی تزاری۔ پھر جانے کیا ہوا کہ وہ امیر اکمل والے اپنے گاؤں سے بدیا بستر اٹھا کر امرتسر آگیا اور پھر یہیں کا ہو رہا۔ اُسے کشمیر سے اُسے اٹھارہ انیس برس ہو چکے تھے جس وقت کی میں بات کر رہا ہوں اُس وقت اسد جو کی عمر پچاس برس سے دو ایک سال اوپر ہی تھی مگر اس کی صحت بہت اچھی تھی۔ سرخ و سفید رنگ، اونچا لمبا چوڑے شانے، گنجان سیاہ مہوڑیں، تیز چکدار عقاب، آنکھیں۔ ڈارمی صفا چٹ، رعب دار بھری بھری مونچھیں چوڑے کانٹ کی سرخ لویں، گویا ابھی خون ٹپک پڑے۔ پاؤں میں پمپ شو اور کبھی پٹاوردی چل ہوتی۔ شوار قمیض کے اوپر صدر کی پہن کر دستہ با مثال اوڑھ لیتا۔ سر پر روس کے قازقوں والی جت دار سمور کی ٹوپی چوڑے رخ پہنتا تھا۔ دور سے یوں لگتا جیسے زار روس کی فوج کا کوئی پرانا تاتاری سپاہی چل رہا ہے۔ آواز گرفت اور پاٹھ دار تھی۔ کبھی کبھی سردیوں میں پہلی جنگ عظیم کے فوجیوں کی برانڈی سے سنی ہوئی جیکٹ پہن کر نیچے فلائین کا گرم پاجامہ پہن لیتا۔ بگریٹ بالکل نہ ہوتا تھا۔ مگر حقے کا بڑا رسیا تھا۔ ہر لیے کی دکان پر سے ہر وقت منہ میں لگی رہتی۔ تمباکو نے دانت خراب کر دیئے تھے۔ سر درمیان میں سے گنجہ تھا۔ ارد گرد کے بالوں اور مونچھوں میں کبھی کبھی سفیدی چھلکنے لگی تھی۔

سردیوں میں جس بوسیدہ دکان میں وہ ہر لہہ بیچتا وہ ہمارے محلے میں پختی لگی کے سامنے تھی۔ دکان کے باہر ایک پرانا رنگ خوروہ بورڈ لگا تھا جس پر فارسی کا یہ شعر لکھا ہوا تھا۔

ایک پاؤ ہر لہہ منجھا ہی

بہتر از ہزار مرغ و قاف ہی

ہر لہہ بنانے میں اُس کا شہر میں کوئی جواب نہیں تھا۔ اُس کی دکان بڑی گندے اور گٹی موز تھی۔ چھت کی کڑیوں پر دھوئیں کی کالک جچی تھی اور جاسے ٹک رہے تھے۔ کونے میں پانی کے دو منگے ہندو کی پڑے رہتے۔ دیواریں دھوئیں سے سیاہ ہو رہی تھیں اور جانے کس شے کی بڑیاں ٹکی تھیں۔ اندر داخل ہوتے ہی بائیں طرف دیرھ فٹ اونچا اور کوئی چھ سات مربع فٹ چوڑا پتھر تھا جس کے کناروں کی اینٹیں اکھری ہوئی تھیں۔ اس پتھر سے کیڑے پچ میں مٹی کا بڑا سا مٹ ٹرھا تھا جس کا

چوترے کی سطح کے برابر تھانیچے بھنی تھی۔ اس منٹ میں جانے کتے سیر بکرے کا گوشت چنے کی دال اور انواع و اقسام کے مسالے ڈال کر اسد جو بھی کی ہلکی ہلکی آنچ پر دلات بھر پڑے سے ڈنڈے سے گھوٹا رہتا رہتا رات کے پچھلے پہر ہر لیبہ پک کر تیار ہو جاتا اور اذان کے وقت گاہک آکا شروع ہو جاتے۔ اسد جو پو پٹے کی ٹھنڈی سردی میں دکان کے پٹ جوڑے دھواں بھری دکان اندر گرم حمام بنی ہوتی۔ اسد جو آستینیں چڑھائے کھیر سے جبک کر منٹ میں سے ہر لیبہ نکال کر فرانی بین میں ادھک ڈال گھی کا تڑکا لگاتا اور گاہک کے برتن میں پٹ کر اوپر دو کباب نکھتا اور گرم مسالے کی پٹلی چھڑک دیتا۔ اکثر گاہک اپنا گھی ساتھ لاتے۔ میں بھی منہ اندھیرے کا کامدو کی دکان سے گرم گرم قلیچ لے کر پیالی میں گھی لئے اسد جو کی دکان پر پہنچ جاتا سردی سے میرے دانت بچ رہے ہوتے۔ لیکن اسد جو کی دکان کا پٹ کھول کر اندر داخل ہوتے ہی یوں محسوس ہوتا جیسے کسی نے کندھوں کے اوپر گرم لوئی ڈال دی ہو۔ دھبکتی انگلیشی کے آگے بیٹھے اسد جو کا چہرہ سرخ ہو کر پسینے میں جھک رہا ہوتا۔ مجھے دیکھتے ہی وہ گاہکوں کے دیگے پر صافی بھیر کر کہتا۔

”آگئی میری چھوٹی خلیفہ جی“

دکان کی چھت دھوئی کے بادلوں میں چھپی ہوتی اور اندر گرم مسالوں کی تیز مہک پھیلی ہوتی میری آنکھوں میں پانی آ جاتا اور تھوڑی سی دیر بعد مجھے گرمی لگنے لگتی۔ لیکن اباجی کا حکم تھا کہ منٹ سے نکال کر جب ہر لیبہ سرد ہو میں گھیر لایا جاتا ہے تو اس کا اثر اڑ جاتا ہے۔ وہ خود اکھاڑے سے لپٹے ہوئے وہیں بیٹھ کر ہر لیبہ کھاتے تھے۔ اسد جو میرے لئے ہر لیبہ نکال کر فرانی بین میں اسے گھی کا تڑکا لگاتا پھر میرے پیالے میں ڈال اس پر دو کباب رکھ کر گرم مسالے کی ہوائی چھوڑتا اور مجھے مختار کر کہتا۔

”منو کھاندی تے جان بناوندی چھوٹی خلیفہ جی“

چوترے میں دھننے بھاپ چھوڑتے ہر لیے سے بھرے ہونے منٹ کے آگے بیٹھا، بڑی بڑی مونچھوں اور پسینہ بھرے سرخ و سپید چہرے اور چوڑے شانوں والا اسد جو بڑی گرم جوشی سے ہر لیبہ نکال کر فرانی بین میں ڈال رہا ہوتا لاشیں کی روشنی میں اس کا صحت نما سایہ بقی دیور پر لہرا رہا ہوتا اور مجھے یوں لگتا جیسے وہ کوئی الف لیلے کا جین ہے جو بھوتوں کو کھانا کھلا رہا ہے

ہر لیبہ کھا کر جب میں دھوئی بھری بند دکان کی گرم فضا سے باہر نکلتا تو دسمبر جنور کی کیخ بستہ سردی میں بھی مجھے پسینہ آ رہا ہوتا۔

سورج نکلنے سے پہلے اسد جو کا سارا ہر لیبہ ختم ہو جاتا۔ پھر وہ اپنے لئے رکھی ہوئی بڑے کی تیل ٹوٹی، ماری میں سے نکال کر آست کم از کم تین چھٹا تک گھی کا تڑکا لگاتا اور تین چار قلیچوں کے ساتھ ڈٹ کر کھاتا اس کے بعد وہ بوہڑ والی مسجد میں باکریٹ کی نماز ادا کرتا اور مسجد کے حجرے میں لوئی اور کھڑک سو جاتا۔ پھر میں سکول سے واپس آتا تو اسد جو کو شاد سنار کی دکان پر ساور دیکھتے دیکھتا۔ شاد سنار کی دکان پر پڑھے لکھے اور باذوق لوگوں کی ایک منڈلی آکر بیٹھا کرتی تھی دن میں گورے چٹے بھاری بدن اور بڑے خوبصورت سہوار موتیوں ایسے دانتوں والے باؤنڈ سین بٹ تھا۔ جو ریوے میں ملازم مقابٹ صاحب کے گھر میں انگریزی پڑھنے جا یا کرتا تھا۔ میں سب سے بھول جاتا تو میرا کان مروڑ کر غصے میں کہتے۔

”کی جھک مار سب سے بھول“

”جھک“ کے لفظ کو وہ پنجابی میں ”چہنچ“ کہتے اور مجھے اچھی طرح یاد ہے جب وہ بیرون منزل ادا کرتے تو مجھے یوں لگتا جیسے اُن کے منہ میں جھاگ بھرا ہوا ہے۔ وہ ہمارے مکان کے سامنے والی مسجد کے مقابلے میں نہانے یا کرتے تھے۔ دھو کر نے والی ٹوٹیوں کے آگے قہرے پر بیٹھ کر پیسے تو مسواک کرتے۔ پھر کالی نوک ٹوٹ پیٹ سے خوب جھاگ نکال نکال کر دھوئی کو صاف کرتے۔ وہ دانتوں کی صفائی اور صحت کسبے حد خیال رکھتے تھے۔ آج کل غالباً وہ ملن کے ریوے آفس میں ہیں۔ سنہ ۱۹۸۵ء کے سامنے دانت جھڑ گئے ہیں۔ ایک روز وہ سڑک پر نفٹ خواں جیسے اپنا رنگ گور کرنے کا بڑا شوق تھا۔ سقاوے میں نہارا تھا اور ہمارے کمرے میں نہیں لیتا تھا۔ بٹ صاحب تو بیدار نہ تھے پر ڈالے کھڑے بے چین ہو رہے تھے۔

جب ماسٹر رفیق قیامی بار صاحب رگائے لگا تو بٹ صاحب نے جھجھکا کر کہا۔

”ماسٹر رفیق اگر تم شملے میں اس طرح پانی ضائع کرتے تو تم پر حکومت نہیں

لگا دیتی“

بٹ صاحب کو کھینکی موسیقی سے بڑا کڑا تھا۔ شاد کی دکان پر ان لوگوں سے

مرتبجاں مرغ شریف النفس بابو سید احمد بھی یہ کرتے درتین کہانیاں انگریزی میں ٹائپ کر کے بھی بھجوا رکھی تھیں جبکہ کوئی جواب نہ آیا تھا۔ غالباً ضلع کچہری میں سٹیٹوٹرم تھے شادی نہیں کی تھی۔ یہ وہ ہیں کہ بچوں کی پرورش کر رہے تھے۔ بڑی شائستگی سے باتیں کرتے فسادات میں جب مسکموں نے رہائیں سونت کر ان کے گھر پر حملہ کیا تو بابو سید محمد ایتوں پر ان کے وار روکتے رہے۔ ان کے دونوں ہاتھوں کی ہچکیاں کٹ گئیں اور کنبشی سے لے کر کان کی ہانک ایک گہرا زخم یا اس خوش ذوق منڈل کا تیسرا رکن ایک بند وقت۔ جس کو یہ لوگ دت صاحب کے نام سے پکارتے تھے۔ رات بھی گور چٹا۔ بھرے بھرے جسم والے بندولہ تھا جس کے اوپر والے چار دانت ذرا اونچے تھے جو بات کرتے ہوئے صاف نظر آتے۔ ایک دانت پر سونا چڑھا تھا یہ شخص پتھر لگ گیا بھی لیتا تھا۔ مکمل جھریا اور استاد عبدالکریم خان کا عاشق تھا۔ شاید بھبھے والے کھوہ سے اپنے دوستوں کو ملنے شاد سنار کی دکان پر آیا کرتا۔

شاد سنار خود بڑا خوش ذوق، مرتبجاں مرغ اور کم گو انسان تھا۔ حقہ بہت پیتا تھا لہذا میں جڑے ہوئے سونے کی چھلانی کر رہا ہوں یا اخبار پڑھ رہا ہوں۔ حقے کی منہ میں دبی رہتی۔ تمباکو واسے پان درجنل کے حساب سے کھاتا تھا۔ سامنے اللہ بندے پان والے کی دکان تھی۔ اللہ بندہ پان سگریٹ بھی بیچتا اور گود میں رکھے لکڑی کے تختے پر ڈرائنگ کاغذ چپکائے فسل سے اٹارک کی تصویر بھی بنا رہا ہوتا۔ کام کرتے کرتے حقے کی نئے ہٹا کر شاد سنار آواز دیتا۔

ہلاؤ یا اللہ بندے پان ہی کھلا دو

اسد جو ان خوش ذوق خوش مزاج لوگوں کی منڈلی کا ایک اہم جزو تھا۔ یہ لوگ عام طور پر تیسرے پر شاد دکان پر جمع ہو جاتے زیوروں سے بھرنے والی چھت تک گئی لوسے کی الماری کے آگے کچھی ہوئی چاندنی پر گاؤ تکیے سے ٹیک لگائے شاد پان منہ میں دبائے حقہ پی رہا ہوتا۔ قریب ہی بابو محمد حسین بٹ بابو سید احمد اور دت بیٹھے بڑی گرم جوشی سے منس منس کر باتیں کر رہے ہوتے کسی وقت دت ہاتھ کا زرت کر کے کوئی تان اڑا دیتا اور سبھوں کے سر جھوم جاتے بہنی الماری۔ پہو میں اسد جو چوکی پر بیٹھا سمار کو خوب چپکا کر اس میں چائے کی پتی ڈال کر آگ سد رہا ہوتا۔ جب چائے پک جاتی تو سب مل کر بڑے شوق سے پیتے برسات ہو

گرمی ہو یا پالا پڑ رہا ہو۔ یہ خوش ذوق منڈلی تیسرے پر شاد سنار کی دکان پر ضرور اپنی مغل جاتی۔ کبھی کبھی میں بھی بازار میں چورس پاسی کیلئے کیلئے ان لوگوں کے پاس جا کر کھڑا ہو جاتا۔ مجھے ان کی باتیں یاد نہیں لیکن ان کے باتیں کرتے ہنستے مسکراتے، قہقہے لگاتے، تانیں اڑاتے اور کسی تان پر جھوم جھوم کر سر ہلاتے چہرے ضرور یاد ہیں۔ چائے کی پیالیاں ان کے ہاتھوں میں ہوتیں۔ انکیس چائے کی گرمی اور گفتگو کی مسرت سے چمک رہی ہوئیں۔ اسد جو بھی پیالی ہاتھ میں تھا بڑی عقیقت سے ان لوگوں کی باتیں سن رہا ہوتا۔ وہ ان کی باتوں میں حصہ نہیں لیتا تھا مگر ان کی ہر بات پر سر ضرور ہلا دیتا تھا۔ شام پڑے جب یہ مغل برخواست ہو جاتی تو شاد سنار الماری میں زیورات بند کرنے شروع کر دیتا اسد جو دکان کے پھٹے پر ایک طرف بیٹھ کر سمار میں سے چائے کی گیلی پتی نکال کر میچے پینکتا۔ پھر اسے لاکھ سے مانجھ کر خوب چمکاتا اور دھلی دھلائی پیالیوں کے ساتھ لگے رنڈ کے لئے الماری میں بند کر دیتا۔

عید میلاد النبی کے جلوس میں اسد جو اپنی تھامری ٹوپی میں چاند تارے کا تکرہ لگا سبز رنگ کا بالائی پرچم ہاتھوں میں تمام لیتا وہ جلوس کے آگے آگے عقابی آنکیں بالکل سامنے گاڑے، چہرہ ساکت کئے، نئے نئے قدم اٹھانے جرنیلوں ایسی شان سے چل رہا ہوتا۔ اس کی مانگے کی جرس رانوں پر سے پھولی ہوتی۔ گرمی چڑھے کی بیٹی کے ساتھ تنوار لٹک رہی ہوتی۔ گل مجھے پھر تک رہے ہوتے رخسار جوشی اسلام سے تمنا رہے ہوتے۔ میں اس کے ساتھ ساتھ چل رہا ہوتا اور بار بار اپنا منہ اوپر اٹھا کر اسد جو کے مونچھوں بھرے لال لال چہرے کو دیکھا کرتا مجھے وہ کوئی سپر سالار لگتا جو اپنی فون ظفر موج کے ساتھ دشمنوں پر دھاوا بولنے جا رہا ہو۔ ایک بار میں نے اس کا بازو پکڑ کر اسے ہلایا تو اسد جو نے نظریں سامنے رکھے بائیں مونچھ کو پھیر پھرا کر اتنی زور سے "ہوں ہوں" کہا کہ میں ڈر کر پیچھے ہٹ گیا۔

محلے میں کوئی بیاہ شادی ہوتی تو اسد جو کو شور بے کی دھمک پر بٹھلایا جاتا کیا حال جو کسی کے پیالے میں مقدار سے بڑھ کر شور بہ چلا جائے یا ایک بوٹی بھی فاقو پڑ جائے۔ اسد جو تین چڑھانے ذرا ترچی رکھی شاد بے کی دھمک کے آگے پیڑھی پر بیٹھا ہوتا بڑا جھج اس کے ہاتھ میں ہوتا۔ بڑے پختہ کے انداز میں پیالیاں شور بے سے بھرے جاتا۔ کوئی اچھی بوٹی دھانی دیتی تو سب کے

سامنے منہ میں ڈال لیتا اور رد مال سے منہ نہیں پونچھ کر کہتا۔

اس نے میرا تہرہ لگا ہوتا سی بہ
کسی روز وہ ہر سیدہ بیچ کی دکان بڑھانے کے بعد بڑے کا کا کے تنور پر آجاتا۔ تنور کے پاس
ہی ازار کے رخ پر بچھے ہوئے پرانے تخت پوش پر وہ ٹانگوں پر لوٹی ڈال کر بیٹھ جاتا۔ محلے
کے بچے اور بچیاں اُس کے آگے رو مل بچھا دیتیں۔ کا کا تنور سے گرم گرم تافتا نئے گردے اور
قلچے نکال نکال کر اسد جو کے آگے پھینکے جاتا اور اسد جو گاہکوں کو منٹائے جاتا کوئی بھی شور مچاتی۔

اسد جو پہلے مجھے دو۔ پہلے جی آئی تھی۔

اسد جو منہ چوں کے پیچھے ہنستا اور بچی کے سر پر آہستہ سے دھوپ مار کر کہتا۔

تینوں کی دے دیندی۔

پھر وہ تنور پر رکھے حقے کی نے منہ میں ڈال کر اندر کڑی میں مد سے کے پڑے تولتے ہوں
گانی کو آواز دیتا۔

جلدی گردی سی جلدی گانی۔

فسادات میں جب محلے میں ہر طرف بے چینی پھیل ہوئی تھی اسد جو کا سوادہ ضرور گرم ہوتا
تھا۔ پھر فسادات زیادہ شدت اختیار کر گئے۔ شاد سند کی دکان پر تالہ پڑھ گیا۔ وہ ہندو علاقے سے
ہمارے محلے میں آتا تھا۔ دت نے بھی آتا بند کر دیا۔ شاد کی دکان پر سب نے والی زندہ دل محفلیں اجرائیں
اسد جو سوادہ لے کر اپنی بوسیدہ چھت والی دکان میں چلا گیا۔ اُس نے امیر اکمل چلے جانے کی خوش
کی لیکن فسادات کی آگ راستے میں دیوار کے کھڑی تھی۔ سارا محلہ دیرن ہو گیا۔ چاروں طرف آگیں بھڑک
اٹیں۔ چوک چوک میں قتل و خون کا بازار گرم ہو گیا۔ اسد جو گلی کے بند دروازے پر ساری ساری رات
پہرہ دیتا۔ ہمارے ساتھ وہ بھی گلی میں بند ہو گیا تھا۔ کرفیو لگی دہشت زدہ راتوں میں دُور سے غور
کی آوازیں دگر لہروں کی ٹھانیں ٹھانیں سنائی دیا کرتیں۔ ایک رات میں گلی میں ہی اپنی غلہ کے
مکان۔ سے نکل کر اپنے مکان کی طرف جا رہا تھا کہ میں نے چاچا قادری ٹال ہات کی دکان کے
پہنٹے پر اسد جو کو بیٹھے دیکھا۔ مجھے ہوئے سوادہ پر ایک ہاتھ رکھے وہ دکان کے بند دروازے
سے ٹیک لگائے کھوٹی کھوٹی آنکھوں سے غلہ میں تک رہا تھا۔ فضا میں تڑا تڑا ناک کی آوازیں

گو نج رہی تھیں مجھے یوں لگا جیسے اداس اور ٹلگن اسد جو۔ اکیلا اور بے یار و مددگار اسد جو۔
اپنی بادام کے ٹکڑوں سے لدی بوٹی دادیوں، اپنے ہنستے مسکراتے دوستوں اور اُن کی پُر جوش محفلوں
کی سوگوار یاد میں گم ہے۔ چائے کی پیالی خالی چھوڑ کر محفل سے اُٹھ کر چلے جاتے والوں اور مجھ بھی
واپس نہ آنے والوں کے قدموں کے نشان کو دیران نگاہوں سے تک رہا ہے۔

اس کے بعد میں نے اسد جو کو پھر نہ دیکھا۔ کبھی کبھی دل میں ایک امنگ سی پیدا ہوتی
جسکے کہیں سے اسد جو کو دھونڈ کر لاؤں۔ اُسے اُس کے پیاری پیاری صورتوں والے دوستوں میں
لا کر بٹھا دوں اور کہوں اے اچھے لوگو! اچھی چھی باتیں کرو۔

اے اسد جو سوادہ میں چائے کی پتی ڈال دے۔ اور جب کھولتی چائے خوشبو دینے لگے
تو ایک پیالی مجھے بھی دیتا۔
لیکن اسد جو کھو گیا ہے۔ اُس کا سوادہ کھو گیا ہے۔

امرتسر کا ایک گیت کیسے

آج میں آپ کو امرتسر کے ایک گیت کیسے کی کہانی سناتا ہوں۔

یہ کہانی امرت ناکیز سے شروع ہو کر لاہور کی فلمنگ روڈ اور لاہور ہوٹل کے ارد گرد اگر ختم ہو جاتی ہے۔ میں نے اس دردناک کہانی کے اجزائے ترکیبی کو امرت ناکیز میں مرتب ہوتے پہلے چڑھتے، پھلتے پھوٹتے دیکھا اور پھر لاہور ہوٹل اور فلمنگ روڈ کے گلی کوچوں میں ان اجزائے پر خچے اڑتے دیکھے۔ انہیں خاک و خون میں غلطاں دیکھا۔ میں اس کہانی کو امرتسر کے ایک پرانے سینما گھر امرت ناکیز سے شروع کرتا ہوں۔ کیونکہ یہ شعلہ جواب راکھ بن چکا ہے پہلے پہل اسی آتش کدے سے اٹھا تھا۔

ہال بازار امرتسر میں ایک بازار چوک گول مٹی سے پھم والے بازار کی طرف مڑتا تھا۔ اسے کمرہ کہنیا لعل کہتے تھے۔ کمرہ کہنیا لعل کے چوباروں میں طوائف بیٹھا کرتی تھیں۔ دن بھر اس بازار کے لکڑی کے چھجے دار مکانوں کی کھڑکیوں پر چھین پڑی رہتیں۔ شام ہوتے ہی بازار کی رونق شروع ہو جاتی تھیں اور اٹھ عاتق کھڑکیوں میں کہیں بکلی کے قہقہے اور کہیں لالیشیں روشن ہو جاتیں اور ان کی روشنی میں طوائفیں خوب بن سو کر، سج دھج کر سڑخی پاؤ ڈر مقویپے چوکیوں یا کرسیوں پر اگر بیٹھ جاتیں وہ بہت بنی شوکیوں میں رکھے ہوئے بلاؤ مال کی طرح چپ چاپ بیٹھی رہتیں۔ کبھی گردن پھیر کر نیچے بازار میں آواز سے کہنے والے تماشینوں کو دیکھتیں ذرا سا مسکراتیں اور پھر بہت بن کر بیٹھ جاتیں۔ کوئی پان چار ہی ہوتی۔ کوئی سگریٹ پی رہی ہوتی۔ جس وقت کوئی طوائف اچانک اٹھ کر کھڑکی سے غائب ہو جاتی تو اس کا مطلب ہوتا کہ کوٹھے پر تماش بین آگیا ہے۔ یہ تماش بین منہ سر چھپا کر کوٹھے کی اندھیری سیڑھیاں اوپر چڑھ جاتے اور تھوڑی دیر بعد جب

منہ سر چھپانے نیچے تر کر بازار کے ہجوم میں گم ہو جاتا تو کوٹھے والی طوائف دوبارہ پاؤ ڈر سڑخی تھوپے کھڑکی میں آکر بیٹھ جاتی۔ بوکی بیٹھک۔ روڑیاں والی گلے ساتے اسی بازار میں تھی۔ گوری چلی، بڑا خوبصورت جسم سنہری بال اور نیلی نیشیلی ہانگھیں۔ اس کی بیٹھک کے نیچے کھڑ تماش بینوں کا ہجوم رہتا اور عید بیاگھی پر تو جو کمر گھمانے کی بہت نہ ملتی تھی۔ میں ان دنوں ساتویں یا آٹھویں جماعت پڑھتا کرتا تھا اور ایم اے و سکول جاتے یا آتے ہوئے میں منہ اوپر اٹھا کر بو کو مزور دیکھ لیا کرتا تو دن کو بھی بن سو کر کھڑکی میں بیٹھ کرتی۔ مجھے وہ نیلی آنکھوں والی روہن شہزادی لگتی ہے جو اپنے سنہری بال کھولے۔ رشا ہی بھرے میں بڑی تمکنت سے بیٹھی دریائے نیل کے پرسکون پانیوں پر سیر کر رہی ہو اس کی ناک میں فیروزہ نغما سا لگینہ دن کو دھوپ میں اور رات کو بجلی کی روشنی میں دکھ رہا ہوتا۔ بلاشبہ بو کمرہ کہنیا لعل کی سب سے نازک اندام اور حسین طوائف تھی۔ پاکستان بننے کے کچھ ہی سال بعد میں نے اس روہن شہزادی کو ہیرا منڈی کی ایک گلی میں دیکھا کہ اس کا شاہی بھرائٹ چپکا تھا۔ محل کی زرنگار خواب گاہوں میں لگ لگ چکی تھی سنہری بالوں میں سفید راکھڑ رہی تھی۔ گورا چہرہ سوکھے ہوئے پرانے چمڑے کی طرح سکڑ گیا تھا۔ اور وہ آنکھیں جو کبھی نیلی اور شفاف ہوا کرتی تھیں اب گندے جوہر کے زنگار سے پتھر کی طرح ہو گئی تھیں۔ عیاشی کے شعلوں نے اس کے جسم کے آتش دان کو وقت سے پہلے جل کر راکھ کر دیا تھا۔ اب یہ آتش دان ٹھنڈا تھا۔ اس کی اکھڑی ہوئی اینٹوں میں بھی ہوئی سرد راکھ تھی اور دیوار پر دھوئیں کے جالے لٹک رہے تھے۔

مختار بیگم عرف دارکی امرتسر والی کی بیٹھک بھی۔ سی بازار میں تھی۔ یہ بیٹھک فرینڈز ہوٹل سے ایک مکان چھوڑ کر تھی۔ یہی وہ چوبارا تھا جہاں آغا حشر کاکڑ کی مغلیرم جو کرتی تھیں۔ لیکن ان دنوں آغا حشر غالباً ٹھکے ہو چکے تھے۔ ورنہ امرتسر والی کی بیٹھک کے بل میں امرت ناکیز تھی۔ سامنے بڑا اور دانے دار کھانڈہ تاشے اور کھانڈے کے ٹھونے بنانے والوں کی دکانیں تھیں۔ ذرا پرے "دل بھریاں دی ڈی" تھی یہ ایک ہوٹل تھا اس ہوٹل کے باہر ایک اونچا لمبا شیشے کا شوکیں تھا جس میں کرسیاں ڈال کر شکل کا ایک بوڑھا، قد میں سڑخ سودا دار کی بوتلی اور گلاس لئے کھڑا رہتا اس کے اندر کچھ ایسے گل پڑے گئے تھے کہ باہر

اُس کا بوتل والی لٹہ لگا کس کی طرف جاتا اور چہرہ واپس آتا تھا۔ ہم سکول آتے جاتے اس کمرہ سے غافل ہو کر بڑے شوق سے دیکھا کرتے تھے۔ بیساکھی پر جب باہر سے دیہاتی سکھ آتے تو یہاں ٹھنڈے ٹھنڈے لگ جاتے۔ میں نے کئی بار اس بوتل میں دوستوں کے ساتھ گدے دار اونچی اونچی کرسیوں پر بیٹھ کر سوڈا واٹر اور ایک شیک پیا اور سنگ مرمر کی گول گول ٹھنڈی میزوں پر بانہیں ڈک کر قبضہ لگاتے ہیں۔ کونے میں ٹوکس کے پاس کاؤنٹر پر بیٹھا ایک موٹا لالہ سینگل کانن، جو تھیکا رائے اور مکمل جھریا کے ریکارڈ بجا کرتا تھا۔

خدا۔ بالم آئے بسو میرے من میں
اور پھر مکمل جھریا کی گائی ہوئی مشہور غزل

مجھے جس دم خیال نرگس ستا رہا ہے
مرا جی جو مٹی ہے وہ میں پیارا نہاتا ہے

ان دنوں یہ ریکارڈ بے حد مقبول تھے اور لوگ انہیں سن سن کر سر دھنکارتے تھے ہاں۔ تو میں امرت ناکیز کی بات کر رہا تھا جو اسی بازار میں تھی۔ امرت ناکیز یہ سب سے پرانا سینما ہال تھا۔ سینما ہال کیا تھا بس ریل کا ایک لمبا چوڑا ڈبہ تھا جس کے آخر میں جا کر پردہ لگا تھا۔ اُس کی مشین کے چھنے کی آواز باہر بازار تک آیا کرتی اور ہم اکثر فلموں کے گانے اور مکالمے بازار میں کھڑے ہو کر سن بیٹھتے تھے۔ پرکاش فلم کی پاسنگ شو واڈیا مودی ٹون کی ہنٹر والی، جس کی پہلوان بیروٹین مس ناڈیا سرین میں ڈنسر ضرور پلٹی دکھانی جاتی تھی۔ ماسٹر شیراز کی چٹا پرزہ، برست چندر، جیتی نشانی، ایک دن کی بادشاہت اور چار حصوں پر مشتمل فلم حاتم طائی فلم شام چھ بجے شروع ہوئی اور ساری رات چلتی رہی۔ میں اپنے چھوٹے بھائی کے ساتھ پڑا آنے والی تھرڈ کلاس کے بیچ پر انہیں بیٹھا بت بنا حاتم طائی کو جہات کا مقابلہ کرتے کوہند میں کالی بناتے لڑتے اور ”یا اللہ مدد“ کا نعروں لگا کر دریا کا لگ عبور کرتے دیکھتا رہا جب فلم ختم ہوئی تو امرت ناکیز شہر پر صبح صادق کی جھلکیاں نمودار ہو رہی تھیں اور سینما کے گیٹ کے باہر والد صاحب آنٹرے ہم دونوں بھائیوں کے انتظار میں بڑی گرمجوشی سے ہنٹر کو بار بار ہوا میں شراب شراب کی آوازوں کے ساتھ لہرا رہے تھے۔

امرت ناکیز کے سینما ہال میں پاٹر اور مسالے دار پٹوں کی تیز جھبک ہر دم پھیل رہتی تھی۔ ہال میں پھیرنے والے لڑکے پاٹر مسالے دار چھوٹے، گڑیاں والے اور پان سگریٹ کا اس قدر شور مچاتے کہ ہم تھرڈ کلاس میں بیٹھے اپنے ساتھیوں سے چیخ چیخ کر اور بعض اوقات صرف اشاروں میں ہی باتیں کرتے۔ امرت ناکیز کا انٹرول کا عرصہ گزرتا دریاے شور عبور کرنے کے برابر تھا۔ امرت ناکیز کی ڈیوڑھی میں دونوں جانب دیواروں پر چالو فلم اور آئینا والی فلموں کے نوٹو پکٹوں میں لگے رہتے۔ ہم ان تصویروں کو بڑے شوق سے دیکھا کرتے اور پھر شام کو یاد پیر کو گھر سے پیسے چڑا کر اور یا بھنوں سے چھین کر فلم دیکھنے آ جاتے۔ واپسی پر ہنٹر سے خوب ٹھکانا ہوتا مگر لگے روز پھر سینما ہال کی تھرڈ کلاس میں موجود ہوتے۔ مجھے یاد ہے ایک بار سینما ہال میں بڑا رش تھا اور میں نے اپنے دوستوں کے ساتھ سٹیج پر لیٹ کر فلم دیکھی تھی۔ ایک بار سیما ہال میں ملکہ ترتم نور جہاں نے جوان دنوں بے بی نور جہاں تھی سٹیج پر زندہ تارنگ گانا کیا تھا۔ یہ تارچ گانا ہی نے آگ بجھانے والی لال لال بالٹیوں کے پاس ایک کھڈے میں بیٹھ کر دیکھا تھا۔

جب جس غم نصیب گیٹ کیپر کی میں کہانی سنانے والا ہوں وہ اسی امرت ناکیز کے میں گیٹ کا گیٹ کیپر تھا۔ بازار سے سینما کی چوڑی اور ریل کے ڈبے ایسی ڈیوڑھی میں داخل ہوں تو اُس کے اخیر میں لکڑی کا ایک جنگلہ آ جاتا تھا یہ جنگلہ سینما کا پہلا دروازہ تھا۔ یہاں سے سامنے سینما کے کہیں جہاں مٹین کی تھیں دکھانی دیتے تھے۔ یہاں سے ٹکٹ کٹوا کر گویا آپ سینما کے باقاعدہ تماشائی کی حیثیت سے سینما کے برآمدوں میں سے گزر کر ٹکٹ کے مطابق اپنی کلاس میں داخل ہو سکتے تھے۔ لکڑی کے اس جنگلہ ناگیٹ پر ایک گیٹ کیپر لوہے کی کالی کرسی پر بیٹھا رہتا۔ تیس مٹین کی عمر کالی اچکن، کاسے پپ شو، سفید لٹھے کی بے داغ شلوار، سر پر سرخ مخمزل ترک ٹوپ باندی پہرے پر بڑے ہلکے چپک کے داغ، پُر سکون دھیمی دھیمی شرتی آنکھیں، ٹیکھا سا ناک، نکتہ اذرا لمبو ترا چہرہ، اوڈی پتل مناسب قد کاٹھ۔ میں نے اُسے کبھی مسکراتے یا کسی سے بات کرتے نہیں دیکھا تھا۔ میں لکڑی کے جنگلے پر ایک طرف چڑھ کر کھڑا ہو جاتا اور سینما ہال میں داخل ہونے والوں کو آتے جاتے دیکھتا رہتا۔ مجھے اور میرے دوستوں کو یہ شوق ہوتا کہ اگر پوری فلم دیکھنے کے لیے نہیں تو کم از کم اُس کا ایک آدھ سین ہی مفت میں دیکھ لیں۔ کیونکہ سینما والے کبھی کبھی چلتی فلم

میں ہاں کا سامنے والا فٹ کلاس کا دروازہ لوگوں کی آتش شوق کو بھڑکانے کے لئے چوہٹ کھول دیا کرتے تھے۔ یہ دروازہ دو ایک منٹ کے لئے کھلا رہتا اور پھر بند کر دیا جاتا عام طور پر یہ دروازہ فلم کے کسی مارکٹائی واسے سین پر کھلا کرتا۔

ترکی ٹوپی والے اچکن پوش گیسٹ کیمپ نے ہمارے جھگے پر کھڑے ہونے پر کبھی اعتراض نہ کیا تھا۔ وہ تو کسی سے بات ہی نہیں کرتا تھا۔ فلم دیکھنے والوں کا ٹکٹ سے کر کاٹھا۔ آدھا نہیں دیتا۔ آدھا لکڑی کی منہ دچی میں ڈال دیتا اور چپ چاپ کرسی پر بیٹھا رہتا۔ جب کبھی رش ہوتا تو وہ آٹھ کر گیسٹ کے پاس کھڑا ہو جاتا اور نظریں جھکائے جلدی جلدی ٹکٹ کاٹ کر لوگوں کو گودارے جاتا۔ کسی وقت مشین میں کیمپ سے اُسے کوئی آواز دیتا تو وہ ہاتھ ہلا کر اُسے کوئی اشارہ کرتا اور پھر اپنے کام میں لگن ہو جاتا۔ امرت ٹاکیڑ کا مالک اور حیدر عمر کا ڈارمی مونچھ صاف چٹ ایک بند لالہ امرت لعل تھا۔ وہ چوبیس گھنٹے شراب کے بلکے بلکے لٹے ہی رہتا۔ دبلا ڈھیل ڈھالا زرد چہرہ سر پر گول بند والی کالی ٹوپی دھوتی، بوسکی کی قمیض اور سیاہ پمپ میں وہ جموتا جھامت مسکراتا ہوا سینا مال میں ابھرے اور منہ لایا کرتا۔ دو تین خوش پوش آدمی مزور اُس کے گئے پیچھے جوتے تھے۔ ایک بار میزے سامنے یہ بند لالہ جھگے کے پاس اکر ٹک گیا۔ گیسٹ کیمپ پر بے کی کرسی پر سے احتراماً آٹھ کر کھڑا ہو گیا۔ لالے نے اپنی خمار آلود پلکیں اٹھائیں اور گیسٹ کیمپ کے کندھے پر ہاتھ رکھ کر بولا۔

۔ شاہ جی! کبھی مجھ ہی کوئی بات کر لیا کرو۔ کوئی تکلیف تو نہیں؟

ٹیسٹ کیمپ نے نظریں جھکائے جھکائے مسکرا کر آہستہ سے کہا۔

۔ آپ کی خبر بانی ہے لالہ جی؟

اُس روز مجھے معلوم ہوا کہ گیسٹ کیمپ کو شاہ جی کہتے ہیں اور اُس کی آواز باریک ہے اور یہ کردہ بولتا بھی ہے۔ اور مسکراتا بھی ہے۔ کبھی کبھی دوپہر کو ایک میلے سے سفید برقعے والی بوڑھی عورت جھگے کے پاس اکر کھڑی ہو جاتی گیسٹ کیمپ روٹی کا ڈبہ لے کر منہ دچی کے قریب ہی رکھ لیتا۔ کچی محبت سے اس کے ساتھ اکر لگ جاتی۔ وہ کچی کے سر پر محبت سے ہاتھ پھیرتا اور اچکن کی جیب سے ایڈورڈ کے زمانے کا تانبے کا پیسہ نکال کر دیتا۔ کچی خوش سے پھولی نہ

ساتی۔ گیسٹ کیمپ کچی کے ہاتھ پر پیار کرتا۔ بوڑھی عورت اُس سے دو ایک باتیں کرتی جبکہ جواب وہ ہوں یا ہاں میں دیتا۔ جاتے ہوئے برقعہ پوش بوڑھی عورت گیسٹ کیمپ کے کندھے پر محبت سے ہاتھ پھیرتی اور دعائیں دیتی کچی کو ساتھ لے کر سینا مال کی ڈیوڑھی سے باہر نکل جاتی۔ میں سوچا کرتا کہ یہ عورت بوڑھی عورت گیسٹ کیمپ کی ماں ہے اور وہ کچی اس کی بیٹی ہے۔ حقیقت کیا تھا؟ یہ مجھے آج تک معلوم نہیں ہو سکا۔ میں خود اُن دنوں مارہ چودہ برس کا تھا۔ میرے لئے زندگی کا بازار ابھی کھلا ہی تھا۔ ماہ و سال کے چوتروں پر لوگوں نے ابھی اپنی اپنی دکانیں سبکانی شروع ہی کی تھیں۔ زندگی کا بھر پور طاقتور، تازہ اور پُر جوش خون میری رگوں میں اُگ بن کر دھک رہا تھا۔ اور میں بہار کی خوشبو بھری مست خوش فکر اور لا اُمالی ہوا کے جھوکے کی طرف امرتسر کے بازاروں، باغوں، نہروں اور کھیتوں میں اُڑتا پھیر رہا تھا۔ خالص دودھ مکھن گھی، ہوا اور امرتسر کی پانی کی طاقت میں ہرن کی طرح چوڑی بھرتی نگاہ میں کوئی صورت نہ ٹھہرتی تھی۔ ہر لمحے، ہر پل نئے نئے ستارے طلوع ہو رہے تھے۔ لیکن کچھ لوگ، کچھ مناظر، کچھ ستارے ایسے تھے جنہوں نے اُس وقت میری توجہ اپنی طرف کھینچی اور جنہیں میں آج تک نہیں بھلا سکا۔ یہ گیسٹ کیمپ بھی انہی لوگوں، انہی مناظر اور اُن ہی دھیمے دھیمے چلنے والے ستاروں میں سے تھا۔

روٹی کا ڈبہ منہ دچی کے پاس رکھ کر وہ ٹکٹ کاٹنے میں مصروف ہو جاتا۔ خدا جانے وہ کب روٹی کھاتا تھا؟ خدا جانے وہ روٹی کھاتا بھی تھا یا نہیں! میں نے اُسے کبھی کچھ کھاتے پیتے بھی نہیں دیکھا تھا۔ حالانکہ سینا گھر کے دوسرے گیسٹ کیمپ سارا دن چرتے رہتے اور گالیاں بکتے رہتے۔ فقر ڈکاس کے ٹکٹ دینے والے کی کھڑکی پر جب میں لوگوں کے سروں پر سے چھلانگیں لگا کر پہنچتا تو دیوار کے چورس سوراخ میں سے وہ مجھے ہمیشہ پا پڑ کھاتا دیکھائی دیتا تھا۔ سبحان اللہ! امرتسر کے پاپڑوں کا بھی جواب نہیں تھا۔ مگر یہ اچکن پوش غاموش گیسٹ کیمپ کبھی کچھ نہ کھاتا تھا۔ میری اپنی کُرتے کی جیب گڑ والی ریوڑیوں سے بھری رہتی تھی میں گیسٹ کے جھگے پر چڑھا مزے مزے ریوڑیاں کھاتے چلتی فلم میں سینا مال کا دروازہ چوہٹ کھنسنے کا انتظار کیا کرتا۔ مجھ سے ذرا فاصلے پر غاموش گیسٹ کیمپ کرسی پر چپ چاپ بیٹھا اپنی نرم پُرسکون نگاہوں سے بازار کی طرف دیکھتا رہتا۔ اُس نے کبھی مجھ سے نہیں کہا

تھا کہ لڑکے! یہاں کیوں کھڑا ہے۔ چل بھاگ اپنے گھر جا۔ معلوم ہوتا ہے کہ وہ اپنے گرد و پیش سے بالکل بے نیاز ہے۔ گویا ایک جھوٹے رنگ کا پتھر ہے جو لاکھوں مروج میل کے محرابوں میں کی سختیاں برداشت کرنے کے لئے چپ چاپ پڑا ہے۔ اُسے کسی سے گھر نہ تھا۔ کسی سے شکایت نہ تھی۔

ایک روز دوپہر کو تین گیت کے جٹھے پر اسی طرح کھڑا تھا کہ اُس کی چوٹی بھی روٹی لے کر آئی روٹی کا ڈبہ تمام کر اُس نے صندوقچی کے پاس رکھا۔ بچی کے سر پر اقد پھیر کر پیار کیا۔ پھر جھک کر پوچھا۔ بچی نے جواب دیا۔

اب آرام ہے۔

معلوم ہوا کہ گیت کپڑے کی ماں بیمار ہے۔ چنانچہ بچی روٹی لے کر آئی ہے۔ اُس نے بچی کو ایڈورڈ کا پیسہ دیا اور فلم دیکھنے کے لئے اوپر کین میں بھیج دیا۔ وہ خوش خوش اوپر چلی گئی۔

اگر میں اُس انوکھے گیت کپڑے کا ہم عمر ہوتا تو مزدور اُس سے دوستی کرتا اُس سے پوچھتا کہ وہ کس بے زبان غم کو سینے میں دبائے بیٹھا ہے؟ کیا اُس کی بیوی اُسے چھڑ کر چلی گئی ہے جس سے وہ بے حد محنت کرتا تھا؟ کیا اُس کا کوئی بھولا بھالا بچہ اللہ کو پیارا ہو گیا ہے جس سے وہ پیروں میٹھی میٹھی باتیں کیا کرتا تھا؟ اُس کی ننھی ننھی قنقااریاں سُنا کرتا تھا؟ اگر یہ نہیں تو پھر اُس کی زندگی سے بھرپور باتیں اور پُر جوش تہقیر کون جین کرے گیا ہے؟ لیکن میں کم عمر تھا۔ مجھے تو اس وقت یہ بھی معلوم نہیں تھا کہ لوگ باتیں کیا کرتے ہیں۔ بھلا میں کسی کی خاموشی کے بارے میں کیا جان سکتا تھا؟ خاموشی — جو لاکھوں پُر اسرار آوازوں کو جنم دیتی ہے۔ جو ہر آواز کا آغاز اور انجام ہے۔ اس کے باوجود اُس شور مچاتے شہر کی آوازوں میں اُس کی کم سخن چپ چاپ گیت کپڑے کی خاموشی مجھے بڑی پُر اسرار اور عجیب لگتی تھی۔ میں نے امرتسری قہرستان کے گورکھنوں اور مسجدوں میں اذان دینے والوں کو اتنا خاموش طبع اور مرتجاں مرنج نہ دیکھا تھا جسے وہ تو شہر کے پرانے اور بارونق سیٹھا گھر کا میں گیت کپڑے کا گویا گہما گہما اور شور و غل کے دروازے پر کھڑا کر بھی وہ خاموش تھا۔ ایک دریا نے شور مچا جسے وہ عبور کر رہا تھا مگر اُس کا اپنا دامن تر نہیں ہوا تھا۔ ایک بار سینا میں دنگ فساد ہو گیا۔

کچھ لوگ شراب پی کر زبردستی سینا مال میں ٹھنسا جاتے تھے۔ گیت کپڑے نے انہیں روکا تو ایک شرابی نے اُسے گالیاں دینی شروع کر دیں۔ گیت کپڑے سکون سے کھڑا رہا گویا اُس نے کچھ سنا ہی نہیں دوسرے شرابی نے زور سے ایک مٹکا گیت کپڑے کی آنکھ پر مار دیا وہ چکرا کر فرش پر گر گیا۔ اُس کی رومی ٹوپی زور جا پڑی اتنے میں دوسرے گیت کپڑے اور پولیس آگئی اور انہوں نے دنگ فساد کرنے والوں کو گرفتار کر لیا۔ اچکن پوش گیت کپڑے اس دوران میں زمین پر سے اُٹھا۔ اپنی رومی ٹوپی کو اہستہ اہستہ جھاڑ کر سر پر رکھا۔ جب سے وہ مال نکال کر آنکھ کے اوپر بھنوں پہرے سے پتے خون کو پونچھتے ہوئے دوبارہ گیت پر ڈیوٹی دینے آئے کھڑا ہوا اُس کا چہرہ پہلے کی طرح پُر سکون اور خاموش تھا وہاں نہ کوئی غصہ تھا نہ ملال ہاں حیرت کا ایک ہلکا سا احساس ضرور تھا۔ جیسے سوچ رہا ہو۔ یہ ابھی ابھی جو چہرہ میری بھنوں سے اُگر لگرائی تھی کیا تھی؟

کئی روز تک اُس کی دامن سیکھ سوجی رہی۔ وہ ڈیوٹی پر سے ایک شو بھی غیر مقرر نہ ہوا۔ اُس کی بوڑھی ماں ضرور گھرمی اُس کی سوجی ہوئی آنکھ کو گھور کرتی ہوگی اور اُس کی جھون بھان بھان نے ضرور پوچھا ہوگا۔ "ابو جی! اب مجھے خیال آتا ہے تو سوچتا ہوں کہ شاید وہ پیدا ہی پتھر کھانے۔ اور چپ رہنے کے لیے ہوا تھا۔ شاید اُس کی پوری زندگی گیلی کے اونچے نیچے پتھر ٹپک کر چوسے عبادت تھی جہاں سے وہ لوگوں کے دکھوں کی صلیب اٹھانے کاٹوں کا تاج پہنے گزر رہا تھا اور لوگ اُس پر پتھر برسا رہے تھے مبارک ہیں وہ لوگ جو پتھر نہ کر بھی پتھر برسانے والوں سے نفرت نہیں کرتے۔

مجھے اچھی طرح یاد ہے کہ رات کے پچھلے پہر اذان کے وقت میں حاتم خانی کے چاروں پارٹ دیکھ کر امرت تانیز کے سینا مال سے باہر نکلا تو میجر کے کمرے میں چاقو کے پیچھے تکیا بل رہی تھی اور خاموش گیت کپڑے کی پر جاناڑ بھانے قبلہ رو بیٹھا نماز پڑھ رہا تھا۔ اتنے میں ہم میں سے کچھ شرابی لڑکوں نے گتے کے ایک پتے کو زور سے ڈنڈا مارا وہ درخت کی جڑ سے چاقو کے نیچے سے میجر کے کمرے میں گھس گیا۔ جب ہم اپنے کی کھجائی تک اندر گئے تو دیکھا کہ پتہ جاناڑ پر اقد پھیر رہا تھا اور منہ ہی منہ میں کچھ بڑبڑا رہا تھا۔ اُس نے ٹھکی ٹھکی آنکھیں اٹھا کر ہمیں دیکھا۔ اٹھنے کے شارے سے منع کیا کہ جانور کو نہ مارو۔ ہم لوگ باہر گئے وہ ایک

دوسرے سے ہنستے مذاق کہتے چل دیتے مجھے آج بھی گیٹ کیپر کی شکل تھکی آنکھیں، اُس کا شکل کے اشارے سے بھی جانور کو مارنے سے روکنا اور پتے کا اُس کی گود میں مزے سے بیٹھنا یاد ہے۔

زندگی کے سینا ہال میں وقت کی فلم بھی بڑی تیزی سے چلتی چلی گئی اور اُس کے پارٹ ایک ایک کر کے ختم ہوتے گئے۔ میں اُسی عمر میں ہندوستان کے دھندلاز شہروں میں آوارہ گردی کو چل نکلا۔ جب کبھی امرتسر واپس آتا تو اُس خاموش گیٹ کیپر کو اُسی طرح گیٹ کے پاس لہے کی کمرسی پر چپ چاپ بیٹھے ٹکٹ کٹتے دیکھتا اور پھر کسی دور دراز شہر کی آوارہ گردی کو نکل جاتا دوسری جنگ عظیم میں میں برما میں پھنسی گیا۔ جنگ ختم ہوئی تو نصابات شروع ہو گئے۔ رام باغ اور کٹرہ کنہیا لعل کی طوائفیں بھاگ کر دوسرے شہروں میں چلی گئیں یہاں زیادہ تر مکان اور دکانیں ہندوؤں کی ملکیت تھیں مسلمانوں نے انہیں آگ لگا دی۔ کٹرہ کنہیا لعل سارے کا سارا آگ کی لپیٹ میں آ گیا۔ ایک روز کرنیو کھلا تو میں نے اس کٹرے میں سے گزرتے ہوئے امرت ٹاکیز کو دیکھا۔ اُس کا سینا ہال جل کر خاک ہو گیا تھا۔ دیواروں کا ڈھانچہ کھرا تھا گیٹ بھی جل گیا تھا۔ مجھے خاموش گیٹ کیپر کا خیال آ گیا۔ خدا جانے نصابات کے اس فوجی ہنگاموں میں وہ بے مزد کم سن انسان کہاں ہو گا۔ کیا وہ اُس کی بوڑھی ماں اور بھولی بھالی بچی سلامت ہوگی اُس کے تو اگر چہرہ بھی گھونپ دیا گیا تو وہ کسی کا اتہ نہیں رو کے گا۔ کسی سے کچھ نہ کہے گا۔ بلکی سی آہ تک نہیں بھرے گا۔ اور چپ چاپ لگی یا بازار میں گر کر مر جائے گا۔

قادات بھی ختم ہو گئے۔ ہندوستان تقسیم ہو گیا۔ پاکستان بن گیا اور مہاجرین کے لئے پٹے قافلے ان دیکھی منزلوں کو چل پڑے۔ نئے وطن کی نئی سرگرمیوں اور نئے مسائل نے بہت کچھ وقتی طور پر بھلا دیا میں بھی اسرت ٹاکنیز کے خاموش گیٹ کیپر کو بھول گیا۔ چھ سات برس بعد اچانک میں نے دس گیٹ کیپر کو لاہور کے پولیس سینٹر کے باہر دیکھا۔ وہ پہلے سے ہیٹ کمزور ہو گیا تھا۔ سر کے بالوں میں سفیدی آگئی تھی۔ اچکن۔ لٹھے کی صاف ستھری شلوار اور پمپ شو غائب ہو گیا تھا۔ آنکھوں میں دسی دھیما دھیما درد اور سکوت تھا ہونٹوں پر لہر خاموش تھی۔ وہ فٹ پاتھ پر سینٹر کے سامنے ہاتھ میں بیٹھی خطائیوں کا تھال لئے کھڑا تھا۔ سر پر میل کپلی رومی ٹوپی تھی اب میں اسے کبھی کسی لاہور کی سڑکوں یا سکولوں کے باہر بیٹھی خطائیاں بیچتے دیکھ لیتا کرتا۔ کئی بار دل چاہا

اُس کے پاس جا کر کوئی بات کروں۔ اُس سے اُسکی بڑی ماں اور بھولی بھائی بچی کی خیریت پوچھوں
مگر جانے کیوں میں بھی چپ چاپ اُس کے قریب سے گزر جاتا۔ ہر بار جب وہ مجھے ملتا تو اُسکی
حالت پہلے سے خراب ہوئی۔ کپڑے زیادہ میلے کپیلے اور چہرہ میلے سے زیادہ زرد ہوتا۔ وہ خاتونوں
کا تھال لئے سر جھکاتے گیوں میں سے گزر جاتا۔ کوئی بچہ اُسے روکتا تو وہ رُک جاتا۔ پیسے وہ پیسے
کا سودا بچے کو دیتا اور خاموشی سے اُسے گزر جاتا۔

پھر ایک روز میں نے اُسے خطایہوں کے تھل کے بغیر دیکھا۔ وہ مکانوں کے ساتھ ساتھ لگا کر
جب کائے چلا رہا تھا۔ کسی وقت وہ رول پیر کر دائیں بائیں یوں دیکھتا جیسے اُس کی کوئی شے مٹ ہو گئی ہو۔ سر
کے سفید بال اور ڈاڑھی بڑھ آئی تھی۔ رول نوپل غائب تھی اور ٹوٹی ہوئی چپل پاؤں کے ساتھ ساتھ
گھسیٹ رہی تھی۔ مجھے اُس سے آنکھیں ملانے کاوصلہ نہ ہوا۔ یوں لگا گویا اُس کی تباہ حالی کا میں
ذمے دار ہوں۔ وقت لاہور کی سڑکوں پر شور مچاتا، گرد اڑاتا بھاگتا اڑتا چلا گیا۔ ایک دن میں نے
اُسے ایبٹ روڈ پر دیکھا۔ اُس کے پاؤں سے چپل غائب تھی۔ چہرہ مٹی کے رنگ کا ہو گیا تھا۔ پاجامے
کا ایک پانچہ پھٹ گیا تھا۔ وہ کُڑے کے ایک ڈھیر پر جھکا ہوا تھا اور کاغذوں کے جھیرے نکال
نکال کر اپنے گندے کوٹ کی جیبوں میں بٹھونس رہا تھا۔

ابن میں نے فلینگ روڈ پر ہائش اختیار کر لی تھی۔ دو ماہ بعد میں نے امرتسر کے اس بے زبان گیٹ کیپر کو لاہور ہوٹل کے پاس بیٹھنے کا غڈ نکال نکال کر جیوں میں بھرتے دیکھا۔ اس کی حالت اتنی ہی خستہ ہو چکی تھی۔ لمبے لمبے سفید بالوں میں لاہور کے ہر بازار پر مگر کی کوڑے کی مٹی بھری تھی ڈارمی مونچھوں کے خاکستری بالوں میں زرد مٹی رنگ کا ٹوٹا ہوا بے جان چہرہ پتھر کی طرح ساکت تھا۔ سفید آنکھیں پھٹی پھٹی تھیں۔ پاک ہی گندے گندے کاغذوں سے بھری ہوئی گانتھ رکھی تھی۔ وہ کوڑا کرکٹ بھی گریڈ رہا تھا اور اونگھ بھی رہا تھا۔

میں نے آخری بار اُسے اُسی بازار میں ایک مسجد کے باہر دکان کے تھڑے پر گندے پتھر لٹا
کے گتھڑے سے ٹیک لگائے اور لگتے ہوئے دیکھا۔ میں قریب سے گزرا تو اُس نے ایک پل کے
پیسے اپنی سوجی ہوئی چمکیں اٹھا کر پھٹی پھٹی آنکھوں سے میری طرف دیکھا۔ میں ایک پل کے لئے
رُک گیا۔ ایک پل کے لیے ہماری آنکھیں چار ہونیں۔ وہ اُسی طرح پتھر بنا اپنی وحشت زدہ آنکھوں سے

مجھے دیکھتا تھا۔ شاید وہ مجھے پہچاننے کی کوشش کر رہا تھا۔ شاید ہم دونوں ایک دوسرے کو پہچانتے کی کوشش کر رہے تھے۔ میں سوچ رہا تھا کہ یہ مٹی اور چیتھڑوں کا جو گندا مندا ڈھیر سا دکان کے دروازے پر رکھا ہے کیا یہ وہی کم سخن، اچکن پوش خوش لباس گیٹ کبر ہے۔ جو آج سے عرصہ پہلے میرے کے ایک سینا گھر کے گیٹ پر جو ہے کی گڑی پر چپ چاپ بیٹھا ٹکٹ کا ٹاکر تھا اور جیسے اس کی بوڑھی ماں اور بھولی بھالی معصوم بچی روٹی دینے آیا کرتی تھی؟ اور وہ سوچ رہا تھا کہ یہ سفید بالوں اور چہرے کی دکھ بھری لکیروں والا آدمی وہی چھوٹا سا لڑکا ہے جو کبھی بڑی بے فکری سے میرے پاس گیٹ کے جنگلے پر چڑھا جیب سے ریوڑیاں نکال نکال کر رکھا یا کرتا تھا؟ ہم دونوں یہی سوچ رہے تھے۔ ہم دونوں ایک دوسرے کو پہچاننے کی کوشش کر رہے تھے۔ وقت کی برق رفتار گاڑی ہم دونوں کو زندگی کے ویران سٹیٹن پر اکیلا چھوڑ کر بہت دور نکل چکی تھی۔

اُس نے آنکھیں بند کر لیں۔ اور میں آگے چل دیا۔ اس کے بعد پھر میں نے اُسے کبھی نہیں دیکھا۔ خدا جانے اب وہ کہاں ہے! اُس کی دکھی ماں اور معصوم بچی کہاں ہے؟ وہ یقیناً اب بڑی بوگنی بنی۔ کاش۔ میں کبھی اُس سے مل کر۔ اُس کے سر پر شفقت سے ہاتھ رکھ کر پوچھتا۔

بیٹی! تیرے باپ کو اب روٹی دیتے کون جاتا ہے؟

آمرتسر کا ایک جواری

مجھے میں لوگ اُسے گاما سنگھاڑیا کے نام سے پکارتے تھے۔ لمبا قد، چہرہ باریک، گندی رنگت، سرسوں کے تیل میں چمکتے ہوئے سیاہ بھریاں، ہاں گنجان کالی بھنوں کے ساتھ میں خواب آلود نساوی آنکھیں اور چوڑے نتھنوں والا چٹا ناک دو گھوڑا بوسکی کی کاردار قمیض پر چپکا رہا کرتے سونے کے ٹن سنڈیلز کی دھوٹی، پٹنٹ کا سیاہ پمپ شو اور کندھے پر لال صاف۔ گاما سنگھاڑیا کالی کتنی دانی ریشمی دھوٹی کا پتو سونے کی انگوٹھیوں والی انگلیوں میں ہتھکڑی، منہ میں تمباکو والا پان رکھے بڑی ان بان کے ساتھ مجھے میں ہٹا کرتا۔ کبھی طفیل ستار کی دکان پر بیٹھا ہنس ہنس کر باتیں کر رہا ہے۔ کبھی کا کا عمدہ سے ہنسی مذاق ہو رہا ہے اور کبھی ہماری دکان کے تخت پوش پر پاؤں رکھے میرے والد سے مزے مزے کی باتیں کر رہا ہے۔ کپڑوں پر گرہان کا بکاسانان بھی پڑ جاتا تو گل کے نکلے پر صافے کی کتنی پانی میں بھگو کر دیر تک پان کے داغ کو رگڑتا رہتا۔ بڑا صاف ستھرا اور صفائی پسند آدمی تھا۔ جس روز اُس نے کوکین وال پان کھا یا ہوتا اُس روز وہ سندر سنگھ حکیم کی دکان پر کھبے سے ٹیک لگا کر مست ہو کر بیٹھا رہتا اور پہروں کسی سے کوئی بات نہ کرتا۔ منہ میں پان دبائے چہرے پر سدا کھینچنے والی بچوں ایسی مسکراہٹ لئے رہ آئے جانے والوں کو دیکھتا رہتا اور دھوٹی کا پتو اٹھا کر منہ کی ہونٹ پٹھائیوں پر آہستہ آہستہ ہاتھ چیر رہتا اور وہ دنیا میں اکیلے تھا۔ نہ باپ، نہ ماں، نہ بہن اور نہ بھائی۔ عمر چالیس کے قریب تھی۔ سشلوی نہیں کی تھی۔ ہماری گل میں ایک مسجد کے کچھوڑے کو ٹھٹھی میں رت کو کس وقت گرہ لگا رہتا تھا۔

گاما سنگھاڑیا جواری تھا شرابی تھا۔ وہ ان معنوں میں مجھے کا بد معاش تھا کہ جو کھیت تھا

شراب پیتا تھا۔ کوکین کھا۔ اور کٹروہ کہینا سل میں جا کر بونگھری کا ٹبراستہ تھا۔ اس کی دھوتی کی ڈھب میں کمائی دار چاقو بھی رہتا تھا۔ وہ سٹہ بھی لگاتا تھا۔ ہماری دکان میں چاچا امیر نامی ایک ادھیر عمر کا سوکھا لبا شخص بیٹھا تھا۔ جو پولیس سے چوری چھپے سنتے کی پرچیاں لکھا کرتا۔ سواری فرد کی بکل مارے وہ بھٹی کی ادٹ میں بوربے پر بیٹھا جو کس آنکھوں سے پولیس کے آدمیوں سے خبردار رہا کرتا۔ سارے محلے والوں کو علم تھا کہ چاچا امیر سٹہ لکھتا ہے چراغ ارائیں بازار میں کسی سپاہی کو آتا دیکھتا تو دکان پر ٹینڈے تولتے ہوئے چاچا امیر کو ہوشیار کر دیتا۔

چاچا! کالا آدمی آیا ای۔

کالا آدمی انہوں نے پولیس کے سپاہی کا نام رکھ چھوڑا تھا۔ چاچا امیر یہ سنتے ہی اپنی جھونکی پھسل اور سٹے کی پرچیاں فوراً جاتھوں والی ٹوکری میں چھپا دیتا اور خود بھٹی کے پاس آکر بڑی ہی بے نیازی سے باتہ تاپنے لگتا کہیں کہیں گاما سنگھاڑیا بھی دکان میں آکر کوئی صوف یا ڈڑا لگا دیتا۔ سٹے کا گھڑا چوک ملک بت میں دسے پٹھان کی بیٹھک پر رات کے نو بجے کھلا کرتا تھا۔ سارے نو بجے چاچا امیر دسے پٹھان کی بیٹھک سے بھگن لے کر دکان پر آجاتا۔ گاما سنگھاڑیا دور سے آواز لگاتا۔

چاچا! منڈی دا کیر بھا آئے آج ہ

گاما سنگھاڑیے کا اگر حرف یا ڈڑا نکل آتا تو وہ روپے دھوتی کے ڈھب میں منجھل کر ہائے ہندو کی بیٹھک پر شراب پینے اور جوا کھینے چل دیتا۔ اگر حرف نہ لکھتا تو مسکرا کر میرے والد سے کہتا۔

ر خلیفہ! سٹہ بڑا گتا کم اے۔ لاڈا دھیر دودھ ہی پلاؤ۔

گاما سنگھاڑیا بد معاش تھا۔ کیونکہ وہ جوا کھیلتا تھا۔ شراب پیتا تھا اور کمائی دار چاقو ہر وقت ڈھب میں رکھتا تھا۔ لیکن میں نے کہیں اس کی زبان سے گالی نہیں سنی تھی۔ محلے میں اس نے کہیں کسی سے لڑائی نہیں کی تھی۔ کہیں شراب پی کر شور نہیں مچایا تھا۔ وہ گلی میں بول سر جھکا کر گزرتا جیسے اپنے گھر کے آگن میں سے گزر رہا ہو۔ ہر ایک سے نرم اور میٹھے لہجے میں بات کرتا۔ مجھے یاد ہے ایک بار اس نے بہت ہی رکھی تھی اور سندھ سنگھ حکیم کی دکان کے

پٹے پر چوگرہی مل کر بیٹھا دیو داس کا یہ گانا کارا تھا۔

ہالم آسے جیو موزے من میں

میں اپنی دکان میں دودھ کی گڑا ہی میں کھونچہ پھیرتے ہوئے اُسے دیکھ رہا تھا گاما سنگھاڑیے کی آنکھیں شراب کے نشے میں سرخ ہو رہی تھیں۔ اس کی گردن بار بار ڈھلک جاتی تھی رات کے قابا دس گیا رہ بجے تھے۔ گری بہت تھی۔ اچانک گاما سنگھاڑیا اٹھ کر کھڑا ہو گیا۔ اس کی ٹانگوں پر کاسے چھوٹے چڑھ گئے تھے۔ اس نے بازار میں کھڑے کھڑے اپنی ریشمی دھوتی اتار لیا اور اُسے جھاڑتے ہوئے ہنس کر بولا۔

ر خلیفہ! کا ڈٹے ای کا ڈٹے۔

میرے والد نے فوراً گدی سے اٹھ کر گامے سنگھاڑیے کی دھوتی باندھ لی اور کہا۔

گاما سنگھاڑیہ شرم کر۔

گاما سنگھاڑیا اور بچوں کی طرح بازار میں کھڑا میرے والد سے دھوتی بند ہوتا رہا۔ پھر وہ گاما اور لڑکھاتا ہوا پاسے ہندو کی بیٹھک کی طرف چلا گیا۔ اگلے روز جب اُسے معلوم ہوا کہ اس نے شراب کے نشے میں بازار میں دھوتی اتار دی تھی تو اُسے اس قدر ندامت ہوئی کہ وہ تین چار روز تک محلے میں نہ آیا اور بونگھری کی بیٹھک پر ہی رہا۔ مجھے اچھی طرح یاد ہے کہ اس کے بعد میں نے گاما سنگھاڑیے کو کم از کم اپنے محلے میں شرابی حالت میں نہیں دیکھا۔

گاما سنگھاڑیے کو سانپ پکڑنے میں بھی بڑی مہارت حاصل تھی۔ میں نے یہ منظر کئی بار دیکھا کہ گاما بازد پھیلائے سانپ کو دم سے پکڑے جھٹکے دیتا گلی یا بازار میں چل آ رہا ہے پیچھے بچوں کا ہجوم ہے۔ حوتیں کھڑکیوں میں جھونکے کے پیچھے آن کھڑی ہوتی ہیں۔ پھر گاما دو ایک بار سانپ کو دائرے کی شکل میں گھما کر زور سے زمین پر دسے مارتا۔ سانپ مرجاتا ہم لوگ اُسے سٹلی سے باندھ کر گلی گلی گھیسے پھرتے اور پھر محلے کے باہر پاتھی گراؤنڈ میں جا کر زمین میں دبادیتے۔ گلی محلے میں کسی کے گھر سانپ لگتا فوراً گاما سنگھاڑیے کو بدلیا جاتا۔ گاما نامی قسم کی سیٹی کی آواز سے لگتا اور لکڑی زمین پر مارتا کوئے کھڑے میں چھپا ہوا سانپ اسے نکل آتا۔ گاما بڑی چابکدستی اور ہوشیاری سے لپک کر اس کی دم پکڑتا اور لپک جھپکنے میں سے

اٹھا کر جھٹکے دیتا باہر سے آتا ہماری دکان میں رات کو وہ کبھی کبھی سانپوں کی بڑی مزے دار کہانیاں سنایا کرتا۔ اس بات پر اُس کا پختہ یقین تھا کہ سانپ سو سال گزر جاتے کے بعد جون بدل سکتا ہے۔ یعنی چرند پرند، حیوان، وہ جس شکل میں چاہے نمودار ہو سکتا ہے۔ مستری عبداللہ جو ہرات پر اعتراض کرتا اپنا فرق سمجھتا تھا کہتا۔

”گامیا! اتنا جھوٹ نہ بولو۔ غیفے کی دکان کی چھت پہلے ہی کمزور ہے۔“

گاما مسکراتے ہوئے اپنی پنڈلیوں پر ہاتھ پھرتے ہوئے کہتا۔

”مستری! مجھے تو تم بھی سانپ نظر آ رہے ہو۔“

سانپوں کے علاوہ گامے سنگھاڑیئے کو بگڑے یعنی بیٹے پالنے کا بھی شوق تھا۔ چیت دساکہ کے دنوں میں وہ بڑے کی مادہ پنجرے میں بند کر کے باغوں میں چلا جاتا اور ایک دو زبردستی پکڑے کر لے آتا۔ وہ انہیں خوب دانہ پانی کھاتا۔ اُن کی بڑی ٹہل سیوا کرتا۔ صبح عود پوری کا ناشتر کرتا تو بگڑوں کو بھی تھوڑا تھوڑا عود ضرور کھاتا۔ پھر وہ ایک بگڑے کو سبھاٹا شروع کر دیتا۔ اس بگڑے کو سبھاٹا شروع کر دیتا۔ اس بگڑے کو وہ اپنے بائیں ہاتھ کے انگوٹھے پر بٹھا کر بازار میں لے کر کھڑا ہو جاتا۔ دوسرے ہاتھ میں تھامے ہوئے موتیئے کے سفید پھول کو وہ زور سے ہوا میں اُچھلاتا۔ بگڑا تبر کی مانند لپک کر اوپر اُڑتا اور ہوا میں اُڑتے ہوئے پھول کو چوبچ میں پکڑ کر واپس گامے کی سیٹل پر اُن بیٹھتا۔ بچے زور زور سے تالیاں بجاتے اور گاما سنگھاڑیئے کا گندنی چہرہ خوشی کی مسکراہٹ سے لال ہو جاتا۔

گرمیوں کے موسم میں گاما سنگھاڑیا کبھی ام لگا لیتا اور کبھی قلفیاں بیچنے چل نکلتا اُس زمانے میں آج کل کی طرح ریڑیوں پر قلفیوں کی بے عزتی نہیں ہوا کرتی تھی۔ رات کو ہی گاما من سوا من دودھ کی بڑی بنا کر انہیں قلفیوں اور گولڈ فلیک یا کپشن کے گرم پانی میں دھلے دھلائے شفاف ڈبوں میں بھرنا شروع کر دیتا ان میں پستہ اور بادام کی ہوائیاں چھوڑتا دودھ کیوڑہ ڈالتا۔ میں اُن بند قلفیوں اور ڈبوں کے کناروں پر گندھا ہوا میدا چپکانے جاتا۔ جب ساری قلفیاں بھر جاتیں تو گاما مٹی کے ایک بڑے سے مٹکے میں برف اور نمک کوٹ کر اسکی ایک تہہ جاتا اور اُس کے اوپر قاشیاں جا کر برف کی دوسری تہہ لگا دیتا۔ جب مٹکا بھر جاتا تو وہ اُس کا منہ بند کر کے کھل چھت

پر احتیاط سے رکھ دیتا۔ دوسرے دن پچھلا دن دھوپ میں گل کے اخیر میں اُس کی آواز سنائی دیتی۔ قلفی کھوٹے لی دام والی۔

بولی کی قیص: سلک کی دھوٹی اور کاسے پپ ٹو پہنے، پرنا مونڈے سے پر ڈالے گاما سنگھاڑیا دھوٹی کا پلو تھامے بڑی شان سے اُگے اُگے چل رہا ہوتا۔ گلی کی دھوپ میں اُس کے گندنی ماتھے پر کیا ہوا پسینہ سر کے تیل لگے بال قیص کے طلائی ٹین اور پپ ٹو کی نوک چمک رہی ہوتی۔ پیچھے پیچھے مزدور سر پر قلفیوں سے بھرا ہوا مٹکا اور چوکی اٹھائے آ رہا ہوتا ہمارے مکان کے باہر اگر وہ آواز لگتا۔

”چل جی میرے پورن بھگت نے باؤ میرے آجا۔“

مجھے وہ ہمیشہ باؤ میرے کہتا اور میری چھوٹی بہن محمودہ کو جس کی عمر چھ برس کی تھی پورن بھگت کے نام سے پکارتا۔ کیونکہ پورن بھگت کی طرح اُس کے کٹے ہوئے بالوں کے پٹے گردن پر چڑھ رہتے تھے۔ ہم گامے سنگھاڑیئے کو چاچا کہہ کر بلایا کرتے تھے کیونکہ ہمارے والد سے اُس کی دوستی اور پیار بھائیوں سے بھی بڑھ کر تھا۔ میں اور میری چھوٹی بہن محمودہ اُس کی آواز سننے ہی اپنی اپنی تھالی لئے بھاگ بھاگ سیریاں اترتے گلی میں آ جاتے۔ گلی میں گاما سنگھاڑیا، چوکی پر بیٹھا، مٹکے میں ہاتھ ڈال کر قلفیاں ٹٹول رہا ہوتا۔ ہمیں دیکھ کر وہ ہنستے ہوئے کہتا۔

”او آگئے میرے پورن بھگت تے میرا باؤ۔“

مٹکے میں سے دو بڑی قلفیاں نکال کر وہ انہیں سادہ پانی کے تیلے میں دو تین ڈبکیاں دیتا۔ پھر بڑی نفاست سے چاقو سے کر قلفیوں کے کناروں پر جا ہوا میدا کھرچتا۔ ایک ہاتھ میں پلیٹ اور دوسرے ہاتھ میں قلفی تمام کر وہ اس مہارت اور نرمی سے اُسے دو تین جھٹکے دیتا کہ قلفی اپنے ٹین کے فول سے ثابت کی مہمت نکل کر پلیٹ میں آ جاتی اور روح کیوڑے پستہ بادام کی لپٹیں آرانے لگتی۔ گاما شیشے کے پیام میں سے لچھے نکال کر اُس کے اوپر ڈال اور پلیٹ ہمارے ہاتھ میں دے کر پیار سے کہتا۔

”گاماؤ میرے پیو پترو۔“

گاما سنگھاڑیا اپنی مرضی اور اپنی خوشی کے لئے کام کرتا تھا۔ کام سے اس کا مقصد نہ

تو روزی کمانا ہوتا تھا اور نہ کسی کو خوش کرنا۔ بس یونہی جب کبھی گرمیوں میں طبیعت چاہتی تو غلیان
جھالیتا اور کبھی آم خریدنے منڈی جانتا۔ چھ سات روز کام کرنے کے بعد پھر وہی بھڑا انگورٹھے
پر بٹھائے بازار میں آجاتا اور اس کے کرب دکھا کر خور بھی خوش ہوتا اور بچوں کو بھی خوش
کرتا۔

جس روز وہ آم لگتا اس روز مجھے اپنے ساتھ میوہ منڈی ضرور لے جاتا میں نیکر تھیں
پہنے تنگے پاؤں بڑا خوش خوش گانے کی انگلی تھامے اس کے ساتھ ہو لیتا۔ میوہ منڈی کا ایک
دروزد ہال بازار اور دوسرا رام باغ والی پولیس گارد کی طرف لگتا تھا۔ ہم گارد والے دروازے
سے میوہ منڈی میں داخل ہوتے۔ منڈی میں آڑھتیوں اور خریداروں کا شور مچا ہوتا۔ زمین پر کچڑیں
گچھے ہوئے پھل پڑے ہوتے۔ گندے منڈے پھلوں کی تیز بو کے ساتھ ہی ساتھ کسی وقت
تازہ آموں کی میٹھی اور گرم ہبک بھی آجاتی آڑھتی اپنے اپنے آموں کی کھاریاں کھولے کھڑے چن
چین کر بولی بول رہے ہوتے خریدار اور گروہ کھڑے کھاری میں ہاتھ ڈال ڈال کر آموں کے دانے
ٹٹولتے۔ ایک آدمی آم چوستے۔ پھر یا تو پرانے سے ہاتھ صاف کرتے ہوئے بولی بول دیتے
اور یا آگے دوسری ٹکڑی کی طرف چل مہیتے۔ گاما سنگھاڑیا بھی ہر ٹکڑی میں کھڑا ہو کر سودے
لی دیکھ سہال کرتا۔ کھاری میں سے وہ ہمیشہ دو آم نکالتا۔ ایک وہ خود چوستا یا چاقو نکال
کر کاٹتا اور دوسرا چپکے سے میرے ہاتھ میں تھا دیتا جسے میں جلدی سے اپنی نیکر کی جیب میں
غونس دیتا مجھے یاد ہے۔ جب میں منڈی سے واپس گھر آتا تو میری نیکر کی جیبیں لال پیلے
چھوٹے بڑے آموں سے بھری ہوتی ہوتیں تھیں۔ گاما مجھے تاکید کرتا۔

”پون بھگت کو بھی دینا۔“

گامے سنگھاڑیئے کا آم بیچنے کا انداز بھی اپنا تھا۔ مٹی کے بڑے منگے میں وہ پانی
در برف ڈال کر اسے دسہری اور مال دیو آموں سے بھر دیتا ہماری دکان کے کچے ایک بیچ
بڑا رہتا تھا گاما اس بیچ پر صاف سترے کپڑے پہن کر غلغلہ کرنا لگتا پر ناگہ رکھے ہینہ
جاتا۔ برف لگے ستر آموں سے بھرا ہوا منگہ اور چینی کی شفاف پٹیں پاس ہی رکھی ہوتیں لگب
کو وہ اپنی مرضی سے آم نکال کر اسے کاٹ کر پلیٹ میں رکھ کر دیتا وہ چار روز میں یہ شوق

بھی پھرا ہو جاتا اور گاما پھر بھڑا اور مو تیے کا پھول لے کر چوک میں نکل آتا۔

پھر اچانک محلے میں یہ خبر پھیل گئی کہ گامے سنگھاڑیئے نے شادی کر لی ہے۔ یہ شادی
کیسے ہوئی؟ کہاں ہوئی؟ ان باتوں کا مجھے بالکل علم نہیں ہے۔ مجھے اتنا یاد ہے کہ گامے سنگھاڑی
نے مسجد کے پکھڑے والی اپنی کوٹھڑی چھوڑ کر بازار میں دھرم سالہ کی بنگل میں ایک چوبارہ
کرائے پر لے لیا اور وہاں اپنی بیوی کے ساتھ رہنے لگا۔ میں ان دنوں چھٹی یا ساتویں جماعت
میں پڑھا کرتا تھا اور ہماری دکان کے بالکل سامنے طفیل زرگر کی دکان تھی نوے کی اونچی لمبی
پیٹی کے سامنے وہ سفید چاندنی پر رکھے ہوئے گاؤں کے پر بیٹھا حقہ پیتا یا پنکھے سے کھیل
کو اڑاتا رہتا تھا۔ میں دن میں ایک گھنٹہ اس سے حساب پڑھتا اور تقریباً سارا دن اس میں
چلیں بھرا کرتا۔ وہ مجھے حلیم دے کر کبھی کا کاغذ کے تنور پر اور کبھی کسی کے گھر آگ لینے بھیج
دیتا۔ ایک روز میں گامے سنگھاڑیئے کے گھر حلیم ہاتھ میں تھامے آگ لینے گیا تو چوبیس کے
پاس بیٹھی ایک گوری جی صحت مند عورت نے مجھے پیار کیا اور خود چٹے سے حلیم میں آگ
دھرنے لگی۔ اس نے غفلت کا سواہی رنگ کا سوٹ پہنا ہوا تھا۔ پاؤں میں کھلتے کے سلیپر
تھے۔ گلے میں سونے کا ہار تھا۔ اور لال لال گالوں پر سبز رنگ کے خال کے نشان تھے۔
مجھے وہ بڑی اچھی لگی۔ یہ گامے سنگھاڑیئے کی بیوی تھی۔ اب میں طفیل زرگر کی حلیم تھامے
گامے سنگھاڑیئے کے گھر ہی آگ لینے جاتا۔

ایک دن میں نے دیکھا کہ گامے سنگھاڑیئے کی بیوی بڑی شان سے ہال کھولے چڑھائی
پر بیٹھی رسی لگے کھا رہی ہے اور گاما اس کے سر میں ہادوم روغن کی مالش کر رہا ہے جانے کیوں
مجھے اس وقت گاما سنگھاڑیا اچھا نہ لگا۔ مگر گاما سنگھاڑیا اب بڑا اچھا سو گیا تھا محلے
میں ہر آدمی اس کی کایا پلٹ پر حیران اور خوش تھا۔ اس نے جوا اور شراب چھوڑ دی تھی۔

وہ ہر روز بازار میں کوئی نہ کوئی سودا لگاتا۔ کمائی دار چاقو اس نے میرے والد کو دے دیا تھا۔
”خلیفہ باب اس کا کوئی کام نہیں رہا۔“

آنکھیں وہ پہلے ہی نیچی کر کے لگی ہیں سے روتا تھا اب وہ سر جھکا کر گزرنے لگا۔ اس
نے محلے کی مسجد میں مولوی صاحب سے قرآن پڑھنا بھی شروع کر دیا اور کبھی کبھی نماز بھی پڑھتا

وہ اپنی بیوی کی بے حد خدمت کرتا۔ جو کما تا اس کے آگے رکھ دیتا۔ اسے قسم قسم کی پوشاک پہناتا خود اس نے ہوسکی کی جگہ عام پاپین وغیرہ پہنتی شروع کر دی تھی۔ شادی کے چھ ماہ بعد اس نے وارمی کا خط بھی بنوایا۔ گاما سنگھاٹھیے کی دنیا ہی بدل گئی تھی۔ دن بھر وہ گل گل محوم پھر کر قلعیاں یا پھل بیچتا اور شام کو حلال کی کمائی بیوی کے قدموں پر ڈال دیتا۔

پھر ایک روز ایسا ہوا کہ گاما سنگھاٹھیے دن بھر کا تھکا ہارا سودا بیچ کر گھر آیا تو چوبارے کی کوٹھری اور صندوق چو پٹ کھٹے تھے۔ سارے کپڑے اور زیور غائب تھے۔ اسکی بیوی گامے سنگھاٹھیے کو غدا سے کھانے کے ایک کو چران کے ساتھ بھاگ گئی تھی دو روز تک گاما سنگھاٹھیے اپنے چوبارے سے نیچے نہ اُترا۔ تیسرے روز وہ نیچے بازار میں آیا۔ اس کا چہرہ آرا ہوا تھا۔ اور آنکھیں سو جی ہوتی تھیں اس نے بازار کے گرم حمام میں جا کر ڈاڑھی منڈوائی۔ میرے والد سے اگر کمائی دار چاقویا پاس ہندو کی بیٹھک پر جا کر جوئے میں کچھ رقم جیتی۔ ڈٹ کر شراب پی اور امرتسر شہر کو ہمیشہ کے لئے چھوڑ دیا۔ اس کے بعد کئی سالوں تک میں نے گامے سنگھاٹھیے کو امرتسر میں نہ دیکھا۔ والد صاحب ایک بار اپنے دوستوں سے بات کر رہے تھے تو معلوم ہوا کہ گاما بیٹی کی طرف نکل گیا ہے پاکستان بننے کے بعد میں ایک روز ہیرا منڈی میں سے گزر رہا تھا کہ میں نے گامے سنگھاٹھیے کو نوادری کی دکان کے کٹنگ مین پر بیٹھے دیکھا اس کے بال سفید ہو چکے تھے چہرہ بکھا بکھا اور کمزور ہو گیا تھا۔ وہ گردن جھکائے سر کو آہستہ آہستہ جھٹک رہا تھا۔ میں نے قریب جا کر سلام کیا تو اپنی بوجھل پکیں اٹھا کر سرخ نشیلی آنکھیں سنکیر کر مجھے کٹنے لگا پھر لگی سی اداس مسکراہٹ کے ساتھ بولا۔

”میں تہا فلول پہچانیا نہیں جاؤ گی۔“

مجھے ایک دھکا سا لگا۔ میں نے خشک ہونٹوں پر زبان پھیرتے ہوئے کہا۔

”میں باؤ میدا ہوں چا چا جی۔“

گاما سنگھاٹھیے اتنا س کر ایک پل کے لئے مجھے دیکھتا رہ گیا۔ پھر چانک بیچ پر سے اٹھا دونوں ہاتھیں بھلا کر مجھے سینے سے چٹالیا اور سسکیاں بھر کر بچوں کی طرح رونے لگا میری آنکھوں میں بھی آنسو آگئے مگر ہفتے میں والد صاحب کو پیغام لے کر آئے پاس گیا تو پتہ چلا کہ گاما سنگھاٹھیے فوت ہو چکا ہے۔ میں اداس اور بوجھل دل لئے واپس آگیا۔ بچھڑا موتیے کے پھول کی کاش میں کائنات کی دستوں میں کھو گیا تھا۔

امرتسر کا پروفیسر مندری

گورنمنٹ ہائی سکول امرتسر کے سامنے بیچ تاتھ ہائی سکول کے میدان میں پروفیسر مندری نے زمین پر ایک کافی بڑا دائرہ کھینچا ہے اور خود اس کے بیچ میں بیٹھا زمین پر رکھی ڈٹی کے اوپر دوٹی کھڑی کرنے کی کوشش کر رہا ہے۔ لیجئے دوٹی کھڑی ہو گئی۔ پروفیسر مندری نے دو تین بار شانے اچکائے ہیں اور آنکھیں بند کر کے ایک اٹھ اٹھا کر یہ شعر پڑھنا شروع کر دیا۔

آنکھ والا تیرے جوبن کا تماشا دیکھے

ادھر ادھر سے بچے آکر دائرے کی لکیر پر بیٹھنے لگے ہیں۔ کچھ بڑے بھی آن کر کھڑے ہو گئے ہیں۔ پروفیسر شعر پڑھ رہا ہے۔ کھڑی دوٹی کے ارد گرد چکر لگا رہا ہے۔ کبھی جھٹک کر دوٹی کے قریب آنکھی لے جاتا ہے اور پھر ”چھو“ کہہ کر یوں پیچھے ہٹتا ہے جیسے دوٹی سانپ ہو۔ اس قسم کی حرکتوں سے وہ لوگوں کے ذوقِ تجسس کو ہوا دے رہا ہے۔ کافی لوگ جمع ہو گئے ہیں، چنانچہ پروفیسر مندری ایک جگہ کھڑا ہو جاتا ہے۔ آنکھیں بند کر کے پہلے انگلی سے زمین چھوتا ہے پھر وہی انگلی کان پر لگا کر کہتا ہے۔

”یا مالک! کسی نیک کے منہ لگانا ——— تو بھی قسم ہے سب کو اپنے ماں باپ کی

ایک بار بعد سے تالی بجاؤ۔“

”جمع تالیوں سے گونج اٹھتا ہے۔ پروفیسر مندری کہتا ہے۔

”بچہ لوگ زور سے کبھی شوم جاتے۔“

بچے زور سے بولتے ہیں۔ شوم جاتے۔“

”یا مولا علی! تیرے نام کا آسرا ہے۔ بھائیو! میرے پاس ٹین کی اس ڈٹی میں سوارے

مندریوں یعنی انگوٹھیوں کے اور کچھ نہیں۔ آپ پرچسپ گے اس مندری میں خاص شے کیا ہے؟ تو
 بھائیوں، اس مندری میں اور دوسری مندریوں میں زمین آسمان کا فرق ہے۔ ان مندریوں یعنی
 انگوٹھیوں میں میرے پیر و مرشد کی کرامت ہے۔ کیا کرامت ہے؟ ایسا سب کو معلوم ہو جائے گا
 بھائیو! میں کوئی بے ایمان آدمی نہیں۔ ایک شریف گھرانے کا چشم و چراغ ہوں۔ مجھے روپے کا لاپرواہی
 نہیں۔ یہ کام میں صرف خدمت خلق کے لئے کر رہا ہوں، کیونکہ میرے پیر و مرشد کا یہی حکم ہے۔
 بچہ لوگ ایک بار پھر زور سے تالی بجاؤ۔

سانس بچے زور سے تالیاں بجانے لگتے۔ پردیسر مندری بچوں کی طرف دیکھ کر کہتا ہے۔
 • بو بھئی، جو لڑکا گھر سے جھا کر آیا ہے وہ میدان میں آجائے۔

ایک لڑکا میدان میں پردیسر کے پاس آکر کھڑا ہو گیا ہے۔ پردیسر نے تین کی ڈبئی میں سے
 چیل کی ایک دوپٹے والی انگوٹھی نکالی۔ انگوٹھی میں لال رنگ چمک رہا ہے۔ یہ انگوٹھی اس نے
 لڑکے کے انگوٹھے میں ڈال کر لڑکے کا ہاتھ اس طرح اس کی آنکھ پر رکھ دیا کہ انگوٹھی کا ٹکینہ اس کی
 آنکھ کے بالکل سامنے آجائے۔ پردیسر نے اپنے بائیں ہاتھ کے ٹکینے میں لڑکے کا ہاتھ جکڑ لیا
 ہے۔ اب پردیسر اور لڑکے کا مکالمہ لیں ہوں ہوتا ہے۔

پردیسر: کچھ نظر آ رہا ہے؟

لڑکا: اپنی آنکھ تکر رہی ہے۔

پردیسر: کہو ہٹ جاؤ۔

لڑکا: ہٹ جاؤ۔

پردیسر: آنکھ کا عکس ہٹ گیا؟

لڑکا: نہ جنیں۔

پردیسر: لڑکے ہاتھ کو انگلیوں کے ٹکینے میں زور سے جکڑتے ہوئے، اب بتاؤ۔
 ہٹ گیا؟

لڑکا: انگلیوں کے ٹکینے سے پریشان ہو کر ہٹ گیا۔

پردیسر: سو خوش ہو کر کہو جھاڑو والا آئے۔

لڑکا: جھاڑو والا آئے۔

پردیسر: جھاڑو والا آگیا؟

لڑکا: دانگیوں کے ٹکینے سے ڈر کر آگیا۔

پردیسر: کہو جھاڑو والے صفائی کرو۔

لڑکا: جھاڑو والے صفائی کرو۔

پردیسر: صفائی کر گیا؟

لڑکا: ہاں۔

پردیسر: کہو درکی والے درکی لاؤ۔

لڑکا: درکی والے درکی لاؤ۔

پردیسر: درکی بچھ گئی؟

لڑکا: ہاں درکی بچھ گئی۔

پردیسر: کہو کرسی والے کرسی لاؤ۔

لڑکا: کرسی والے کرسی لاؤ۔

پردیسر: کرسی بچھ گئی۔

لڑکا: بچھ گئی۔

پردیسر: کرسی لوہے کی ہے یا لکڑی کی؟

لڑکا: دندا بچھاتے ہوئے، جی؟

پردیسر: داتا تانہ سے دریا کر، اب غور سے دیکھ کرسی لکڑی کی ہے یا لوہے کی؟

لڑکا: لکڑی کی۔

پردیسر: اس میں ہیرے چمک رہے ہیں؟

لڑکا: ہاں چمک رہے ہیں۔

اب پردیسر مندری لوگوں کی طرف دیکھ کر کہتا ہے۔

• ہندو جو تو سری کرشن جی مہاراج کو، سیکھہ ہو تو بابا گورو نانک جی کو مسلمان ہو تو حضرت سلمانؓ

کو، اور اچوت ہو تو سری بالیگ جی کو بلائے۔ لڑکے تیرا نام کیا ہے؟

لڑکا :- غلام حسین۔

پروفیسر :- (ماں کا مزید دبا کر) تو کہو یا حضرت سلیمان جی!

لڑکا :- یا حضرت سلیمان جی!

پروفیسر :- مہربان کر کے تشریف لائیں اور اس کرسی پر اگر بیٹھ جائیں۔

لڑکا :- یا حضرت سلیمان جی! مہربان کر کے تشریف لائیں اور اسی کرسی پر اگر بیٹھ جائیں۔

پروفیسر :- بابا جی آئے ہیں؟

لڑکا :- جی!

پروفیسر :- (انگلیوں کا ہلکے سے ہونے) بابا جی آئے ہیں؟

لڑکا :- ہاں جی آگئے ہیں۔

پروفیسر :- کہو یا حضرت سلیمان جی السلام علیکم!

لڑکا :- یا حضرت سلیمان جی السلام علیکم!

اب پروفیسر مندری لوگوں کی طرف متوجہ ہو کر کہتا:

”اس بھرے مجمع میں سے کسی کو کوئی بھی سوال پوچھنا ہو۔ شادی نہیں ہو رہی، مقدمہ

جیتوں گا یا ہاروں گا، کاروبار چلے گا یا نہیں، جو بھی سوال پوچھنا ہو ہاتھ کھڑا کر دے۔“

کئی لوگ ہاتھ کھڑے کرتے ہیں۔ پروفیسر بڑے انکسار سے مسکرا کر کہتا ہے: ہاں ہاں

بھائیو! میں حضرت سلیمان جی کو پریشان نہیں کرنا چاہتا۔“

پھر وہ ایک آدمی کی طرف ہاتھ اٹھا کر پوچھتا ہے:

”ہاں جی بزرگو! آپ کیا پوچھنا چاہتے ہیں؟“

”میں یہ پوچھنا چاہتا ہوں۔ میرا لڑکا بڑے ہسپتال میں بہت سخت بیمار ہے

اُسے آرام آئے گا کہ نہیں؟“

”آپ کا اسم شریف بزرگو؟“

”اللہ دتا۔“

پروفیسر دو تین بار کندھے اچکا تا ہے اور پھر لڑکے کے ماتھے پر انگلیوں کا دباؤ ڈال کر کہتا ہے۔

پروفیسر :- حضرت سلیمان جی سے پوچھو۔ بابا جی!

لڑکا :- بابا جی!

پروفیسر :- اللہ دتا جی کا لڑکا جو بڑے ہسپتال میں پڑا ہے۔ ٹھیک ہو جائے گا؟

لڑکا :- اللہ دتا جی کا لڑکا جو بڑے ہسپتال میں پڑا ہے ٹھیک ہو جائے گا؟

پروفیسر :- اگر ٹھیک ہو جائے گا تو بابا جی شہادت کی انگلی کھڑی کریں اگر ٹھیک نہیں ہوگا تو

سر ہلا دیں۔“

لڑکا :- اگر ٹھیک ہو جائے گا تو بابا جی شہادت کی انگلی کھڑی کریں۔ اگر نہیں ٹھیک ہوگا تو

سر ہلا دیں۔“

پروفیسر :- دیکھو بابا جی نے شہادت کی انگلی کھڑی کی ہے یا سر ہلا رہے ہیں۔

لڑکا :- شہادت کی انگلی کھڑی کی ہے۔

اس جواب کے ساتھ ہی پروفیسر مندری زور زور سے دو ایک بار کندھے اچکا تا اور

اس بزرگ سے مخاطب ہو کر کہتا:

”جاؤ بزرگو! بچوں میں مٹھائی بانٹو۔ تمہارا بیٹا ٹھیک ہو جائے گا۔ میں نے تم سے کچھ

لیا تو نہیں نا؟ تم نے مجھ کو کچھ دیا تو کچھ نہیں نا؟“

وہ بزرگ خوشی سے نہال ہو کر کہتا:

”جہیں بیٹا!“

پروفیسر جمع میں چاروں طرف دیکھتا اور کہتا:

”اس بزرگو! کے بچے کی صحت کی خوشی میں سب لوگ زور سے تالی بجاؤ۔“

سارا مجمع زور زور سے تالیاں بجانے لگتا۔ تالیوں کی آواز سن کر کئی راہگیر یہ دیکھنے

کے لئے کھڑے ہو جاتے کہ یہاں کیا ہو رہا ہے، اور یہ حقیقت ہے کہ جو ایک بار پروفیسر

مندری کے مجمع میں آکر کھڑا ہو جاتا وہ اُس کی پچھے دار عجز و انکسار سے لبریز باتوں کا سیر

ہو کر رہ جاتا۔ چار چہ جائزہ مل کے سوالوں کے جوابات دینے کے بعد پروفیسر مندر کی بے
اسی سیٹانی انگوشی کے فوائد گنونا شروع کر دیتا۔

”مقتے کا فیصلہ اپنے حق میں کر دانا ہو، نئی شادی کرانی ہو۔ نبوسہ کو اپنے قدموں پر
جبکاتا ہو۔ مگر میں مدد ہو، عزم جو بھی حاجت ہو، جو بھی بیماری ہو، یہ انگوشی اپنے پاس
رکھنے سے فائدہ ہو جائے گی۔ اب آپ اس کی قیمت پوچھیں گے؟ اس کی قیمت کچھ نہیں۔ میں
ایسے لوگوں میں ضرور تمندوں میں، حاجت مندوں میں اپنے پیر و مرشد کا نام روشن کرنے کے
لیئے مفت بانٹتا ہوں اور سب لوگ مانتے ہیں کہ اس جگہ عرصہ چندہ برس سے کھڑا یہ
انگوٹیاں مفت بانٹ رہا ہوں، لیکن اپنے پیر و مرشد کے پاس کشمیر کی پہاڑیوں میں جا کر
مجھے ان انگوشیوں پر دم کر دینا پڑتا ہے، تو صرف آنے جانے کے کرائے کے لیے میں نے
اس کا قدرانہ صرف دو آٹے، دو آٹے رکھا ہے۔“

اب پروفیسر ڈبئی میں سے ساری انگوشیاں نکال کر اپنی ہتھیلی میں ڈال لیتا اور کندھے
اچکا اچکا کر کہتا،

”میرے پاس بہت تنگڑی انگوشیاں رہ گئی ہیں۔ جن صاحب کو لینی ہو اور دے
کر پکے۔ جلدی کریں۔ یہ نہ سوچیں کہ وہ لے گا تو میں بول گا۔ دو آٹے دو آٹے۔ اچھا
مہربان لایا۔“

”ایک انگوشی مجھے بھی دینا۔“

”لایا مہربان۔“

”ایک مجھے بھی دینا۔“

”لایا چا چا جی۔“

”ایک اور بھی لائیں۔“

”لایا میاں جی۔“

میں ان دنوں گورنمنٹ اسکول لہر تھر میں پڑھا کرتا تھا۔ کلاس دوم سے کھسک کر میں
پروفیسر مندر کے مجھے میں جا کر کھڑا ہو جاتا۔ وہ بڑے جوش و خروش سے بول رہا ہوتا اس

اس کے ہونٹوں کے کونوں میں جھاگ جمع ہوتا۔ ماتھے پر پسینہ، وہ بار بار گلے میں لٹکے ہوئے
پرنے سے چہرہ پونچھتا۔ وہ ہانسی لگی میں رہتا تھا اور مجھے اچھی طرح جانتا تھا۔ ایک روز اس
نے مجھے پکڑ کر میدان میں کھڑا کر دیا۔ میرے انگوشے میں انگوشی ڈالی اور ہٹ جاؤ جھاڑو والے
جھاڑو لاؤ۔ درکی والے درکی لاؤ کی گردان شروع کر دی۔ اس کا خیال تھا کہ میں اس کے مجھے
کا ہوں مجھ پر اسے زیادہ محنت نہیں کرنی پڑے گی۔ لیکن میں انتہائی شریروں ہوا کرتا تھا۔ اس نے
کہا۔

”ہٹ جاؤ۔“

”ہٹ جاؤ۔“

”کیا نظر آ رہا ہے؟“

”آنکھ۔“

”کس کی آنکھ؟“

”میری آنکھ۔“

پروفیسر مندری ذرا سہٹایا۔ پھر لوگوں کی طرف دیکھ کر کھسیانی سی ہنسی ہنسی کر بولا۔

”ابھی دماغ روشن ہو چلے گا۔“

اس کے بعد اس نے اپنی انگلیوں سے میرا مقابڑے زور سے دبانا شروع کر دیا۔

”اب دیکھو۔“

”دیکھ رہا ہوں۔“

”کیا نظر آ رہا ہے؟“

”آنکھ۔“

”کس کی آنکھ۔“

”میری آنکھ۔“

میں پروفیسر کا مجمع خراب کر رہا تھا۔ وہ سمجھ گیا۔ فوراً انگوشی میرے ہاتھ سے تار کر یک
دھول میری گردن پر ماری اور کہتا۔

بھاگ جا خلیفے دے پتر! آج تو نہا کر اسکول نہیں آیا۔

میں بھاگ کر مجھ سے باہر آتا اور کہیں نہ کہیں آدمیوں کے بیچ میں سے گھس کر دو بار مجمع میں اکر کھڑا ہو جاتا۔ دیکھتے دیکھتے پروفیسر کی ساری انگوٹیاں بک جاتیں۔ ڈبئی خالی ہو جاتی اور اُس کی جیب سکوں سے بھر جاتی۔ کئی بار میں نے مجھ میں پروفیسر کے بھائیوں کو بھی۔ انگوٹیاں خریدتے دیکھا۔ ایک روز جو میں مجمع میں گھسا تو پروفیسر ایک بوڑھے سے پوچھ رہا تھا۔

۔ بابا جی! آپ میری انگوٹھی خرید کر لے گئے تھے نا؟

۔ ہاں بیٹا۔

۔ آپ اپنے ایمان سے بتائیں۔ خدا کو جان دینی ہے۔ خدا کو حاضر ناظر جان کر بتائیں کیا آپ کو فائدہ ہوا؟

۔ ہاں جی بڑا فائدہ ہوا۔

۔ میں نے آپ سے کچھ لیا تو نہیں؟ آپ نے مجھے کچھ دیا تو نہیں؟

۔ جی نہیں۔

۔ خدا آپ کا بھلا کرے۔ تو صاحبان!.....

وہ بوڑھا، پروفیسر مندری کا والد تھا۔

آدھا امر تسر جانتا تھا کہ پروفیسر مندری جھوٹ کا دھند اکر رہا ہے۔ جعل انگوٹیاں بیچتا ہے۔ یہاں تک کہ اس کے مجمع میں کھڑے لوگوں کو میں نے اُس پر ہنستے دیکھا ہے پھر بھی لوگ اُس سے انگوٹیاں خریدتے تھے اور اس کے کاروبار میں کبھی فرق نہیں آیا تھا۔ مجمع میں جب کوئی شخص اس پر آوازہ کرتا تو پروفیسر کا آدمی اُس کی گردن پیچھے ہی سے دبوچ کر اُسے نکال باہر لے جاتا۔ اگر کوئی اکر جاتا اور لڑائی مار گشتی پر آمادہ ہو جاتا تو پروفیسر مندری لپک کر اُس کی ٹھوڑی پر ہاتھ رکھ کر انکسار سے کہتا۔

۔ یار جادو ناں! کیوں میری مندری میں لات مار رہے ہو؟

ہندوؤں کے محلے میں مجمع لگانے وہاں تھے پرنٹنگ رگ، سر پر گول ہندو اندھ ٹوپی پہن

کر جاتا۔ سکھوں کے علاقے میں وہ سر پر گلاڑھی باندھ کر جاتا اور گورو بابا نامک کے نام پر بار بار بارہا ہتھ آ نکھوں پر لگا کر چومتا۔ اپنے محلے میں لوگ اُس سے فرڈ سمجھتے تھے۔ ہر شخص اُس سے مذاق کرتا۔ اُس کی کسی بات کی کوئی قدر و قیمت نہ تھی۔ اُسے بیوقوف بنانے کی کوشش کی جاتی۔ جب وہ انگوٹیوں والی ڈبئی ہاتھ میں لے کر گول ہندو اندھ ٹوپی پہنے پرنٹنگ رگ میں ڈالے گل میں سے گزرتا تو محلے کے لڑکے اُس پر آوازیں کتے۔ دکاندار بھی اُس پر ایک آدھ فقرہ حسرت کرنا کہیں نہ بھولتے۔ پروفیسر اُن سب کا جواب ایک بے غررسی، عاجزادہ سی مسکراہٹ کے ساتھ دیتا اور کندھے اچکا تا، گردن دابھنے کندھے کی طرف جھکائے گل میں سے گزر جاتا۔

وہ کشمیری ہاتھوں کی طرح لچیم شمیم تھا۔ دانت چھوٹے چھوٹے تھے۔ جیسے کسی کسی نے ریتی سے گھسا دیئے ہوں۔ ہمیشہ پرانی سی پتلون اور چٹل پہنتا۔ قمیض پتلون سے باہر رہتی۔ رنگ کھتا ہوا تھا۔ عمر یہی کوئی چالیس کے قریب ہوگی۔ مگر صحت مند تھا۔ ایک زمانے میں اُس نے ریل گاڑیوں میں گھوم پھر کر زنبور سے لوگوں کے دانت نکالنے کا بھی دھندا کیا، مگر یہ دھندا چل نہ سکا۔ انہی دنوں محلے کے پنواڑی چاند خان کی ڈارو میں شدید دھندا اٹھا تو پروفیسر نے اُس کی ڈارو نکالنے کے لیے اپنی خدمات پیش کیں۔ چاند خان مان گیا۔ پروفیسر فوراً گھر سے اپنا زنگ آلود زنبور لے آیا اور چاند خان سے بولا۔

۔ منہ کھولو چاند خان۔

بوڑھے اور بڈیوں کے ڈھانچے مراد آبادی پنواڑی نے منہ کھول دیا۔

۔ اور کھولو۔

چاند خان نے اور منہ کھول دیا۔

۔ اور کھولو۔

چاند خان منہ کھولے ہی کہنے لگا۔ سب یہ ہنسا کر وہ اس سے زیادہ

نہ ہنسیں کھول سکتا۔ پروفیسر نے کہا۔

۔ خیر کوئی بات نہیں۔ مجھے دشمن نظر آ گیا ہے۔

چنانچہ پروفیسر مندری زہور والا ہاتھ لے کر چاند خان کے کھلے منہ میں گھس گیا اور ایک زبردست دھچکے سے ڈکڑا کھاڑ پھینک لیا۔ چاند خان بلبلا اٹھا۔
پروفیسر نے کہا: "منہ بند کر لو چاند خان!"

مگر چاند خان کا منہ دوبارہ بند نہ ہو سکا۔ جانے جبر سے کی کوئی ہڈی کس ہڈی پر چڑھ گئی تھی کہ اس کا منہ کھلے کا کھلا رہ گیا۔ پروفیسر وہاں سے بھاگ گیا اور چاند خان کو کھلے والے تلنگے میں ڈال کر ہسپتال لے گئے۔ پروفیسر ایک لاری میں بیٹھ کر جانچو کی طرف نکل گیا اور کئی روز کھلے سے غائب رہا۔ ایک روز میں شہر کی ہندو آبادی میں اپنے ایک دوست شانتی سروپ سے ملنے گیا تو میں نے پروفیسر کو ایک مندر کے باہر جمع لگائے دیکھا۔ ماتھے پر تنک تھا۔ سر پر ہندو اندھ ٹوپی تھی اور وہ بار بار شری رام شری رام کرشن جی مہاراج کا نام لے رہا تھا اور ہر بار ان کے نام پر ہاتھ چوم چوم کر انگلیوں کو لگا رہا تھا۔ میں اس کے مجمع میں جا کر کھڑا ہو گیا۔ وہ بڑے نورشور سے بول رہا تھا۔ اس کے ہونٹوں کے کناروں سے جھاگ اڑ رہا تھا، ماتھا اور گنجا سر پینے میں شرا بھر رہا تھا۔ اچانک اس کی نظر مجھ پر پڑ گئی۔ فوراً میرے قریب آیا اور سر پر ہاتھ پھر کر بولا:

"گوپال پتر! جاؤ تمہاری ماتا جی یاد کر رہی ہیں!"

مجھے بڑا غصہ آیا۔ میں کہنے ہی لگا تھا میں گوپال نہیں حمید ہوں کہ پروفیسر نے مجھے آنکھ ماری اور دوبارہ ہندوؤں کو اپنی لچھے دار باتیں سنانا شروع کر دیں۔ میں وہاں سے چل دیا۔

چاند خان ہسپتال سے نیک ہو کر یعنی اپنا منہ بند کر آیا تو پروفیسر اس کی دکان پر خود گیا اور ہاتھ جوڑ کر اس سے معافی مانگ لی۔ چاند خان بڑی تنک مزاجی سے اس پر ہستا رہا۔ پروفیسر ہاتھ باندھے کھڑا رہا اور عاجزانہ انداز میں یہی کہتا رہا۔

"معافی بزرگو! معافی!"

یہ سن کر پروفیسر مندری کے کردار کا جزو اعظم تھا۔ ایک عاجزانہ سی بھیبانی

سی منہ ہر وقت اس کے چہرے پر رہی۔ آج میں پروفیسر کا چہرہ اپنی آنکھوں کے سامنے لاتا ہوں تو مجھے احساس ہوتا ہے کہ اس کی عاجزی میں بے جا رگی نہیں تھی، بلکہ ایک قسم کی بے نیازی اور سکون سا تھا۔ ایک جوگی، ایک ستیا سی کا سکون جو مٹی کو سونا کے بھید سے واقف ہو گیا ہو اور جس کے نزدیک اب سونا مٹی بن کر رہ گیا ہو۔ مجھے واسے اسے بے وقوف بناتے اور وہ فوراً بے وقوف بن جاتا، بلکہ اپنی کچی اور کھسپانی باتوں سے دوسروں کو شرم دیتا کہ اسے احمق بنایا جائے۔ کوئی بڑا بوڑھا اسے اس قابل نہیں سمجھتا تھا کہ کسی بھی گھر یا معاشرتی مسئلے پر اس کی رائے لی جائے۔ گلی کا کوئی ورزی، عطار، حلوائی یا کرک پروفیسر پر بھتی کستا تو جواب میں پروفیسر منہ دیتا۔ اگر کچھ کہتا تو بس اتنا:

"خوش رہو یار توں!"

اس کی زبان پر اپنے اور غیروں کے لیے ہمیشہ کلمہ خیر ہوتا۔ میں نے اسے کبھی کسی کو گالی دیتے یا بدعنوانی نہیں سنا۔ میں نے کبھی اسے کسی پر ناراض ہوتے یا غصے میں آگ بگولا ہوتے نہیں دیکھا، حالانکہ اس کا دھندا ایسا تھا کہ اسے لوگوں کی پھبتیاں اور آوازے دن میں کئی بار سننے پڑتے۔ کبھی کبھی میں اسکول جا رہا ہوتا یا اسکول سے واپس آ رہا ہوتا تو پروفیسر سر پر ہندو اندھ ٹوپی رکھے۔ ہاتھ میں ٹین کی ڈبیا لیے مجھے اپنی طرف آتا دکھائی دیتا میرے قریب سے گزرتے ہوئے وہ مسکرا کر کہتا:

"یار حمید! خوب پڑھائی ہو رہی ہے پھر!"

تماز پڑھنے وہ کبھی مسجد میں نہیں گیا تھا۔ گلی میں وہ ہمیشہ سر جھکائے داخل ہوتا اور سر جھکائے نکل جاتا۔ ایک برس لاہور میں حضرت داتا گنج بخش کا عرس ہوا تو پروفیسر میلے میں مجمع لگانے کے خیال سے ریل میں بیٹھ کر لاہور کی طرف روانہ ہو گیا۔ آدھے راستے یعنی انارک کے سٹیشن پر پکڑے خریدنے پلیٹ فارم پر اتر رہا تھا کہ انٹوٹا ڈبے کے دروازے میں آکر آدھا کٹ گیا۔ فوراً عرس مہارک پر جا کر مجمع گانے کا خیال ترک کیا اور بس ملک بیٹھ کر واپس امرتسر آیا۔ میرے والد نے وجہ پوچھی تو کندھا اچکا کر بولا:

"خلیفہ! سوچا جائے تو میں لوگوں کو دھوکا دینے عرس مہارک پر چارہا تھا۔ قدرت

نے مجھے وہیں روک دیا۔

اس حادثے کے بعد پروفیسر نے زندگی بھر کی داتا صاحب کے عرس پر جمع نہ لگایا۔ ایک دفعہ ہماری گلی میں محلے کے ایک مالدار شخص کے بیٹے نے کسی بات پر غصا ہو کر ایک جولاہے کے لڑکے کو اس زور کا مارا کہ اس کے ہونٹ پھٹ گئے اور خون جاری ہو گیا پروفیسر گلی میں سے گزر رہا تھا۔ اُس سے یہ منظر نہ دیکھا گیا۔ جھٹ آگے بڑھا اور زخمی غریب لڑکے کو پیار کرنے اور اپنا پرنا لگایا کر کے اُس کا خون صاف کرتے لگا۔ امیر لڑکے سے صرف اتنا کہا۔

”یار لڑائی جھگڑا نہ کیا کرو۔“

امیر زادہ تنک کر بولا۔

”تم کون ہوتے ہو مجھے پروفیسر۔“

پروفیسر عاجزی سے بولا۔

”یار مجھے چاہیے جو کچھ کہہ لو اس لڑکے کو کچھ نہ کہو۔ یہ تو بے چارہ غریب مل باپ کا بیٹا ہے۔“

امیر لڑکے کا مالدار باپ بھی اپنے دیوان خانے کی گھر کی میں بیٹھا یہ سارا ماجرا دیکھ رہا تھا۔ غصہ کھا کر باہر آیا۔ آؤ دیکھا نہ تاؤ دھڑا دھڑا پروفیسر کے منہ پر طمانچے مارنے شروع کر دیتے۔ پروفیسر کے دانتوں میں سے خون بہنے لگا۔ وہ گینے پر سے خون پونچھتا جاتا تھا اور کھسانی سی مسکراہٹ کے ساتھ کہے جاتا تھا۔

”معاف کر دیو بزرگو! معاف کر دیو۔۔۔“

فساد کے قیامت خیز دنوں میں اسی مالدار شخص کے بڑے بیٹے کو گولی ملی تو محلے میں سے کوئی بھی اُسے برستی گولیوں میں ہسپتال لے جانے کو تیار نہ ہوا۔ پروفیسر نے شدید زخمی نو جوان کو تانگے میں ڈالا اور اپنی جان پر کھیل کر اُسے ہسپتال لے گیا۔

اُس کے چھوٹے بھائی نے مجھے بتایا کہ وہ گھر میں اپنے ماں باپ کا بڑا ادب کرتا تھا۔ کبھی اُن کے سامنے اونچی و زمین نہیں بولتا تھا۔ اُسے کوئی نشہ بھی نہیں لگتا تھا۔

تپان تبا کو نہ جوان شراب۔ دن میں ایک تیرہ دوپہ کو روکھی سوکھی کھا لیتا۔ جو کچھ کما کر لانا اپنی ماں کے قدموں میں لاکر ڈال دیتا۔ باپ بڑھا تو گئی تھا۔ چھوٹے چھوٹے بہن بھائی تھے۔ پروفیسر نے لوگوں کی پھبتیاں سنیں، طعنے سبے، آواز سے سننے، مگر بہن بھائیوں نے۔ پرورش کی۔ بہنوں کی اچھی بگڑ شادیاں کیں، اور اب وہ اپنے اپنے گھر خوش و خرم ہیں۔ دو بھائی اور ایک بہن لندن میں ہے۔ پروفیسر منہدی نے خود زندگی بھر شادی نہ کی۔

پاکستان بن جانے کے بعد وہ بھی اپنے کنبے کے ساتھ لاہور آ گیا۔ لاہور میں وہ جب کبھی مجھے بھائی یا نسبت روڈ یا میکٹورڈ روڈ پر ملتا، سب گھردلوں کی خیر و عافیت دریافت کرتا۔ محلے والوں کی بابت پوچھتا۔

”یار ہماری گلی کے سب لوگ آگئے تھے نا۔“

اُسے اپنے محلے کے سب لوگوں کی فکر تھی۔ اُن لوگوں کی بھی جو اُس پر آؤں گے کہتے تھے۔ اُن لوگوں کی بھی جو اُسے احمق بنایا کرتے تھے۔ اُن لوگوں کی بھی جو بیچ بازار میں اُس کی بے عزتی کر دیا کرتے تھے۔ اُسے کسی کی نفرت یا دہشت تھی۔ وہ سب سے محبت کرتا تھا اور سب کی خیر کا طالب تھا۔

لاہور آکر اس نے ابتدا میں جمع لگایا، انگوٹھیاں بیچتا رہا۔ اس کے بعد جمع لگانا چھوڑ دیا۔ اب اُس کے چھوٹے بھائی جوان ہو گئے تھے اور کمانے لگے تھے۔ بہنیں اپنے اپنے گھر آباد ہو گئی تھیں۔

ایک روز میں سرما کی چکیل دھوپ میں بارغ بنات میں اپنے دوستوں کے ساتھ گھوم رہا تھا کہ میں نے پروفیسر کو ایک پلاٹ میں بیٹھے دیکھا۔ وہ روٹی کے چھوٹے چھوٹے کورسے کر کے چڑیوں کو ڈال رہا تھا۔ پڑیاں ہری ہری گھاس پر خوشی سے چبک چبک کر کورسے چگ رہی تھیں۔ پروفیسر چڑیوں کو دیکھ کر بڑا خوش ہو رہا تھا۔ کبھی کوئی چڑیا اُس کے ذرا قریب آکر اپنی چونچ اٹھا کر اُسے تنگے لگتی تو وہ اُس کی طرف گردش نہ کرتا تھا۔ کبھی اُن کے سامنے اونچی و زمین نہیں بولتا تھا۔ اُسے کوئی نشہ بھی نہیں لگتا تھا۔

تھے۔ مجھے یقین ہے وہ چڑیوں سے یہی پوچھ رہا ہوگا۔

”کیوں بھئی ننھی متی چڑیو! کیا حال چال ہے؟“

آخری بار میں نے پروفسر کو اتار گلی سے گزرتے دیکھا۔ دوپہر ڈھل رہی تھی۔ اتار گلی میں بڑا رش تھا۔ پروفسر لوہاری دروازے سے نیلے گنبد کی طرف جا رہا تھا۔ اس کی گردن ہین کندھے پر ذرا جھکی ہوئی تھی۔ چہرے پر وہی بھولی بھالی پُر سکون سی مسکراہٹ تھی اور وہ لوگوں کے شور وغل اور ہجوم سے بے نیاز یوں چلا جا رہا تھا جیسے بارغ جناح کی کسی سایہ دار سُنسان روٹ پر سے گزر رہا ہو۔ پروفسر لاغر اور بوڑھا ہو گیا تھا۔ اُس نے مجھے نہیں دیکھا اور اپنی دنیا میں مگن میرے قریب سے ہو کر نکل گیا۔ میں اُس کی طرف دیکھ کر ذرا سا مسکرا دیا۔ وہ مجھے بڑا اچھا لگا۔۔۔۔۔۔ وہ مجھے ہمیشہ بڑا اچھا لگا تھا۔ وہ نقلی پروفسر تھا اس کے پاس کسی سکول، کسی کالج، کسی یونیورسٹی کے سرٹیفکیٹ نہیں تھے۔ وہ اُن پڑھو تھا اُس نے کبھی کسی کالج کے کلاس روم میں لیکچر نہیں دیا تھا، اُس نے کالجوں اور سکولوں کے باہر مجمع ضرور لگایا تھا۔ میرے خیال میں اُس نے اپنے مجمعوں میں جو لیکچر دیئے وہ آج کے کے پروفسر کے لیکچروں کے مقابلے میں زندگی سے زیادہ قریب تھے۔ اس لئے کہ آج کے پروفسر کو ٹیڑھیری نے جنم دیا ہے اور وہ پروفسر بھوک، افلاس، معاشرتی نا انصافی اور مردم آزاری کی دلدلوں میں پیدا ہوا۔ آج کے پروفسر کے اصلی سرٹیفکیٹ جھوٹے ہیں اور کل کے پروفسر کے جھوٹے متنے پتے تھے۔ اُس نے اپنے لیکچروں سے کسی طالب علم کی تربیت نہیں کی۔ وہ خود ہی مرتب ہو گیا۔ وہ ایک ایسا عجیب و غریب پارس پتھر بن گیا جو اپنی اجڑائی کی بیشی کے باعث کسی کو سونا تو نہ بنا سکا، لیکن خود سونا ہو گیا۔

آج سے چند برس پہلے مجھے کسی نے بتایا کہ پروفسر مر گیا۔ جانے کیوں یہ خبر سننے ہی میرے لبوں پر ہلکی سی مسکراہٹ آگئی۔ وہی مسکراہٹ جو ایک دوپہر پروفسر کو اتار گلی میں سے گزرتے دیکھ کر میرے ہونٹوں پر آئی تھی۔ اور

پھر میں نے ایک منظر دیکھا۔ سنہری دھوپ میں زمرد کی درن دکتا، سرخ گلابوں سے بھرا ہوا خوشبودار باغ۔ اور اس باغ کے شفاف پانیوں والی نہر کے کنارے پروفسر

لکھاس پر بیٹھا نیل آنکھوں والی سبز چڑیوں کو دنہ ڈال رہا ہے۔ ایک بھولی بھالی چڑیا اپنی سرخ چوہنچ اٹھا کر پروفسر کو دیکھتی ہے اور پروفسر اسے پچھارتے ہوئے ذرا سا مسکرا کر پوچھتا ہے۔

”کیوں بھئی ننھی متی چڑیو! کیا حال چال ہے؟“

امرتسر کے جن اور بھوت

دیے تو امرتسر کا ہر مسلمان اپنی جگہ پر جن تھا پھر بھی شہروں کے اپنے بھوت پریت ہوتے ہیں ان کی اپنی کہانیاں ہوتی ہیں۔ ہر کہانی کو سچا واقعہ کہہ کر سنایا جاتا ہے۔ سنانے والا اپنی بساط کے مطابق اس کے گرد آسیب اور دہشت کے افسے بناتا چلا جاتا ہے۔ یہ آسیبی کہانیاں سینہ بہ سینہ چلتی ہوئی خاص شہر کی معاشرتی زندگی کا ایک حصہ بن جاتی ہیں۔

امرتسر کی ایک چڑیل میان پوترو کی کہانی میں آپ کو سنا چکا ہوں۔ آج آپ کو کچھ اور بھوت پریت کے واقعات سناؤں گا۔ یہ سارے جن بھوت پاکستان بننے کے بعد امرتسر میں ہی رہ گئے اور اگر پاکستان چلے آئے ہیں تو ان سے چہرہ بھی یہاں ملاقات نہیں ہوئی۔

دادا احان سنایا کرتے تھے کہ جب پہلی بار ریل گاڑی چلی تو امرتسر کے چاروں طرف پھلدار باغ اور ٹابیاں ہی ٹابیاں ہوا کرتی تھیں اور وہاں دن میں جاتے ہوئے بھی آگنی گھبراتا تھا۔ باغوں کے راکھے بلند آواز میں چڑیاں طوطے اڑا کر اپنے دل کا خوف کسی حد تک دور کرنے کی کوشش کرتے تھے۔ یہاں ایک درخت آسیب زدہ تھا۔ دادا جان کہتے ہیں کہ اس درخت پر کبھی کبھی راتوں کو آگ کی چمکیاں اڑا کرتی تھیں ایک بار ایسا ہوا کہ رات کو باغ کے راکھے کی آنکھ کھل گئی۔ پھلوں کا موسم تھا۔ سارا باغ گول گول سفید امرودوں سے لدا ہوا تھا۔ اسے یوں لگا جیسے کوئی امرود توڑنے باغ میں گھس آیا ہے۔ وہ اپنی چھوٹی ہڈی سے لٹل کر باہر آیا تو اسے ستاروں کی دھیمی روشنی میں آسیبی درخت کے نیچے ایک آدمی دکھائی دیا جو نوکری امرود سمیر رہا تھا رکھا رکھا دیں سے لٹک کر اس کی طرف بڑھا اور سونٹیا گھا کر اس کی ٹانگوں پر مارنا چاہتا تھا کہ وہ آدمی غائب ہو گیا۔ راکھے کا سونٹا اوپر کا اوپر ہی رہ گیا۔ ابھی وہ پورے طرح ہنسنے بھی نہ پایا تھا کہ درخت کی شاخوں سے کوئی شے دھب سے زمین پر گر گئی اور ڈھلکتی ہوئی

راکھے کے پاؤں کے ساتھ ہلک لگ گئی راکھے نے جبک کر دیکھا۔ وہ کسی انسان کا تانہ کٹا ہوا سر تھا۔ اگلے روز راکھے کی لاش اسی درخت کے ساتھ ٹکلتی پائی گئی۔ اس کے بعد کوئی اس طرف نہیں جاتا تھا جس شخص نے امرودوں کا ٹیکہ لیا تھا اس کے مزدور بھاگ گئے۔ میں نے امرتسر میں ہوش سنبھالا تو دیکھا کہ گھروں میں ایک طاق مزدور ہوتا جہاں جمعرات کی جمعرات دیا جلا یا جاتا۔ ہمارے گھر کی کچل کو ٹھڑی میں بھی ایک طاق میری نانی یہاں پر جمعرات کی شام کو دیا جلا یا کرتی۔ دہلی پٹی سفید سی بوڑھی عورت تھی، گھاروئی سے بنائی گئی ہے۔ کشمیری زبان بڑی روانی سے بول لیتی تھی۔ ایک روز میرے پوچھنے پر نانی نے بتایا کہ طاق میں بابا جی رہتے ہیں میں اس کو ٹھڑی میں جاتے ہوئے ڈرتا تھا۔ ایک روز نانی دیا جلا کر گئی تو میں نے کیوڑ کی درز سے آنکھ لگا کر دیکھا کہ ایک سفید ریش بزرگ کا چہرہ دیے کی نوک کے ساتھ لگا مسکرا رہا ہے میں چیخ مار کر نہ بھلا اور ہا کر نانی سے پوچھ گیا اس نے مجھے اپنے ساتھ لگا کر پیار کرتے ہوئے کہا۔

• بابا جی اتم سے بڑا پیار کرتے ہیں۔ اسے تو ان کی دعاؤں سے تو اس دنیا میں پایا ہے۔ میرا خیال تھا کہ یہ میرا وہم تھا۔ لیکن اس عہد کے لوگ ان باتوں پر بڑا پکا یقین رکھتے تھے میری اپوجی نے مجھے ایک کہانی سنائی کہ ایک جن تھا جو سمرقند سے امرتسر کی ایک مسجد میں مؤذن بن کر آیا۔ وہ دہلا اور لمبا تھا۔ جب اذان دیتا تو اتنا لمبا ہوتا کہ گردن نیچی کر کے سارے امرتسر شہر کا تھارہ کر لیتا ہماری گلی میں ایک لسترا لگ آدمی تھا کہ اس کے قائم و یقین نان ہائی کی دکان پر رات کو خمیر گوندھا کرتا تھا اس کی گردن اونٹ کی طرح لمبی تھی اور جھک کر چلا کرتا۔ رات کو کاسے کی دکان میں خمیر گوندھا اور دن ظہر سے باہر کسی تالاب پر مچھلیاں پکڑنے میں گزار دیتا۔ مجھے یقین تھا کہ یہ وہ سمرقند کا جن ہے جس کی کہانی اپوجی نے سنائی تھی۔ وہ جب مچھلیاں پکڑنے والی لمبی چھڑی کندھے پر رکھے، بغل میں تھیلہ لٹکائے گی میں سے گزرتا تو میں بھاگ کر مکان کی سیڑھیوں میں چھپ جاتا۔

لٹکے نانہائی کی دکان میں ایک کتا بھورا آدمی تھا جو تلچے گھڑا کرتا تھا وہ سارے کا سارا بھورا تھا۔ چلیں بھی بھوری تھیں اور آنکھیں میچ کر دیکھا کرتا۔ بالکل اُن طرح تھا اس کے سر پر جن کا سایہ تھا۔ جب کبھی اسے وہ پڑتا تو اس کی آواز بھاری ہو جاتی۔ وہ پوری آنکھیں کھول لیتا اور فر فر فارسی بولنی شروع کر دیتا۔ احمد رفوگر کو آدمی سے زیادہ مثنوی مولانا مہم یاد تھی۔ اس نے ایک بار جن کی فارسی کا امتحان لیا اس نے بھورے سے پوچھا کہ وہ کون ہے اور کہاں کا رہنے والا ہے؟ بھورے نے کہا۔

”میرا ہم سلیمان جن سے اور میں ایلان سے آتا ہوں۔“

”کیا تم بھی مولانا روم کی مثنوی کے شعر سن سکتے ہو؟“

سلیمان جن نے ترنم سے مثنوی رومی سنائی شروع کر دی۔ دکان پر محلے والوں کا جھگڑا لگا تھا۔ مثنوی سلام بابا پر قورقت طاری ہو گئی۔ احمد رفر بھی سر جھکا کر حجوم رہا تھا۔ سلیمان جن نے کہا:

”اب بتاؤ کون سا پہل کھاو گے؟“

احمد رفر کو نے کہا۔

”کوئی بے موسیٰ پہل کا چاہیے۔“

بھورے نے اپنے جسم کو سمیٹ کر ہاتھ واسکٹ کے اندر ڈالا اور ایک مخرج قندھاری مار نکال کر تخت پوش پر رکھ دیا حالانکہ وہ موسم تاروں کا نہیں تھا۔ لوگوں نے فرط عقیدت سے اللہ اکبر کے نعرے لگنے شروع کر دیئے۔ مثنوی دیر بعد سلیمان جن نے کہا:

”اچھا اب ہم جاتے ہیں، پھر ملے گے۔“

یہ ساری گفتگو وہ فارسی زبان میں کر رہا تھا جس کا ترجمہ ساتھ ہی ساتھ احمد رفر لوگوں کو سنائے جاتا تھا جن چاہا گیا تو بھورا نیم ہان سا بھر تخت پوش پر لیٹ گیا۔ جب بوٹ آیا تو وہ ویسے کا دلیا ان پڑھ تھا اور وہ فارسی کی الف ب سے بھی ناواقف تھا۔ ضعیف الاعتقاد عورتیں اور مردوں نے بھورے کو اپنا پیرو بنا لیا اور منتیں ماننے کے بعد پھر کبھی اس کی شکل نہ دیکھی۔

ہماری ساتھ والی گلی میں ایک سکھر پر سی جن آتا تھا۔ ظاہر ہے اس کا جن بھی کوئی سکھر ہی ہو گا یا اگر سکھر نہیں تھا تو دو تین بار اس سکھر پر آنے کے بعد خود بھی سکھر ہو گیا ہو گا ویسے بھی اس جن کے سکھر ہونے میں کلا شبہ ہو سکتا ہے جو ایک سکھر پر آ جائے۔ میرا خیال ہے جن لوگوں نے اس ترسے سکھر دیکھے ہیں انہیں جن دیکھنے کی حاجت نہیں ہو گی۔ یہ سکھر جو ہماری ساتھ والی گلی میں رہتا تھا۔ ایک ترکھان تھا اور نہایت شریف آدمی تھا۔ وہ لوگ جن کو مسان کہتے تھے۔

جس وقت سکھر کو دورہ پڑتا تو وہ اپنے سر کو اس زور سے جھٹکا دیتا کہ گڑی چھل کر دور نہ پڑتی اور کس کھل جاتے بکریوں کو بنا چاہتے کہ بالوں کا سوٹ کیس کھل جاتا، اس کے سر کے بال تو نچھوٹ کے بال ڈارمی کے بالوں میں الجھ جاتے اور وہ ایک ٹانگ پر رقص ربا شروع کر دیتا۔ اس سے پٹے

میں نے اتنا زیادہ کھلا سکھر کبھی نہیں دیکھا تھا اس کے گھروں کے سامنے نکالنے والی ٹولی کو بلا لیتے جو سارا سارا دن اور ساری ساری رات دھول کا کھڑکا اور چھینے بجا بجا کر محلے والوں کا ناک میں دم کر دیتے۔ سکھر سکھر بے چارے کو ہرل کی دھونی دیتے مگر جن اس بے چارے سکھر کو بچائے چلا جاتا۔ بھلا جو جن سکھر کو برداشت کر سکتا تھا۔ ہرل کی دھونی اس کے سامنے کیا حیثیت رکھتی تھی۔

سان عام طور پر ہندو سکھوں کے گھروں میں آتے تھے اور جن مسلمانوں پر سوار ہوتے تھے۔ چڑیلیں اجاڑ باغوں، اور ویران، پرانی حویلیوں میں ڈیرہ لگاتی تھیں۔ چلیڈے درختوں میں بیکر کرتے اور چھوٹے چھوٹے بچوں کی شکل میں آدمی رات کے وقت مسافروں کو ملتے۔ ان کا راستہ روکتے، قہقہے لگاتے اور پھر انہیں بے ہوش کر کے غائب ہو جاتے۔ ان کے رنگ کالے ہوتے اور منڈے ہوئے سروں پر لمبی ہویاں ہوتی تھیں۔ ہماری گلی میں پر بنے کاڑ کا کلا تھا اور اس کی لمبی بودی تھی ہم اسے چھیڑا کہہ کر روٹے مارا کرتے تھے۔

ہمارے محلے میں ہی ایک دائی رہتی تھی جس کا ہم مجھے معلوم نہیں کیا تھا لیکن محلے میں وہ اپنی ڈب ڈب کے نام سے مشہور تھی۔ محلے کی ایک پوری نسل کی دایہ گری اسی نے کی تھی۔ سرخ و سفید بھادی بھر کم بڑی رعب داب والی کشمیری عورت تھی۔ اس کے بارے میں ایک دلچسپ کہانی مشہور تھی۔

کہتے ہیں کہ مردیوں کی ایک سیخ بستر رات تھی۔ اس ترسے شہر سفیان پڑا تھا۔ آپ ڈب ڈب کا گھڑی لیے لحاف میں گہری زیند سو رہی تھی کہ اچانک کسی نے دھڑ دھڑ وازہ پٹیا شروع کر دیا۔ آپ ڈب ڈب کی آنکھ کھل گئی۔ کمر ہڑا کر منہ پر ہاتھ پھیرا۔ نیچے کوئی دروازہ پیٹ رہا تھا کھڑکی کھول کر چپ اٹھا کر گلی میں جا نکلا۔

”کون ہے؟“

”مجھ گئی کہ کوئی ار جنت کیس آیا ہے۔ نیچے سے کسی مرد نے آواز دی۔“

”بہن جی! جلدی چلیے۔ زچہ کی حالت بہت خراب ہے۔“

آپ ڈب ڈب نے اپنے جوان بیٹے کو جگایا۔ نیچے آئی۔ دیکھا کہ ایک نورانی چہرے والا آدمی کھڑا ہے کہنے لگا۔

”بہن! میری بہو کے پوچھنے والے میرے ساتھ چلے۔“

اوسی رات، سخت سردی، ایک جتنی ہوئی۔ اپنی ڈب ڈبی نے کہا:

”بھائی جان آپ کو میں نے پتے یہاں نہیں دیکھا۔ آپ کس محلے سے گئے ہیں؟“

اس آدمی نے کہا:

”بہن! ہم اسی شہر کے رہنے والے ہیں۔ آپ کی بڑی تعریف سنی ہے سوچا تھا۔ بہو کو بچہ

ہونے والا ہوگا تو آپ ہی کو بلا میں گئے۔ آج خداوندین لے آیا ہے۔ سو آپ کے پاس حاضر ہوا ہوں۔

برائے مہربانی جلدی چلے۔ آپ جتنی رقم کہیں گی میں آپ کی خدمت میں پیش کروں گا۔“

اپنی ڈب ڈبی نے کہا:

”جانا کہاں ہوگا؟“

وہ آدمی بولا:

”زیادہ دود نہیں۔ بس یہی کوئی دو محلے چھوڑ کر ہی اپنا گھر ہے۔ خدا را دیر نہ کریں۔ میری بہو کو اس

وقت آپ کی سخت ضرورت ہے۔“

اپنی ڈب ڈبی نے کہا:

”میں سو سو روپے لوں گی؟“

اس نودانی چہرے والے آدمی نے کہا:

”میں آپ کو دو سو روپے دوں گا۔ آپ میرے ساتھ چلے جائیں؟“

دو سو روپے آج سے پچاس برس پہلے پانچ ہزار سے کچھ زیادہ ہی قیمت رکھتے تھے۔ اپنی

ڈب ڈبی لہجی صحت تھی فوراً تیار ہو گئی۔ اس نے گرم شال بے ہم امرتسری کشمیری فرد کہا کرتے تھے قدسی

کاٹھڑی میں تھے کوئلے ڈال کر ساتھ لیا اور گیسے باہر آگئی۔ ہاں رسناں تھا۔ سخت سردی تھی ایک

تاگہ کھڑا تھا۔ بڑا خوبصورت تاگہ تھا۔ سفید گھوڑا جتنا تھا جس کا سار چاندی کی طرح چمک رہا تھا۔

کوچاں خاموش بیٹھا تھا۔ اپنی ڈب ڈبی تانگے میں سوار ہو گئی۔ وہ نورانی صحت والا آدمی بھی آگے بیٹھ

گیا اور تاگہ ہوا سے باتیں کرنے لگا ہاں ختم ہو گیا۔ تاگہ گوالا گیٹ سے باہر نکل آیا۔ اور شہر کی رات

کی خاموشی میں ایک ویران سڑک پر دوڑنے لگا۔ اپنی ڈب ڈبی نے پوچھا کہ بھائی صاحب آپ کہاں جا رہے

ہیں؟

اس آدمی نے بڑی ملاحت سے کہا:

”بہن! ہمارا مکان خدا شہر سے باہر ہے آپ گھبراہٹ نہیں۔ ہمارا آدمی آپ کو واپس گھر چھوڑ کر

آئے گا۔“

تاگہ اب جرنیلی سڑک پر آگیا تھا اور بڑی برق رفتاری سے اڑا چلا جا رہا تھا۔ اپنی ڈب ڈبی کو اپنی

کاٹھڑی سنبھالنے کی شکل ہو گئی تھی لیکن اس نے ایک بات غامض لہجہ پر محسوس کی کہ اسے تیز جہاں بھی

نہیں لگ رہی۔ جب تانگے نے بجلی والی تہر کال عمود کی تو وہ گھبرا گئی اس نے کہا:

”تاگہ روک دیں میں آگے نہیں جاؤں گی؟“

اس آدمی نے کہا:

”بہن پریشان نہ ہوں۔ ہم غریب لوگ ہیں بڑے شریف ہیں۔ یہو شیوں والے ہیں بس مکان

گتے ہی والا ہے۔“

اور پھر بجلی والی تہر سے کوئی آدمی مل آگے جا کر تاگہ دانیں جانب کھینچیں گھوم گیا اور تھوڑی

دور جا کر کھڑا ہو گیا۔

”تشریف لائیے۔“

آپا ڈب ڈبی نے دیکھا سامنے ایک جھونپڑا تھا وہ آدمی اسے ساتھ لے کر جھونپڑے میں

آگیا۔ وہاں ایک چراغ مل رہا تھا جس کی مدد سے روشنی میں ایک عورت چار پائی پر لیٹی اور ذرا نیچے

تھی۔ اپنی ڈب ڈبی فوراً اپنے کام میں مصروف ہو گئی۔ تھوڑی دیر بعد جھونپڑے میں ایک فونائیدہ بچے کے

رونے کی آواز بلند ہوئی۔ لڑکا پیدا ہوا تھا۔ نورانی صحت والے بزرگ نے اپنی ڈب ڈبی کا شکریہ ادا

کرتے ہوئے کونے میں سے کچھ کچے کوئلے اٹھا کر اس کی کاٹھڑی میں ڈالے اور کہا:

”تماری طرف سے یہ حقیر تحفہ قبول کرو بہن۔“

اپنی ڈب ڈبی کو سخت غصہ آیا کہ یہ لوگ آدمی رات کو اسے اٹھا کر رنے اور بے کونے

انعام میں دے رہے ہیں۔ ویسے وہ کچھ ڈر بھی لگی تھی اور وہاں سے بھاگ جانا پڑتا تھا۔ وہ بھول گیا

آدمی اسے تانگے میں بٹھا کر گھر چھوڑ گیا۔ اپنی ڈب ڈبی نے غصے میں اگر ان کے دینے ہوئے کو غصہ

میں پینک دیئے۔ رات تین بجے وہ گھر پہنچی۔ خدا کا شکر ادا کی کہ جان بچا کر آئی۔ صبح اٹھ کر گاڑی کو دیکھا تو وہاں رات کے بچے ہوئے جو دو ایک کوٹھے رہ گئے تھے وہ سونے کی ڈلیوں میں تبدیل ہو چکے تھے آپ ڈب ڈب سے پیٹ کر رہ گئی۔ اصل میں وہ لوگ جن تھے اور انہوں نے اسے کوٹھے کی شکل میں سونے کی ڈلیاں انعام کے طور پر دی تھیں۔ صبح آپ ڈب ڈب اپنے رٹے کے کوٹھے کے رات والی جگہ کی طرف گئی مگر وہاں اب نہ وہ چھوٹی سی مٹی اور نہ وہ لوگ۔

چھ ہرٹہ کی طرف جاتے ہوئے خالصہ کلچ کے عقب میں رام تیرتھ روڈ تھی۔ اس سڑک پر ایک پرانا مندر تھا جہاں ایک زمین دوڑ کھڑا تھا جس میں پانی بھرا رہتا تھا۔ اس کنڈ کے بارے میں مشہور تھا کہ بن باس کے دنوں میں یہاں اپنے کپڑے یہاں دھوا کرتی تھی۔ اس کنڈ کے اوپر کیکر کا درخت تھا جس میں ایک چڑیل کا بسیرا تھا۔ لوگ اس طرف نہیں جاتے تھے۔ تیرتھ کے ایک درزی چھ ہرٹہ کو درنگ فیکٹری میں ڈیوٹی دے کر واپس آتا تھا کہ رام تیرتھ روڈ پر مندر کے پاس آندھی شروع ہو گئی۔ آسمان ہلکی کے رنگ کا سا ہو گیا۔ ہوا کا استازور تھا کہ درخت دھیرے دھیرے ہارے جا رہے تھے۔ درزی ایک درخت کے نیچے آکر بیٹھ گیا۔ کیا دیکھتا ہے کہ اس تیز آندھی میں مندر کی طرف سے ایک کھلے بالوں والی عورت آتے پر چراغ رکھے اس کی طرف چلی آ رہی ہے۔ اس قدر برق رفتار ہوا میں بھی چراغ کی نو بالکل سیدھی مٹی۔ درزی کو ایک دم رام تیرتھ کی چڑیل کا خیال آ گیا۔ عورت اب قریب آگئی تھی اور اس کے بہرے نکلتے ہوئے دو لمبے دانت درزی کو صاف دکھائی دے رہے تھے۔

وہ ایک دم اٹھا اور شریف پورے کی طرف دوڑا مگر کاہل وازہ اندر سے بند تھا۔ اس نے گھر بیٹ میں نہر زین سے دروازہ پھینکا شروع کر دیا۔

• دھواڑ کھولواں! دھواڑ کھولواں •

• کھولتی ہوں! • آواز آئی۔ پھر دھواڑ کھل گیا اور درزی ایک بھیانک چیخ مار کر سیر میں چل پڑی اندر سے مل کی آواز آئی۔ پھر دھواڑ کھل گیا اور درزی ایک بھیانک چیخ مار کر سیر میں چل پڑی ہو گیا کیونکہ دھواڑ رام تیرتھ کی چڑیل ہی نے کھولا تھا۔

ہمارے خالو جان فرصت کے اوقات میں بچوں کو قرآن شریف پڑھا کرتے تھے۔ ایک بار ان اپنی کوٹھڑی میں اپنے ایک شاگرد سے پاؤں دھو رہے تھے انہوں نے کہا۔

• عبدالرحمان! بیٹا چراغ کی کوٹھڑی کر دو •

کوٹھڑی پندرہ منٹ کے غلطے پر طاق میں دیا جل۔ اٹھا۔ عبدالرحمان نے چار پائی پر بیٹھے بیٹھے اٹھ بڑھا کر پندرہ منٹ لبا کیا اور بیٹے کی نو کوٹھڑی کر دی۔ خالو جان نے جھٹ اس کا ہاتھ پکڑ لیا اور کہا۔

• پچ پچ بتاؤ کوئی ہے؟ •

• رٹے کے نے اوب سے کہا •

• پیر جی! میں عبدالرحمان جن ہوں اور کابل سے آپ سے قرآن شریف پڑھنے آیا ہوں۔ مجھے غلطی ہو گئی کہ میں نے اپنا آپ ظاہر کر دیا۔ مجھے معاف کر دیں اور قرآن شریف ضرور پڑھائیں •

خالو جان نے مسکرا کر اس کے سر پر ہاتھ پھیرا اور کہا۔

• بیٹے عبدالرحمن! ہم تمہیں پورا قرآن پڑھائیں گے لیکن فلا دو چار قندھاری اند تو کابل سے آؤ •

عبدالرحمن جن نے ہاتھ جیب میں ڈال کر چار قندھاری اتار باکی باکی نکالے اور خالو جان کو پیش کئے۔

• سبحان اللہ! بس میاں ہمیں دو چار قندھاری اتار روز لا کر کھلا دیا کرو •

خالو جان نے کہیں ایک محفل میں یہ کہہ دیا کہ کابل کا عبدالرحمن نامی مسلمان جن ان سے قرآن شریف پڑھتا ہے ایک آدمی نے مذاق اڑتے ہوئے کہا کہ وہ کسی جن بھوت کو نہیں مانتا۔ یہ سب باتیں جھوٹ ہوتی ہیں۔ دوسرے روز صبح صبح لوگوں نے دیکھا کہ وہ آدمی مسجد کے کنوئیں میں بٹے کے ساتھ اٹا رہا ہوا ہے۔ وہ دہائی دے رہا تھا کہ مجھے عبدالرحمن سے بچاؤ۔ میں اب کبھی مذاق نہیں اڑاؤں گا۔ خالو جان نے عبدالرحمان سے پوچھا تو اس نے بتایا کہ یہ کام اسی نے کیا ہے اس کے بعد عبدالرحمن جن صرف رات کے وقت خالو جان سے قرآن پڑھنے آتا تھا۔ جب پورا قرآن ختم ہو گیا تو وہ غائب ہو گیا۔ خالو جان کہا کرتے تھے کہ عبدالرحمان جن جاتے وقت انہیں سونا بنانے کا نسخہ بتا گیا تھا لیکن ہم نے کبھی خالو جان کے ہاتھوں سونا بٹے نہیں دیکھا۔

تیز دھوپ اور گرم لومیں سکڑی داغ سنان تھا ایک نو جوان مانی جیواں کی خانقاہ کی طرف چل رہا تھا اس نے دیکھا سرو کے ایک درخت کے پاس سبز لیشی کپڑوں میں ملبوس ایک نہایت حسین عورت جوانہ ت سنے کھڑی ہے اتنی حسین عورت اس نے پہلے کبھی نہیں دیکھی تھی جب وہ اس کے

قریب سے گزرا تو عورت نے پوچھا۔

”بڑی نہر کو کون سی سڑک جاتی ہے؟“

نوجوان نے دیکھا کہ عورت کی آنکھوں سے شعلیں پھوٹ رہی تھیں اور اس کا جسم گویا شیشے کا تھا اور نظر جسم سے اتر پار جا رہی تھی۔ وہ ڈر گیا اس نے سن رکھا تھا کہ وہاں میں بارغ میں چڑیلیں شہر دیوئوں کا روپ دھار کر ملتی ہیں۔ وہ بھاگنے لگا تو اس کے پاؤں گویا پتھر بن گئے۔ حسین عورت نے اس کی طرف بڑھنا شروع کر دیا۔ وہ مسکرا رہی تھی۔ اس صمد بڑیل نے نوجوان کا ہاتھ تھاما اور اسے ساتھ لے کر بڑی نہر والے پل کی طرف روانہ ہو گئی اس کے چمنے سے چمن چمن کرنا سنا ہوا رہی تھی۔

کہتے ہیں کہ اس کے بعد وہ نوجوان دکھائی نہیں دیا۔ کتنی روناٹک عتیں امرتسر کی چڑیلیں بھی! اب تو نہ سرو کے درخت ہیں اور نہ بڑی نہر کو جانے والی سڑکیں ہیں اور نہ وہ روناٹک چڑیلیں ہیں جو صبح شہر دیوئوں کا روپ دھار کر ملتی تھیں اور راتہ تمام کر اپنے ساتھ لے جا کر گم کر دیا کرتی تھیں۔ اب تو ہر سڑک کسی دفتر یا کسی کارخانے کو جاتی ہے اور ایک کارخانے سے نکل کر دوسرے کارخانے کی طرف چل پڑتی ہے۔ سرو کے درخت کارخانوں کے کیمیکلز کے نسوری دھوئیں سے مر جھا گئے ہیں اور نہروں میں کارخانوں کا تیل مل گیا ہے۔ بڑا شریف پڑھنے والے جن شہر چھوڑ کر چلے گئے ہیں اور چڑیلیں ائیر کنڈیشنڈ کمروں میں سو رہی ہیں۔

جی میں آتا ہے کہ کسی جھستی نو وال گرم دھیر میں امتاس کے زرد بھول لے کر چڑیل کی تلاش میں نکلے اور جب وہ کسی سرو کے درخت سے حسین شہر دیوئوں کے ریشمی سبز لباس میں کھڑی عورت سے بڑی نہر کا رستہ پوچھے تو اس کی طرف بڑھوں، اس کا ہاتھ تھاموں اور اسے ساتھ لے کر الیسا جاؤں کہ پھر کبھی واپس نہ آؤں۔

نور بھی ہاتی جیک نہیں ہوتا

مولوی حسن اپنے چیل منڈی والے مکان کی میٹھک میں انگلیٹھی پر نیلی کیتلی رکھے پائے اُبال رہا تھا کہ ہم کا دھماکہ ہوا۔ برج بھولا سنگھ کے اکالی سکھوں نے دروازہ مہاں سنگھ پر حملہ کر دیا تھا۔ مولوی حسن ہانکی لے کر دروازے کی طرف بھاگا۔ رزاق رفوگر چارپائی کی پیٹھی سے کراٹھ دوڑا چوٹی بد معاش کے ہاتھ میں سر دیا تھا۔ رفیق گاڈی خالی ہاتھ اکالیوں کی گربانوں اور انفلوں کا مقابلہ کرنے جا رہا تھا میں اس زمانے کی نیگر جنریشن تھا۔ میں ان کے پیچھے پیچھے بھاگا۔ میرے اور ان لوگوں کے درمیان کوئی چیز نہیں گپ نہیں تھا۔ جہاں مولوی حسن کے قدم اٹھتے تھے وہاں میرے قدم پڑتے تھے۔ جنریشن کیپ وہاں نمودار ہوتا ہے جہاں نہ پرانی نسل کا ہو اور نہ نئی نسل کا ہو۔ لیکن مارچ ۱۹۴۷ء کی اس دوپہر کو ہمارے سامنے زندگی کا مقصد موجود تھا۔ پرانی نسل کے سامنے میں اور نئی نسل کے سامنے بھی۔ اور یہ مقصد تھا پاکستان۔ ایک ایسی جنت جہاں ہیں ہندو زمین پر بٹھا کر جانوروں کی طرح پانی نہیں پلائے گا۔ جہاں وہ مولی کے تہوار پر نیم غریاں ہو کر خوش گیت گاتا، رقص کرتا۔ ہمارے گل محلوں سے نہیں گزرے گا اور ہمارے تعزیوں پر گندگی نہیں پھینکے گا اور خود روپوں سے بھری ہوئی تجویزوں کے آگے گاڈنگیوں پر بیٹھ کر مسلمان وکروں سے چلیں نہیں بھروائے گا اور جہاں ہماری مسجدوں کی ازانیں ہندو سکھوں کی براتوں کے بینڈ کے شور میں گم نہیں ہوں گی اور جہاں کوئی شدمی اور سنگٹن کی تحریک نہیں چلائی جائے گی اور جہاں ایک خدا، ایک رسول، ایک قرآن کو ماننے والے اپنے دینی تقاضوں کے مطابق ازادی عزت و نفس اور امن و سلامتی کے ساتھ زندگی بسر کر سکیں گے۔ یہ ہمارا مقصد حیات تھا یہ ہماری منزل تھی اور یہ ہمارے سفر نور کا آغاز تھا جنریشن کیپ کا لفظ ہمارے لئے لغت عزیز تھا اور پھر کیا ہوا! مولوی حسن شہید ہو گیا۔ رفیق گاڈی کی ایک ٹانگ کٹ گئی۔ رزاق رفوگر

انہوں میں بندوق کے چترے کھا کر گر پڑا۔ چوٹی بد معاش نے کے میں گئے پاکستان کے نعرے لگاتے ہوئے
 پھولا سنگھ کی دیوار پھلانگ کر کال سکھوں کے اوپر جاگرا اور پھر واپس نہ آیا۔ مولوی حسن رفیق گاڈی، رزاق رٹوگر
 اور چوٹی بد معاش مشرقی پنجاب کے ہر شہر ہر گاؤں ہر گلی میں تھے۔ وہ زخمی ہوئے شہید ہوئے لیکن نور
 کا سفر جاری رہا۔ بالندھر سے قافلے چلے، سو شیار پور، گورداسپور، روہتک، پانی پت، سونی پت
 انبالہ، لدھیانہ اور پٹھانکوٹ سے نور کے مسافروں کے قافلے چلے اور ایک سنگ میل سے دوسرے
 سنگ میل تک اپنے جگر کے ٹکڑوں کی لاشیں ڈالتے آگے بڑھتے رہے۔ دلی سے مہاجرین کی بھری
 ہوئی ٹرینیں چلیں بالندھر، فیروز پور سے ریشی رمانہ ہوئیں اور لاہور ریلوے سٹیشن پر ان خلع سے بھری ہوئی
 ریلوں سے نور کے مسافروں کی کئی ہوئی لاشیں باہر نکالی گئیں۔ انہوں نے زندہ لاشیں اغواء کر لی گئیں ان لاشوں
 کے بھائی ان لاشوں کے غامد اور ان لاشوں کے باپ مہاجرین کیپوں اور بازیاں متہ خواتین کے کیپوں کی خاک
 اڑاتے مر گئے۔ ایک نور کے مسافر نے داگہ باڈر پاکستان کا لہراتا جھنڈا دیکھ کر کمر پڑھا اور ملان پاک
 سرزمین پر بچھا کر دی۔ دوسرے نے لاہور ریلوے سٹیشن کے پلیٹ فارم پر اپنے آدھے کتے ہوئے
 سینے پر ہاتھ رکھ کر پاکستان کے تیلے چکلیے نورانی آسمان کو دیکھا اور شہید ہو گیا۔ کوئی راستے میں گرا اور ہر
 نہ اٹھ سکا۔ کوئی منزل نور پر قدم توڑ گیا۔ نہ ماں نہ بہن نہ بھائی نہ گھر نہ ہار نہ آسمان۔ سب کچھ خون کی دھل
 آندھی میں گم ہو گیا شعلوں میں جل کر رکھ ہو گیا۔ مگر نور کی پہلی میڑھی مل گئی۔

اندلس میں ڈوبا ہوا آفتاب پاکستان کے افق سے طلوع ہو گیا۔ بادِ سحر میں اذان کی آواز گونج
 اٹھی مسجدوں اور گھروں کی فضائیں درود و سلام اور تلاوت کلام پاک سے معمور ہو گئیں۔ معرکہ بدر کے
 بعد حق اور باطل کے درمیان کیر کچ گئی۔ رات بھی بہت اندھیری تھی۔ دن بھی بہت روشن نہکل آیا۔ جتنی
 عظیم قربانی تھی۔ اتنا ہی عظیم نعام ملا۔ شرف ملا۔ عزت نفس ملی۔ اپنے دین کی راہ پر چلنے کا حق حاصل
 ہوا۔ بحرِ طلمات سے نکل کر نور کی منزل کا سفر شروع ہوا۔ اس سفر میں خود غرضی، حسد، منافقت اور خویش
 پروری کی آندھیاں بھی چلیں مگر نور کا چراغ روشن رہا۔ نور کا سفر جاری رہا۔ اس لئے کہ نور کے چراغ میں
 شہیدوں کے خون کا روغن تھا۔ یہ صدقہ جاریہ تھا اور اس نور میں کاسر چشمہ نبی اکرم صلی اللہ علیہ وسلم کا نور
 مکمل تھا اور خدا کا نور علی نور تھا۔ اس نشاۃ الثانیہ کے نورانی سفر کی تیس میڑھیں گزر گئیں۔ ایک نئی نسل
 جوان ہو کر سامنے آگئی۔ ہم ہر منزل پر اپنے صبروں پر سونے جاندی کے خول چڑھانے لگے رہے

اور نئی نسل رینگ کر کی میڑھیں پہن کر فوٹا سہرا اور اینڈی گب کے پاپ میوزک کی تیز لہریں بھارتی سامنے
 آگئی ہمارا مسند یہ رہا کہ کوٹھی کارینک پیش کہاں سے آئے۔ اور نئی نسل کا مسکہ یہ تھا کہ ساٹھ میل کی
 رفتار پر سکو ترے کر لبرٹی میں کس لڑکی کے ساتھ بیٹھ کر سو روپے کا چائینز پنچ کھایا جائے ہم نئی نسل سے
 نفرت کرنے لگے۔ نئی نسل ہم سے نفرت کرنے لگی۔ ہم نے انہیں یہ سکھایا کہ انسان کی عزت کار، کوٹھی
 عہدے اور دولت سے ہوتی ہے۔ اقبال کی خودی کو ہم نے سونے کی ڈوری سے اندھ کر اپنی میڑھی پر رکھ
 کے پچھلے شیشے پر لٹکا دیا نئی نسل سوالیہ نشان بن کر کبھی کبھی ہماری طرف دیکھتی ہے اور بوجھتی ہے کہ ہم نے
 انہیں کیا دیا؟ پاکستان کیوں بنا تھا؟ لوگ شہید کیوں ہوئے تھے؟ مشرقی پنجاب سے مسلمانوں کی کوٹھی
 ہوئی ریل گاڑیاں کیوں آتی تھیں؟ اور ہم نئی نسل کے ہاتھ میں سو روپے کا نوٹ رکھ کر اسے لبرٹی کی طرف
 کڑا ہی گوشت کھانے بھیج دیتے ہیں۔ ہم نے انہیں کبھی یہ نہیں کہا کہ داگہ باڈر پر بیٹری نہ لگے کنا سے
 بھی ایک لبرٹی ہے۔ فریڈم ہے آزادی وطن کے پُر نور جینا رہیں جہاں عزیز بھٹی شہید اور سوریہ حسین
 شہید ہماری نشاۃ الثانیہ کی منزل کی تار کیوں کو اپنے خون رنگ آجالوں سے منور کر رہے ہیں۔ ہماری بیکتا رہی
 یہ چشم پوشی یہ تن آسانی بھی ہمارے کر دینے کے لیے کافی ہے لیکن ہمارے اجداد کی قربانیاں اتنی عظیم
 ہیں کہ ہماری کشتی ہر طوفان سے صحیح سلامت نکل آتی ہے۔ زبر اگر ہلاکت خیز ہے تو تریاق اس
 سے زیادہ زندگی بخش ہے۔ یہ ہماری خوش قسمتی ہے کہ ہماری نئی نسل بے راہ نہیں۔ بے ذوق نہیں
 وہ جانتا چاہتی ہے۔ سمجھنا چاہتی ہے۔ ہمارے قدم سے قدم ملا کر منزل نور کی طرف بڑھنا چاہتی
 ہے۔ وہ ہم سے سوال کرتی ہے کہ مر سید احمد خاں نے کتاب اسباب بغاوت ہند کیوں لکھی تھی۔ اور
 علامہ اقبال نے الہ آباد میں ایک الگ اسلامی مملکت کا تصور کیوں پیش کیا تھا۔ اور قائد اعظم نے کیوں
 کہا تھا کہ ہم ایک علیحدہ اسلامی ملک چاہتے ہیں؟ ہم ان سوالوں کا جواب دینے کی بجائے نئی نسل کو
 اینڈی گب کے پاپ میوزک کی نئی کیسٹ دے کر لبرٹی کی طرف سکوٹر پر روانہ کر دیتے ہیں۔ لیکن
 اب ہیں ایسا نہیں کرنا ہوگا۔ ہمیں چکیلی کاروں کے ریس کورس سے باہر نکل کر نئی نسل کا ہاتھ تمام کر اسے
 بتانا ہوگا کہ مر سید کون تھا۔ چودھری رحمت علی کون تھا۔ سید احمد شہید کیوں شہید ہوئے۔ گاندھی
 جی اور پیش نے کیوں کہا تھا کہ قائد اعظم فریب سے نہیں جاسکتے۔ علامہ اقبال کے الہ آباد والے خط کا
 متن کیا تھا۔ اور عزیز بھٹی شہید بی آر پی کے کنا سے تیر و دن بغیر کچھ کھائے پیئے کیوں اپنے مورچے

میں ڈنارہ اور سوار محمد حسین شہید انجمن کا کبس لئے برستی گولیوں میں کیوں نکل پڑا تھا اور مینار پاکستان چاندنی راتوں میں فضا کے بیٹے کی رفعتوں میں کن روشن ستاروں سے باتیں کرتا ہے؟ یہیں انہیں ہونا ہو گا کہ لامور شہر کے سبھی راستے میونخ کی وکانوں سپر مارکیٹوں اور پلازوں کی طرف نہیں جاتے۔ ایک راستہ علامہ اقبال کے مزار کو اور ۶۵ کی جنگ کے شہیدوں کی یادگاروں اور مینار پاکستان کو بھی جاتا ہے۔ یہ تین نسل کا ہم پر قرض ہے۔ جو ہمیں ادا کرنا ہے۔ اگر ہم نے یہ قرض، یہ قرض، مانہ کیا تو پاکستان تو سلامت رہے گا۔ لیکن اسے والی نسلیں ہمارے کس جرم کو کبھی معاف نہیں کریں گی۔

میں پھولوں و رفتوں گرتے چوں اور وطن پاک کی نرم خیز مٹیوں اور سنہری چائے کی خوشبوؤں کا فضا زنگار ہوں لیکن میں جانتا ہوں کہ میرے سارے پھول، سارے درخت اور رفتوں سے گرتے پتے اور طلوع ہوتی۔ مٹیوں کے اُجالے اور سنہری چائے کی خوشبوئیں پاکستان کی مٹی سے پیوستہ ہیں میرے باغوں میں پھول اس لئے کھلتے ہیں کہ میں پاکستان میں ہوں۔ سنہری چائے میں نہک اس لئے ہے کہ اس میں وطن پاک کی بہادر کی خوشبو شامل ہے۔ میں فقیر ہو کر بھی یہاں بادشاہ ہوں۔ کیونکہ یہاں میری عزت نفس اور میری آنے والی نسل کا مستقبل محفوظ ہے اور میں جانتا ہوں کہ اس سرزمین کو ہواؤں میں مولوی حسن ایسے تحریک پاکستان کے لاکھوں شہیدوں کی نہک زچی ہے اور لاکھوں ماؤں بہنوں کی ناقابل فراموش قربانیوں کے سورج اس سرزمین کے ذرے ذرے میں جگمگا رہے ہیں۔ یہ ملک اسلام کی نشاۃ الثانیہ کے لیے شہیدوں کے خون رنگ شفق سے بلا زوال سورجوں کی روشنیاں لے کر طلوع ہوا ہے۔ یہ زندہ رہنے کے لئے وجود میں آیا ہے۔ ہمیں اپنے کردار دین کے بتائے ہوئے اصولوں کے سانچے میں ڈھال کرنی نسل کے لئے ایک مثال بننا ہو گا۔ اسی میں ہماری نئی نسل اور آنے والی نسل کی جگہ ہے۔ پاکستان ایک طرز فکر ہے۔ ایک رویہ ہے ایک سفر ہے روحانی ارتقا کا دین مبین کے نور کا۔ اور نور کبھی ہانی جیک نہیں ہو کرتا۔

الوداع مسجد کے مینارو

گلی کے دروازے پر پہنچا تو ایک کہرام مچ گیا۔ کوئی دروازہ میاں سنگھ کی طرف۔ کوئی لال چلی کی طرف اور کوئی الٹی گوبر والی گلی کی طرف۔ جدھر جس کا منہ اٹھا دوڑ پڑا۔ لوگوں نے اپنا اپنا سامان ہاتھ کر رکھا تھا کہ مسلم لیگ کے ٹرک آئیں گے تو اس میں لاؤ کر شریف پورہ کیمپ پہنچ جائیں گے۔ ٹرک آنے سے پہلے ہندو فوج آگئی۔ اور انہوں نے ہم مار کر گلی کا آہنی دروازہ اٹا دیا۔ ہماری گلی میں دوسرے محلوں کے مسلمانوں نے بھی اگر پناہ لے رکھی تھی۔ ان میں عورتیں بچے بوڑھے جوان تھے۔ ہم کا دھماکہ ہوا تو ہر کوئی سامان وہیں چھوڑ کر دوسری طرف کو بھاگا۔ گلی کی دوسری طرف سے دو تین راستے باہر جی ٹی روڈ کی طرف جاتے تھے جی ٹی روڈ سے آگے بائیں گراؤنڈ تھی اور سامنے شریف پورہ تھا۔ شریف پورے کے باہر بلوچ رجمنٹ کے جوان کیمپ کے مسلمانوں کی حفاظت پر مامور تھے۔ گلی میں بھگڑ مچی تو مسلمان بھاگ کر جی ٹی روڈ پر آ گئے۔ ایک طرف سے سکھ اور دوسری طرف سے ہندو فوج فائرنگ کر رہی تھی۔ کئی عورتیں، بچے اور جوان شہید ہو کر گرے۔ کوئی خانقاہ کی لائبریری کے باہر اور کوئی بدرو میں اور کوئی تاروں والے باغ میں۔ ہر قسم کے مسلمان شریف پورے کی طرف بھاگے جاسے تھے۔ شاید کسی نے بھی زندگی میں نہیں سوچا تھا کہ ایک دن ایسا بھی آئے گا۔ ایک دن ایسا بھی آ سکتا ہے کہ وہ آگے آگے ہوں گے اور پیچھے ہندو سکھ ان پر گولیاں برسا رہے ہوں گے۔ شاید ہندو سکھوں نے ایسا سوچ رکھا تھا۔ کاش مسلمان بھی کچھ سوچتے، کچھ فکر کرتے، کچھ آنے والے دور کی دھندلی سی تصویر دیکھنے کی کوشش کرتے۔

جب یہ پریشان حال عورتیں، بچے، جوان اور بوڑھے شریف پورے کے قریب پہنچے تو بلوچ رجمنٹ کے جوانوں نے انہیں مشین گنوں کا تحفظ دیا۔ یہاں تک جو مسلمان اپنی جانیں بچا کر

آئے تھے وہ شریف پور سے پہنچ گئے۔ شریف پور میں امرتسر شہر کے مشرقی حصے کے بڑوں مسلمان جمع تھے۔ دکانداروں نے سارا مال باہر لے کر رکھ دیا تھا اور انہوں نے پونے بیچ رہے تھے۔ کیونکہ انہیں معلوم تھا کہ اب وہ وہاں سے ہمیشہ کے لیے کوچ کرنے والے ہیں۔ پتہ نہیں زندگی میں انسان کیوں ذلیل ہو کر رہتا ہے۔ بلیک مارکیٹ کرتا ہے۔ چیزوں کو ہنگامے سے ہنگاموں میں فروخت کرنے کی کوشش کرتا ہے کیا اسے معلوم نہیں کہ ایک دن یہاں سے بھی اسے کوچ کرنا ہے۔ زندگی کا شریف پور بھی اسے کوچ کر جاتا ہے اور پھر کبھی لوٹ کر واپس نہیں آتا۔

پچھلے ہماری گلی کے مکانوں کو لوٹ کر بند و سکون نے آگ لگا دی۔ دیکھتے دیکھتے جی ٹی روڈ پار کے ہماری گلی کے مکانوں سے دھواں اٹھنے لگا۔ دھواں آگ اور لاشیں۔ یہ ان دنوں کے معاملات میں تھا ایک عجیب ناخوش سی جلی ہوئی بو تھی جس نے سارے شہر کو اپنی لپیٹ میں لے رکھا تھا۔ نہ مکانوں سے اٹھتے شعلے دیکھ کر کسی کو حیرت ہوتی تھی اور نہ سڑک پر بڑی ہوئی لاش دیکھ کر کوئی رکتا تھا۔ شہر کے درختوں پر سے چڑیا، بلیں اور فاقائیں غائب ہو گئی تھیں۔ سارا سارا دن گدھیں منڈلایا کرتی تھیں اب امرتسر سارے کا سارا خالی ہو چکا تھا۔ شریف پور سے کی دوسری جانب دیوے لائن گورتی تھی۔ اس لائن پر مال گاڑی کے چند ایک خالی ڈبے آگے گئے اور مسلمان مہاجرین سے دیکھتے دیکھتے بھر جاتے بلکہ ابل پڑتے اور پھر بولے بولے ریگتے ہوئے امرتسر دیوے سٹیشن سے نکل کر لاہور کی جانب روانہ ہو جاتے ابھی پاکستان پہنچنا اتنا آسان نہیں تھا۔ راستے میں امرتسر سٹیشن تھا جہاں سکھ خواریں لے لے گھوم رہے تھے۔ آگے چھ مہتر کا سٹیشن تھا جہاں سکھوں کا بہت بڑا گوردوارہ تھا اور جہاں کے نہنگ اور اہل مسلمانوں کے خون کے پیاسے ہو رہے تھے۔ گاڑیاں کٹ بھی رہی تھیں۔ لاشیں دیوے لائنوں پر بکھر بھی رہی تھیں اور پاکستان کی منزل کا سفر بھی جلدی تھا۔

شریف پور سے کے جنوب میں تحصیل پور سے کی آبادی تھی۔ یہاں سے ایک کچا راستہ لوکاٹ کے باغ میں سے ہو کر اوپر دیوے لائن پر چلا جاتا تھا۔ میں نے اس کے راستے کا ذکر اپنے امرتسر کے بد سے میں لکھے گئے افسانوں میں غامض طور پر کیا ہے اس راستے پر کھٹے کے درختوں نے سایہ کر رکھا تھا اور مارچ اپریل میں جب ان درختوں پر سفید پھول کھلتے تو سارا راستہ خوشبو کی سرنگ بن جاتا تھا۔ منہ اندھیرے میں گزرتے ہوئے میں خوشبو کی اس سرنگ میں سے بہت آہستہ آہستہ

گورا کرتا۔ یہاں کھٹے کے پھولوں کی اس قدر خوشبو ہوتی کہ سانس اندر کھینچنے کے بعد باہر چھوڑنے کو دل نہیں چاہتا تھا۔ سانس کے ساتھ جسم کے رگ و پے میں خوشبو کا ایک چکر بند ہو جاتا تھا۔ سانس اور خوشبو کا فرق مٹ جاتا۔ کچھ پتہ نہ چلتا کہ سانس کہاں سے شروع ہو رہا ہے اور خوشبو کہاں سے ختم ہو رہی ہے۔ ان دنوں میں سوچا کرتا تھا کہ جنت کو جانے والا راستہ بھی شاید اسی طرح کا ہوگا۔ منہ اندھیرے کے نور میں درختوں کی شاخوں پر سفید پھول نسیم صبح کے جھونکوں کے ساتھ گرا کرتے اور جب میں میرے واپس آتا تو یہ کچا راستہ سفید پھولوں سے بھرا ہوتا جیسے درختوں نے عبادت کرنے کے لئے سفید پاکیزہ چادر بچھا رکھی ہو۔ مجھے یاد ہے اس راستے پر پاؤں لے کر نہیں جاتا تھا اور باغ میں سے ہو کر گزرتا تھا۔ آج یہ راستہ ویران تھا اور یہ کہنے کی ضرورت نہیں ہے کہ کھٹے کے درختوں پر کوئی پھول نہیں تھا خوشبو کی سرنگ میں سوختہ مکانوں اور جلی ہوئی لاشوں کی بو تھی۔

شریف پور خالی ہو رہا تھا مسلمان ٹرینوں میں بھر بھر کر پاکستان کی طرف کوچ کر رہے تھے راستے میں ان پر حملے بھی ہو رہے تھے مگر پاکستان کی طرف مہاجرین کا سفر جاری تھا۔ شریف پور کے سامنے لائن پار امرودوں کے بڑے وسیع اور ہرے بھرے باغ تھے۔ بڑے بیٹے اور گورے گورے امرود لگا کتے تھے ان درختوں پر اور بڑے ظالم ساکھے ان درختوں کی حفاظت کیا کرتے تھے اب یہ باغ بھی ویران تھے۔ امرود پک پک کر درختوں سے گر رہے تھے جگہ جگہ امرودوں کے ڈھیر لگے تھے کوئی راکھا نہیں تھا، کوئی مالک نہیں تھا کوئی ٹوکر نہیں تھا۔ امرودوں کے ڈھیر تھے جو گل سڑ رہے تھے مگر پھر بھی ان میں سے ہلکی ہلکی خوشبو نکلی رہی تھی۔ پھل مڑ کر بھی خوشبو دیتا ہے اور انسان زندگی میں بھی کوئی خوشبو دیتا ہے انسان کے اندر کا امرود شاید مر گیا ہے۔

آخر ہم بھی ایک مال گاڑی میں بیٹھ کر شریف پور سے، امرتسر سے، کپنی باغ اور مسجد خیر الدین کے امرتسر سے ہمیشہ کے لئے جدا ہو گئے۔ امرتسر دیوے سٹیشن کے پلیٹ فارم نمبر چار پر اگر گاڑی رگ گئی ایک دہشت بر طرف پھیلی ہوئی تھی۔ بلوچ رجمنٹ کے جون سٹیشن کی چھت پر لیٹے قتلہ متدر کی طرف سے آنے والی ہندوؤں کی فائرنگ کا جواب دے رہے تھے۔ جب تک گاڑی امرتسر کے سٹیشن پر کھڑی رہی تو گوں کا دم خشک رہا۔ خدا خدا کر کے ٹرین نے ہولے ہولے کھٹکا شروع کیا۔ دیوے یار ڈنگڑا، ایگو برج گزر گیا۔ امرتسر شہر پر نگاہ ڈالی۔ ایک غبار سا دکھائی دیا۔

ٹاک۔ اور دیران دیران، جس میں آگ اور موت کی دہشت تھی، جگہ جگہ سے دھواں اٹھ رہا تھا۔ چہرے ہرٹریوے سٹیشن پر پھر گاڑی کھڑی ہو گئی۔ بوچہ رجسٹر کے جوبن ڈبلوں سے اتر کر پہرہ دینے لگے۔ سکھ دور کھڑے نعرے لگا رہے تھے اور عوامیں لہرا رہے تھے مگر کسی کو آگے آنے کی ہمت نہیں ہو رہی تھی۔ گاڑی آگے روانہ ہوئی۔ خاصہ سٹیشن بھی گزر گیا پھر گوہر سہارا کی بھی گزر گیا۔ اور گورکھ پور کے بڑے گاؤں ہوا کرتے تھے۔ یہ دیران پڑے تھے، اور مسجدوں کے سفید مینار خاموش تھے، سنسان تھے۔ دل گرفتہ تھے۔ یہ بوچہ رکھ اب ان میناروں سے کبھی اذان کی صدا بلند نہ ہوگی، پھر ماری بھی گزر گیا اور گاڑی واپس پہنچ گئی۔

امر تسر کی آخری بھلک

امر تسر میں ایک دروازہ مہان سنگھ تھا۔ اسی دروازے سے ایک چھوٹی سڑک تحصیل پورے کو جاتی تھی اس سڑک پر ٹالپوں کی گھنٹی چھاؤں تھی اس کی ایک جانب آٹ سکول تھا جہاں میں دوسری سے چوتھی جماعت تک پڑھا تھا۔ دوسری جانب مستعدی امراؤں کا چھوٹا سا ڈپنسری ٹائپ کا میونسپل ہسپتال تھا ٹالپوں میں گھری ہوئی یہ چھوٹی سی کچی سڑک آگے جی ٹی روڈ کو کراس کرتی ہوئی تحصیل پورے کے مختصر سے میدان میں اتر جاتی تھی اس میدان میں ایک جانب کچا کوٹھا تھا جس کی چار دیواری کے اندر سواری رنگ کے بڑے بیروں والے ایک گھنا دھشت تھا ہم اس دھشت پر پھر مار کر بیہ جاڑے تو اندر سے ایک بوڑھی عورت موٹا لے کر ہمیں مارنے نکلا کرتی تھی اس کے بالمقابل تحصیل کا دفتر تھا جو کسی پرانے قلعے کی یاد دلاتا تھا۔ یہاں سے آگے تحصیل پورے کی آبادی کا جنوبی کنارہ شروع ہو جاتا تحصیل پورہ اہل میں شریف پورے کا ایک حصہ تھا۔ یہ ساری آبادی امر تسر کے مسلمانوں پر مشتمل تھا مگر تحصیل پورے کا ایک حصہ تھا۔ یہ ساری آبادی امر تسر کے مسلمانوں پر مشتمل تھی مگر تحصیل پورے کی جڑ بنی پٹی میں کچھ ہندو اور سکھ آباد تھے۔ ان کی دو تین گلیاں ہی تھیں۔ ایک چھتا ہوا کٹواں بھی تھا میں صبح صبح چالیس کھوہ اور دیوے لین کی طرف یہ گرنے کو جاتا تو اس کنوئیں پر ہندو در سکھ ہمارے جوتے تھے۔ دوسری طرف ہندو سکھ عورتیں کانسی کے گھڑوں میں پانی بھر رہی ہوئیں جہاں تحصیل پورے کی آبادی ختم ہوتی وہاں سے کھاٹ اور آکھو پے کے بارغ شروع ہو جاتے۔ ان دونوں کے درمیان سے ایک کچی پگ ڈنڈی دیوے لین تک جاتی تھی۔ اس پگ ڈنڈی کی دونوں جانب کھٹے کے درخت تھے جو اوپر جا کر آپس میں مل گئے تھے بہار کے دنوں میں ان پر سفید گیان کھیتیں تو سارا راستہ خوشبو سے نملک جاتا تھا۔ اسی تحصیل پورے میں میرا ایک دوست رہتا تھا میں نے

یہاں پہلی بار ایک درخت کے ساتھ لہرتا ہوا پاکستانی سبز پرچم دیکھ کر چہرے کھل گئے۔ مسلمانوں نے ٹک ٹک ٹک ٹک نعرے لگانے شروع کر دیئے۔ منزل پر پہنچ کر راستے کی ساری مصیبتیں، تکلیفیں اور اذیتیں بھول گئیں۔ ٹرین اب پاکستان کی آزاد اور خوبصورت فضاؤں میں سفر کر رہی تھی دور مغلیہ ورکشاپ کی جھنڈی نظر آئی۔ مغلیہ پر ٹرین رکی تو مسلمان روٹیاں، پانی اور چائے کر ٹرین کی طرف دوڑے، زخمیوں کو اتار کر ان کی مرہم پٹی کی گئی۔

لاہور ریوے سٹیشن پر ہر طرف ہجوم ہی ہجوم تھا۔ ٹرین رکی تو مسلم نیگ کے رضا کار پانی، روٹیاں اور چائے کر تقسیم کرنے لگے۔ وہ ہر ایک سے پوچھ رہے تھے کہ کون والٹن کیمپ جائے گا اور کون لاہور اپنے رشتہ داروں کے ہاں جاتا ہے کریں گے۔ سٹیشن سے باہر چھ سات ہزار کیمپ لگے تھے جہاں سے مہاجرین کو بسوں اور ٹرکوں میں بٹھا کر والٹن یا ان کے رشتہ دار کے ہاں پہنچایا جا رہا تھا۔ ریوے سٹیشن کی عمارت میں بار بار پاکستان زندہ باد کے نعرے گونج رہے تھے فیروز پور سے مسلمانوں کی کٹی ہوئی گاڑیاں بھی آرہی تھیں لیکن ہر مہاجر کے سینے میں ایک نئے عزم ایک نئے ولولے کی شمع بھی روشن تھی، نیا وطن اور درو دیوار سامنے تھے اس نئے وطن کے آنگن کو پھولوں سے سجانا تھا۔ ہر گھر میں نئی آرزوں کی نئی شمع روشن کرتی تھی جسم گداؤں تھے، پاؤں میں آبلے تھے، زخموں سے خون بہہ رہا تھا مگر دل میں ایک ولولہ، زہ تھا، تعمیر وطن تھا، اک احساس عظیم تھا تحت اعزت و اکبر واک۔

دوبارہ قد انکھیں پر موٹے ٹیشوں کی بینک پیچھے کو گرے ہوئے سیدھے بال ہم دونوں کبھی کبھی اپنی باغ میں کرنے جلتے تو وہ مجھے اپنی اردو کی نقلیں سنایا کرتا تھا میں نویں جماعت میں پڑھتا تھا اس کی نقلوں میں عربی فارسی کے بے شمار لفظ ہوتے تھے وہ مجھے ان الفاظ کے معنی بھی سمجھایا کرتا اس نے عربی فارسی کچھ کے حوالے سے اسلامی رنگ غالب تھا۔ مسلمانوں کے کھانے شوق سے کھاتا اور لباس بھی ہندو نہیں پہنتا تھا۔ تپوں قیض اور شورو قیض سے بہت پسند تھی اب مجھے اس کی باتیں یاد آرہی ہیں وہ سگریٹ بہت پیتا تھا مجھے یاد ہے ایک روز شام کے وقت ہم کپنی باغ میں ٹھنڈی کھوئی کے سامنے واسے پلاٹ میں بیٹھے تھے۔ وہ دھوک بھڑ بھڑاتے ہوئے کہتا تھا کہ۔

”میری ہندو نہیں تھے۔ یہ ہندو تو برہمنوں کے بعد کی پیداوار ہیں میں بھی ہندو ہوں کیرنگ میں ایک ہندو مگرانے میں پیدا ہوا ہوں مگر مجھ میں وہ تنگ نظری اور تعصب نہیں۔ جو تم ہر ہندو میں پاؤ گے۔ ہندو دھرم یہ بھی ہو جائے تب بھی ہندو ہی رہے گا میرے پتا جی کہتے ہیں رام مورتی! مسلمانوں کے ساتھ مت بیٹھا کرو مگر میں کہتا ہوں کہ ہندوؤں میں میرا دم گھٹتا ہے تم مسلمان ہو تمہارا کچھ ہندوؤں سے اتنا مختلف ہے کہ تم لوگ ان کے ساتھ ایک جگہ دو دن بھی نہیں گزار سکتے۔ اچھا پلو چھوڑو ان باتوں کو میں نہیں دیکھتا۔“

جب امرتسر میں تحریک پاکستان کا آغاز ہوا اور جلوس نکلنے لگے تو ایک روز رام مورتی طائر نے کہا۔

”یہ ایک نہ ایک دن ہونامی تمام دیکھتے نہیں ہمارے امرتسر میں کتنے پاک سمن بنے ہوئے ہیں۔ شریف پورہ بھی ایک پاکستان ہے جہاں کے امرتسری مسلمان اپنے دین کے مطلق زندگی بسر کرتے ہیں چوک فرید بھی ایک پاکستان ہے اسی طرح کڑوا کرم سنگھ کا ایک حصہ بھی ایک پاکستان ہے۔ یہ حصہ ہندو اور سکھوں سے الگ تھلک ہے پاکستان اس ملک کے سیاسی اور تہذیبی ارتقاء کا ایک قدرتی نتیجہ ہے تم دیکھ لیتا پاکستان بن جائے گا۔“

پھر امرتسر میں تحریک پاکستان کا عمل تیز سے تیز تر ہوتا گیا قائد اعظم کی جھلکا نہ اور بے لوث قیادت میں مسلمان اپنی جدوجہد آزادی میں کامیاب ہو گئے اور قیام پاکستان کا اعلان کر دیا گیا مجھے یاد ہے جس رات آل انڈیا ریڈیو سے قائد اعظم نے تشکیل پاکستان کے اعلان کے بارے میں تقریر کی میں پٹان کوٹ

میں تھا۔ وہاں میں اصغرافی پائے کپنی میں سیز میں کی حیثیت سے ملازم تھا ایک چائے خانے کے ریڈیو پر میں نے قائد اعظم کی تقریر سنی۔ پٹان کوٹ کے مسلمانوں میں بے حد جوش و خروش تھا پاکستان زندہ باد قائد اعظم زندہ باد کے نعروں لگاتے جلوس گزرتے مجھے پٹان کوٹ کی سڑکوں کے نام یاد نہیں رہے میں زیادہ دیر وہاں رہا بھی نہیں۔ ایک نشیبی آبادی تھی جہاں مکانات کے آگے تھے اور ان میں سفیدے اور چیرمہ کے درخت ہوا میں جو مارکتے تھے۔ پیچھے دور ڈلیوز کی پہاڑیوں کی برون پوش چوٹیاں نظر آتی تھی مجھے سیاسی شعور بھی نہیں تھا۔ اسی لئے میں جسے جلوسوں میں کبھی شریک نہیں ہوتا تھا رام مورتی طائر کہتا تھا کہ پاکستان بن کر رہے گا۔ ہمارے محلے کی مسجد کے امام پیر جی بھی کہتے تھے کہ پاکستان مزدبے گا جہاں مسلمانوں دینی آزادی کے اسلامی ماحول میں زندگی بسر کریں گے۔ مجھے یاد ہے ایک بار رام مورتی طائر نے اپنی بینک کے موٹے ٹیشوں سے میری طرف دیکھتے ہوئے مجھ سے پوچھا تھا تم کبھی جنگ اور پنجاب کے دیہاتوں میں گئے ہو؟ میں نے کہا کہ نہیں تو وہ بولا۔ ”پھر تمہیں کیا پتہ کہ جب پاکستان بن جائے گا تو ہندو سا ہوکار کی زنجیریں کسی طرح ٹوٹ کر ریزہ ریزہ ہو جائیں گی۔“ پھر وہ سگریٹ کا کش لگا کر گری سوچ میں ڈوب گیا تھا۔

پنجاب میں فسادات کی آگ بھڑک اٹھی مارچ ۱۹۴۷ء کی دوسری یا تیسری تاریخ تھی کہ امرتسر شہر میں پہلا کرنیو لگا دیا گیا امرتسر ہمارا اپنا شہر تھا کرنیو کے دوران تو ہم گلی میں بند رہتے۔ جونہی کرنیو کھلتا ہم ہندو سکھوں کے محلوں میں بھی آوارہ گردی کرنے نکل جاتے ایک روز میں تحصیل پورے کی طرف گیا تو دیکھا کہ اس آبادی میں جو چند ایک سکھوں کے گھر تھے وہ خالی ہو چکے تھے رام مورتی طائر کا مکان بھی لٹ لٹا کر خالی پڑا تھا۔ فسادات کی آگ تشدد اختیار کرتی چلی گئی ہمارے اپنے محلے میں جو چند ایک ہندو سکھوں کے مکان تھے وہ بھی خالی ہو گئے ہندو سکھ شہر کے اندر غیر مسلم محلوں میں چلے گئے کبھی کبھی کرنیو کھلتا تو کوئی نہ کوئی ہندو یا سکھ پولیس کی معیت میں اپنا مکان دیکھنے یا دباؤ سے کوئی شے اٹھاتے مزدور یا مگر رام مورتی طائر نہ آیا۔

اسی طرح وقت گزرتا چلا گیا امرتسر میں چاروں طرف آگ لگی تھی شہر ہندو اور مسلم آبادی میں بٹ کر رہ گیا تھا دیہات اور پنجاب کے دوسرے شہر سے مسلم ہاجرین کے قافلوں کا سلسلہ شروع ہو گیا تھا۔ یہ ایک الگ انتہائی دردناک داستان ہے بہر حال اتفاق سے گیارہ اگست کو میں بوڑھے ایک پیرس میں بیٹھ کر امرتسر

سے لاہور گیا امرتسر کے درمیان ریل گاڑیاں ابھی تک چل رہی تھیں کشیدگی اگرچہ بہت زیادہ تھی مگر امرتسر کے مسلمانوں کی جرات دلیری اور جاننازی ہندوؤں کو ان کے محلوں کی طرف ایک انچ بھی بڑھنے نہیں دے رہی تھی۔ یہ اسی بے خوفی کا ثبوت تھا کہ میں گیارہ اگست کو ہونڈہ ایکسپریس میں سوار ہو کر لاہور کی طرف روانہ ہو گیا۔

چوبیس سالہ ٹیشٹ پر ہندو سکھ دور جنگ کے باہر کھڑے تواریں لہرا رہے کہ پاکستان کے خلاف خبریں لگا رہے تھے۔ لاہور پہنچا تو یہاں جو ہمارے رشتے دار تھے وہ فجر پر برس پڑے کہ تم کیا سوچ کر امرتسر میں بیٹھے ہو؟ کیا تم سب کا دہاں مرنے کا ارادہ ہے؟ فوراً واپس جاؤ اور ان سب کو لے کر لاہور آ جاؤ۔ میں نے دوسرے دن صبح آٹھ بج کر چالیس منٹ والی گاڑی پکڑی اور واپس امرتسر پہنچ گیا۔ ریوے ٹیشٹ پر مسلمان عورتوں اور مردوں کا ایک ہجوم دیکھا جو پلیٹ فارموں پر پڑے تھے۔ معلوم ہوا کہ شہر میں ساڑھے دس منٹ کے کر فیوگٹے والا ہے اس وقت دس بج کر پچیس منٹ ہوئے تھے مجھے ریوے ٹیشٹ پر شیخ قیوم مل گیا اس کا مکان مال بازار کے پہلو میں ایک گلی میں واقع تھا اس نے کہا ابھی کر فیوگٹے میں پانچ منٹ ہیں چلو نکل چلتے ہیں ہمارے محلے کے بودی نے کہا خبردار ٹیشٹ سے باہر نہ نکلنا اور ہندو جاٹ رجمنٹ کے فوجی پھر رہے ہیں وہ دیکھتے ہی گولی مار دیں گے۔ مگر فوجی کا دن تھا۔ ہم نے کوئی پروا نہ کی اور ریوے یارڈ کی گول باغ والی دیوار چاند کر سڑک پر آ گئے پانچ منٹ پہلے ہی بازار سنان ہو گئے تھے ایک جگہ ہندو فوجی گشت کرتے نظر آئے ہم نے کوئی پروا نہ کی اور سکندر گیٹ کی طرف چلنے لگے ایک مکان کی کھڑکی میں سے ایک شخص نے سر باہر نکال کر اوپر سے کہا۔

”اوتے منڈیو! امرتا ہے! کر فیوگٹے والا اسے اندر آ جاؤ۔“

ہم نے دوڑنا شروع کر دیا شیخ قیوم کا مکان وہاں سے زیادہ دور نہیں تھا ہم دوڑتے دوڑتے اس کی گلی میں داخل ہو گئے اس کے ساتھ ہی کر فیو کا بھونپو چیخ اٹھا۔ شیخ قیوم کا مکان تین منزلہ تھا اور کافی کشادہ تھا وہاں دیکھا کہ عورتوں بچوں اور مردوں سے بھرا پڑا ہے پیچھے جو ہندو بادشاہی قیدی وہاں سے مسلمان اپنی جانیں بچا کر اس مکان میں آ گئے تھے ان میں نہانہ چیرس والے ایک سرخ و سپید آدمی بھی تھے جی کے سر پر ترکی ٹوپی تھی وہ سخت خوف زدہ تھے اور بار بار شیخ قیوم سے

کہتے۔

”قیوم پتر مجھے کسی طرح ٹیشٹ پر پہنچا دے۔“

کر فیو کے گتے ہی پیچھے جو ہندوؤں کے محلے تھے اور سے فائرنگ شروع ہو گئی شام تک یہ فائرنگ ہوتی رہی ہمارا محلہ داں سے قریب ہی تھا۔ میں اور قیوم چھوٹی سی شہر تھیں میں دس پر بیٹھ گئے دوپہر کو دال روٹی کھانی رات کے نو بجے ریڈیو پر خبریں سن رہے تھے کہ ایک دم کبلی چلی گئی مکان میں عورتوں اور بچوں نے رونا شروع کر دیا مردانہ نہیں جو صلہ دینے لگے مہنے کوٹھے پر جا کر دیکھا سارا شہر تاریکی میں ڈوبا ہوا تھا فائرنگ کی آوازیں آرہی تھیں ہمارے محلے کی جانب کسی مکان میں آگ لگی ہوئی تھی جس کے شعلے اوپر اٹھ رہے تھے۔ شیخ قیوم نے انگلیاں لگاتے ہوئے کہا۔

”حمید امیر اخیال ہے گلی انگریزوں کا کوئی مکان جل رہا ہے۔ باغ رامانند کے ہندوؤں نے یہاں آگ لگائی ہوگی۔“

مجھے اپنے گھر والوں کی فکر پڑ گئی۔ مگر وہاں تو سب کوئی پریشان تھا خدا کر کے رات گزری کمری باغ اور بازار کبرواتاں کے سارے مسلمان گھر نے گھر بار چھوڑ کر تھوڑا بہت سامان سروسر لٹا لٹا کر گلی میں آ گئے تھے گلی میں گزرنے کو جگہ نہیں تھی میں لوگوں کے ٹرنکوں اور بستروں کے اوپر سے گزرتا اپنے گھر پہنچا انہیں کہا کہ جس طرح جو سکے یہاں سے نکل چلو۔ کوئی بھی امرتسر چھوڑنے پر رضی نہ ہوا۔ صرف والدہ لڑکیوں کو لے کر چلنے پر تیار ہو گئیں ایک بھائی انہیں لے کر ریوے ٹیشٹ کی طرف روانہ ہو گیا ہم باقی بھائی والد صاحب اور دوسرے رشتے داروں کے ساتھ مکان پر ہی رہے ان سب کا ابھی تک یہی خیال تھا کہ حالات ٹھیک ہو جائیں گے۔ میں گلی میں اپنے محلے کے دوستوں کے پاس آ گیا ابھی تک ہندوؤں سے مقابلہ کرنے کی تیاریاں ہو رہی تھیں مودی لاسٹیل بلیس لئے پھر رہے تھے گلی کے دروازے پر لوہے کا جنگلا چڑھا ہوا تھا جو اندر سے بند تھا وہاں محلے کا جاناں بد معاش ہندو لے پھر دے رہا تھا کر فیو کھلے بمشکل ایک گھنٹہ ہوا ہو گا شہر میں مار دھاڑ شروع ہو گئی اس کے فوراً بعد دوبارہ کر فیو لگا دیا گیا ساتھ دسے محلوں سے جیتوں کچھ مسلمانوں کی لاشیں گلی میں آئیں تو وہاں کھرام بچ گیا۔ گلی انگریزوں اور بازار کبرواتاں کے مسلمان علاقے میں باغ رامانند کے ہندوؤں کا قبضہ ہو چکا تھا انہوں نے مکان کو لوٹ کر آگ لگا دی

تھی۔ مگر یہاں کی مسجد میں کئی مسلمان شہید ہو گئے۔

اسرتر کی وہ رات بڑی خوف ناک رات تھی ساری رات تھری ناٹ تھری کی گولیلوں کے دھماکے ہوتے رہے ان میں ہم پھٹنے کے دھماکے بھی شامل تھے اسی رات ہماری مسجد کے پیر جی کا انتقال ہو گیا۔ دوسرے روز ۴ اگست کا دن تھا صبح ہوئی کر فیونہ کھلا مگر ہندو سکھوں نے ہندو سکھ فوج کو ساتھ لے کر ہماری گلی پر بازار والے دروازے کی طرف سے حملہ کر دیا۔ گلی میں بھگدڑ مچ گئی فوج کا مقابلہ نیم نہتے مسلمان کہاں کر سکتے تھے لوگ اپنا اسباب دینیں پھینک گئی کی دوسری جانب لال حویلی اور گروں کے دیڑھے کی طرف بھاگے ہندو فوج نے اینڈ گرینڈ مارکر گلی کا دروازہ اڑ دیا اتنی دیر میں مسلمان گلی سے بھاگ کر لال حویلی اور گروں کے دیڑھے سے ہوتے ہوئے باہر جی ٹی روڈ کے بد رو پر پہنچ چکے تھے اور بھی ہندو فوج گشت لگا رہی تھی اس نے بھاگتے مسلمانوں پر فائرنگ شروع کر دی مرنی اپنی شیر خوار بچے کو گود میں اٹھا لے کر شریف پور سے کی طرف بھاگ رہا تھا کہ گولی لگنے سے وہیں شہید ہو گیا۔ بہت سے مسلمان بچے عورتیں اور مرد شہید ہو کر گرے باقی پاتھی گراؤنڈ والی سڑک پار کر کے شریف پور سے میں داخل ہونے میں کامیاب ہو گئے۔ شریف پور سے میں داخل ہونے میں کامیاب ہو گئے۔ شریف پور سے کو مسلم ہاجرین کیمپ قرار دیا گیا تھا۔ وہاں بلوچ رجمنٹ مسلمان ہاجرین کی حفاظت پر مامور تھی بلوچ رجمنٹ کے سپاہیوں نے فائرنگ کا کر دیا اور سینکڑوں مسلمان عورتیں اور مرد ہندو فائرنگ سے بچ گئے بلوچ رجمنٹ کی فائرنگ سے ہندو فوجی پاتھی گراؤنڈ سے بھاگ گئے تھے۔

شریف پور سے نے باقاعدہ ہاجرین کیمپ کی شکل اختیار کر لی تھی شریف پور سے میں جو مسلمان آباد تھے انہوں نے اپنے مسلمان ہاجرینوں کے لیے اپنے گھروں کے دروازے کھول دیے تھے لاہور سے مسلم لیگ کے ٹرک آنا شروع ہو گئے جی ٹی روڈ کی جانب سے مسلم لیگ کے سڑکوں کے ذریعے اور ریوے لائن کی طرف سے قالی مال گاڑیاں کے ذریعے شریف پور سے سے مسلمانوں کی پاکستان کی طرف ہو گئی۔ کیمپ کو سکیرڈوں میں تقسیم کر دیا گیا تھا اور بلوچ رجمنٹ کے جوان اپنی لگوانی میں بھی بلوچ رجمنٹ کے مسلح جوان موجود ہوتے تھے ہماری باری تین چار روز کے بعد آنے والی تھی ایک روز میں پھرتے پھرتے تحصیل پور سے والی آبادی کی طرف نکل گیا

وہاں سے لوگ ایک مکان کے باہر جمع تھے میں بھی تماشا دیکھنے وہاں پہنچ گئے۔ بلوچ رجمنٹ کے دو جوان موجود تھے۔ دو سکھ فوجی بھی تھے ایک تانگہ گلی کے باہر تحصیل کی عمارت کے پاس کھڑا تھا بلنگ رام مورتی طائر کے مکان کے باہر کھڑے تھے۔ میں نے رام مورتی طائر کے پتا کو دیکھا کہ سکھ فوجی اور پولیس والوں کے ساتھ اپنے مکان میں داخل ہو رہا تھا۔ اچانک اس کے پاس کے پائیدان کے پاس مجھے رام مورتی طائر نظر آیا۔ وہ تحصیل کی قلعہ نامہ عمارت کی طرف منہ کر کے سگریٹ پی رہا تھا میری طرف اس کی بیٹھ تھی۔ میں پک کر اس کے پاس گیا۔ اس نے گردن گھا کر میری طرف اپنی پینک کے موٹے ٹیشوں سے دیکھا وہ کچھ دبا ہوا تھا۔ ایک سیکنڈ میری طرف ماکت کھڑا دیکھتا رہا پھر مسکرایا اور مجھے لگایا میں نے پوچھا کہ وہ اپنے خالی مکان پر کیا کرنے آیا ہے؟ اس نے ہنس کر کہا۔

”میرے بتا جی مکان کی پرچھتی میں رکھی ہوئی کرشن کی مورتی نکالنے آئے ہیں“

میں نے کہا۔ ”کیا ابھی تک مکان میں ہی ہو گیا؟“

رام مورتی طائر نے سگریٹ کا کش لگایا اور دھواں چھوڑتے ہوئے بولا۔

”مسلمان بت ٹھن ہے اسے مورتی سے کیا سروکار؟ ظاہر ہے مکان میں ہی کسی جگہ پڑی ہو گی۔ پھر رام مورتی طائر کے چہرے پر طنز یہ مسکراہٹ نمودار ہوئی۔ اور کہنے لگا۔ ”میرے بتا جی کٹر ہندو ہیں تم ہندوؤں کو پوری طرح نہیں جانتے میں جانتا ہوں وہ جو مورتی لینے آئے ہیں اس کے اندر لالہ جی یعنی میرے پتا جی کے قیمتی جواہرات بھرے ہوئے ہیں میں تمہیں امانت دیتا ہوں کہ تم یہ راز بلوچ رجمنٹ کو بتاؤ مگر اس سے کیا فرق پڑے گا ہندو تو لاہور کے مکانات سے کروڑوں روپے کے خزانے ساتھ لے کر یہاں آ گئے تھے تم لوگوں کو تو لاہور میں ملی ہوئی شاہ عالمی ملے گی۔“

پھر میرے کانڈے پر ہاتھ رکھ کر بولا۔

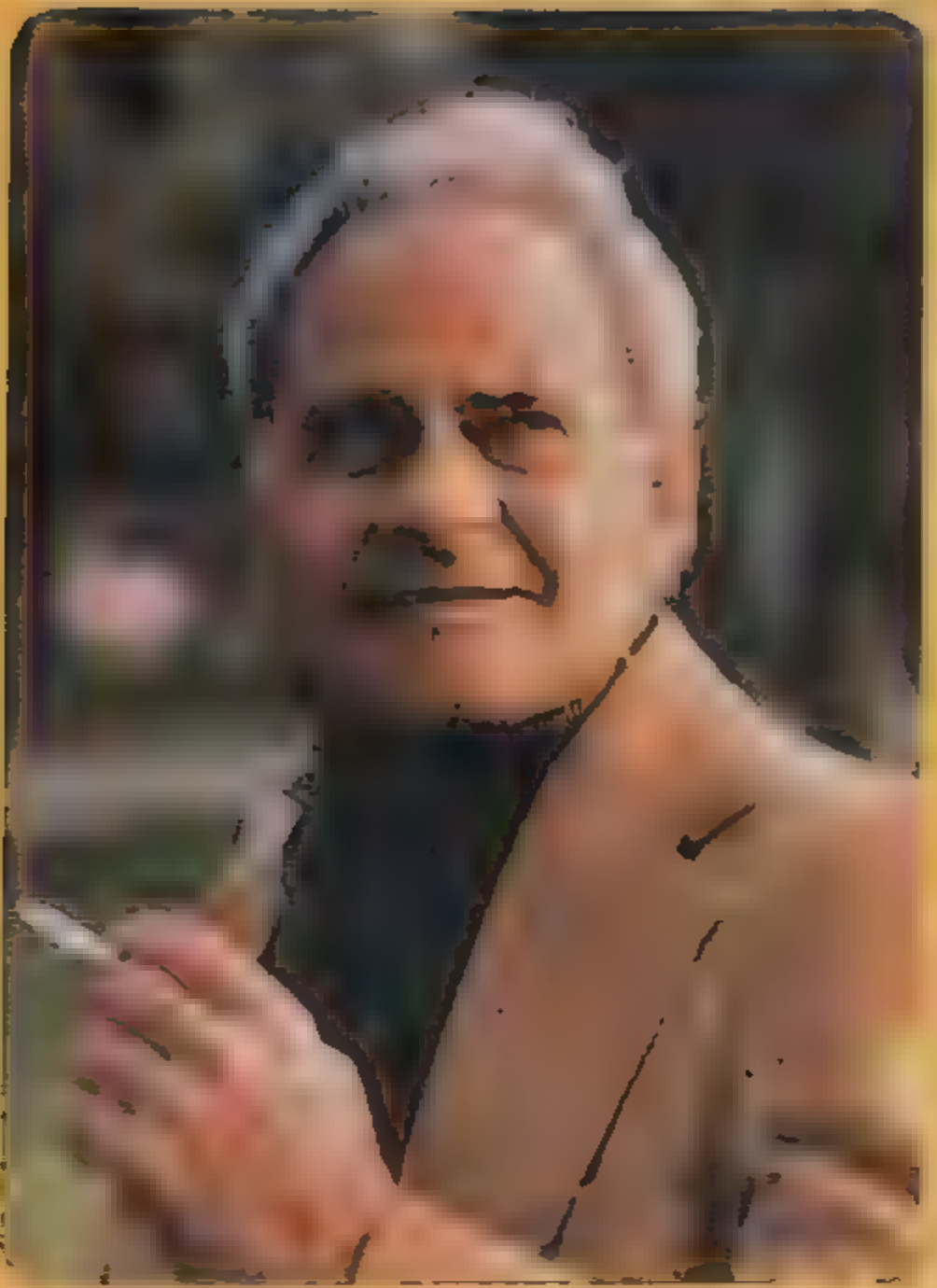
لیکن پاکستان کی زمین خزانوں سے بھری ہوئی ہے جیسے اب ہندو لالہ کہیں نہیں لٹکے گا۔ دیکھو میں ہندو ہو کر تمہیں ایسی باتیں بتا رہا ہوں مگر میں ہندو نہیں ہوں تم کو پاکستان مبارک ہو میری ایک بات یاد رکھنا پاکستان کی حفاظت کرنا ایک جان اور متحد ہو کر رہنا نہیں تو ہندو بننے کی سیاست نہیں بڑھ کر مائے مہ بننے لگا۔

”یار..... تم ہندو کو نہیں جانتے یہ برہمن ہے اگر یہ نہیں ہے تو سگریٹ پڑو۔“

رام مورتی طائر کا اپ مکان سے مورتی نکال کر لایا تو مسلمانوں نے مطالبہ کیا کہ مورتی کو توڑا جائے
لوگوں کو شک پڑ گیا تھا مورتی حال ایسی ہو گئی کہ مورتی کو مورتی سے توڑنا پڑا اندر مر جان اور مرد ہی زمرہ بھرے
ہوئے تھے ان جہازات کو پورچ رجمنٹ نے اپنی تحویل میں لے لیا اور بعد میں مسلم لیگ کے حوالے کر دیا۔
آخر ایک مذہبی بھی ایسی آگنی ہم تمام گھروں کے ایک ٹرک میں سوار ہو گئے مدینہ کا وقت تھا آسمان
پر دھواں سا پھیلا ہوا تھا مسلم لیگ کے ٹرک آہستہ آہستہ جی ٹی روڈ پر لاہور کی طرف سیٹھنے لگے میں ٹرک
میں بیٹھے کے ساتھ لگ کر کھڑا ہر ٹرک راہ تھا امرتسر مجھ سے ہمیشہ ہمیشہ کے لیے جدا ہو رہا تھا مسلم لیگ
سکول گزر گیا اور بھائیوں والی نہر کا ریلوے پھاٹک نظر آیا اس نہر میں ہم چلا گئیں لگایا کرتے تھے۔ ٹرک ریل
کے پل کی چڑھائی چڑھ رہے تھے پل کے اوپر جا کر سٹیشن کی طرف مڑنے تو مجھے مذہب کی باغ کا کرشل ہوئی
والا دروازہ نظر آتا درخت جیسے ہاتھ بلا کر مجھے اودھ کے سب سے تھے یہ درخت میرے بڑے ہاتھ سے
تھے کمپنی باغ بھی گزر گیا ٹرک پتلی گھر کے قریب سے نکل گئے چہ ہڑتہ بھی گزر گیا کھیتوں میں ویرانی
برس رہی تھی کئی جگہوں پر جھاڑیوں میں انسانی لاشیں اوندھی پڑی تھیں پھر یہ سب کچھ گزر گیا امرتسر گزر
گیا اور دور باڈر ایک مدقت میں پاکستان کا پرچم لہراتا نظر آیا پڑمردہ چہروں پر زندگی کا ترو تان خون
دوڑنے لگا نفی پاکستان زندہ باد کے نعروں سے گونج اٹھی ہم پاکستان کی پیاری اور اپنی سرزمین میں
داخل ہو گئے اس وقت مجھے رام مورتی طائر کا فقرہ یاد آگیا۔

” پاکستان کی زمین خزانوں سے بھری ہوئی ہے جیسے اب ہندو لالہ کبھی نہیں لوٹ سکے گا پاکستان
کی حفاظت کرنا ایک جان اور متحد رہنا۔“

اس واقعے کو کتنا عرصہ گزر گیا ہوگا آپ سب جانتے ہیں اور اس وقت میں اپنے ماضی کو یاد کر
کے کیا سوچ رہا ہوں؟ یہ بھی آپ سب جانتے ہوں گے۔ خدا پاکستان کی حفاظت کے لیے سیر پلائی۔
دیوار بن جائیں۔ اختلافات ختم کر دیں کیونکہ ہمارا سب کچھ پاکستان ہی ہے۔



”امرتسر کی مسجدوں پر پیارا مضمون لکھنے والے اے حمید کو میرا سلام پہنچے۔ کتنی پیاری تصویر کھینچی ہے، آپ نے امرتسر کی معاشرت کی کس قدر آباد کھینچی، قرطبہ کی بیٹیاں کتنے اچھے تھے، امام صاحب اور ان کے بیٹے — قرطبہ کے حوالے سے تاریخ کے درپے کھول دیے، جس سے اس ملک کے مستقبل پر دھندلی دھندلی روشنی — ذرے کچھ چمکتے، کچھ بجھتے نظر آتے۔ اشاریت نے چوہ طبق روشن کر دیے — پرانا اے حمید پھر جاگ اٹھا ہے کاش ایسی شاہکار تحریریں دوئیں اور لکھ ڈالے۔“

(ڈاکٹر سید محمد عبد اللہ کے ایک خط سے)

اے حمید۔ پھولوں، تتلیوں اور خوشبوؤں کے تعجب میں ہم سے دور جاتا مصنف

راشد اشرف۔ ۹ اپریل ۲۰۱۱

کبھی کبھی میں سوچتا ہوں کہ انسان جب کسی اسپتال کے آئی سی یو میں وینٹیلیٹر کے سہارے سانس لے رہا ہوتا ہے تو بے ہوشی کے عالم میں وہ کیسے کیسے منظر دیکھتا ہوگا۔۔۔ اور بیہوشی کی سرحدوں سے ہوش میں آنے کے مختصر درمیانی عرصے میں وہ کن کن باتوں کو یاد کرتا ہوگا۔۔۔ یقیناً وہ تمام باتیں اسے یاد آتی ہوں گی جو اس کی زندگی سے جڑی تھیں!

اپنی تحریروں میں تو اتر کے ساتھ جنگل، خوشبو، بارش، ٹاریل، درخت اور چائے کا ذکر کرنے والا پاکستان کا درویش صفت، ایم نادر اور ہر دل عزیز مصنف بچھے ایک ماہ سے بھی اسی کیفیت سے دوچار ہے۔ جناب عبدالحمید جو اے حمید کے نام سے جانے جاتے ہیں، لاہور کے ایک نجی اسپتال میں زندگی اور موت کی کشمکش میں مبتلا ہیں۔ ایک ایسی جنگ جس میں زندگی کے غالب آ جانے کا امکان روز بروز کم سے کم ہوتا چلا جا رہا ہے۔ مجھ جیسے ان کے ان گنت چاہنے والوں کے یہ ایک اذیت ناک صورتحال ہے۔ یہ تو خدا سلامت رکھے جناب عطاء الحق قاسمی کو کہ جن کی تگ و دو کی وجہ سے اے حمید کے علاج کا تمام خرچہ حکومت پنجاب برداشت کر رہی ہے ورنہ ان کے اہل خانہ میں اس کی سکت نہ تھی۔ اس ملک میں ہر کوئی ان جیسا خوش قسمت کہاں جس کو اس کڑے وقت میں کوئی عطاء الحق قاسمی نصیب ہو جائے۔۔۔ کتنے ہی ادیب و شاعر کسمپرسی کے عالم میں دم توڑ گئے۔ شاعر و ادیب کیا، یہاں تو اس تازہ کا حشر بھی اس سے مختلف نہیں ہوتا۔ ۷ دسمبر ۲۰۰۳ کو ملیر، کراچی میں واقع ایک تاریخی درسگاہ میں علم کی روشنی پھیلانے

والے پروفیسر غازی خان جاکھرائی اور ان کی اہلیہ کی پندرہ روز پرانی لاشوں کا ملنہ تو آج بھی کچھ لوگوں کو یاد ہوگا جو بھوک سے دم توڑ گئے تھے۔ عدالت میں دائر کیس کے تفصیلات اور اس میں موٹ لوگوں کے نام و دیگر تفصیل یہاں پڑھی جاسکتی ہے:

<http://archives.dawn.com/2006/05/16/local4.htm>

کل شام مجھے اے حمید کے بیٹے مسعود حمید اپنے والد کے علاج کے سلسلے میں کی جانے والی عطاء الحق قاسمی صاحب کی کوششوں کے بارے میں آگاہ کر چکے تھے۔۔۔۔۔ آج صبح جب مجھ سے رہانہ گیا تو لاہور میں عطاء الحق قاسمی صاحب کو فون کر ڈالا۔۔۔۔۔ وہ مجھے حمید صاحب کے علاج کے سلسلے میں کی جانے والی کوششوں اور ان کے مثبت نتائج کے بارے میں بتاتے رہے۔ لیکن ہر آن پر اُمید باتیں کرنے والے عطاء صاحب، اے حمید کی صحتیابی کے بارے میں تذبذب کا شکار نظر آئے۔ جو شخص چند دن وینٹیلیٹر پر گزار لے، اس کی صحت کے بارے میں ڈاکٹر بھی زیادہ پر امید نہیں رہتے اور ادھر اے حمید تو پورے ایک ماہ سے وینٹیلیٹر (ventilator) پر ہیں۔۔۔۔۔ لیکن بقول عطاء صاحب، ہمیں خدا کی ذات سے امید نہیں چھوڑنی چاہیے!

مارچ ۲۰۰۸ کی ایک شام میں لاہور میں واقع اے حمید صاحب سے ملاقات کی عرض سے سمن آباد لاہور میں واقع ان کی رہائش گاہ پر گیا تھا۔ وہ ایک گھنٹہ پک جھپکتے گزر گیا تھا۔ سردیوں کا موسم تھا، وہ کتابوں سے گھرے چھوٹے سے کمرے میں اپنے بستر پر بیٹے ہوئے تھے۔ میں بے صبری سے اس شیفنگی کا ذکر کر رہا تھا جو ایک زمانے سے مجھے ان سے ان کی تحریروں کے تعلق سے ہے۔ وہ میری باتیں سن کر انکساری سے مسکرا رہے تھے۔ میں ان کو شہاب نامہ میں قدرت اللہ شہاب کی ان کے بارے میں رائے

یاد دلاتا ہوں کہ کس طرح شہاب صاحب جو اس زمانے میں پنجاب ڈائرکٹر آف انڈسٹریز کے عہدے پر فائز تھے اور حمید صاحب کو پاورلومز کا پرمٹ دے چکے تھے (ان دنوں پاورلومز کا کاروبار انتہائی منفعت بخش کہلاتا تھا اور قدرت اللہ شہاب کے پاس دن بھر اسی سلسلے میں سفارشوں کا بیزار کن تانبہ بندھا رہتا تھا) اور کچھ عرصے بعد حمید صاحب، جو ان پرمٹس کو آبائی بیک مارکیٹ میں فروخت کر کے ایک بڑی رقم بنا سکتے تھے، شہاب صاحب کو وہ پرمٹس واپس کرنے آئے تھے۔

میں اس کاروبار کا جائزہ لینے کے بعد میں اس نتیجے پر پہنچا ہوں کہ یہ کام میرے بس کا روگ نہیں ہے۔۔۔ وہ قدرت اللہ شہاب سے کہہ رہے تھے۔

یہ شہاب صاحب کے لیے ایک غیر متوقع بات تھی۔۔۔ اور پھر انہوں نے قلم اٹھایا اور شہاب نامہ میں حمید صاحب کے لیے یہ جملہ لکھا:

اس کی دلنشین تحریروں کی طرح اس صاحب طرز ادیب کا کردار بھی اتنا ہی صاف اور بے داغ تھا کہ اس نے اپنے پرمٹ کو بیک مارکیٹ میں بیچنا بھی گوارا نہ کیا۔۔۔۔۔ شہاب اس محکمے میں اپنی تقرری کے تمام عرصے کے احوال کے اختتام پر لکھتے ہیں: پنجاب کے ڈائرکٹر آف انڈسٹریز کی حیثیت سے اے حمید، آتا پیسے کی چکی والا محمد دین، آغا حسن عابدی اور ابن حسن برنی کے ساتھ میری ملاقاتیں اس زمانے کی خوشگوار یادیں ہیں۔ باقی متروکہ صنعتوں کی الاٹمنٹوں کا سارا کام ایک متعفن دلدل کی ناگوار سڑاؤ کے علاوہ اور کچھ نہیں تھا۔



اے حمید۔ پاک فی ہاوس کے باہر

شہاب نامہ میں درج اس واقعے کے ذکر پر حمید صاحب ہنسنے لگے اور کہا:
”یار! جب کبھی میری بیوی مجھ پر ناراض ہوتی ہے تو میں اسے شہاب نامہ دکھ کر کہتا ہوں کہ دیکھو
قدرت اللہ شہاب جیسے انسان نے میرا ذکر کتنے اچھے انداز میں کیا ہے“

پھر میں اے حمید کو ان کے لکھے ناول ڈربے کے اقتباسات سنانے لگتا ہوں جو میرہ پسندیدہ ترین ناول
ہے۔ میں ان سے اس ناول کے کرداروں کے بارے میں دریافت کرتا ہوں ورنہ نہیں یہ بات بتاتا ہوں
کہ کالج کے زمانے میں کس طرح ایک لائبریری سے ۱۹۶۰ کا شائع ہوا یہ ناول مجھے ملا تھا جسے میں نے
منہ مانگی قیمت (تیرہ روپے) دے کر اس کے مالک سے خرید لیا تھا اور پھر ایک روز اس ناول کو میرے
والد

مرحوم نے پڑھا اور اپنے ہاتھوں سے اس کو محفوظ کرنے کی خاطر اس پر گرد پوش لگا دیا۔ حمید صاحب
میرے ہاتھ سے اس ناول کو لے کر بغور دیکھتے ہیں، میری درخواست پر ناول پر اپنے آٹوگراف ثبت
کرتے ہیں

اور اس کے تازہ نسخے کے حصول کے لیے مقبول اکیڈمی کے مالک کے نام مجھے ایک رقعہ لکھ دیتے ہیں۔
میں نے اس رقعے کو تبرک سمجھ کر حفاظت سے رکھا اور ایک جگہ محفوظ کر دیا، ملاحظہ ہو:

<http://www.flickr.com/photos/41786707@N05/5109237158/>

اس ملاقات کی تصویر اور ایک مختصر سی ویڈیو (انٹرنیٹ پر موجود واحد ویڈیو ریکارڈ) بھی یہاں دیکھی جاسکتی ہے:

<http://www.flickr.com/photos/41786707@N05/4371908038/in/photostream/>

حمید صاحب کو اپنی یاداشیں لکھنے کی درخواست کے ساتھ ان سے ملاقات کی خوشگوار یادیں لے کر میں وہاں سے لوٹا تھا!



اے حمید (دائیں جانب) اور احمد راہی

اس دن کے بعد سے حمید صاحب سے مستقل فون پر رابطہ رہنے لگا اور گا ہے گا ہے کراچی سے ان کو لاہور کتابیں ارسال کا سلسلہ جاری رہتا تھا۔ اپنی بیماری سے چند ماہ پیشتر انہوں نے مجھ سے ابن انشاء پر اپنی لکھی کتاب کی فرمائش کی جو لاہور میں نایاب ہے اور حمید صاحب کے پاس بھی اس کا کوئی نسخہ موجود نہیں تھا۔ یاد رہے کہ اے حمید ابن انشاء کے گہرے دوست رہے ہیں اور ابن انشاء کے خطوط پر مبنی کتاب خط انشاء جی کے ”میں اے حمید کے کئی بے تکلفانہ خطوط موجود ہیں۔ ایسے ہی ایک خط میں (اقتباس) انشاء جی رقم طراز ہیں:

”ارے حمید، میری جان! تمہارے یادوں کے گلاب سب کے سب میں نے پڑھے ہیں بلکہ سونگھے ہیں اور پرانے دنوں کی یاد پر دل کو کچھ کچھ ہوتا ہی رہا ہے۔ تم ڈنڈی مار جاتے ہو۔ عشق و عاشقی اور لڑکیوں کے تذکرے میں بھی تم ڈنڈی بلکہ ڈنڈا مار جاتے ہو۔ لڑکیاں تمہاری بھولی بھولی صورت رومانٹک تحریر کے چکر میں آ جاتی ہیں۔ خیر میاں ہم تو تمہارے عاشق ہیں۔ فی زمانہ اور کوئی ہمیں اپنے اوپر عاشق ہونے کی اجازت بھی نہیں دیتا۔“

حمید صاحب کی لکھی ایک کتاب ”امرتسر کی یادیں“ میں عرصہ پندرہ برس سے تلاش کر رہا تھا لیکن ہر جگہ ناکامی ہوئی۔ دلچسپ بات یہ ہوئی کہ حمید صاحب کے پاس بھی اس کتاب کا ایک ہی نسخہ باقی رہ گیا تھا۔۔۔۔۔ کچھ عرصہ پیشتر کراچی سے ایک شناسلاہور جا رہے تھے، میں نے ان کے ذمے یہ کام لگایا کہ حمید صاحب سے وہ نسخہ لے کر اس کی فوٹو کاپی بنا کر لے آئیں۔ خدا کا شکر ہے کہ یہ کام سرانجام پایا اور



اے حمید۔ پچیس برس قبل کی ایک تصویر

میں نے حمید صاحب کا شکریہ ادا کیا۔

حمید صاحب کا سن پیدائش ۱۹۲۸ ہے، اس حساب سے وہ ۸۳ برس کے ہوئے۔ امرتسر میں پیدا ہونے والے اے حمید نے ۱۹۴۸ میں اپنا پہلا افسانہ منزل منزل لکھا جسے راتوں رات مقبولیت حاصل ہوئی۔ بہت جلد ان کے افسانے لاہور سے شائع ہونے والے معیاری جریدوں کی زینت بننے لگے۔ وہ ایک کثیر التحریر مصنف ہیں، انہوں نے کم و بیش ۲۰۰ ناولز لکھے جبکہ بچوں کے لیے ان کی لکھی مشہور زمانہ سیریز امبرناگ اور ماریہ کے ۱۰۰ ناولز منظر عام پر آئے۔ ان کی چند دیگر کتابوں کے نام یہ ہیں:

منزل منزل

لاہور کی یادیں

داستان گو

امریکا نو

چاند چہرے

گلستان ادب کی سنہری یادیں

دیکھو شہر لاہور

جنوبی ہند کے جنگلوں میں

اردو شعر کی داستان

اردو نثر کی داستان

مرزا غالب لاہور میں

اے حمید نے ریڈیو پاکستان میں عرصہ دراز تک ملازمت کی، بعد ازاں وہ وائس آف امریکہ سے وابستہ ہو کر واشنگٹن چلے گئے جہاں سے واپسی پر انہوں نے وائس آف امریکہ کی دلچسپ دوس کی قلم بند کیا جو پہلے کراچی کے ایک جریدے نیارخ میں قسط وار شائع ہوئی اور بعد ازاں اسے کتابی صورت میں امریکا نو کے عنوان سے سنگ میل پبلیکیشنز لاہور نے شائع کیا۔ انہوں نے ٹیلی وژن کے لیے ڈرامے بھی لکھے، خاص کر بچوں کے لیے لکھا گیا سیریل عینک والا جن بہت مقبول ہوا۔ وہ پچھپے کئی برس سے لاہور کے روزنامے نوائے وقت میں اتوار کے روز کالم لکھ رہے تھے۔۔۔ ۲۰۰۳ میں ابوالحسن نعیمی کی خودنوشت یہ لاہور ہے منظر عام پر آئی جس میں نعیمی صاحب نے اے حمید کا ذکر کیا ہے۔ اسی طرح دسمبر ۲۰۱۰ میں لاہور

سے ریڈیو پاکستان لاہور سے وابستہ رہے ناصر قریشی صاحب کی خودنوشت ادبیات نشریات شائع ہوئی جس میں قریشی صاحب نے حمید صاحب کا تذکرہ تفصیل سے کیا ہے۔



مارچ ۲۰۰۸ء اپنی رہائش گاہ پر۔ راقم نے محفوظ کی

اے حمید ان لوگوں میں سے ہیں جن کی شخصیت کا مکمل عکس پڑھنے والے کو ان کی تحریروں میں لگا ہے بگا ہے نظر آتا ہے اور یوں مزید معلومات کے حصول کے لیے کسی خارجی سہارے کی چنداں ضرورت نہیں محسوس ہوتی۔ کڑکی کے زمانے میں بھی حمید صاحب اچھا لباس پہنتے تھے اور احباب کی محفل میں الگ ہی نظر آتے تھے۔ وہ لکھتے ہیں کہ ہمیشہ بہترین لباس پہنو، بہترین خوشبو استعمال کرو اور بہترین لڑکی سے محبت کرو۔

ان کی تحریروں میں ایک عجب دلکشی ہے، پڑھنے والا کچھ دیر تمام غموں سے نجات پا کر گھنے جنگلوں، درختوں، پرندوں، خوشبوؤں کی ایک ایسی دنیا میں پہنچ جاتا ہے جہاں سے وہ نکلنا نہیں چاہتا لیکن کیا کیجیے کہ دیکھتے ہی دیکھتے کتاب ختم ہو جاتی ہے اور اسے دنیوی بکھیڑوں میں لوٹنا پڑتا ہے۔

وہ لاہور شہر کی روایت کے امین ہیں۔ لاہور کی محفلوں، کھانوں، ناشتوں، پہوانوں، تکیوں، اکھاڑوں، لائبریریوں اور تھیٹر کمپنیوں کا جس انداز سے اے حمید نے اپنی تحریروں میں ذکر کیا ہے وہ کسی

اور کو کہاں نصیب۔۔۔۔۔ اسی طرح امرتسر شہر کے ذکر میں بھی یہی موضوعات ان کی تحریر کا خاصہ رہے ہیں (دیکھئے: امرتسر کی یادیں۔ سن اشاعت: ۱۹۹۱)۔ ممتاز مفتی جب ہندوستان کا سفر نامہ لکھ رہے تو اے حمید کے ذکر کے بغیر آگے نہ بڑھ سکے تھے۔ پاک ٹی ہاؤس کی محفلوں کا تذکرہ جس طرح اے حمید نے کیا ہے وہ اپنی جگہ ایک تاریخی دستاویز کی حیثیت اختیار کر گیا ہے۔ سعادت حسن منٹو کے آخری دنوں کا احوال ہر حساس پڑھنے والے کو افسردہ کرنے کے لیے کافی ہے۔ اس افسوسناک احوال کی منظر کشی یا تو اے حمید نے کی ہے یا پھر معروف مزاح نگار محمد خالد اختر کے مضمون منٹو کے آخری دن سے اس کا پتہ ملتا ہے۔

اے حمید کی خاکہ نگاری کا ڈھنگ بھی دوسروں سے جدا نظر آتا ہے۔ اپنی کتاب چاند چہرے میں انہوں نے فیض احمد فیض، سیف الدین سیف، پروفیسر وقار عظیم، اخلاق احمد دہلوی، ابن انشاء، ناصر کاظمی، احمد ندیم قاسمی، عبد المجید عدم، احمد راہی، ابراہیم جلیس، راجہ مہدی علی، چراغ حسن حسرت، مرزا سلطان بیگ وغیرہ پر خاکے لکھے ہیں اور ان خاکوں میں ایسے ایسے واقعات تحریر کیے ہیں جو کہیں اور پڑھنے میں نہیں آتے۔ اسی طرح ان کی کتاب ”گلستان ادب کی سنہری یادیں“ بھی حقیقت سنہری یادوں اور باتوں کا ایک ایسا مرقع ہے جو ہمیشہ یاد رکھی جائیں گی۔ اے حمید اوائل عمری ہی میں گھر سے بھاگ کھڑے ہوئے تھے

اور انہوں نے یہ عرصہ بمبئی میں گزارا تھا۔ اسی طرح جنوب مشرقی ایشیاء کے بھی کئی ممالک بھی انہوں نے اچھی طرح دیکھ رکھے تھے۔ آگے چل کر اس آوارہ گردی کے تجربات ان کی تحریروں کو جلا بخشنے میں خوب کام آئے اور ان ممالک کے تجربات، رہن سہن، بول چال اور ثقافت کو انہوں نے اپنی تحریروں میں گاہے بگاہے استعمال کیا اور ان کی تحریروں کا یہی وصف ان کے قارئین کے دل میں گھر کر گیا!

اب دیکھئے کہ بھلا اس انداز تحریر کو کون پسند نہ کرے گا:

”میں کبھی اکیلا اور کبھی کسی دوست کے ساتھ کسی نہ کسی بہانے ٹولٹن مارکیٹ کا ایک چکر ضرور لگاتا تھا۔ اس کی وجہ ٹولٹن مارکیٹ کی وہ مخلوط ٹھنڈی ٹھنڈی خوشبو تھی جو وہاں فضا میں ہر طرف بسی ہوئی ہوتی تھی۔ میں جنوب مشرقی ایشیاء کے ملکوں سے یہ نہیہ جدا ہوا تھا۔ ان ملکوں کی بارشوں کی آواز اور استوائی پھولوں کی گرم خوشبوئیں میرے ساتھ سانس لیتی تھیں۔ جب میں ٹولٹن مارکیٹ میں داخل ہوتا تو مجھے ایسا لگتا کہ جیسے میں رنگون کی اسکاٹ مارکیٹ اور کولمبو کے ساحل سمندر پر بارش میں بھگتے ناریل کے درختوں میں آگیا ہوں۔“

لاہور کی سڑکوں کا احوال بیان کرتے ہوئے انداز تحریر ملاحظہ ہو:

سردیوں کے موسم میں جب مطلع صاف ہوتا تھا تو ڈیوس روڈ سنہری دھوپ میں ایک ایسی روشن سڑک لگتی جو مستقبل کے حسین سبزہ زاروں کی طرف جا رہی ہو۔ رات کو یہ سڑک کسی گمنام جزیرے کا خواب انگیز راستہ معلوم ہوتا تھا۔ جب سون کی جھڑیاں لگتی تھیں تو بارش میں اس پرسکون خلی خلی سڑک پر ایک ایسی جنگلی عورت کا گمن ہوتا تھا سنسان جنگل میں اکیلی بارش میں نکل آئی ہو۔

جوں جوں لوگوں کے دل تنگ ہوتے گئے، ڈیوس روڈ کشادہ ہوتی گئی۔ درختوں پر کلباڑے چلتے گئے۔ اور پھر وہ وقت آیا کہ اصل سڑک کی جگہ ایک ایسی سڑک نمودار ہو گئی جس کا اصل سے دور کا بھی کوئی تعلق نہیں تھا۔ کبھی یہ سڑک فطرت کی آغوش میں سانس لینے والی ایک آزاد جنگلی رُکی تھی جو جنگل کی بارش میں بے فکری سے نہایا کرتی تھی اور آج یہ سڑک مجھے ایک ایسی بھکاری عورت کی طرح دکھائی دیتی ہے جس

کے کپڑے پھنے ہوئے ہیں، جس کے بالوں میں گرد جمی ہے اور جو خوفزدہ آنکھوں سے ادھر ادھر دیکھتے ہوئے سڑک پار کرنے کی کوشش کر رہی ہے۔ (یادوں کے گلاب)

اپنے مخصوص انداز میں ماضی کے کسی دلچسپ واقعے کا ذکر کرنا تو اے حمید سے سیکھئے۔ ایک جگہ لکھتے ہیں:

غفور بٹ ہفت روزہ اسکرین لائٹ کا مالک اور ایڈیٹر تھے۔ دوسری منزل پر اس کا دفتر تھا جہاں ہم شاعر ادیب تقریباً روزانہ شام کو مل بیٹھے تھے۔ ہم سب فاقہ مست ادیب تھے۔ کبھی کبھی اشفاق احمد بھی میرے اصرار پر یہاں آ جاتا تھا۔ مبارک سینما کے مالک ملک مبارک صاحب کا انتقال ہو گیا۔ غفور بٹ سیڑھیاں چڑھ کر ہانپتا ہوا آیا اور اپنے ایڈیٹر سے مخاطب ہو کر بولا:

تجمل! ملک مبارک کی وفات پر معذرت کا چوکھٹ لگانا نہ بھولنا

تجمل نے جان بوجھ کر کہا ”معذرت کا چوکھٹا؟“

غفور بٹ بولا: ”ہاں پیر! وہی کہ ملک مبارک کے انتقال پر ادارہ اسکرین لائٹ ان کے لواحقین سے معذرت خواہ ہے۔ (داستان گو)

اے حمید ایک اور دلچسپ واقعے کا ذکر کرتے ہوئے لکھتے ہیں:

ریگل سینما میں فلم مادام بوارے لگی۔ میں نے اور احمد راہی نے فلم دیکھنے اور اس کے بعد شیزان میں بیٹھ کر چائے اور کریون اے کے سگریٹ پینے کا پروگرام بنایا۔ اتفاق سے اس روز ہماری جیبیں بالکل خالی تھیں۔ ہم فوراً ادب لطیف کے دفتر پہنچے۔ ان دنوں ادب لطیف کو میرزا ادیب ایڈٹ کیا کرتے تھے۔

ہم نے جاتے ہی مرزا ادیب سے کہا:

میرزا صاحب! ہم نے فیصلہ کیا ہے کہ اس سال کے بہترین ادب کا انتخاب ہم کریں گے

میرزا ادیب بڑے شریف آدمی ہیں، بہت خوش ہوئے بولے:

”یہ تو بڑی اچھی بات ہے۔ احمد راہی صاحب حصہ نظم مرتب کر لیں گے اور آپ افسانوی ادب کا انتخاب کر لیں۔“

ہم نے کہا: ”تو ایسا کریں کہ ہمیں پچھلے سال کے جس قدر انڈیا اور پاکستان کے ادبی رسالے دفتر میں

موجود ہیں، دے دیجیے تاکہ ہم انہیں پڑھنا شروع کر دیں“

میرزا صاحب خوش ہو کر بولے: ”ضرور۔۔ ضرور“

اس کے آدھے گھنٹے بعد جب ہم ادب لطیف کے دفتر سے باہر نکلے تو ہم نے ادبی رسالوں کے دو بھاری

بھر کم پلندے اٹھ رکھے تھے۔ آپ یقین کریں کہ ہم وہاں سے نکل کر سیدھا موری دروازے کے باہر

گندے سٹال کے پاس ردی خریدنے والے ایک دکاندار کے پاس گئے اور سارے ادبی رسالے سات

یا آٹھ روپوں میں فروخت کر دئے۔ اس شام میں نے اور احمد راہی نے بڑی عیاشی کی۔ یعنی مادام بوارے

فلم بھی دیکھی اور شیزان میں بیٹھ کر کیک پیسٹری بھی اڑاتے اور کریون اے کے سگریٹ بھی پیتے رہے۔

اس کے بعد تقریباً دوسرے تیسرے روز میرزا ادیب ہم سے پوچھ لیتے:

”بھئی انتخاب کا مسودہ کہاں ہے“

ہم ہمیشہ یہی جواب دیتے: ”بس دو ایک دن میں تیار ہو جائے گا۔ ہم دراصل بڑی ذمہ داری سے کام

کر رہے ہیں۔“ (یادوں کے گلاب)

ہمارے ممدوح کو اپنی تحریر کے ذریعے پڑھنے والے کو اس کرنے کا فن بھی آتا ہے۔ سعادت حسن منٹو

سے اپنی آخری ملاقات کا احوال بیان کرتے ہوئے لکھتے ہیں:

میو اسپتال کی دوسری منزل کے میڈیکل وارڈ میں دروازے کے ساتھ ہی ان کا ستر لگا تھا۔ منٹو صاحب بستر پر نیم دراز تھے اور ان کی بڑی ہمشیرہ ان کو چچ کے ساتھ سوپ پلانے کو کوشش کر رہی تھیں۔ میں خاموشی سے بستر کے ساتھ بیٹھ گیا۔ منٹو صاحب بے حد نحیف ہو گئے تھے۔ ان کی یہ حالت دیکھ کر میرے دل کو بڑا دکھ ہو رہا تھا۔ میں خاموش بیٹھ تھا۔ منٹو صاحب نے نگاہیں اٹھ کر میری طرف دیکھا تو میں نے بڑے ادب سے پوچھا:

اب کیسی طبیعت ہے منٹو صاحب ؟

اس عظیم افسانہ نگار کے کمزور چہرے پر ایک خفیف سا داس تبسم ابھرا اور صرف اتنا کہا:
دیکھ لو خوابہ!

اور اس کے کچھ ہی روز بعد سعادت حسن منٹو کا انتقال ہو گیا۔ (یادوں کے گلاب)

اے حمید لکھتے ہیں کہ نریش کد رشاد جب دہلی سے لاہور آیا تو سعادت حسن منٹو کی قبر پر جا کر بہت رویا اور پھر کہا: ”خدا مسلمانوں کو خوش رکھے۔ ہمارے پیروں کا نشان (قبر) تو بنا دیتے ہیں۔“

اپنی ایک تحریر میں اے حمید نے یہ بات لکھی تھی کہ میں اپنے فلاں بیمار دوست کو بستر مرگ پر دیکھنے نہیں گیا اس لیے کہ میں جن سے محبت کرتا ہوں ان کو اس حالت میں نہیں دیکھ سکتا۔
حمید صاحب! ہم آپ کو اس حالت میں دیکھنے کا حوصلہ کہاں سے لائیں ؟

عہد
لاہور
پہلے
چاہے
کی
دعوت
میں





اے حمید اور امجد سلیم
پاک ٹی بیڈس کے ہمراہ

اے حمید کی دوسری برسی راشد اشرف۔ ۷ مئی ۲۰۱۳۔ کراچی

ناول آپ نے پڑھا۔ یہ تحریر اس مصنف کی ہے جس نے تمام عمر سوائے لکھنے کے، اور کوئی کام نہ کیا۔ جناب اے حمید نے ریڈیو کی ملازمت تو روٹی تو کما کھائے مچھنڈر کے مصداق اختیار کی تھی۔ ان کی اصل دلچسپی تو صرف اور صرف لکھنے ہی میں رہی تھی۔ لاکھوں معصوم ذہنوں کی تربیت کرنے والے اس درویش صفت مصنف کی دوسری برسی بھی ۲۹ اپریل ۲۰۱۳ کو خاموشی سے گزر گئی، گویا برسی نہ ہوئی، بے حسی ہو گئی۔ حمید صاحب کے پرستار کسی ٹی وی چینل پر، کسی اخبار میں ایک کالمی خبر کے منتظر ہی رہ گئے۔ شاید ان میں سے کئی ایسے رہے ہوں جنہوں نے اس شخص کی تحریروں کو پڑھ کر ہی زندگی میں کوئی مقام پایا ہو، چار لوگوں میں بات کرنے کا سلیقہ اپنایا ہو۔

شہرت بخاری نے اپنی خود نوشت کھوئے ہوؤں کی جستجو میں لکھا تھا کہ یہ موت مجھے کہیں مجسم حالت میں مل جائے تو میں اس کا منہ نوچ لوں، کلیجہ چبالوں۔ یہ ڈاکن بار بار ہمارے پیاروں کو ہم سے جدا کر دیتی ہے۔

موت لے جائے گی مہ پاروں کو
ہائے یہ لوگ بھی مر جائیں گے

لیکن صاحبو! موت تو برحق ہے۔۔۔ اپنا وار کرتی رہے گی۔ علم تصوف میں بتایا جاتا ہے کہ زمانے میں ہمہ وقت ”حشر نشر“ کا سلسلہ جاری ہے۔۔۔۔۔ ایک سمت سے ہر لحظہ مخلوقات کو دنیا میں نشر کیا (پھیلایا)

جار ہا ہے اور دوسری جانب انہیں حشر (جمع ہونے/سمیٹے جانے) کا سامنا ہے۔ یوں زمانے کی گود میں ازل سے ترتیب و ابترا حرکت میں ہیں، اور رونے زمین پر اسی طور ابد تک محبت اور موت کی نبرد آزمائی جاری رہے گی۔ اللہ تعالیٰ کافر مان ہے (ترجمہ): "یہی ہے ازل سے تیرے رب کا طریقہ اور تو ابد تک اس میں کوئی تبدیلی نہ پائے گا۔"

فیض لدھیانوی (وفات: ۶ جنوری ۱۹۹۵ء لاہور) کا کیا خوب اور منفرد شعر ہے:

میں ہوں ناواقف مگر ہر سال آتی ہے ضرور
فیض جس کو کل کہیں گے میری تاریخ وفات

اے حمید صاحب نے اپنے ایک یادگار ناول ڈربے (مطبوعہ ۱۹۶۰ء) میں ایک گورکن کی زبانی موت کے فلسفے پر سادہ و دلنشین انداز میں روشنی ڈالی ہے۔ وہ لکھتے ہیں:

اس گورکن کی ہر نصیحت کسی نہ کسی مقولے پر ختم ہوا کرتی۔ وہ پڑھا لکھا بالکل نہ تھا مگر اس کی باتیں دور دور کی خبر لایا کرتیں۔ موت کے فلسفے پر وہ اس قدر آسانی سے روشنی ڈالا کرتا کہ ہر لفظ جگنو کی مانند چمک چمک کر اپنا مفہوم بتا دیتا تھا:

"لوگ موت سے خواہ مخواہ ڈرتے ہیں۔ سچ پوچھو تو زندگی کے لیے یہ بڑی ضروری شے ہے۔ ہمیں بھول کیوں اچھے لگتے ہیں؟ اس لیے کہ وہ تھوڑی دیر کے لیے کھلتے ہیں۔ اور پھر مرنے سے ہمیں نقصان ہی کیا ہوتا ہے۔ یہی نا کہ ہم اس دنیا میں باقی نہیں رہتے، تو اس میں حرج کی بات کیا ہے۔ اگر موت نہ ہوتی تو لوگ پہاڑوں سے کودتے، چتھر باندھ کر دریاؤں میں چھلا ننگ لگاتے،

انجن تلے سر دیتے۔ پھر سوچو زندگی کتنی گھناؤنی ہوتی۔ بھئی میں تو ہنسی خوشی جان دوں گا۔ موت کا استقبال ہوا رکی صورت ہونا چاہیے۔ برخوردار یہ سب دکھوں کا آخری علاج ہے۔

کہتے ہیں اگلے وقتوں میں روح قبض کرونے پر مامور فرشتے کو آتا دیکھ کر لوگ دشنام طرازی کیا کرتے تھے۔ طے پایا کہ اس سے بچنے کے لیے موت کے مختلف ذرائع مقرر کر دیے جائیں۔ لہذا ہم نے دیکھا کہ اے حمید صاحب نمونیہ کے شدید حملے کا شکار ہوئے اور تقریباً دو ماہ تک اسپتال میں داخل رہنے کے بعد ۲۹ اپریل ۲۰۱۱ کی رات دو بجے انتقال کر گئے۔ انا اللہ وانا علیہ راجعون

وہ تمام عمر سکرات کے اس عالم سے محفوظ رہے جس سے خاص کر ہمارے معاشرے کا کم و بیش ہر ادیب و شاعر گزرتا ہے یعنی زندگی میں قدر نہ ہونے کا احساس۔ اے حمید صاحب کو ان کے چاہنے والوں سے بے اندازہ محبت ملی!

ان کی اہلیہ اسپتال میں پچھلے دو ماہ سے مقیم تھیں جہاں پنجاب حکومت نے ان کے لیے ایک کمرہ مخصوص کر دیا تھا۔ ان کو اسپتال انتظامیہ نے رات دو بجے اطلاع دی کہ حمید صاحب کی حالت نازک ہے۔ جب وہ کمرے میں پہنچیں تو حمید صاحب جا چکے تھے!۔۔۔ اچانک ان کے جسم میں پانی بھرنا شروع ہو گیا تھا اور دو بجے ان کا انتقال ہو گیا۔ مجھ سے گفتگو کرتے وقت حمید صاحب کی اہلیہ کا لہجہ پرسکون تھا۔ وہ کہہ رہی تھیں:

حمید صاحب کے چہرے پر بڑا سکون تھا اور اس کئی لوگ اس بات کے گواہ ہیں کہ انتقال کے بعد ان کے ہونٹوں پر مسکراہٹ تھی۔

میں نے دریافت کیا کہ اس وقت ان کا جسدِ خاکی کہاں ہے تو ان کی اہلیہ نے بتایا کہ ابھی ابھی ان کو اسی کمرے میں لایا گیا ہے جہاں میں (رقم) ۲۰۰۸ میں ان سے ملاقات کی غرض سے دیر گئے تک بیٹھا رہا تھا۔

چشمِ تصور سے میں نے وہ منظر دیکھا اور بوجھل دل کے ساتھ رواتی تعزیتی جملے کا سہارا لیا:
اللہ آپ کو وقت کے ساتھ صبر دے!

بیچا! وقت تو میرے لیے رک گیا ہے، ختم ہو گیا ہے، تو یہ صبر کیسے آئے گا؟
حمید صاحب کی اہلیہ کے اس جواب سے میری آواز میرا ساتھ چھوڑ گئی۔

اے حمید صاحب اپنی خودنوشت تحریر کر رہے تھے اور میں اکثر ان سے اس بارے میں فون پر دریافت کر لیا کرتا تھا۔

بہت کم لوگ جانتے ہوں گے کہ انہوں نے اپنی خودنوشت کا نام ”چھوڑ آنے ہم وہ گلیاں“ تجویز کیا تھا۔

فارغِ بخاری کی خودنوشت ”مسافتمیں“ کا آخری باب ان کے بیٹے قمر عباس نے تحریر کیا تھا جو خود بھی ایک مصنف تھے اور بعد ازاں ۷ مئی ۲۰۰۷ کے روزِ پشاور میں قتل کر دیے گئے تھے۔

حمید صاحب! اللہ تعالیٰ آپ کو اپنی عنایتوں کے سارے تیلے ہمیشہ رکھے۔۔۔ لیکن آپ کی خودنوشت کا آخری باب کون تحریر کرے گا؟